बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच0 डी0

की

उपाधि के लिये प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

卐

सन् १९८३

निर्देशक :-

डा0 विश्वम्भरसिंह भदौरिया

एम0 ए: पी-एच० डी०

प्राचार्य

अतर्रा कालेज अतर्रा (बांदा)

मनुजी श्रीवास्तव

एम० ए० (राजनीति शास्त्र) (हिन्दी)

प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग

बुन्देलखण्ड महा विद्यालय झांसी

(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय)

बुन्देलखण्ड जनपद के आधुनिक काल के प्रतिनिधि कवि

-: स्व० नाथूराम माहौर : जीवन और साहित्य :-

बुन्देलखण्ड जनपद के आधुनिक काल के प्रतिनिधि कवि

-: स्व० नाथूराम माहौर : जीवन और साहित्य :-

卐

सन् १९८३

निर्देशक :-

डा० विश्वम्भरसिंह भदौरिया

एम० ए; पी-एच० डी०

प्राचार्य

अतर्रा कालेज अतर्रा (बांदा)

मनुजी श्रीवास्तव

एम० ए० (राजनीति शास्त्र) (हिन्दी)

प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग

बुन्देलखण्ड महा विद्यालय झांसी

(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय)

आभार

शोध - ग्रन्थ के प्रारम्भ से लेकर परि समाप्ति तक के महत् कार्य में अनेक विद्वानों एवं संस्थाओं का योगदान अपरिहार्य होता है । अपने इस शोध - कार्य में जिन विद्वानों की ज्ञान गरिमा और औदार्य से मैं लाभान्वित हुआ हूँ, उनके प्रति आभार - प्रदर्शन मेरा पावन कर्त्तव्य है । सर्व प्रथम मैं कवीन्द्र नाथूराम माहौर के भान्जे स्व० डा० भगवान दास माहौर भूतपूर्व प्राध्यापक हिन्दी विभाग बुन्देलखण्ड कालेज झाँसी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ जिन्होंने मुझे कवीन्द्र माहौर के व्यक्तित्व और कृतित्व पर शोध करने की प्रेरणा दी । कवीन्द्र माहौर के प्रिय शिष्य स्व० सुन्दरलाल त्रिवेदी "मधुकर" का मैं चिर ऋणी रहूँगा जिन्होंने माहौर जी की समस्त प्रकाशित कृतियाँ सुलभ कराने में मेरी सहायता की । स्व० त्रिवेदी जी के प्रति मैं श्रद्धा के सुमन समर्पित करता हूँ । मैं कवि पत्नी श्री मती कुसुम माहौर के प्रति कृतज्ञता- ज्ञापन करना अपना पावन कर्त्तव्य समझता हूँ जिन्होंने कवीन्द्र के जीवन की विविध घटनाओं को संकलित करने में पूर्ण सहयोग दिया । झाँसी के प्रमुख कवियों एवं साहित्यकारों द्वारा मुझे प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध लिखने में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहायता प्राप्त होती रही है, मैं उन सबके प्रति हृदय से आभारी हूँ । माहौर जी के अप्रकाशित साहित्य को उपलब्ध कराने में रामसेवक त्रिपाठी "सेवकेन्द्र " श्री राम भरोसे ह्यारण "अभिराम", पत्रकार श्री रामसेवक रावत , कविवर श्री रामचरण ह्यारण मित्र, श्री दीपचन्द जी , श्री नारायण सिंह "नरेश" , श्री पराशी लाल ज्योतिषी आदि महानुभावों से मुझे पर्याप्त सहायता मिली है , इन सभी के प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ ।

प्रस्तुत शोध- प्रबन्ध डा० शिवशंकर सिंह भदौरिया प्राचार्य, अतर्रा कालेज अतर्रा के निर्देशन में लिखा गया है । आपने जिस सहृदयता , स्नेह एवं तत्परता से मेरा पथ-प्रदर्शन किया, उसके लिये मैं अतीव कृतज्ञ हूँ । मेरे श्रद्धेय गुरुवर डा० द्वारका प्रसाद मीतल, अध्यक्ष हिन्दी विभाग बुन्देलखण्ड कालेज झाँसी ने असीम अनुग्रह एवं अनवरत प्रेरणा द्वारा सदैव मेरा उत्साह वर्धन किया , जिसके फलस्वरूप मैं अपने शोध ग्रन्थ को त्वरित गति से पूर्ण करने में समर्थ हो सका . आदरणीय डा० साहब के महत्व को मैं किसी भी प्रकार के आभार प्रदर्शन की -

औपचारिकता द्वारा कम नहीं करना चाहता । प्रो० सुरेन्द्र नाथ वर्मा भूतपूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग बुन्देलखण्ड कालेज झाँसी ने समय समय पर मेरे शोध-ग्रन्थ का अवलोकन कर यथा स्थान संशोधन करते हुये मेरी कठिनाइयों का निराकरण किया , उनकी इस अहेतुकी कृपा के निमित्त मैं उनका कृतज्ञ हूँ । अपने पिता श्री श्री भगवती शरण दास :कवि एवं साहित्यकार : के सम्यक मार्ग - दर्शन एवं सतत प्रेरणा के अभाव में इस शोध ग्रन्थ का पूर्ण होना असम्भव था उनका वरदहस्त मेरा सम्बल बन कर सदैव आत्म विश्वास प्रदान करता रहा उनके लिये शब्दों में कुछ भी कहना केवल परम्परा का निर्वाह ही होगा । पितृ-हृदय सदैव सन्तान - उन्नति चाहता है , मेरी उन्नति के लिये उनका आशीर्वाद मेरे साथ है । हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान डा० हरवंशलाल शर्मा , कुलपति बुन्देल-खण्ड विश्वविद्यालय झाँसी , ने अपने व्यस्त समय में से मुझे कुछ समय प्रदान कर समय समय पर अमूल्य सुझाव देकर जो मेरी सहायता की उसके लिये आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना मैं अपना नैतिक कर्त्तव्य समझता हूँ । महत कार्य की पूर्णता में सहयोग देने वालों का योग भी कम महत्वपूर्ण नहीं होता । इस दृष्टि से मेरे प्रिय शिष्य श्री हनुमान दास चौरसिया धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने मेरे शोध - प्रबन्ध को आद्योपान्त बड़ी ही निष्ठा एवं मनोयोग के साथ टंकित कर मुझे सहयोग दिया । टंकित शोध - प्रबन्ध को संशोधित करने, सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची तैयार करने एवं शोध-प्रबन्ध के पृष्ठों को क्रमानुसार सुव्यवस्थित करने में मेरी प्रिय शिष्या कु० निशा श्रीवास्तव ने मेरी बहुविध सहायता की है एतदर्थ मैं उन्हें साधुवाद देता हूँ । वे मेरे अशेष - स्नेह और शुभाशीर्वाद की अधि - कारिणी हैं ।

प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध के लिखने में विभिन्न आलोचनात्मक ग्रन्थों, इतिहास ग्रन्थों, अनेक पत्र पत्रिकाओं आदि से यथावश्यक सहायता प्राप्त हुयी है जिसकी सूची परिशिष्ट में दी गयी है , मैं इन पुस्तकों के विद्वान लेखकों के प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ । बुन्देलखण्ड कालेज झाँसी के पुस्तकालय से मुझे पर्याप्त सहायता प्राप्त हुयी है उसके लिये मैं पुस्तकालयाध्यक्ष एवं समस्त कर्मचारियों के प्रति आभारी हूँ ।

मैं अपने उन सभी गुरुजनों , मित्रों, साथियों , और आत्मीयों के

प्रति भी आभार प्रदर्शित करता हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य के पूर्ण होने में मुझे आशीर्वाद और प्रेरणा प्रदान की । अन्त में मैं अपनी पत्नी श्रीमती शशि श्रीवास्तव के सहयोग को भी विस्मृत नहीं कर सकता जिन्होंने इस शोध - प्रबन्ध के प्रारम्भ से लेकर परिसमाप्ति तक के परिश्रम साध्य कार्य में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अनेक मुखी सहायता प्रदान की है ।

मनुजा श्रीवास्तव
एम०ए० (राजनीति शास्त्र)(हिन्दी)
प्रवक्ता, हिन्दी - विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय
झाँसी (उ०प्र०)

--------------- 0 ---------------

प्राक्कथन

वीर - प्रसविनी बुन्देलखण्ड की भूमि में पौराणिक काल से ही समय समय पर अनेक कवि तथा महान क्रान्तिकारी विभूतियां अवतरित होती रही हैं । इस प्रदेश की अनेक प्राचीन तथा अर्वाचीन विभूतियाँ आज भी उसी भांति अज्ञात हैं जिस प्रकार सागर के गर्भ में अनेक रत्न वर्षों तक छिपे रहते हैं तथा उन रत्नों को खोजकर बाहर लाने पर ही उनका सही मूल्यांकन हो पाता है । कवीन्द्र नाथूराम माहौर भी इसी गौरवशालिनी बुन्देल भूमि के एक ऐसे ही अमूल्य रत्न हैं जो अभी तक सागर के रत्न की भांति हिन्दी साहित्य के समीक्षकों एवं पाठकों के लिये अज्ञात हैं । माहौर जी ने अपनी काव्य साधना द्वारा गांधी जी के नेतृत्व में चल रहे स्वतंत्रता संग्राम में नव जागरण का मंत्र फूंका । यहाँ की जनता में सांस्कृतिक चेतना, साहित्यिक सुरुचि और सामाजिक उत्तरदायित्व को जाग्रत करने का अद्वितीय एवं अविश्रान्त प्रयास किया । कवि सम्मेलनों में एकत्रित सह-स्रों जनमानस को रस विभोर कर नई विचार धारा तथा नये संकल्प की प्रेरणा दी । माहौर जी का काव्य जहाँ एक ओर प्राचीन परम्परा का सर्वांगीण स्वरूप उप-स्थित करता है वहीं दूसरी ओर आधुनिक युगीन स्वतंत्र चिन्तन और मौलिक विचार धारा से भी परिपूर्ण है । वे एक विशाल कवि - परिवार के काव्य - गुरु रहे हैं और अनेक भावुक काव्याभ्यासी उनकी प्रेरणा और प्रशिक्षण से समर्थ कवि हुये हैं । वास्तव में कवीन्द्र नाथूराम माहौर बुन्देलखण्ड जनपद के प्रतिष्ठित जन कवि रहे हैं । आपके अनेक ग्रन्थ यद्यपि प्रकाशित हो गये हैं किन्तु विपुल काव्य सामग्री अभी तक अप्रकाशित है । ऐसे कवि के जीवन और साहित्य पर उन समस्त दृष्टियों से शोध कार्य होना नितान्त आवश्यक था । अतः मैंने बुन्देलखण्ड भूषण स्व० नाथूराम माहौर को अपने शोध का विषय बनाकर पूर्ण रूप से यह चेष्टा की है कि कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्यों में रख कर उनका मूल्या-ङ्कन कर सकूं । इससे बुन्देलखण्ड के साहित्यिक योगदान में एक नया अध्याय जुड़ सकेगा । आशा है कि यह शोध - प्रबन्ध इसकी चाह - पूर्ति कर सकेगा ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय में माहौर जी का विस्तृत जीवन - वृत्त दिया गया है । इसके अन्तर्गत कवि के जन्म स्थान, पूर्वजों का स्थान, जाति एवं गोत्र का उल्लेख करने के पश्चात वंश का परिचय -

किया गया है । माहोर जी के बाल्यकाल एवं शिक्षा - दीक्षा के पश्चात उनके ग्रा-र्हस्थ जीवन पर प्रकाश डाला गया है । कवीन्द्र की देश - प्रेम की भावना, आस्तिकता, शिष्टाचार एवं विनम्रता आदि उनके व्यक्तित्व के ऐसे गुण थे जिनसे कवि के सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता था । कवि के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन का विवरण देते हुये राज-दरबारों में प्राप्त विभिन्न उपाधियों का उल्लेख भी इस अध्याय में किया गया है । अन्त में कवि के स्वर्गारोहण एवं विभिन्न संस्मरणों का उल्लेख है ।

द्वितीय अध्याय में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियों का अध्ययन कर माहोर जी की काव्य साधना पर उनका प्रभाव दिखलाया गया है । इन परिस्थितियों के अभाव में कवि के साहित्य की मूल प्रवृत्तियों का अनुशीलन नहीं किया जा सकता । माहोर जी के निवास स्थान झाँसी की तत्कालीन स्थिति का पर्यालोचन विशेष रूप से किया गया है ।

तृतीय अध्याय में माहोर जी की प्रकाशित एवं अप्रकाशित कृतियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । कवि की समस्त रचनाओं को श्रृंगारिक, भक्ति-परक एवं राष्ट्रीय तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है । प्रत्येक कृति का उद्देश्य, विषय वस्तु एवं मौलिकता का दिग्दर्शन करते हुये संक्षिप्त परिचय दिया है । माहोर जी की समस्त कृतियों का कलेवर आधुनिक है, आत्मा रीति-कालीन है ।

चतुर्थ अध्याय में माहोर जी के काव्य का विषय विवेचन है । कवि की कविताओं का परीक्षण युगीन पृष्ठ भूमि के परि प्रेक्ष्य में किया गया है । कवि का प्रकृति चित्रण करते समय प्रकृति चित्रण की परम्परागत प्रणाली को दृष्टि में रखते हुये कवि की प्रकृति चित्रण सम्बन्धी विशिष्टताओं का उल्लेख किया गया है । माहोर जी के काव्य में श्रृंगार भावना का वर्णन करते समय नायिका भेद को विशेष रूप से ध्यान में रखा गया है । इसी सन्दर्भ में ऋतु साहित्य का विवे-चन भी किया गया है । इसके अतिरिक्त कवीन्द्र की वीर भावना, भक्तिभावना, देश - प्रेम और हास्य एवं व्यंग का भी सांगोपांग वर्णन इस अध्याय में विस्तृत रूप से किया गया है ।

पंचम अध्याय में माहौर जी के काव्य के भाव - पक्ष का दिग्दर्शन है । भाव - पक्ष के अन्तर्गत रस की स्थिति विशेष महत्व पूर्ण होती है । माहौर जी ने श्रृंगार, वीर, एवं शान्त रस को अपने काव्य में प्रमुख स्थान दिया है गौण रूप में अन्य रसों का भी उल्लेख हुआ है । प्रस्तुत अध्याय में कवि के काव्य में विभिन्न रसों की स्थिति का सम्पूर्ण अवयवों सहित वर्णन है ।

षष्ठम अध्याय में माहौर जी के काव्य के कलात्मक सौन्दर्य पर प्रकाश डाला गया है । माहौर जी ने ब्रज भाषा को प्रमुख रूप से स्थान दिया है इसके साथ ही स्थानीय बोली बुन्देली से भी वे अछूते नहीं रहे स्थान स्थान पर उन्होंने विशुद्ध बुन्देली भाषा का प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त अपनी रचनाओं में उर्दू, अंग्रेजी तथा संस्कृत भाषा के शब्दों का प्रयोग भी बड़ी ही कुशलता के साथ किया है । काव्य की शब्दशक्तियां अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना तीनों के प्रयोग माहौर जी के काव्य में मिलते हैं । नायिका भेद के वर्णन में लक्षणा एवं व्यंजना शब्द शक्तियों का अधिक प्रयोग हुआ है । कवि के काव्य में ओज , माधुर्य तथा प्रसाद तीनों ही गुणों का समावेश है । गुणों के साथ ही दोषों का विवेचन भी यथास्थान किया गया है । छन्द योजना में माहौर जी सिद्ध हस्त थे । कवित्त या मनहरण छन्द का प्रयोग अधिक किया है । साथ ही सवैया, घनाक्षरी, मत्त-गयन्द, दुर्मिल, दोहा चौपाई, सोरठा, रोला, कुण्डलिया आदि छन्द भी यथा-स्थान बड़ी ही कुशलता के साथ कवि ने प्रयुक्त किये हैं । अलंकारों के प्रयोग में माहौर जी ने रीतिकालीन काव्य परम्परा का अनुगमन किया । उनके काव्य में अनुप्रास, यमक, उपमा और उत्प्रेक्षा की अच्छी छटा देखने को मिलती है इनके अतिरिक्त रूपक , भ्रान्तिमान, श्लेष, सन्देह, अप्रस्तुत प्रशंसा, अर्थान्तरन्यास, विभावना, [illegible], विरोधाभास, प्रतीप, व्यतिरेक, उल्लेख, व्याजस्तुति, मानवीकरण , अपह्नुति, परिकरांकुर और मुद्रा आदि अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग किया गया है ।

सप्तम् अध्याय में बुन्देलखण्ड जनपद के प्रमुख आधुनिक कवियों में माहौर जी का स्थान निर्धारित किया गया है । बुन्देलखण्ड के प्रमुख कवियों से माहौर-जी की तुलना उनकी काव्य कला, वर्ण्य विषय एवं प्रकृति के आधार पर करते हुये उनके स्थान निर्धारण का प्रयास किया गया है । बुन्देलखण्ड के प्रमुख आधुनिक कवि स्व० मैथिली शरण गुप्त, स्व० घासीराम व्यास, स्व० घनश्याम दास पाण्डेय,

स्व० मदन मोहन द्विवेदी "मदनेश", स्व० घनश्याम पाण्डेय , स्व० बालेश जी, स्व० घासीराम व्यास "बुन्देश" , श्री अम्बिकेश जी, स्व० श्रीमती रामकुमारी चौहान आदि कवियों से माधौर जी की काव्य कला की तुलना करते हुये बुन्देलखण्ड जनपद के आधुनिक काल के कवियों में उनका स्थान निर्धारित किया गया है । इसी अध्याय में बुन्देलखण्ड की राष्ट्रीय चेतना में माधौर जी का सक्रिय योगदान दिखलाया गया है । माधौर जी ने अन्य राष्ट्रीय कवियों की भांति अपने काव्य के माध्यम से राष्ट्रीयता की भावना सर्वाधिक प्रचार एवं प्रसार किया । देश के नवयुवकों को स्वतंत्रता संग्राम के लिये प्रेरित करने का सर्वाधिक श्रेय माधौर जी के राष्ट्रीय साहित्य को है ।

शोध प्रबन्ध के अन्त में परिशिष्ट -1 में कवीन्द्र माधौर के प्रकाशित एवं अप्रकाशित साहित्य की सूची है तथा परिशिष्ट -2 में विभिन्न सन्दर्भ ग्रन्थों अंग्रेजी, हिन्दी , संस्कृत की सूची देते हुये शोध - ग्रन्थ की परि समाप्ति की गयी है ।

---------------- 0 ----------------

विषयानुक्रमणिका

1:- अश्रु तथा स्वर भंग 2:- प्रलय 3:- कम्प 4:- वैवर्ण्य पृ0 संख्या

5:- स्तम्भ 6:- स्वेद ।

<u>व्यभिचारी अथवा संचारी भाव :-</u>

हर्ष, व्रीड़ा, औत्सुक्य, असूया, अवहित्था ।

भावोदय एवं भाव शान्ति, भाव सन्धि, भाव शबलता ।

<u>षष्ठम अध्याय</u> :- <u>मावोर जी का कला पक्ष</u> ---- 363 - 432

<u>मावोर जी के काव्य भाषा तथा शब्द विधान -</u>

तत्सम शब्द, अर्द्ध - तत्सम और तद्भव शब्द, देशज शब्द, ब बुन्देली के शब्द, विदेशी शब्द, अनुकरणात्मक शब्द, मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ ।

<u>मावोर जी के काव्य शब्द शक्तियाँ-</u> अभिधा, लक्षणा, व्यंजना

<u>मावोर जी के काव्य में गुणों का स्वरूप- माधुर्य, ओज, प्रसाद</u>

<u>दोष - विवेचन</u> - वचन और लिंग दोष, विभक्ति दोष, क्रिया रूप का दोष, श्रुति कटुत्व दोष, अधिक पदत्व दोष, ग्राम्यत्व दोष, अश्लीलत्व दोष, छन्दोभंग दोष, अक्रमत्व दोष ।

<u>छन्द - योजना</u> - कवित्त या मनहरण, रूप घनाक्षरी, सवैया :मत्तगयन्द- दुर्मिल, सुन्दरी : दोहा, सोरठा, चौपाई, हरिगीतिका, रोला, कुंडलिया ।

<u>अलंकार - योजना :-</u>

<u>शब्दालंकार</u> - अनुप्रास, यमक- श्लेष, पुनरुक्ति

<u>अर्थालंकार</u> - उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, प्रतीप, व्यतिरेक, विरोधाभास, विभावना, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास, अप्रस्तुत प्रशंसा, व्याज स्तुति

पृ० संख्या

उल्लेख, सन्देह, मानवीकरण , अपन्हुति, विनोक्ति , परिकर। पु० पूर, लोकोक्ति , मुद्रा ।

सप्तम अध्याय :-

---------- 0 ----------

प्रथम अध्याय

जीवन-वृत्त

जन्म स्थान एवं निवास स्थान

कवीन्द्र नाथूराम माहौर बुन्देलखण्ड के उन कवियों में से हैं जिन्होंने अपनी युगान्तकारी रचनाओं से बुन्देलखण्ड की भूमि को गौरवान्वित किया। प्राचीन कवियों की आत्म विज्ञापन न करने की प्रवृत्ति के अनुसार माहौर जी ने भी अपने विषय में कुछ नहीं लिखा। उनके जीवन-वृत्त की सामग्री उनके समकालीन मनीषियों, चिन्तकों एवं उनके परिवार के सदस्यों से ही यात्किंचित रूप में उपलब्ध हो सकी है। :1: माहौर जी अभिनन्दन ग्रन्थ :2: में भी उपलब्ध सामग्री उनके जीवन वृत्त पर यथेष्ट प्रकाश डालती है। इसके अतिरिक्त "माहौर कवि मण्डल" के सदस्यों से भी :जो वर्तमान हैं: पर्याप्त सहायता मिली है।

माहौर जी के पिता श्री रामलाल माहौर झाँसी निवासी थे। झाँसी में दूध दही का व्यवसाय करते थे। उनकी दुकान जहाँ पर वर्तमान आजाद चन्द्र-शेखर मार्ग पर "गन्दीगर टपरा" मुहल्ले में थी उनकी दुकान के समीप ही रामदास गन्धी की प्रसिद्ध दुकान थी। रामलाल माहौर ओजस्वी तथा कट्टर सनातन धर्मी थे। अपने सरल तथा विनोदी स्वभाव से अपने ग्राहकों को आकर्षित किया करते थे। उनके दो पुत्रियाँ तथा एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रियों के नाम हैं -केसरबाई तथा मन्नीबाई। पुत्र का नाम था नाथूराम माहौर :1: नाथूराम माहौर ने झाँसी में ही जन्म लेकर यहीं जीवन-यापन किया। श्री -

---

1:- माहौर जी के पारिवारिक सदस्यों में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कुसुम माहौर अभी जीवित हैं। आचार्य सेवकेन्द्र त्रिपाठी, श्री रामचरण ह्यारण मित्र, श्री दीपचन्द जी, मुंशी देशराज वैद्य आदि माहौर जी के समकालीन व्यक्तियों से उनके जीवन वृत्त की पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो सकी है।

2:- प्रकाशक - द्वारिकेश मिश्र, मुद्रक रामसेवक शुक्ल स्वाधीन प्रेस झाँसी, रविवार, 11-10-59

3:- स्व० नाथूराम माहौर के भान्जे डा० भगवान दास माहौर द्वारा प्राप्त तथ्य :डा० भगवान दास माहौर का निधन 12 मार्च 1979 को हो गया।

रामलाल माहौर ने अपने इस पुत्र नाथूराम को अपनी सहायता के लिये अपनी दूध दही की दुकान पर बिठाना प्रारम्भ किया । कुछ समय पश्चात माहौर जी ने झाँसी बजाजा बाजार स्थित रघुनाथ जी के मन्दिर के नीचेएक दुकान लेकर कपड़े का व्यवसाय प्रारम्भ किया ।

पूर्वजों का स्थान :-

कवीन्द्र नाथूराम माहौर के पूर्वजों के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं हो सका है । माहौर जी के समकालीन व्यक्तियों एवं उनकी धर्मपत्नी से ही कुछ तथ्य प्रकाश में आये हैं । श्री सुन्दरलाल द्विवेदी 'मधुकर' जो माहौर जी के प्रिय शिष्य थे ,:1: का कहना है कि माहौर जी के पिता श्री राम-लाल माहौर झाँसी में ही रहते थे । उनके पितामह तथा अन्य पूर्वजों का निवास स्थान कदाचित झाँसी के समीप किसी ग्राम में ही रहा होगा क्यों कि नाथू-राम माहौर की बहिनों के विवाह झाँसी तथा दतिया राज्यान्तर्गत बड़ोनी ग्राम में हुये थे । उस समय यह प्रथा थी कि साधारण परिवारों के विवाह अपने नगर या समीपवर्ती किसी ग्राम में कर दिये जाते थे । स्वयं नाथूराम माहौर का विवाह झाँसी में ही हुआ था । :2: उपर्युक्त तथ्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि माहौर जी के पूर्वज सम्भवतः झाँसी, दतिया या समीप वर्ती ग्राम के ही निवासी रहे होंगे । श्री ज्वाला प्रसाद मिश्र के अनुसार माहौर जाति के लोग ब्रजमण्डल तथा राजस्थान में भी पाये जाते हैं । ब्रजमण्डल में विशेष रूप से मथुरा में निवास करने वाले ढूसर बनी बाद को माहौर कहलाये :3: । इस प्रकार ये नहीं कहा जा सकता कि माहौर जी के पूर्वज किसी एक ही स्थान पर रहा करते होंगे । बुन्देलखण्ड राजस्थान तथा ब्रजमण्डल तीनों ही प्रदेशों में इनके पूर्वजों का निवास स्थान था ।

जाति एवं गोत्र :-

साधारणतया बुन्देलखण्ड के माहौर अपने को वैश्य वर्ण का मानते हैं ।

1:- श्री सुन्दरलाल द्विवेदी मधुकर माहौर जी के सर्वाधिक निकट एवं प्रिय शिष्य थे । माहौर जी के जीवन के सम्बन्ध में द्विवेदी जी से पर्याप्त सामग्री प्राप्त हुयी । श्री मधुकर जी का देहावसान सन् 1980 को हो गया ।

2:- माहौर जी की धर्मपत्नी से प्राप्त तथ्य ।

3:- 'जातिभास्कर' - ज्वालाप्रसाद मिश्र - पृष्ठ 320

माहौर जाति के लोग विशेषतया ब्रजमण्डल राजस्थान तथा बुन्देलखण्ड में पाये जाते हैं । ब्रज तथा राजस्थान के निवासी कुछ माहौरों का मत है कि माहौर चन्द्रवंशी हैं । वे अपने को 'महा-उर' की सन्तान बतलाते हैं । 'महा-उर' से चन्द्र वंश का तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ । 'महा-उर' चन्द्रवंशी ययाति का तीसरा पुत्र था जिसका यथार्थ नाम 'उरु' था । इस प्रकार से उरु वंशी ही माहौर कहलाये । 'उरु' वंशियों का राज्य मथुरा में था :1: । माहौर महत्व प्रकाश नामक विशाल ग्रन्थ में छत्तीस राजकुलों का वर्णन है जिसमें तीसवाँ राजकुल 'माहौरों' का है । उनके वैवाहिक रीति - रिवाज वैश्यों जैसे हैं :2: । फरा-दत नगर :आगरा: वालों का कहना है कि 'माहौर' माथुर वैश्य हैं । माथुर का ही अपभ्रंश रूप माहौर हो गया । माहौरों के चार गोत्र हैं - 'महावर न्यारे मथुरिया और माहौर' । कवीन्द्र नाथूराम माहौर "न्यारे माहौर" वंश के थे :3: , वे अपने को 'माथुर' लिखा करते थे । अपनी कृतियों में उन्होंने 'माथुर' उपनाम का ही प्रयोग किया है ।

वंश - परिचय :-

कवीन्द्र नाथूराम माहौर के पिता श्री रामलाल माहौर झाँसी में दूध दही के व्यवसायी थे । उनकी दुकान आजाद चन्द्रशेखर मार्ग पर 'मन्दीगर टपरा' मुहल्ले में थी । श्री रामलाल जी ओजस्वी , सरल तथा विनोदी स्वभाव युक्त कट्टर सनातन धर्मी थे । उनके दो पुत्रियाँ - केसरबाई तथा मन्नीबाई एवं एक पुत्र नाथूराम थे । उन दिनों साधारण स्थिति वाले परिवारों में विवाह अपने ही नगर अथवा पार्श्ववर्ती नगर या ग्राम में हो जाया करते थे । तद - नुसार श्री रामलाल माहौर की बड़ी पुत्री केसरबाई का विवाह झाँसी में तथा छोटी पुत्री मन्नीबाई का विवाह दतिया राज्यान्तर्गत 'बड़ौनी' के एक माहौर परिवार में हुआ था । इस परिवार के पूर्वज तलवार बाँधने वाले अश्वारोही - थे । एक अवसर पर वे क्षत्रियों जैसा दर्प प्रदर्शित कर एक कन्या का अपहरण -

---

1:- जाति - भास्कर - ज्वाला प्रसाद मिश्र - पृष्ठ 320

2:- 'माहौर महत्व प्रकाश' - पृष्ठ 59 :रत्नाकर फार्डन आर्ट प्रिंटिंग वर्क्स आगरा से 1924 को प्रकाशित :

3:- माहौर जी के भान्जे स्व० भगवान दास माहौर से प्राप्त तथ्य

विवाह मण्डप से कर लाये थे जिसके कारण उन्हें बिरादरी से बहिष्कृत कर दिया गया था :1: । श्री रामलाल माहौर ने अपनी छोटी पुत्री नन्नीबाई का विवाह इस जाति बहिष्कृत समाज में कर प्रमाणित कर दिया कि उनके अन्दर परम्परा को परिवर्तित करने की क्षमता विद्यमान थी । श्री रामलाल जी के क्रान्तिकारी संस्कार से सम्पन्न नन्नीबाई तथा कठोनी वालों के शौर्य सम्पन्न परिवार के संयोग से जो सन्तानें उत्पन्न हुयी उनके अन्दर भी इसी प्रकार की शौर्य प्रवृत्ति विद्यमान रही । नन्नीबाई के तीन पुत्र तथा एक पुत्री 'रामरती' थी । पुत्री तीनों पुत्रों से छोटी थी तीन पुत्र - सर्व श्री नारायण दास माहौर, भगवानदास माहौर , राधाचरण माहौर थे । नारायण दास जी मस्त स्वभाव के व्यक्ति थे । भगवान दास तथा राधाचरण माहौर विशिष्ट क्रान्तिकारी रहे । श्री नारायण दास का स्वर्गवास 61 वर्ष की आयु में तथा श्री राधाचरण जी का सन् 1961 में 51 वर्ष की आयु में हो गया था । वे आजीवन संघर्षरत रहे । उन्होंने कम्युनिज्म की राजनीतिक दृष्टि को स्वीकार किया तथा विशेषतः श्रमिकों के उत्थान के प्रयत्न में लगे रहे ।

श्री भगवान दास माहौर क्रान्तिकारी भावना से प्रेरित हो प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री चन्द्रशेखर आजाद के दल में सम्मिलित हो गये और सक्रिय सदस्य के रूप में कार्य करते रहे । श्री भगवानदास माहौर क्रान्तिकारी होने के साथ ही साथ संगीत एवं काव्य - कला की ओर भी विशेष रूप से उन्मुख हुये । कवीन्द्र नाथूराम माहौर के कुल पुरोहित तथा काव्य गुरु श्री मदनेश जी ने "लक्ष्मीबाई रासो " महाकाव्य लिखा था जो किन्हीं कारणों से प्रकाश में नहीं आ सका था । श्री भगवान दास माहौर ने इस पर शोध कार्य किया हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इस शोध ग्रन्थ पर उन्हें 'साहित्य महोपाध्याय' की उपाधि से सम्मानित किया :2: । जून 1971 में श्री भगवानदास माहौर-

---

1:- :एकबार कहीं पर इनके पूर्वज को 'बारी छोड़ा' कह कर व्यंग्य बाण से विद्ध किया गया था इस अपमान का बदला लेने के लिये वे परिणय मण्डप से कन्या का अपहरण कर लाये । इस कारण इन्हें जाति से बहिष्कृत कर दिया गया : :यह तथ्य स्व० डा० भगवानदास माहौर से प्राप्त हुआ :

2:- प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रथम संस्करण 18-6-1969 को राजीव प्रेस सदरका बाजार से प्रकाशित हुआ है ।

ने बुन्देलखण्ड कालिज झाँसी से प्राध्यापक के पद से अवकाश प्राप्त किया । 12 मार्च 1979 को 69 वर्ष की आयु में हृदय गति रुक जाने से आपका निधन हो गया ।

कवीन्द्र नाथूराम माहौर के पिता श्री रामलाल माहौर द्वारा अपनी पुत्री मन्नीबाई का विवाह जाति से बहिष्कृत समाज में किये जाने का परिणाम यह हुआ कि बाद को उनके परिवार के किसी भी सदस्य का विवाह वैवाहिक परम्परा से नहीं हुआ । स्वयं नाथूराम माहौर जी ने लगभग 42 वर्ष की आयु में अन्तर्जातीय विवाह किया था । उनके भान्जे डा० भगवान दास माहौर ने महाराष्ट्र के ब्राह्मण परिवार की एक महिला श्रीमती यमुना ताम्बे से विवाह किया जो विवाह के बाद श्रीमती यमुना माहौर हो गयीं । श्री राधाचरण माहौर आजीवन अविवाहित ही रहे । डा० भगवान दास माहौर के कोई सन्तान नहीं हुई है । श्री नारायण दास जी माहौर के एक पुत्र तथा एक पुत्री थी ।

कवीन्द्र नाथूराम माहौर के दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं - चन्द्रकली तथा शशि । चन्द्रकली का नाम अब उर्मिला हो गया है । दोनों ही विवाहिता हैं । माहौर जी की धर्मपत्नी श्रीमती कुसुम माहौर अभी जीवित हैं, वे झाँसी में ही लक्ष्मीबाई गर्ल्स जूनियर हाई स्कूल में अध्यापिका हैं । माहौर जी का मकान वर्तमान में चन्द्रशेखर आजाद मार्ग पर नन्दीगर टपरा मुहल्ले में है जिसमें उनकी धर्मपत्नी रह रही हैं ।
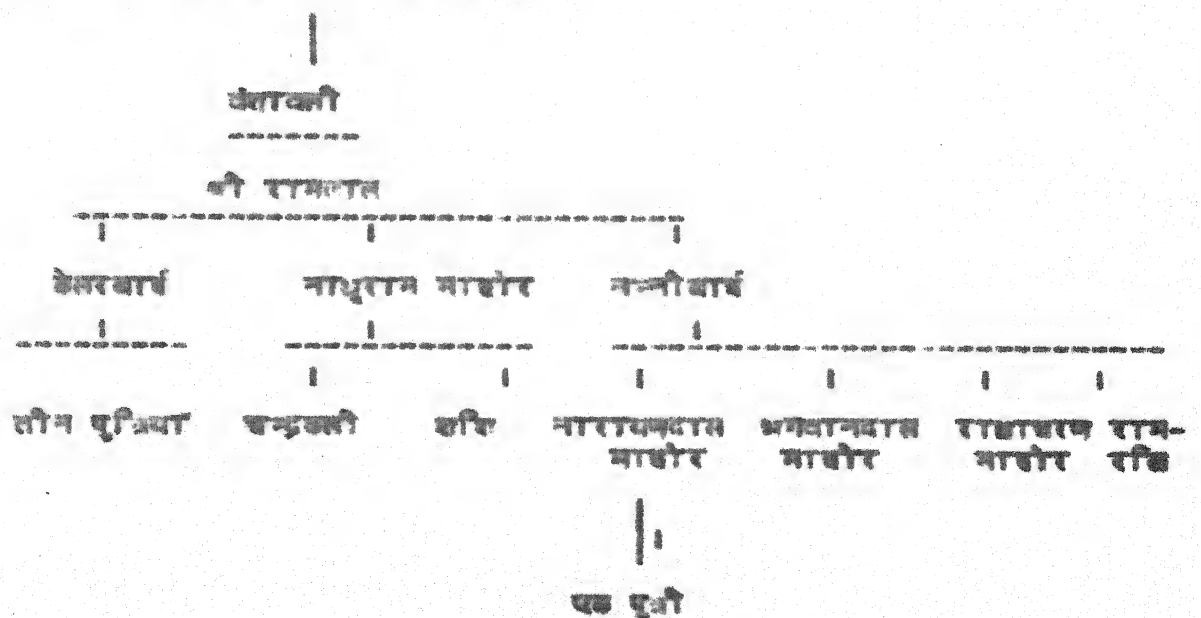
बाल्य - काल एवं शिक्षा - दीक्षा :-

कवीन्द्र नाथूराम माहौर का जन्म "काव्य - वाटिका" में पृष्ठ 6 पर प्रकाशित सूचनानुसार द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला दशमी सम्वत 1942 :सन्-1885 : को हुआ था :1: । श्री रामचरण हयारण मित्र ने अपने एक लेख में माहौर जी का जन्म सन् 1884 में बतलाया है :2: । श्री गौरीशंकर द्विवेदी के मतानुसार श्री नाथूराम माहौर का जन्म सम्वत् 1942 वि.के द्वितीय ज्येष्ठ की शुक्ल पक्ष की दशमी :गंगा दशहरा : को झाँसी में हुआ था :3: । माहौर जी के भान्जे स्व0 डा0 भगवान दास माहौर ने भी अपने एक लेख में श्री नाथूराम माहौर का जन्म सम्वत 1942 माना है :4: ।

श्री नाथूराम माहौर की जन्म कुण्डली
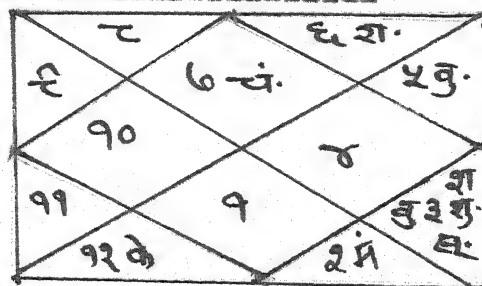
सन् 1885 का भारत अंग्रेजों का गुलाम था । उस समय साधारण परिवारों में शिक्षा दीक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था । बालक घर पर ही थोड़ी बहुत शिक्षा ग्रहण कर अपनी पैतृक कला में निपुण होकर जीवन-यापन करते थे । उच्च शिक्षा तो वर्ग - विशेष तक ही सीमित थी । माहौर जी के पिता दूध - दही के व्यवसायी थे , परिवार वणिक वृत्ति में दीक्षित था । वे अपने पुत्र को भी अपने व्यवसाय में दक्ष करना चाहते थे अतः उच्च शिक्षा के पक्षपाती न थे । परिणाम स्वरूप उनका "विद्यारम्भ परम्परागत परिपाटी के अनुकूल पाँच वर्ष की आयु में काठ की पट्टी पर ईंट का महीन चूरा बिछाकर उस पर आउकी लेखनी से "ओ नामासी धं" :ओं नमः सिद्ध :

1:- माहौर मण्डल द्वारा प्रकाशित "काव्य-वाटिका":प्रथम पुष्प : पृष्ठ-6

2:- दैनिक मध्य देश - गणतंत्र विशेषांक - पृष्ठ 139

3:- बुन्देल वैभव - पृष्ठ - 331 - श्री गौरीशंकर द्विवेदी

4:- माहौर अभिनन्दन ग्रन्थ - पृष्ठ 17

लिख कर ही हुआ था । कुशाग्र बुद्धि माहौर जी ने साल - डेढ़ साल में ही दुकानदारी के लिये आवश्यक पहाड़े आदि सीख लिये :1: । आचार्य शैलेन्द्र त्रिपाठी ने बतलाया कि माहौर जी का विद्यारम्भ "दादी पाण्डेय" द्वारा निश्चित हुआ था ।

पाँच वर्ष की अवस्था में विद्यारम्भ तथा अल्पकाल में ही लिखना - पढ़ना तथा दुकानदारी के लिये पर्याप्त गणित ज्ञान कर लेना माहौर जी की विशेष प्रतिभा का परिचायक है । "............... पाण्डे की चटसार से स्थानीय मैकडोनल हाई स्कूल :अब विपिन बिहारी इण्टर कालेज झाँसी : में पहुँचे और अंग्रेजी पढ़ने लगे तो अंग्रेजों के संसर्ग से "धर्म कर्म च्युत किरस्टान " बन जाने के भय से और आगे विद्याध्ययन दूध दही की दुकान करने वाले श्री रामलाल माहौर ने समाप्त करा दिया :2: । माहौर जी के पिता भारतीय संस्कृति के कट्टर पोषक धर्मानुरागी व्यक्ति थे । भारतीय परम्परागत संस्कारों के प्रभावस्वरूप उनका विश्वास था कि अंग्रेजी शिक्षा हिन्दू जीवन यापन - प्रणाली तथा हिन्दू संस्कृति को नष्ट कर देगी । वे पुत्र को अंग्रेजी शिक्षा में दीक्षित कर भारतीय संस्कृति को नष्ट होते हुये नहीं देखना चाहते थे । अतः अपनी संस्कृति की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये उन्होंने बालक की अंग्रेजी शिक्षा समाप्त करा दी ।

शिक्षा क्रम निरस्त होने के पश्चात माहौर जी अपने पिता के व्यवसाय में सहायता करते रहे । धर्म - परायणता माता तथा विदेशी भाषा के अध्ययन से भारतीय संस्कृति की हानि समझने वाले पिता के प्रभाव से उत्पन्न भारतीयता के संस्कार माहौर जी के मानस पटल पर अंकित होते गये । पं० मदन मोहन द्विवेदी "मदनेश" माहौर जी के परिवार के कुल पुरोहित थे और आप से ही माहौर जी ने प्रारम्भिक काव्य - शिक्षण प्राप्त किया था अतः "मदनेश" जी को ही वे अपना काव्य गुरु मानते हैं :3: । श्री मोतीलाल त्रिपाठी

1:- मा० अभि० ग्रन्थ - पृष्ठ 17 :लेखक डा० भगवानदास माहौर :

2:- ---- वही -पृष्ठ 18

3:- माहौर अभि० ग्रन्थ - पृष्ठ 31-पं० कैलाश नारायण द्विवेदी द्वारा लिखित लेख

"आनन्द" अपने "झाँसी-दर्शन" में लिखते हैं -"बुन्देलखण्ड भूषण कवीन्द्र नाथूराम माहौर ने काव्य क्षेत्र में अपने पूज्यनीय गुरु झाँसी के प्रसिद्ध विद्वान स्व० पं० मदनमोहन दुबे मदनेश से ही प्रसाद के रूप में जो कुछ शिक्षा प्राप्त की , वही सब कुछ उनकी अटूट साधना के फलस्वरूप साहित्य के क्षेत्र में प्रस्फुटित हुआ है:1: मदनेश जी माहौर जी के पिता के मित्र और कुल पुरोहित थे इस नाते मदनेश जी को माहौर जी "कक्का" कहा करते थे । गुरु के रूप में मदनेश जी की यही गरिमा और महत्ता है कि उन्होंने अपने क्शात्र माहौर जी की प्रतिभा को परखा और उसे समुचित प्रोत्साहन देकर विकसित होने का अवकाश और क्षेत्र भी बना दिया तथा माहौर जी के काव्योत्कर्ष और यश में ही अपनी सिद्धि समझी :2: ।

ज्ञान बालकों के मुख से प्रकट होता है । भगवान ईसा के इस वचन में जो सत्य है , उससे ज्यादा ऊँचा या उदात्त सत्य उन्होंने शायद ही कहा हो :3: । मदनेश जी ने भी बालक नाथूराम के अन्दर एक विलक्षण प्रतिभा देखी । विलक्षण प्रतिभायुक्त इस बालक के अन्दर उन्होंने काव्य रचना के संस्कारों को जाग्रत कर काव्य के क्षेत्र में पूर्णरूपेण पारङ्गत कर दिया । पुराने कवियों के सैकड़ों कवित्त माहौर जी ने अपने कुल पुरोहित और अन्य काव्यानुरागियों से सुनकर याद कर डाले ।

कवि प्रसविनी बुन्देलखण्ड की नगरी झाँसी में उन दिनों काव्य - चर्चा का विशेष रूप था । स्थान - स्थान पर कविगण अपनी कविताओं का सस्वर पाठ करते तथा छन्दों काव्य विषयक बनाये किया करते थे । मदनेश जी माहौर जी के पिता श्री रामलाल माहौर की दुकान पर गोपालसहस्त्र नाम का पाठ करते थे । वहीं पर माहौर जी को कवितायें कंठस्थ कराया करते थे :4: । इस प्रकार शनैः शनैः माहौर के अन्दर काव्यानुराग बढ़ता गया और उन्हें काव्य में एक विशेष रस की अनुभूति होती गयी । उन्होंने -

---

1:- झाँसी दर्शन - पृष्ठ - 200 - मोतीलाल त्रिपाठी

2:- लक्ष्मीबाई रासो- पुस्तक मदनेश - भूमिका पृष्ठ 42

3:- यंग - इण्डिया - 19/11/31 महात्मा गांधी

4:- सेवकेन्द्र त्रिपाठी से प्राप्त तथ्य

छन्दों की रचना तथा उसकी बारीकियों का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया इस प्रकार काव्याङ्गों का ज्ञान धीरे - धीरे स्वाध्याय और कवि सत्संग से बराबर बढ़ता रहा :1: ।

गार्हस्थ - जीवन :-

विलक्षण प्रतिभा से युक्त माहोर जी की विद्यालय में उपलब्ध होने वाली शिक्षा उनके पिता ने समाप्त करा दी । वे तो अपने पुत्र को :नाथूराम : अर्थोपार्जन निमित्त व्यवहारिक शिक्षा देने के पक्षपाती थे । फलतः उन्होंने माहोर जी को हजारी परिवार :जैन : की कपड़े की दुकान पर नियुक्त कर दिया । कुशाग्र बुद्धि माहोर जी अल्पकाल में ही कपड़े के व्यवसाय में पूर्ण पारङ्गत हो गये । पिता ने माहोर जी को जब व्यवसाय में पूर्ण दक्ष समझ लिया तब उन्होंने रघुनाथ जी के मन्दिर :2: के नीचे एक दुकान लेकर स्वतंत्र रूप से कपड़े का व्यवसाय प्रारम्भ करा दिया :3: । दुकान पर कपड़ों के ग्राहकों से अधिक काव्यानुरागी एकत्र हुआ करते थे । दुकान पर बिहारी नामक मुनीम के बड़ी ही तत्परता एवं ईमानदारी से कार्य करने के कारण आय में पर्याप्त वृद्धि होने लगी , पर बिहारी का निधन एक पिकनिक में जल में डूबने से हो गया , इस दुर्घटना ने माहोर जी के हृदय को व्यथित कर दिया ।

अपने बहनोई श्री तुलसीराम माहोर की आर्थिक स्थिति को बिगड़ता देखकर माहोर जी उन्हें सपरिवार अपने पास झाँसी ले आये :4: । माहोर जी अभी अविवाहित थे । अपने भान्जों पर उनका विशेष स्नेह रहता था । बहनोई के तीन पुत्र - श्री नारायण दास , भगवान दास तथा राधाचरण माहोर तथा एक पुत्री रामरति थी । दुकान पर उनके बहनोई श्री तुलसीराम तथा उनके बड़े पुत्र श्री नारायणदास भी बैठने लगे थे :5: । श्री तुलसी राम जी-

1:- मा0अभि0 ग्रन्थ - तृतीय खण्ड - पृष्ठ - 18
2:- रघुनाथ जी का मन्दिर आज भी झाँसी में बड़ा बाजार तथा बड़े बाजार को मिलाने वाली गली के ऊपर स्थित है ।
3:- श्री सत्येन्द्र त्रिपाठी से प्राप्त तथ्य
4:- मा0 अभि0 ग्रन्थ - तृतीय खण्ड - पृष्ठ - 29
5:- श्री द्वारिकेश मिश्र से प्राप्त तथ्य

के दूसरे पुत्र श्री भगवानदास जी माहौर कुशाग्र बुद्धि थे , पढ़ने लिखने में विशेष रुचि रखते थे । माहौर जी की ममता एवं स्नेह श्री भगवान दास जी पर विशेष रूप से था । उनकी शिक्षा दीक्षा का समुचित प्रबन्ध माहौर जी ने ही किया था :1: ।

श्री भगवान दास माहौर को क्रांतिकारियों ने प्रभावित किया और वे चन्द्रशेखर आजाद के दल में सम्मिलित हो गये । अब तो क्रान्तिकारी अपने अज्ञातवास के समय माहौर जी के ही घर पर रहा करते थे इन सब के सत्कार में माहौर जी का पर्याप्त धन व्यय होने लगा :2: । माहौर जी भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक थे ।अत: आतिथ्य सत्कार करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे । यद्यपि माहौर जी की आर्थिक स्थिति बिगड़ती जा रही थी फिर भी कवियोंतथा साहित्य प्रेमियों के अतिरिक्त श्री भगवानदास जी के जो भी क्रान्तिकारी सहयोगी आते , वे उन सभी का स्वागत करते थे । साहित्य प्रेमियों तथा कवियो को पूड़ी- मिठाई तो क्रान्तिकारियोंको रोटी चटनी अवश्य आतिथ्य में मिल जाया करती थी :3: । इस सम्बन्ध में डा० भगवान दास माहौर ने लिखा है -" माहौर जी ने मेरीशिक्षा - दीक्षा का सारा प्रबन्ध किया परन्तु हुआ यह कि मुझे झाँसी में अमर शहीद क्रान्ति - कारी वीर चन्द्रशेखर आजाद का साथ मिल गया ....। माहौर जी की काव्य साधना , कवि - सेवा और मेरे बन्धुत्व जिन्दाबाद ने घर में जो थोड़ी बहुत सम्पत्ति थी सब ठिकाने लगा दी । दुकान मकान सब बिक गये । खाली पीली हालत से ऐसी गरीबी में आजाना बहुत बुरी बात - है .... :4: ।

माहौर जी की कपड़े की दुकान रघुनाथ जी के मन्दिर के नीचे थी । पिता जी की दूध दही की दुकान गन्दीगर टपरा पर थी , जिस पर कालान्तर में श्री भगवान दास के पिता श्री तुलसीराम माहौर बैठने लगे थे ।

1:- माहौर अभिनन्दन ग्रन्थ - तृतीय खण्ड - पृष्ठ 29

2:- "" वही "" - पृष्ठ 28

3:- "" वही "" -- पृष्ठ 29

4:- "" वही "" - पृष्ठ 29

दोनों दुकानें अच्छी चलती थीं और परिवार सुखी था :1: ।

माहौर जी अदम्य साहसी थे । वे अपने व्यवसाय में पर्याप्त परिश्रम करते थे । रेलवे कारखाने के कर्मचारियों के वेतन वितरण के दिन वे तांगे में कपड़ा लेकर विक्रय करने जाते तथा वहीं पर अपनी दुकान लगा लेते और आय में वृद्धि कर लेते थे । माहौर जी फेरी के रूप में भी अपनी दुकान का एक अंश झाँसी के आस पास के राज्यों में त्योहारों तथा मेलों के अवसरों पर ले जाया करते थे इससे वहाँ लोगों से उनका परिचय बढ़ता तथा धन भी अर्जित होता था झाँसी के समीपस्थ रियासतों में भी फेरी लगाने जाया करते थे जिस से वहाँ के रियासती वातावरण का भी पर्याप्त ज्ञान होता रहता था ।

सन् 1927 तक माहौर जी का विवाह न हुआ था । इस समय युग एक नया मोड़ ले रहा था । जाति बन्धन तोड़ने के प्रयास किये जा रहे थे । इस समय डा० वृन्दावन लाल वर्मा झाँसी में ही रह कर उपन्यास लिख रहे थे जिसमें उन्होंने सामाजिक सुधार की समस्याओं को लेकर उनका समाधान भी किया । उनके उपन्यासों में जातीय बन्धन तोड़ने का प्रयास था । माहौर जी भी वर्मा जी के सम्पर्क में आये स्वाभाविक ही था कि माहौर जी के ऊपर वर्मा जी के व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ता है। माहौर जी ने जातीय भेद -भाव की वर्मा जी की नीति से प्रभावित हो 42 वर्ष की आयु में :1927 में : एक विजातीय महिला से विवाह कर एक आदर्श प्रस्तुत किया । विवाहोपरान्त वे अपनी बहिन के परिवार से अलग एक किराये का मकान लेकर रहने लगे । इस समय दुकान के साथ साथ काव्य साधना भी अबाध गति से चलती रही । एक अच्छी रकम वे साहित्यकारों तथा क्रान्तिकारियों केस्वागत सत्कार में व्यय करते रहे । इस प्रकार माहौर जी की काव्य साधना तो बढ़ती गयी लेकिन दुकान चौपट होने लगी । काव्य रसिकों तथा साहित्य प्रेमियों ने माहौर जी की दुकान को अपना अखाड़ा बना लिया । दुकानदारी चलना बन्द हो गयी, काव्य धारा प्रवाहित होती रही :2: ।

देश की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन आ रहा था । 1930-31 में-

1:- श्री सेवकेन्द्र जी के सौजन्य से ।

2:- श्री रामचरण हयारण मित्र से प्राप्त तथ्य ।

विदेशी वस्त्र बहिष्कार आन्दोलन का सूत्र - पात हो रहा था । स्थान - स्थान पर विदेशी वस्त्रों की होली जलायी जा रही थी । माहोर जी की आर्थिक स्थिति उस समय ठीक न थी । अतः वे चाहते हुये भी विदेशी वस्त्रों की होली नहीं जला सकते थे क्योंकि यदि वे ऐसा करते तो परिवार का भरण - पोषण असम्भव हो जाता :1: । उस विदेशी माल को बेचने के लिये वे बुन्देलखण्ड की रियासतों में , मेलों में जाया करते थे । स्वयं उन्होंने विदेशी वस्त्रों को पाप का गट्ठर कहा है - "स्वर्ण पदक में क्या आग लगाना है" । यह पाप का गट्ठर :विदेशी वस्त्र : लादे फिर रहा हूं । इसमें से कुछ हल्का हो जाय तो यही बहुत है :2: । धीरे - धीरे माहोर जी की आर्थिक स्थिति कमजोर होती गयी और दुकान भी समाप्त हो गयी । अब दुकान पर साहित्यकारों का जमघट लगा रहता था । माहोर जी की पत्नी श्रीमती कुसुम - माहोर एक स्कूल में अध्यापिका हो गयी । घर का व्यय पत्नी के वेतन से तथा माहोर जी द्वारा प्राप्त पुरस्कारों से चलता रहा । माहोर जी पहिले कविता पाठ के लिये पुरस्कार नहीं लेते थे परन्तु बाद को आर्थिक संकट के वातावरण में उन्हें जो मिल जाता उसे तथा कवि सम्मेलनों से आर्थिक सहायता प्राप्त होती रही ।

आर्थिक संकटग्रस्त माहोर को रेडियो स्टेशन पर कविता पाठ को जाते हुये देख कर श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने कहा था कि-" माहोर जी को अपनी वृद्धावस्था में भी दिल्ली के रेडियो स्टेशन पर कविता पाठ करने के लिये आते देखकर मुझे हर्ष नहीं होता था क्यों कि मैं जानता था कि आर्थिक संकट के कारण उन्हें यह कष्ट उठाना पड़ता है :4: । चन्द्रकला तथा शशि नाम की दो कन्यायें उनकी सन्तान हुयी जिनका विवाह सम्पन्न परिवार में हो गया पर्याप्त रुग्णावस्था का कष्ट भोगने के पश्चात 22 जुलाई 1959 को-

---

1:- मा० अभि० ग्रन्थ - पृष्ठ 27

2:- -- वही -- - पृष्ठ 28

3:- माहोर जी की पत्नी "माई" के नाम से विख्यात हैं और आज भी वे लक्ष्मी बाई जूनियर हाई स्कूल में अध्यापिका हैं ।

4:- स्वर्गीय माहोर जी दैनिक जागरण 16 अक्तूबर 1959 में प्रकाशित श्री बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित लेख से उद्धृत अंश ।

74 वर्ष की आयु में इस महाकवि का देहान्त हो गया ।

व्यक्तित्व एवं प्रभाव :-

किसी व्यक्ति विशेष की व्यक्तिगत विशेषतायें ही उसके व्यक्तित्व की परिचायक होती हैं । उसके बाह्य आकार, स्वभाव, वेशभूषा, आचार, विचार आदि पुञ्जीभूत होकर व्यक्तित्व की अभिव्यञ्जना करते हैं । कवीन्द्र नाथूराम माहौर के शरीर का मध्यम आकार प्रलम्ब भुजायें, उन्नतभाल एवं विशाल नेत्र उनके व्यक्तित्व के आकर्षण बिन्दु थे । सुगठित शरीर, वृष-स्कन्ध उनके ओज पूर्ण व्यक्तित्व के परिचायक थे । माहौर जी का जन्म महारानी लक्ष्मी बाई की कर्म भूमि झांसी में हुआ था अत: यदि उनके व्यक्तित्व में यदि इस ओज का अभाव पाया जाता तो सचमुच यह आश्चर्य की बात होती :1: । उनके पिता नित्य प्रति उन्हें व्यायाम तथा कुश्ती के लिये अखाड़े भेजते थे वे अखाड़े जाकर कुश्ती लड़ते और अपना स्वास्थ्य बनाते :2: । दुग्ध, दही तथा घृत से पोषित शरीर, उन्नत ललाट तथा रस - सिक्त कचौरी आदि स्वत: माहौर जी के व्यक्तित्व को आकर्षक बनाने में सहायक थी । "वीर वधू" में छपे उनके युवावस्था के एक चित्र से स्पष्ट है कि वे अपने यौवन काल में बन्द गले का कोट, कुर्ता, धोती पहिनते, सिर पर पगड़ी बांधते तथा कन्धे पर एक दुपट्टा डालते थे । ललाट पर लगे "श्री" के टीके से परिलक्षित होता है कि वे राधिका :श्री : के उपासक थे । वृद्धावस्था में दूध धवल मूंछे रखते, कुर्ता, धोती पहनते तथा टोपी लगाते लगे थे । श्री रामचरण ह्यारण मित्र उनकी वेशभूषा तथा बाह्य स्वरूप का वर्णन करते हुये लिखते हैं -" उनका खुला रंग, गठीला बदन, दूध सी धुली मूंछे, बड़ी - बड़ी आंखें, सिर पर बंधी हुयी नाखूनी रंग की पाग सहज ही मनुष्यों को आकर्षित करती थी :3: ।

1:- मा० अभि० ग्रन्थ - पृष्ठ 12 :तृतीय खण्ड :

2:- स्व० श्री सुन्दरलाल द्विवेदी "मधुकर" से प्राप्त तथ्य

3:- दैनिक मध्य देश गणतंत्र विशेषांक - 1982 - 26 जनवरी प्रकाशित - मध्य देश प्रेस :पृष्ठ - 139 :

युवावस्था में ठाट - बाट से रहने वाले माहौर जी वृद्धावस्था में सादा जीवन :उच्च विचार : के पक्षपाती हो गये थे । माहौर जी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उनके तत्कालीन काव्य में अभिव्यक्त है उनके द्वारा चित्रित नायिका भेद सम्बन्धी शृंगारिक छन्दों को देखकर उनके समसामयिक साहित्य-कारों ने उन्हें यौवनावस्था में पूर्ण रसिक एवं शृंगारिक प्रकृति का ही बतलाया है लेकिन उनके शान्तिसागर तथा "दीन का दावा" नामक भक्तिपरक ग्रन्थ इस बात को लक्षित करते हैं कि वे केवल शृंगारी ही नहीं अपितु एक सच्चे भक्त भी थे । रामलीला में जहाँ वे एक ओर "भगवान शंकर की समाधि को विच-लित करने का प्रयत्न करते " तो दूसरी ओर दशरथ जनक और जनकपुर के पंडा का पार्ट भी आप सफलता से करते थे[1] । यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि माहौर जी केवल रसिक या शृंगारी ही नहीं अपितु भक्त भी थे । वे देव मंदिरों में जाते , देव प्रतिमाओं की पूजन करते तथा गीता रामायण आदि का पाठ भी करते थे । कुल पुरोहित ब्राह्मणों , विद्वानों का सत्कार तथा साधु सेवा उनके स्वभाव के अंग थे । माहौर जी को ज्योतिष विद्या का भी ज्ञान था[2] तथा शकुन - अपशकुन का भी विचार करते थे । यात्रा के समय दिशा-शूल तथा मंगल मुहूर्त का आप ध्यान अवश्य ही रखते थे[3] । समयानुकूल उनके स्वभाव में परिवर्तन आता गया । शृंगारिक कल्पना में विहार करने वाले तथा भक्तिसागर में निमज्जित माहौर जी राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख हुये । यद्यपि माहौर जी कभी जेल नहीं गये , न उन्होंने किसी राजनीतिक आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया , फिर भी वे किसी क्रान्तिकारी से कम नहीं थे । समय की विचार धारा को नया मोड़ देने का ही नाम क्रान्ति है माहौर जी ने अपने समय की धारा को परिस्थितियों के अनुसार नया मोड़ दिया जन जन में राष्ट्रीय चेतना का शंखनाद किया । माहौर जी द्वारा रचित "दीन के आँसू"

1:- माहौर अभि० ग्रन्थ - तृतीय खण्ड - पृ० 19

2:- दृगनि - तिलनि को अतुल उमंग नें छायों जब मीनो है ।

मीन राशि में जनु सुराज हित शनि निवास कीनो है ।। -नाथूराम माहौर
:वीर वधू से :

मीन राशि में जब शनि का निवास होता है तो समस्त प्रजाजन हर्षित और पुलकित रहते हैं ।

3:- माहौर जी के शिष्य श्री दीपचन्द जी से प्राप्त तथ्य ।

राष्ट्र भावना को वाणी देने वाली स्वतन्त्र पुस्तक है जिसे 1931 के जनान्दोलन में ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था कवि का हृदय पराधीनता के पाश में पड़ा सतत आँसू बहाता रहा है । ये आँसू उसी की हृदय वेदना के अवतार हैं या फिर स्वतंत्रता के मार्ग पर चलने वालों को मिलने वाले उपहार हैं -

" रैन दिना वर वेदिना के भरे हैं दिना के अवतार हैं आँसू ।
हार हैं मातृभू के हिय के के स्वतंत्रता के उपहार हैं आँसू ।।[1]

स्पष्ट है कि माहौर जी एक क्रान्तिदर्शी कवि थे और साथ ही वे क्रान्तिकारियों का आदर सत्कार भी सदैव ही करते थे । स्वातंत्र्य आन्दोलन के अवसान के पश्चात 1947 में देश स्वतन्त्र हुआ । स्वतंत्र भारत में कवि जैसी आशा करता था , वैसा न हुआ । लोग स्वार्थपूर्ति में लग गये । शासक पथ भ्रष्ट हो गये । ऐसी परिस्थितियों में माहौर जी ने व्यंग्य विनोद लिख कर कांग्रेसियों पर तीव्र प्रहार किया ।

माहौर जी का व्यक्तित्व महान एवं प्रभावशाली था जो भी उनके सम्पर्क में आता , उनके सरल एवं विनोदप्रिय स्वभाव के प्रभाव से अछूता नहीं रह पाता था । माहौर जी ने झाँसी में एक कवि मण्डल की स्थापना सम्वत् 1992-93 में की थी[2] जिसके सदस्य उनको सदैव घेरे रहते थे । काव्य क्षेत्र में उनका प्रभाव इतना व्यापक था कि वे अपने चारों ओर कवियों तथा काव्य रसिकों का एक समुदाय तैयार कर लेते थे । डा0 भगवान दास माहौर ने इस सम्बन्ध में लिखा है -" बुन्देलखण्ड के काव्य क्षेत्र में झाँसी के स्वर्गीय कवि श्री नाथूराम माहौर एक ऐसे ही प्रकाश स्तम्भ हैं जिनके सम्पर्क और आश्रय से अनेक जन काव्यानुरागी और प्रतिष्ठित कवि बन गये हैं[3] ।

माहौर जी का वृद्धावस्था लोभ तथा मोह के कुचक्र से अछूता तथा सर्वथा स्वच्छ रहा । व्यवसाय द्वारा अर्जित धनराशि को वे साहित्य तथा-

---

1:- त्रिविक्रम - मा0 अभिग्रन्थ - पृष्ठ 4 - प्रो0 सुरेन्द्र नाथवर्मा

2:- काव्य वाटिका - भूमिका

3:- मा0 अभि0 ग्रन्थ - तृतीय खण्ड पृष्ठ 13

साहित्यकारों की सेवा में लोभ मुक्त होकर व्यय करते थे । जब तक परिस्थितियोंने जीवन यापन की आवश्यकताओं के निमित्त विवश नहीं किया, उन्होंने कभी भी कवि सम्मेलनों में किसी प्रकार का पारितोषिक स्वीकार नहीं किया । एक अवसर पन्ना महाराज द्वारा प्रदत्त स्वर्ण पदक को सधन्यवाद लौटाकर माहौर जी ने अपनी लोभ हीनता का परिचय दिया[1] ।

स्नेही एवं परिचित :-

कवीन्द्र नाथूराम माहौर आजीवन झाँसी में ही रह कर अनवरत रूप से काव्य साधना में रत रहे । उन्होंने एक "माहौर कवि मण्डल" की संस्थापना की, जिसके सदस्य झाँसी के कुछ काव्य - प्रेमी रसिक कवि थे । अनेक काव्यानुरागी बाद को इस मण्डल में सम्मिलित हो गये तथा शिष्य के रूप में निरन्तर कविता सीखने के लिये माहौर जी के समीप रहने लगे । जो भी माहौर जी के संसर्ग में आता वही उनके स्नेह का पात्र बन जाता और उसके ऊपर माहौर जी का स्नेह जीवन पर्यन्त बना रहता । अधिकांश काव्य - प्रेमी माहौर जी के सम्पर्क में आये और उनका स्नेह माहौर जी से बढ़ता गया उनमें से कुछ तो माहौर जी के स्थायी शिष्य हो गये । "माहौर जी की कपड़े की दुकान थी । रात्रि में प्राय: आठ बजे बाजार की दुकानें बढ़ जाने : बन्द हो जाने : के बाद माहौर जी का शिष्य और मित्र - परिवार दुकान के तख्तों : चबूतरों : पर ही सप्ताह में प्राय: एक दो बार यों ही बिना किसी पूर्व योजना के एकत्र हो जाता था । बाजार के काव्यानुरागी लोग भी इकट्ठे हो जाते थे और कविता पाठ होने लगता था । काव्यानुरागियों के इस आत्मीयता और श्रद्धा समापूर्ण वातावरण से सिंचित होकर माहौर जी का काव्य पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ[1] । माहौर जी के स्नेही एवं परिचित केवल झाँसी तक ही सीमित हों ऐसी बात नहीं, माहौर जी तो जन - कवि थे और जन - कवि तो तुलसी का बिरवा है जो साँझ सकारे दीप से आलोकित किया जाता है जिसका चौरा प्रति द्वार प्रतिहार सुरक्षित है[2] । माहौर जी का यश झाँसी से बाहर -

---

1:- मा० अभि० ग्रन्थ - पृष्ठ - 19

2:- मा० अभि० ग्रन्थ - :त्रिविक्रम : पृष्ठ - 4 - प्रो० सुरेन्द्र नाथ शर्मा

अनेक दूर-दूर स्थानों तक विकीर्ण हुआ और लोग माहौर जी से मिलने आने लगे । उनकी कीर्ति धीरे - धीरे झाँसी से बाहर फैली और बुन्देलखण्ड के दतिया, चरखारी, बिजावर, टीकमगढ़ , मऊरानी पुर से कवि भी माहौर जी के सत्संग के लिये आने लगे और कवि गोष्ठियाँ होती रहीं[1] । मऊ रानीपुर के घनश्याम-दास पाण्डे और छालीराम व्यास का विशेष सम्पर्क माहौर जी से रहा । जब माहौर जी मऊरानीपुर जाते या पाण्डे जी या व्यास जी आते तो प्राय: एक दूसरे के ही घर पर अतिथि होते थे । बुन्देलखण्ड के कीर्ति प्रासाद के निर्माण में इस त्रिमूर्ति का विशेष योगदान रहा है ।

झाँसी में जो माहौर कवि मण्डल था उसके सदस्यों में सर्व श्री सक्सेना जी , हीरा सिंह, बनवारी लाल सेठ, रामकिशोर मिश्र, रघुनन्दन लाल "राघवेन्द्र" , रामचरण ह्यारण मिश्र , नारायणदास ह्यारण , मथुरा प्रसाद मधुरेश, राधाकृष्ण कटोनिया, सुन्दरलाल द्विवेदी "मधुकर" , सेवकेन्द्र त्रिपाठी , कवीन्द्र केशव के वंशज पं० बिहारीलाल जी मिश्र "बिहारी"आदि हैं जो कि माहौर जी के परम हितैषी रहे । माहौर जी अपने इन सहयोगियों पर आजीवन स्नेह रखते रहे । आज भी रामचरण ह्यारण मिश्र, सेवकेन्द्र त्रिपाठी , राम-भरोसे"ह्यारण" अभिराम माहौर जी का स्मरण कर अनुपूरित हो जाते हैं । स्व० श्री सुन्दरलाल द्विवेदी का कहना था कि " माहौर जी मेरे गुरु थे और गुरु के रूप में मुझे उनका अतुलित स्नेह मिला जिसे मैं आज भी नहीं भूल पाता हूँ । वे जब भी जहाँ जाते , :कवि सम्मेलनों में : मुझे अवश्य ही साथ ले जाते थे[2] । श्री रामचरण ह्यारण मिश्र प्रतिवर्ष माहौर जी की पुण्यतिथि को पर्व के रूप में मनाकर बुन्देलखण्ड शोध संस्थान में कवि गोष्ठी का आयोजन कर आज भी उनकी स्मृति को ताजा कर लेते हैं । अपने भांजे डा० भगवान दास माहौर पर नाथूराम माहौर का विशेष स्नेह था । वे भगवानदास माहौर को अपने साथ ही झाँसी ले आये थे और अपने ही घर पर आश्रय दिया । डा० भगवानदास माहौर ने इस सम्बन्ध में स्वयं कहा है -"बचपन में पढ़ने लिखने में-

---

1:- मा० अभि० ग्रन्थ - पृ० - 20

2:- श्री सुन्दरलाल द्विवेदी से साक्षात्कार के समय उनके द्वारा दिया गया वक्तव्य - दिनांक 8-10-75

मेरी रुचि देखकर माहौर जी अच्छी शिक्षा के लिये मुझे और मेरे साथ मेरी माता जी , पिताजी और भाइयों को भी झाँसी ले आये । हम सब माहौर जी के साथ उन्हीं के यहाँ, उन्हीं के आश्रय मे रहा करते थे । माहौर जी ने मेरी शिक्षा का सारा प्रबन्ध किया[1] । आगे माहौर लिखते हैं - माहौर जी के व्यक्तित्व और कवित्व का यह अति संक्षिप्त दिग्दर्शन प्रस्तुत करने का प्रयत्न मैंने उन्हें झाँसी के उन प्रिय कवि "माहौर जी " के ही रूप मे देखते हुये किया है । मैं जो कुछ भी हूँ उन्हीं के प्रेम और कृपा प्रसाद से हूँ[2] ।

श्री भगवानदास जी ज्योतिषी "दास" माहौर जी के ही संसर्ग में आ-कर कवि के रूप में प्रसिद्ध हो गये । वे लिखते हैं कि प्रथम परिचय में ही माहौर जी का स्नेह मेरे ऊपर हो गया था । कवीन्द्र नाथूराम जी माहौर से मेरा प्रथम परिचय अपने समय के सर्वोपरि लोक कवि के रूप में हुआ । मैं माहौर जी की दुकान पर कपड़ा लेने के बहाने गया और देर तक बैठा रहा माहौर जी ने प्रश्न किया, कुछ और लेना है । मेरा उत्तर था हाँ, आपसे कुछ नवीन फागें चाहता हूँ ।" उन्होंने बड़ी ही स्नेह सिक्त स्वर में कहा- "रोज आया करो , तुम्हें फागें दूंगा और जो कुछ मुझको आता है तुम्हें सिखाऊंगा भी ।" कवीन्द्र माहौर जी के उस प्रोत्साहन ने मुझको जीवन में कितना कुछ दिया , उसका मूल्यांकन कठिन है । इतना जानता हूँ कि मुझ जैसे साधारण पढ़े - लिखे और अल्पज्ञ को लोग कवि कहने लगे । यह मात्र माहौर जी के सत्संग का प्रभाव था[3] । प्रसिद्ध साहित्यकार एवं समालोचक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के ऊपर भी माहौर जी का विशेष स्नेह था । श्री चतुर्वेदी जी लिखते हैं -" स्वर्गीय माहौर जी का प्रथम परिचय मुझे तब मिला जब उनकी पुस्तक "वीरबाला" देव पुरस्कार के लिये टीकमगढ़ भेजी गयी थी पर उनके दर्शन पहले पहल ओरछा के किसी कवि सम्मेलन में हुये थे । बहुत दिनों बाद उनसे निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ । जब बन्धुवर भगवानदास माहौर से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया तब तो मैं भी उनके परिवार का एक सदस्य बन गया । उन्हें-

---

1:- मा० अभि० ग्रन्थ - पृ० - 29 तृतीय खण्ड -डा० भगवानदास माहौर

2:- ---- वही ---------39 ---- ---------- " --

3:- मा० अभि० ग्रन्थ - श्री भगवानदास ज्योतिषी - पृ० - 47

मामा जी ही कहने लगा । मामा जी का स्नेह मुझ पर निरन्तर बढ़ने लगा और जब जब वे दिल्ली पधारे , उन्होंने मुझे भी दर्शन दिये । ईमानदारी के साथ मुझे यह बात कहनी पड़ेगी कि मामा जी के कवित्व की अपेक्षा उनके मनुष्यत्व ने ही मुझे अधिक प्रभावित किया है । नगर के प्रसिद्ध चिकित्सक मुंशी देशराज वैद्य माहौर जी के परम हितैषी थे । वे माहौर जी की चिकित्सा अन्त समय तक करते रहे । मुंशी जी वैद्य के साथ - साथ साहित्य प्रेमी भी हैं आज भी अपने निवास स्थान पर वे समय - समय पर काव्य गोष्ठियों का आयोजन कराते रहते हैं । गर्मी के समय अब भी उनके यहाँ माहौर जी के स्नेही , परिचित एवं माहौर मण्डल के सदस्य बैठा करते हैं एवं काव्य - विषयक चर्चा करते हुये माहौर जी को स्मरण कर लेते हैं ।

स्वदेश - प्रेम :-

कवीन्द्र नाथूराम माहौर का काव्य श्रृंगार , राष्ट्र भक्ति तथा शान्त रस की त्रिपथगा है । उनकी काव्य प्रतिभा ने भक्ति कालोत्तर रीतिकाल की श्रृंगार प्रधान कविता का अंलकार , नायिका भेद आदि से सर्वांग पुष्ट रुप प्रदर्शित किया तथा सामन्तवादी युग की ह्रियमाण विभूति को अभिव्यक्ति के प्रयोग से जीवित रखने का उसी प्रकार प्रयत्न किया जिस प्रकार रत्नाकर ने ब्रजमाधुरी से सिक्त " उद्धवशतक" "हिंडोला" आदि काव्य प्रस्तुत करते हुये किया । उधर विशाल साम्राज्य शाली ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जो जागरूकता धीमे - धीमे जन-जन की वाणी से उद्भूत होने लगी थी और जिसका प्रकाश मुक्तक काव्य की प्रणाली अपनाते हुये भी वियोगी हरि ने "वीर सतसई" प्रस्तुत करके किया था उसी के अनुपद माहौर जी ने "वीर वधू" तथा "वीर बाला" लिखकर भारती वर्ग में वीरत्व जगाकर किया ।[2]

माहौर जी के हृदय में स्वदेश के प्रति असीमित प्रेम था । मातृभूमि के अनेक कष्टों को जीभ का एक मुख , कहने में असमर्थ है -

"आनन एक सों कैसे कहैं मणि मातु के कष्ट नहिं गन जेते "

1:- स्व० माहौर जी-लेखक-श्री बनारसीदास चतुर्वेदी-दैनिक जागरण 18 अक्तूबर 1939

2:- भा० अभि० ग्रन्थ विविध - प्रो० सुरेन्द्रनाथ वर्मा - पृ०-3

माहौर यद्यपि अपने यौवन काल में श्रृंगार रस की कवितायें लिखते थे । वह युग देश की दासता से पैदा होने वाली विलासिता का युग था[1] । फिर भी पुरानी परिपाटी का अलंकारवादी कवि होते हुये भी कोई वास्तविक कवि समय और देश की दशा के प्रति असंवेदनशील रह भी नहीं सकता । ब्रिटिश साम्राज्य वाद के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वतंत्रता के आन्दोलन के समय माहौर जी ने सैकड़ों मुक्तक देश प्रेम , त्याग और बलिदान के लिये नौजवानों को ललकारते हुये और प्रोत्साहित करते हुये लिखे । कवि ने राष्ट्र के जन - जीवन की वेदना के साथ अपना स्वर मिलाया । देश - प्रेम और स्वातंत्र्य युद्ध के लिये नव-युवकों को प्रोत्साहित करने के लिये अन्योक्तियाँ और समासोक्तियों का सहारा लिया व "दीन के आँसू" गोरी - बीबी आदि पुस्तकें लिख कर स्व-तंत्रता संग्राम के लिये जन - मानस को तैयार किया । "दीन के आँसू" उस समय ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर ली गयी थी । इससे माहौर जी के राष्ट्रीय साहित्य की अत्यधिक सराहना हुयी, तत्पश्चात माहौर जी ने जो राष्ट्रीय साहित्य लिखा , उसका कवि सम्मेलनों में बड़ा सम्मान हुआ[2] । भारत माता को स्वतंत्र कराने के लिये कवि सुख सम्पत्ति सर्वस्व त्यागने को तत्पर है -

"माँ । तेरे चरणों में निम्न दे हँस हँस शीश चढ़ाना है ।
सुख सम्पत्ति सर्वस्व त्याग कर तुझे स्वतंत्र बनाना है[3] ।।

रवीन्द्र माहौर द्वारा लिखित "फूल की कामना" अन्योक्ति के माध्यम से देश - प्रेमियों की कामना को प्रकट करती है -

जिसके उर से उत्पन्न हुआ ,
उसका ही सदा गुण गाना मुझे
जिसका सुधा पय पान किया ,
उसका है बदला चुकाना मुझे
अरे माली न तोड़ना भूल कभी ,

1:- मा० अभि० ग्रन्थ - त्रिविक्रम - पृ० 6 - श्री रामसेवक रावत

2:- दैनिक मध्य देश -स्वतंत्र विशेषांक-पृ० 140- रामचरण ह्यारण मित्र

3:- अभिलाषा - रवीन्द्र माहौर :अप्रकाशित :

कुछ जीवन का फल पाना मुझे

जननी वसुधा पद पंकजों में ,

हंसते हंसते चढ़ जाना है ।[1]

माहोर जी के भान्जे डा० भगवानदास माहोर के क्रान्तिकारी साथी चन्द्र-शेखर आजाद एवं शहीद भगतसिंह जब अपने अज्ञातवास में माहोर जी के घर पर ही ठहरते और माहोर जी उनका बड़ा ही आदर सत्कार करते थे इसके पीछे उनकी राष्ट्रीय भावना कार्य कर रही थी तभी तो उन्होंने इन क्रान्तिका-रियों के स्वागत सम्मान में अपना सर्वस्व त्याग दिया । जब डा० भगवान दास माहोर को भुसावल-बम- काण्ड में आजीवन कारावास की सजा हुयी तो कवि की राष्ट्रीय भावनायें तीव्रतर हो गयीं और कवि की लेखनी से शुद्ध राष्ट्रीय छन्द निसृत होने लगे । आजीवन कवि ने देश प्रेम सम्बन्धी सैकड़ों कवित्त लिखे जिन्होंने देश में एक नवीन क्रान्ति को दिशा दी । सारा देश स्वातन्त्र्य युद्ध की विभीषिका में तप रहा था । ऐसे समय में कवि की ओजपूर्ण वाणी स्वतंत्रता सेनानियों का मनोबल बढ़ाती थी ।

आस्तिकता :-

आस्तिकता का गुण कवीन्द्र माहोर को अपने पिता से विरासत में मिला था । इनके पिता स्वयं भगवान्राम के भक्त थे , नित्य प्रति रघुनाथ जी के दर्शन करने रघुनाथ मंदिर जाते थे । कभी - कभी वे ओरछा भी भग-वान श्री राम के दर्शन के दर्शनार्थ जाया करते थे । बुन्देलखण्ड की जनता में आस्तिकता का विशेष प्रचार था । तीर्थ यात्रा, भाग्यवाद तथा अवतारवाद पर जनता का अटूट विश्वास था । यहाँ पर तुलसीकृत मानस को लोग वेद - पुराण तुल्य मानकर श्रद्धा पूर्वक सस्वर पाठ करते थे । माहोर जी जब वयस्क हुये तो सामाजिक परम्पराओं और पितृसंस्कार से प्रभावित हो राम भक्ति की ओर अग्रसर हुये । प्रारम्भ में इन्होंने राम - लीला में स्वयं अभिनय किया । डा० माहोर लिखते हैं - "अपनी रामलीला में आप स्वयं अभिनय - करते थे "[2] । माहोर जी का रामलीला की ओर उन्मुख होना उनके अन्तस -

---

1:-वीर की कहानी -:फूल की कामना : कवीन्द्र माहोर :अप्रकाशित :

2:- मा० अभि० ग्रन्थ - डा० भगवानदास माहोर - पृ० 18

में सन्निहित रामभक्ति वृत्ति का परिचायक है । अपने पिता की ही भांति वे भी नित्य प्रति दर्शनार्थ श्री रघुनाथ जी के मंदिर जाते थे । अपनी काव्य मण्डली के साथ कदा - कदा ओरछा पिकनिक पर जाते और भगवान श्री राम के दर्शन करते । वर्ष में कतिपय अवसरों पर वे रामायण का नवाह पाठ करते थे । निम्नलिखित छन्द माहौर जी की रामायण के प्रति श्रद्धा का परिचायक है -

सत है सुधा को , वसुधा को है अपार सुख ,
पार करिबे को भव नौका अनुहार है ।
सन्तनमरालन को सोभित है मुक्ता पुंज ,
प्रेमी चातकान स्वाति बूंद अपार है ।
फुल्लित कहु मन कंज पुंज भक्तन के ,
दिव्य देस देस में दिनेस को प्रसार है ।
चारू चिन्त चायन में सोभा सरसायन में ,
राम गुन गायन में रामायन सार है ।।

भगवान राम की कथा आचरण मूलक थी तो योगेश्वर कृष्ण की लीला प्रेम प्रकाशिका । दोनों का लक्ष्य एक ही था । मधुरा भक्ति के प्रकाशनार्थ राधा-कृष्ण को माध्यम बना कर नायिका भेद , फाग साहित्य आदि की रचनायें होने लगी थी । इस प्रकार माहौर जी की काव्य - साधना पर राम एवं कृष्ण भक्त दोनों का ही प्रभाव पड़ा । राम भक्ति से ओत - प्रोत राम-महात्म्य लिखकर राम की वन्दना निम्न लिखित छन्द में इस प्रकार की है -

वेद रीति रीतिन पै, गीता ज्ञान गीतन पै
राजनीति नीतिन पै, नीति को जहाज है ।
+ + + + +
नाथूराम शासन पै सुयश सरासन पै ,
अनुकूल नासन पै गाज में गराज है
ताज सरताजन पै, महाराज राजन पै,
आज दगाबाजन पै बाज रघुराज है ।

1:- रामायण - महात्म्य - नाथूराम माहौर :अप्रकाशित :

"द्रौपदी दुकूल पचीसी" एवं "विनयमंगल" खण्ड काव्य में कृष्ण महात्म्य का वर्णन करते हुये कृष्ण भक्ति रस धारा प्रवाहित की है । माधौर जी राम और कृष्ण में भेद नहीं मानते वे दोनों को भगवान विष्णु का अवतार मानते हुये अवतार-वाद में आस्था रखते हैं । एक बार वे ओरछा भगवान श्री राम के दर्शनार्थ अपनी मण्डली के साथ गये वहाँ पर भगवान के पट खुलने में कुछ विलम्ब था । समयव्यतीत करने के लिये माधौर मण्डली ने कवि गोष्ठी का आयोजन किया जिसमें श्री राम से दर्शन अविलम्ब देने की प्रार्थना की गयी ऐसे अवसर पर सबने :कालीराम व्यास, मधुकर, गिरीश , : श्री राम को सम्बोधित करते हुये प्रार्थना की लेकिन माधौर जी ने राम दरबार में पट खुलने की प्रार्थना करते हुये कृष्ण भगवान को पुकारते हुये श्री राम के चरणों में निम्नलिखित छन्द अर्पित किया -

द्वार द्वार जाँचो नहीं राँचो एक द्वारहि ।
दया द्वार का द्वारके दीजिये खोल किवार ।। दोहा ।।

पाप को पुरन्दर अधर्म को धुरन्धर हूँ ,
कलिमल मंदिर समुन्दर बिहारी हूँ ।
जगत दुर्गन्धी को निबन्धी श्रेष्ठ गन्धीगर ,
प्रमुख प्रबन्धी सत्यासिंध को शिकारी हूँ ।
नाथूराम दीनन में दीन हूँ मुकुटमणि ,
अवगुण को खानी हूँ दोष कोष अधिकारी हूँ ।
कीजे कृपा दीजे दया द्वार के किवार खोल ,
द्वारका के नाथ तेरे द्वार को भिखारी हूँ ।।[1]

शान्तिसागर " माधौर जी की आस्तिकता को प्रकट करने वाली उत्कृष्ट एवं अनुपम कृति है इसमें कवि ने मन को वैराग्योन्मुख होने की प्रेरणा देते हुये भगवद् भजन की ओर अग्रसर किया है । स्थान स्थान पर "श्री राम नाम महिमा", "शिवनाम महिमा","श्री हरिद्वार महिमा", "विभीषण - शरणागति" , "चेतावनी " आदि शीर्षक के माध्यम से ईश्वर के प्रति प्रेम प्रकट किया है । श्री राम के गुणगान से मानव का संसार से उद्धार हो जाता इस तथ्य को -

---

1:- श्री सुन्दरलाल द्विवेदी मधुकर के सौजन्य से प्राप्त छन्द ।

माहौर जी ने इस प्रकार प्रकट किया -

राम गुन - गन - गाय मानव ।
सिन्धु भवतार जाय मानव [1] ।।

इसी प्रकार शिवमहिमा का वर्णन करते हुये माहौर जी कहते हैं कि शिव के अनेक नाम हैं प्रत्येक नाम की अपनी महत्ता है । शिव कल्याण कारी है । शिव के प्रत्येक रूप की आराधना मानव के लिये अलग- अलग प्रकार से कल्याण प्रद है -

भोला के कहेते ओजनीय मूढ भोला होत ,
भक्त अनमोला होत मुक्ति को लहत है ।।
कृत्तिवास कहेते कृतघ्नी कृतकृत्य होत ,
अकृत अनित्य होत सत्य को गहत है ।।
पशुपति कहें दिव्य शिव मैं सुगति होत ,
पतित पुनीत होत वेद यों कहत है ।।
शान्तचित्त गंगा होत यम सौं न दंगा होत ,
गंगा के कहेते नंगा नंगा न रहत है [2] ।।

उपर्युक्त छन्द में शिव के विभिन्न नाम :भोला, कृत्तिवास, पशुपति, नंगा : की महत्ता उल्लेख एवं यमक अलंकारों के माध्यम से प्रकट करते हुये शिवाराधना की प्रेरणा दी है । समय समय पर माहौर जी ने देवी स्तुति , गणेश स्तुति तथा सरस्वती महिमा आदि का वर्णन कर अपनी आस्तिक भावना प्रकट की है । माहौर जी ने गणेश जी की स्तुति करते हुये उन्हें समस्त संकटों एवं पापों का विनाशकारी बतलाया है -

करन सुधारे कंज चरण निहारे मंजु ,
रंज भंज भारे अघपुंज पुंज टारे के ,
विपति विदारे छन विघ्न विदारे सारे ,
कुमति सुधारे वर सुमति सुधारे के ।
नाथूराम प्यारे दृग तारे भवतारे भव ,

1:- शान्ति सागर - नाथूराम माहौर - पृ० 3 : श्रीराम नाम महिमा :
2:- शान्ति - सागर - कवीन्द्र माहौर :प्रकाशित :

त्रिभुव पसारे भव शिव पसारे के

चन्द्र मन्द वारे कोटि चन्द्र निंद वारे चन्द्र ,

भाल चन्द्र वारे सुत भाल चन्द्रवारे के[1] ।

शिष्टाचार एवं विनम्रता :-

माहौर जी स्वभावतः विनयशील, शिष्ट तथा विनम्र हैं । हिन्दी साहित्य के समर्थ तथा महा कवि होते हुये भी वे अपने आपको हिन्दी माता के चरणों में निवास करने वाला महाउर :जावक : मात्र मानते हैं । निम्न - लिखित पंक्तियाँ उनकी विनम्रता को अभिव्यक्त करती हैं -

"तुलसी भये भाल सुहाग के बिन्दु सुदेव दृग अंजन आगरी के ।
कवि केशव अंग के राग भये, मुख राग भये सूर उजागरी के ।
भये"माहुर" पंकज पावन के मेंहदी कवि ग्वाल प्रभागरी के ।
मतिराम, रहीम, बिहारी, घनानन्द, भूषण में छलनागरी के[2] ।।

भावुकता और सहृदयता माहौर जी के संवेदनशील हृदय में भरपूर थी । एक संस्मरण में श्री सुन्दरलाल द्विवेदी मधुकर ने बताया कि एक अवसर पर मऊ-रानीपुर में कवि सम्मेलन आयोजित था । मधु साहित्य का वातावरण था । पं० घनश्याम दास पाण्डेय के पक्ष वालों ने व्यंग्योक्ति में कहा "---------------- ग्रीसम गरीब को पछाड़ा घनश्याम ने" इस उक्ति पर माहौर जी के पक्ष वालों ने शरद् वर्णन के व्याज से व्यंग्योक्ति का उत्तर देते हुये कहा-

"दसहूँ " दिसान से गाज गुमान [illegible] ,भरे
नाम हू निसान घनश्याम के चले गये ।"

इस पर पाण्डेय जी ने क्रोधाभिभूत होकर माहौरजी के प्रति अनुचित एवं अपमान जनक अपशब्द कह डाले । वहाँ पर एकत्र जन समुदाय ने पाण्डेय जी को क्षमा - याचना के लिये कहा । इस पर माहौर जी विनम्रभाव से बोले"भद्र-पुरुषों का निर्णय मुझे मान्य नहीं है । पाण्डे जी ऐसे प्रकाण्ड पण्डित तथा विश्व वन्द्य - ब्राह्मण वंश में उत्पन्न महापुरुष को मुझ जैसे अकिंचन वणिक से क्षमा याचना करना न्याय संगत नहीं । मैं ही उनसे क्षमा याचना करूँगा " -

---

1:- मा० अभि - ग्रन्थ - माहौर माधुरी - :श्री गणेश स्तुति :

2:- मा० अभि० ग्रन्थ - पृ०8 - श्री रामउजागर दुबे आकाशवाणी लखनऊ

ऐसा कह कर माहौर जी पाण्डेय जी के चरण स्पर्श करने के लिये आगे बढ़े । गद् गद हृदय पाण्डेय जी ने माहौर जी को हृदय से लगा लिया । सारा वातावरण साधुवाद की ध्वनि से गुंजित हो उठा । प्रेम और सौहार्द की आभा सभा भवन में सभी के मुख मण्डल पर झलकने लगी । ऐसा सहृदयता एवं विनम्रतायुक्त माहौर जी का व्यक्तित्व सभी को प्रथम साक्षात्कार में ही प्रभावित करने में सक्षम था । इन पड़ों में विरोधी जन कभी कभी पर्याप्त गरमी ला देते थे और व्यंजना से, संकेतों से, समासोक्तियों से, अन्योक्तियों से एक दूसरे के प्रति आक्षेप भी होने लगते थे जिनका स्तर कभी कभी काफी निम्नार्ह तक भी पहुँच जाता था लेकिन माहौर जी कहीं भी अशिष्टता नहीं दिखाते व सदैव शिष्ट एवं विनम्र शब्दों में विरोधी पक्ष को जवाब देते थे । यदि घनश्याम दास जी पाण्डेय की ओर से माहौर जी के पराजित होने का संकेत मीरा के विषपान करने के वर्णन के शेरों में "----- मीरा माहुर खा गई " ऐसी पंक्ति में किया जाता तो माहौर जी बड़ी ही शिष्टता पूर्वक उसका प्रतिकार इस प्रकार करते -

"मीरा को मिले मोहन माहुर :विष : की कृपा से "[1] !

इस प्रकार माहौर जी प्रत्येक स्थान पर विनम्रता का परिचय देते हुये शिष्ट व्यवहार से सभी के मन मोहित कर लेते थे ।

माहौर जी के भान्जे डा० भगवानदास माहौर के क्रान्तिकारी साथी चन्द्रशेखर आजाद आदि मित्र भी माहौर जी के यहाँ अतिथि के रूप में आया करते थे । घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होने पर उनके स्वागत सत्कार में माहौर जी ने कभी भी कमी नहीं दिखाई । वे सभी को शिष्टता पूर्वक खिलाते और घर में जो कुछ रूखा - सूखा होता, उसे सभी का आतिथ्य - सत्कार करते । जब तक परिस्थितियों ने जीवन- यापन के निमित्त विवश नहीं किया, उन्होंने कभी भी कवि - सम्मेलनों में किसी प्रकार का पारितोषिक स्वीकार नहीं किया जहाँ कहीं कवि सम्मेलन आदि में जाते थे अपने खर्चे से जाते थे और खर्च के पैसे न होने पर नहीं जाते थे[2] । 19जुलाई 1959 को झाँसी-

---

1:- मा० अभि० ग्रन्थ - डा० भगवानदास माहौर - पृ० 28

2:- मा० अभि० ग्रन्थ - डा० माहौर - पृ० 29

की साहित्य प्रेमी जनता ने माहौर जी की हीरक जयन्ती मनायी और इस अवसर पर उन्हें एक हजार एक रुपये की थैली भेंट की गयी । माहौर जी ने बड़े ही विनम्र शब्दों में कहा -" यह सब आप लोगों की कृपा का फल है, मेरा कुछ नहीं है ।"[1] स्पष्ट है कि माहौर जी दम्भ एवं अभिमान से रहित विनम्र एवं शील युक्त स्वभाव के थे ।

सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन :-

बीसवीं शताब्दी का भारतीय समाज मध्ययुगीन प्रवृत्तियों से निकल-कर नवीन धारा ग्रहण कर रहा था परन्तु मध्ययुगीन प्रवृत्तियों का निरा-करण पूर्ण रूपेण नहीं हुआ था । शताब्दियों से प्राप्त तथा संचित परम्परायें हिन्दू समाज में सुरक्षित थीं । परम्परागत आस्थायें, विश्वास, रहन-सहन, रीति रिवाज आदि समाज में पूर्ण -रूप थे । कवीन्द्र नाथूराम माहौर का परिवार तत्कालीन सामाजिक प्रवृत्तियों से प्रभावित था । उनके माता - पिता हिन्दू परिवार की सम्पूर्ण सांस्कृतिक निधियों को धरोहर के रूप में सुरक्षित रखे थे उसी के परिणाम स्वरूप उन्होंने नाथूराम माहौर को अँग्रेजी स्कूल में शिक्षा नहीं प्राप्त करने दी ।

तत्कालीन समाज दो वर्गों में विभक्त था एक वर्ग वह था जो प्रा-चीन कट्टरता को नहीं त्याग रहा था दूसरा वह जो सामाजिक व्यवस्था में आवश्यक सुधार एवं परिवर्तन का पक्षपाती था । माहौर जी दोनों ही विचार धाराओं के पोषक थे । जहाँ एक ओर वे अपनी प्राचीन परम्परागत मान्य-ताओं के कट्टर समर्थक थे वहीं दूसरी ओर समय समय पर आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन को भी स्वीकार कर लेते थे । खान - पान में वे पक्के वैष्णव थे । मदिरा मांस का स्पर्श भी वे घोर पाप मानते थे और उससे आजीवन घृणा ही करते रहे[2] । भांग तथा गांजा, चरस आदि का सेवन वे यदा-कदा-आवश्यकता नुसार करते थे । उसका सेवन वे अधर्म नहीं मानते थे परन्तु "अति-

---

1:- सुकवि विनोद :रामचरणह्यारण मित्र: अप्रैल1974-पृष्ठ 6 - सुकवि साहित्य परिषद लश्कर द्वारा प्रकाशित

2:- श्री देवेन्द्र त्रिपाठी से प्राप्त तथ्य ।

सर्वेक्ष कबीला" के अनुसार वे उनका केवल वैयक्तिक तथा सीमित ही करते थे ।

धर्म का अर्थ वे समयानुसार बनाये गये नियम और कायदा - कानून ही मानते थे । उनके अनुसार इनमें समय एवं आवश्यकतानुसार परिवर्तन हो सकता है । खान - पान तथा विवाह आदि के लिये उन्हें जातीय बन्धन मान्य नहीं था । उन्होंने स्वयं भिन्न जातीय महिला के साथ विवाह कर जातीय विवाह के बन्धन को तोड़ा[1] । अपने भान्जे डा० भगवानदास माहौर के अन्य जातीय कायस्थ कन्या के साथ पाणिग्रहण में वे सहर्ष सम्मिलित हुये थे[2] । समाज में छुआ-छूत की मान्यता के वे घोर विरोधी थे । उनकी साहित्यिक मण्डली में ग्वालियर राज्य के दो हरिजन काव्य-प्रेमी आते थे । वे उनके साथ बैठते तथा भ्रातृवत व्यवहार करते थे। माहौर जी की दुकान पर इन हरिजनों का आना उनके पड़ोसियों दुकान दारों को असह्य था , वे माहौर जी का विरोध करते थे परन्तु माहौर जी ने डट कर उनका सामना किया, दुकान भले ही उन्हें बदलनी पड़ी परन्तु उन्होंने इन काव्य रसिक हरिजनों के संसर्ग को नहीं छोड़ा[3] ।

समाज में माहौर जी को अत्यधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था । वे स्वर्णकार माहौर थे । अन्तरजातीय विवाह के कारण जाति बहिष्कृत होने पर भी समाज में माहौर जी के डं. नाम से जीवन - पर्यन्त समादृत रहे । झांसी में वे मामा माहौर के नाम से विख्यात थे । उनके दोनों भान्जे श्री डा० भगवानदास माहौर तथा श्री राधा चरण माहौर क्रमशः बड़े माहौर तथा छोटे माहौर के नाम से प्रसिद्ध थे[4] । अपने समाज में माहौर जी का इतना अधिक प्रभाव था कि समय समय पर उन्हें पंचायतों में निर्णायक बनाया जाता था तथा उनका निर्णय सर्व सम्मति से मान्य होता था ।

माहौर जी सामाजिक जीवन में धार्मिक कृत्यों के पक्षपाती थे एतदर्थ वे स्वयं पूजा पाठ करते तथा धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करते थे । रामायण-

---

1:- मास्टर रुद्र नारायण की पुत्री सावित्री देवी

2:- श्री शैलेन्द्र त्रिपाठी से प्राप्त तथ्य

3:- श्री सुन्दरलाल त्रिवेदी से प्राप्त तथ्य

4:- माहौर जी के भान्जे डा० भगवानदास माहौर से प्राप्त ।

पाठ में माहौर जी की विशेष अभिरुचि थी जब मैं कतिपय अवसरों पर वे रामायण का नवाह्न पाठ भी कर लेते थे[1]। उनकी रामचरित में अभिरुचि की पुष्टि इस बात से भी हो जाती है कि वे रामलीला में स्वयं अभिनय कर-ते थे। अभिनय के लिये छन्द तथा संवाद भी लिखते थे। माहौर जी की काव्य शक्ति का विकास पहले पहल इसी रामलीला समाज में रामलीला के लिये लिखे गये संवादों कवित्तों और नये नये गीतों के रूप में रूप में हुआ[2]। सन्-1963 में माहौर जी के प्रयास सेरामायण सभा तथा रामायण मण्डली की सं-स्थापना हुयी इस समाज के मंत्री माहौर जी निर्वाचित हुये[3]।

स्पष्ट है कि माहौर जी में जन - नेतृत्व की क्षमता विद्यमान थी। उनके द्वारा निर्मित रामायण सभा तथा रामायण मण्डली से प्रभावित हो कुछ लोगों ने एक अन्य रामायण सभा की संस्थापना की जिसके सूत्रधार परोक्ष-रूप से माहौर जी के काव्य गुरु श्री मदनेश जी ही थे। इस प्रकार माहौर जी की प्रेरणा तथा उनके प्रयासों से जनमानस में संचित सांस्कृतिक चेतना का प्रचार तथा प्रसार होने लगा। माहौर जी की सर्वतोमुखी गतिविधियों से प्रभावित हो बुन्देलखण्ड रामायण महासभा ने आपको "बुन्देलखण्ड भूषण" की उपाधि से विभूषित किया उपाधि के साथ जो अभिपत्र माहौर जी को दिया गया उसमें लिखा है-"यह कथन कदापि अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं कि वर्तमान में आप झाँसी के सांस्कृतिक जागरण के विधाता हैं[4]"।

राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में माहौर जी के जीवन के सम्बन्ध में उनके समकालिक साहित्यकारों द्वारा ज्ञात हुआ है कि माहौर जी राजनीति में विशेष रुचि नहीं रखते थे अलबत्ता जब उनके भान्जे स्व० भगवानदास माहौर क्रान्तिकारी हो गये तो वे राजनीतिक रचनायें लिखने लगे थे। अपने काव्य के माध्यम से माहौर जी जनमानस को स्वतन्त्रता संग्राम के लिये तैयार करने -

---

1:- माहौर जी की धर्म पत्नी श्रीमती कुसुम माहौर से प्राप्त तथ्य।

2:- मा०अभि० ग्रन्थ - पृ० 17 डा० भगवानदास माहौर।

3:- मा० अभि० ग्रन्थ - पृ० 17 डा० भगवानदास माहौर।

4:- मा० अभि० ग्रन्थ - पृ० 16 डा० भगवानदास माहौर।

लगे थे । माहौर जी का जन्म महारानी लक्ष्मीबाई की कर्म - भूमि झाँसी में हुआ था , अतः उनके व्यक्तित्व में ओज गुण का विद्यमान होना स्वाभाविक ही था । वे कवि निर्माता के साथ साथ वीर- निर्माता भी थे[1] । समय समय पर स्वतंत्रता सेनानियों की सहायता करते रहे । चन्द्रशेखर आजाद तथा अन्य राजनीतिक क्रान्तिकारी जिनके साथ उनके भान्जे श्री भगवानदास माहौर स्वतंत्रता आन्दोलन के समय अपने अज्ञात - वास काल में माहौर जी के यहाँ आते तथा माहौर जी उनकी यथा - शक्ति तन - मन से सेवा सत्कार करते थे[2] । झाँसी तथा आस-पास की रियासतों में कवि सम्मेलनों, मेले, कहीं तथा समस्यापूर्तियाँ आदि का आयोजन कर माहौर जी क्रान्ति की भावनाओं को जनमानस में भरते रहे । बुन्देलखण्ड की रियासतों में जब वे जाते तो अपनी ओजस्वी कविता द्वारा राजाओं की सुप्त शौर्य वृत्ति को जागृत कर देते । ओरछा महाराज वीर सिंह जू देव के दरबार में उन्होंने छत्रसाल की कृपाण का वर्णन सुनाकर उनके दर्प को ललकारा । महाराज व्यंग्य = बाण - विद्ध होकर- माहौर जी के प्रति क्रुद्ध नहीं हुये अपितु उन्हें साधुवाद देते हुये बोले -" माहौर जी आपने बहुत ही सुन्दर कहा है[3]" ।

तत्कालीन अमियाधाना नरेश श्री मलक सिंह जू देव के पास पहुँचकर राजा साहब की दुनाली :बन्दूक : को लक्ष्य कर तीखा व्यंग्य किया -

"राखो विदेशी सौत सङ्ग में दुनाली को ",

उ०प्र० सरकार द्वारा प्रकाशित 1965 के गजट में लिखा है कि झाँसी में एक क्रान्तिकारी संगठन था जिसको संगठित करने वाले कवीन्द्र माहौर एवं रवीन्द्र नाथ शास्त्री थे ।

1:-

2:- मा० अभि० ग्रन्थ - डा० भगवानदास माहौर-पृ०-26- ":माहौर जी के घर कवि अतिथियों को अन्दर में साग-पूड़ी तो मेरे गुप्त क्रान्तिकारी साथियों को चटनी रोटी मिलती ही रही" : डा० माहौर

3:- मा० अभि० ग्रन्थ - पृ० -26 - डा० माहौर

और यहाँ तक कह डाला-

"लाते हैं कलंक पंक(?) पूर्वज प्रणाली को "[1]

राजा ने माहौर जी की व्यंग्योक्ति का बुरा नहीं माना अपितु एक अवसर पर तो स्वयं छनियाधानानरेश ने माहौर जी को "कवीन्द्र" की उपाधि से विभूषित किया । इसी प्रकार एक अन्य राजदरबार में "तसवीर" समस्या की पूर्ति करते हुये प्राचीन वीर पूर्वजों की तसवीरों के पास खूँटी पर टँगी तलवार को लक्ष्य कर माहौर जी ने कहा -

"दिव्य तसवीरों की रही है तसवीर देख ,
टँगी हुयी खूँटी पर बनी हुयी तसवीर "।

राजा की कायरता पर यह तीव्र व्यंग्य था । इससे उन राजा के अन्दर सोयी ओज वृत्ति जागरित हुयी और वे माहौर जी का सम्मान करने लगे ।

पन्ना नरेश के दरबार में एक बार माहौर जी ने कृपाण की समस्या पूर्ति करते हुये व्यंग्योक्ति के रूप में कहा -

"जाने कहा निगुरे निगोड़े रजपूत कोरे,
कायर कपूत कूर करनी कृपान की ।।

दरबार तो अड़ रह गया परन्तु राजा साहब मुस्करा दिये उन्होंने माहौर जी की प्रशंसा करते हुये पुरस्कृत किया[2] ।

ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वतंत्रता के आन्दोलन के समय माहौर जी ने सैकड़ों मुक्तक देश - प्रेम त्याग और बलिदान सम्बन्धी देश के नवयुवकों को प्रोत्साहित करते हुये लिखे । इसी सन्दर्भ में माहौर जी द्वारा रचित "दीन के आँसू" एक छोटी सी पुस्तिका की निम्न पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती हैं -

नहीं मातु की गोद में आह भरे जितने गिर जायेंगे दीन के आँसू
उतने वर वीर जवाहर से पल में प्रकटायेंगे दीन के आँसू ।

1:- मा० अभि० ग्रन्थ - पृ० 26 - डा० माहौर

2:- माहौर अभि० ग्रन्थ - तृतीय खण्ड-पृ०26-डा० भगवानदास माहौर

"दीन के आंसू" अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त कर ली गयी थी इससे माहौर जी के राष्ट्रीय साहित्य को अत्यधिक सराहना हुयी, तत्पश्चात माहौर जी ने जो राष्ट्रीय साहित्य लिखा उसका कवि सम्मेलनों में बड़ा सम्मान हुआ[1]। सन 1926 में महात्मागांधी के झांसी आगमन पर माहौर जी की लेखिनी से गांधी जी के प्रति निःसृत छन्द राष्ट्रीय भावना के द्योतक हैं। माहौर जी ने गांधी की पूजा "मोहन" के अवतार के रूप में करते हुये कहा -

"काली नाथ नाथो ब्रज, उन
　　　नाथे इन गोरे नाथ ।
नाथ बिन नाथन को ,
　　　गरल गिरायो है ।
माखन चुरायो उन ,
　　　खायो औ , उड़ायो,
इन नमक चुराय के ,
　　　छुड़ायो है बनायो है ।
"नाथूराम" उन बिन शस्त्र ,
　　　कंस ध्वंस कियो ,
इन बिन शस्त्र शत्रु मुख
　　　मुरझायो है
नन्द नन्द मोहन ने ,
　　　मोहन बनायो ब्रज ,
कर्म चन्द मोहन ,
　　　जगमोहन बनायो है[2] ।

माहौर जी द्वारा रचित इन छन्दों से उस समय राष्ट्रीय आन्दोलन को जो बल मिला वह प्रशंसनीय रहेगा । इस प्रकार अपने काव्य द्वारा माहौर जी जीवन पर्यन्त स्वतंत्रता संग्राम के लिये सैनिक तैयार करते रहे और स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त "आंधी के आम" बटोरने वालों को अपने अचूक तीक्ष्ण

1:- दैनिक मध्यदेश गणतंत्र-विशेषांक - पृ0-140 -रामचरण ह्यारण मित्र

2:- दैनिक मध्यदेश गणतंत्र-विशेषांक - पृ0-139-26जून1972-रामचरण ह्यारण

व्यंग्य बाणों का निशाना बनाया है उनका "व्यंग्य विनोद" नामक अन्योक्ति काव्य ऐसे ही तीखे तीरों का तरकस है[1] ।

माहौर कवि मण्डल के सूत्रधार, संचालक एवं काव्य-गुरु:-

स्व0 नाथूराम माहौर कवि होने के साथ साथ कवि निर्माता भी रहे । उन्होंने अपनी काव्य प्रतिभा द्वारा अपने सम्पर्क में आये अनेक लोगों को कविता लिखने की प्रेरणा दी एवं उनको काव्य क्षेत्र में पारङ्गत कर दिया । इस सम्बन्ध में डा0 भगवान दास माहौर ने लिखा है "बुन्देलखण्ड के कीर्ति प्रासाद की नींव में वे अनेक अनतिप्रसिद्ध वीर और रस सिद्ध कवि हैं जो अपने जीवन में एक चमकते हुये व्यक्तित्व से कहीं अधिक एक सजीव निर्माणशील संस्था हो रहे हैं और जो ---------- स्वयं कवि होने के अतिरिक्त कवियों के निर्माता अधिक रहे हैं । ऐसे ही लोगों को लक्ष्य करके भर्तृहरि ने कहा था-

किं तेन हेम गिरिणा रजताद्रिणा वा यत्राश्रिताः हि तरवस्तरवस्त एव,
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण कंकोल - निम्ब कुटजा अपि चन्दनाः स्युः ।।

(सोने के पहाड़ अथवा चाँदी के पहाड़ क्या जहाँ के आश्रित पेड़ वैसे ही पेड़ बने रहें, हम तो उस मलयगिरि को ही मानते हैं जिसके आश्रय से कंकोल नीम, कुटज भी चन्दन हो जाये)

बुन्देलखण्ड के काव्य-क्षेत्र में झाँसी के वयोवृद्ध कवि श्री नाथूराम माहौर एक ऐसे ही मलयगिरि हैं जिनके संसर्ग और आश्रय से अनेक जन काव्यानुरागी और प्रतिष्ठित कवि हो गये हैं[2] ।

माहौर जी के संसर्ग से, ऐसे व्यक्तित्व जो दिन भर अपनी आजीविका के लिये दुकान पर काम करते थे और जिन्होंने कभी स्कूलों में किसी प्रकार की शिक्षा नहीं पायी अपने जीवन को सरस बनाते एवं समय का सदुपयोग करते । उनके पास सदैव साहित्य प्रेमियों की भीड़ लगी रहती थी । झाँसी में आपके सैकड़ों-शिष्यों के काव्य की एक एक पंक्ति आपके काव्योत्कर्ष का प्रमाण है[3] ।

1:- मा0 अभि0 ग्रन्थ- पृ0 33- तृतीय खण्ड - डा0 भगवानदास माहौर

2:- मा0 अभि0 ग्रन्थ, पृ0 13- श्री द्वारिकेश मिश्र द्वारा प्रकाशित एवं स्वाधीन प्रेस से मुद्रित

3:- बुन्देलखण्ड की रामायण महा सभा द्वारा प्रदत्त अभिनन्दन पत्र

माहौर जी एक ऐसे कवि रहे हैं जिनके आश्रय से अनेकों जन काव्यानुरागी हो गये हैं तथा अनेक कवि बन गये । इसी तथ्य को श्री मोतीलाल अशान्त अपने झाँसी दर्शन में स्पष्ट करते हुये लिखते हैं -"रचना निर्माण के अतिरिक्त श्री माहौर जी ने कवि निर्माण का भी कार्य झाँसी में किया था"[1]। माहौर जी के शिष्यों ने उनके निर्देशन में एक कवि मण्डली"माहौर कविमण्डल" के नाम से स्थापित की[2]। उस मण्डल के सूत्रधार एवं संचालक माहौर जी ही थे, साथ ही वे मण्डल के सदस्यों के काव्यगुरु भी रहे । माहौर जी की ही प्रेरणा से "माहौर कवि मण्डल" की स्थापना उनके शिष्यों ने की । इस सम्बन्ध में कवि मण्डल के तत्कालीन मंत्री श्री हीरासिंह जी लिखते हैं -"झाँसी की जनता को यह भली भाँति ज्ञात है कि माहौर जी चिरकाल से अपने साथियों तथा शिष्य वर्ग पर विशेष कृपा करते रहे हैं । आपको चिर - काल से यह ध्यान रहा है कि झाँसी में ऐसी कोई संस्था या सभा नहीं है जो उसके गौरव को काव्य - क्षेत्र के नाम से विभूषित कर सके । वास्तव में इसी विचारधारा की प्रबलता ही मण्डल की जन्मदात्री है[3]। श्री हीरासिंह जी अपने वक्तव्य में इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुये लिखते हैं कि -

"जहाँ तक मेरा ध्यान है झाँसी में कवियों को प्रोत्साहन देने में माहौर जी का अनुपम स्थान रहा है और यही कारण है कि मण्डल के सदस्यों ने आपके नाम से मण्डल की स्थापना की[4]।

माहौर कवि मण्डल की संस्थापना सं0 1993 में हुयी थी । श्री गौरी शंकर द्विवेदी ने साप्ताहिक भारती में अपने एक लेख में लिखा है - "सं. 1992-93 में "माहौर कवि मण्डल" झाँसी की स्थापना हुयी जिसके अध्यक्ष श्री श्रवणप्रसाद मिश्र "श्रवणेश" और उपाध्यक्ष कवीन्द्र श्री नाथूराम माहौर थे ।

1:- झाँसी दर्शन-श्री मोतीलाल "अशान्त"-लक्ष्मी प्रकाशन 86 पुरानी नजाई-पृ-20।

2:- बुन्देलखण्ड वागीश- रामपाल सिंह प्रचण्ड चन्देल- मुद्रक अयोध्या प्रसाद शर्मा - पृ0- 15

3:- काव्य वाटिका- आनन्द प्रेस झाँसी द्वारा प्रकाशित -पृ0------ : माहौर मण्डल द्वारा प्रकाशित : प्रकाशक काल सं0 1995

4:- "" "" वही "" -"" "" पृ0

इस मण्डल द्वारा नवोदित कवियों को यथेष्ट प्रोत्साहन मिला[1] । इसी सन्दर्भ में "मण्डल" द्वारा प्रकाशित पुस्तिका "काव्य-वाटिका" में मण्डल के मंत्री श्री हीरासिंह जी का वक्तव्य भी उल्लेखनीय है-"माहौर कविमण्डल इस समय द्वितीय वर्ष की रेखा पर है परन्तु इसने थोड़े से काल में ही जो इसने उन्नति कर दिखाई है वह वास्तव में अपूर्व नहीं तो सराहनीय अवश्य है"[2] । इससे स्पष्ट है कि मण्डल की स्थापना "काव्य-वाटिका" के प्रकाशनकाल से दो वर्ष पूर्व होचुकी थी । "काव्य वाटिका" का प्रकाशन काल सं. 1995 है अत: माहौर मण्डल का स्थापना काल सं. 1993 ठहरता है । औपचारिक रूप से तो मण्डल की स्थापना सं. 1993 में ही हुयी परन्तु अनौपचारिक रूप से माहौर जी के पास कवियों का समुदाय बहुत पहले से ही एकत्र रहता था और माहौर जी को काव्य गुरु मान कर काव्य शिक्षा ग्रहण करता था । डा० भगवान दास माहौर ने अपने लेख "माहौर जी और उनकी काव्य साधना" के अन्तर्गत लिखा है-" माहौर जी का काव्य सृजन तो सराहनीय है ही उससे कहीं अधिक सराहनीय है उनका काव्यानुराग सृजन ।-- ---------- जब से माहौर जी ने होश सम्भाला और सं.196[illegible] के लगभग सरस्वती मन्दिर में नियमित पूजा करना प्रारम्भ किया तभी से बराबर ऐसा कवि मण्डल भले ही उसका कुछ नाम न हो और उसका कोई लिखित विधान या नियमावली न हो - माहौर जी के आस पास का बना रहा है "[3] ।

"माहौर कवि मण्डल" की संस्थापना का इतिहास कहीं लिखित रूप में उपलब्ध नहीं है । इस सम्बन्ध में माहौर जी के शिष्य श्री सुन्दर लाल द्विवेदी ने बताया कि उन दिनों कवि सम्मेलनों के निमंत्रण कुछ लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकारों के पास ही आया करते थे इस प्रकार माहौर जी के अन्य शिष्य उन सम्मेलनों में नहीं जा पाते थे । श्री सुन्दरलाल द्विवेदी ने माहौर जी से प्रार्थना की "गुरुदेव कोई ऐसा यत्न कीजिये कि सम्मेलनों का निमंत्रण

1:- साप्ताहिक भारती - झाँसी दर्शन विशेषांक :1968: 45 , स्टेशन रोड झाँसी से प्रकाशित

2:- काव्य-वाटिका - प्रकाशन काल - सं. 1995

3:- माहौर अभिनन्दन ग्रन्थ - पृ० - 15

अनिवार्यता सभी को प्राप्त हो जाया करे । "माहौर जी ने कहा एक मण्डल स्थापित करो और मण्डल के नाम से ही निमंत्रण मंगाया करो इससे मण्डल के सभी सदस्य सम्मेलन में जा सकेंगे । इस प्रकार बातो ही बातों में मण्डल की स्थापना हो गयी ।औपचारिक रूप से पदाधिकारियों का चुनाव हो गया । श्री श्रवण कुमार "श्रवणेश" जी अध्यक्ष, कवीन्द्र नाथूराम माहौर उपाध्यक्ष तथा श्री हीरासिंह जी मंत्री चुने गये[1]।

इस मण्डल के तत्वावधान में काव्य वाटिका नामक पुस्तिका सं. 1995[2] में प्रकाशित हुयी जिसमें मण्डल के तत्कालीन सदस्यों का परिचय तथा एक सामूहिक चित्र दिया गया है । उसके अनुसार सर्व श्री "श्रवणेश जी" अध्यक्ष , माहौर जी उपाध्यक्ष , हीरासिंह जी मंत्री थे । अन्य सदस्यों के नाम जो कि पुस्तिका में हैं वे इस प्रकार हैं -

तुलसीदास जी आलुतिया , बनवारी लाल जी सेठ, नारायण दास जी जौहरी , माखन लाल जी मिश्र , पं. सीता राम जी रावत "प्रेमी", रामकिशोर जी मिश्र "किशोर", गुलाबचन्द जी , कुसुमेश , रघुनन्दन लाल जी "राघवेन्द्र" ,रामचरण जी हयारण "मित्र", श्री गोरी शंकर "गिरीश", नारायण दास हयारण "नरेन्द्र" , मथुरा प्रसाद जी "मथुरेश" , भगवानदास जी ज्योतिषी, "दास" व्दारका प्रसाद जी "व्दारिकेश" तथा राधाकृष्ण जी बडोनिया "कृष्ण" आदि । इन सभी सदस्यों का संक्षिप्त परिचय एवं कुछ कवितायें "काव्य - वाटिका" में प्रकाशित हैं । कवीन्द्र केशव के वंशज पं. बिहारी लाल जी मिश्र "बिहारी" एवं रामसेवक त्रिपाठी "सेवकेन्द्र" जी चित्र में नहीं हैं परन्तु दोनों कवियों का संक्षिप्त परिचय और कुछ रचनायें पुस्तिका में प्रकाशित हैं इससे ये स्पष्ट है कि दोनों भी माहौर मण्डल के सदस्य थे । पं. सुन्दरलाल व्दिवेदी "मधुकर" अपने को माहौर जी का प्रिय शिष्य तथा "माहौर मण्डल" से विशेष रूप से सम्बन्धित बतलाते हैं , परन्तु "काव्य वाटिका" में उनकी कोई भी रचना नही है । "काव्यवाटिका" में प्रकाशित नारायण दास "जौहरी" की -

---

1:- श्री गोरी शंकर व्दिवेदी-साप्ताहिक भारती-पृ०-91- झाँसी दर्शन विशेषांक - :1968 :

2:- काव्यवाटिका - प्रकाशक "हीरासिंह" आनन्द प्रेस झाँसी

"परिचय" नामक निम्नलिखित कविता में "मधुकर" का नाम आया है जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि वे भी मण्डल के सदस्य थे -

"मोहन का प्यारा शंभु "माहुर" का दुलारा शिष्य,
धातु गुरु ज्ञान कला कारी से गुजारा है ।
"मधुकर", "मित्र", "राघवेन्द्र" और नरेन्द्र दास ,
कृष्ण दरबार में पिलाई काव्य धारा है।
दु:खद अपार भव पार करने के लिये,
दीन दु:ख हारी भूतनाथ का सहारा है ।
श्रेष्ठ कवियों के काव्य रत्न रखने के हेतु ,
यारिद जहाँ में नाम घोखरी हमारा है[1] ।।

डा० भगवान दास माहौर ने भी मदनेशकृत लक्ष्मीबाई रासो की भूमिका में माहौर कवि मण्डल के प्रमुख सदस्यों के नाम गिनाये हैं जिनमें "मधुकर" जी का भी नाम आया है-"माहौर जी की मण्डली के प्रमुख सदस्यों में थे सर्व श्री बिहारी अली, रामचरण ह्यारण मित्र, रामसेवक त्रिपाठी "सेवकेन्द्र", गौरी अली, हक्कू तमेरे, नरेन्द्र ह्यारण, सुन्दरलाल मधुकर आदि।[2] घोखरी जी की कविता से ज्ञात होता है कि श्री रामचरण ह्यारण "मित्र" भी माहौर जी के शिष्य थे । मित्र जी ने एक साक्षात्कार में बतलाया कि वैद्य० घासीराम व्यास को ही अपना काव्य गुरु मानते हैं और उन्हीं के शिष्य हैं । माहौर जी को तो वे राष्ट्रीय काव्य धारा के प्रेरक मानते हैं[3] । माहौर जी के शिष्य श्री दीपचन्द्र तथा मधुकर जी[4] का कहना है कि मित्र जी ने सं० 2016 में - माहौर जी को काव्य गुरु के रूप में वरण की थी । ऐसा प्रतीत होता है कि मित्र जी ने आरम्भिक शिक्षा माहौर जी से ग्रहण की, कुछ कालोपरान्त वे व्यास जी की ओर आकृष्ट हुये और अपना काव्य गुरु मानने लगे । वे सब -

---

1:- काव्यवाटिका -"परिचय" :घोखरी: - पृ० 53

2:- मदनेशकृत लक्ष्मीबाई रासो-भूमिका-पृ०43-राघवेन्द्र प्रकाश आगार द्वारा मुद्रित ।

3:- मुझे गोष्ठी को राष्ट्रीय रंग पर लाना था ...मैंने माहौर जी से कहा आप भी :राष्ट्रीय छन्द :लिख देने की कृपा करें ।मित्र जी-पृ०4 [illegible]

4:- श्री दीपचन्द व स्व० श्री मधुकरजी से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त तथ्य ।

होते हुये भी मानना पड़ेगा कि मिश्र जी का माहौर जी से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है ।

माहौर कवि मण्डल की गणना शनैः शनैः एक लब्ध प्रतिष्ठित संस्था के रूप में होने लगी । उसके आकार में परिवर्तन एवं परिवर्धन होता रहा । मण्डल के सभी सदस्य एक तथा दलगत भावना से रहित होकर काव्य साधना में तल्लीन रहते थे । फड़ों तथा कवि सम्मेलनों में मण्डल के सदस्य एक दल के रूप में प्रकट होते तथा विपक्षी को पराजित करने का पूरा प्रयत्न करते थे । मण्डल के सदस्य माहौर जी से कवित्त सीखते थे और फड़ों, बैठकों आदि में गाते सुनाते थे तथा स्वयं भी कवित्त आदि लिखकर माहौर जी से उनका संशोधन करा कर बैठकों आदि में सुनाते थे[1] । माहौर जी के निर्देशन तथा प्रशिक्षण द्वारा तदनुसार माहौर मण्डल के लगभग सभी कवि प्रतिभा सम्पन्न थे । आज भी जो सदस्य हैं उनकी कीर्ति दूर-दूर तक फैली है । माहौर अभिनन्दन ग्रन्थ के तृतीय भाग के पृ० 16 पर श्री भगवान दास माहौर ने लिखा है - "इस कवि मण्डल के कतिपय कवियों की कीर्ति झाँसी तथा आस पास के प्रदेश को पार करके प्रान्त व्यापिनी ही नहीं समस्त हिन्दी क्षेत्र व्यापिनी हो गई है इस सम्बन्ध में ब्रजभाषा के सुप्रसिद्ध कवि श्री रामसेवक त्रिपाठी "देवेन्द्र" तथा श्री रामचरण हयारण "मित्र" का उल्लेख किया जा सकता है, जिन पर झाँसी माहौर जी तथा माहौर कवि मण्डल उचित गर्व कर सकता है"[2] ।

आचार्य [illegible] सिंह अपने एक लेख में लिखते हैं -" माहौर मण्डल के अध्यक्ष की प्रेरणा से और "साहित्यवारिधि" श्री रामचरण हयारण मित्र की कवितायें जनपद की सीमायें पार कर देश भर में प्रकाशित हो चुकी हैं"[3] । माहौर मण्डल कवीन्द्र नाथूराम माहौर के नेतृत्व में उनके जीवन पर्यन्त बुन्देलखण्ड के अंचल में साहित्यिक प्रेरणा तथा परिष्कृत चेतना प्रदान करता रहा

1:- [illegible] रासो- भूमिका-डा० माहौर पृ०-45

2:- मा० अभि० ग्रन्थ - तृतीय खण्ड - पृ०-16

3:- स्मारिका-मार्च 1974, स्वागत समिति उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन 18 वाँ झाँसी अधिवेशन द्वारा प्रकाशित ।

है । उनकी मृत्यु के पश्चात भी मण्डल ने अपना अस्तित्व नहीं खोया यद्यपि उसकी गतिविधियों का प्रारूप नष्ट हो चुका है । डा० माहौर मण्डल के सम्बन्ध में लिखते हैं-

"इस कवि मण्डल के प्राय: सभी सदस्य कवि काम काजी रहे जो अपनी आजीविका के लिये अपनी कविता पर निर्भर नहीं है । उनके लिये कविता शुद्ध सांस्कृतिक विकास, शुद्ध सरस्वती पूजा की बात रही जिससे उन्होंने कभी लक्ष्मी के प्रसाद की कामना नहीं की ।............... यह कवि मण्डल शुद्ध सांस्कृतिक रहा है, किसी प्रकार से दूर के लगाव से भी यह कोई "ट्रेड-यूनियनई" कभी नहीं रहा "[1] ।

"काव्य वाटिका" में प्रकाशित प्राग्वक्तव्य में माहौर जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुये सदस्यों ने कहा है -

"माहौर जी निरन्तर से अपने साथियों तथा शिष्य वर्ग पर विशेष कृपा करते रहे हैं .... उदीयमान कवियों को प्रोत्साहन देने में माहौर जी का अनुपम स्थान रहा है .... झांसी में कवियों की अभिरुचि वृद्धि करने का श्रेय हमारे माहौर जी को ही है "[2] । "झाँसी दर्शन" में अकान्त जी लिखते हैं- " .... । इस प्रकार माहौर जी ने नये नये कवियों के निर्माण में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया है "[3] ।

राज दरबारों में सम्मान :-

(कवीन्द्र तथा बुन्देलखण्ड भूषण की उपाधियों द्वारा विभूषित सम्मान)

सामन्तवादी युग में साहित्य तथा साहित्यकारों का संरक्षण देशी रियासतों के राजा- महाराजाओं द्वारा ही होता था । बुन्देलखण्ड में भी अनेक देशी राज्य थे । प्रत्येक राज्य में राजा के दरबार कुछ दरबारी कवि हुआ करते थे जिनका एक मात्र कार्य राजाओं की चाटुकारिता करना तथा उन्हें खुश करना ही था । युग नया मोड़ ले रहा था । राजतंत्र शाही अ-

---

1:- मा० अभि० ग्रन्थ- पृ० 16

2:- काव्यवाटिका- वक्तव्य- मा०कवि मण्डल के मंत्री हीरासिंह द्वारा प्रकाशित

3:- झाँसी दर्शन- मोतीलाल [illegible]- लक्ष्मी प्रकाशन 98 पुरानी नझाई झाँसी ।

समाप्त प्राय थी और लोकतंत्र के लिये , स्वराज्य के लिये जनता स्वतंत्रता संग्राम की भूमिका तैयार कर रही थी । जनता का दिशा निर्देशन कवियों द्वारा हो रहा था । माहौर जी ने भी अपनी सशक्त वाणी द्वारा लोक जीवन को नयी दिशा में मोड़ने का सराहनीय कार्य किया ।

दासता के युग में देशी नरेश ऐश्वर्य सम्पन्न थे परतन्त्रता की बे-ड़ियों में आरूढ़ रहते हुये भी वे अपने को सुखी समझते थे । अत: वे मनस्थ से स्वतंत्रता संग्राम में प्रत्यक्ष भाग नहीं लेना चाहते थे । उन्हें स्वतंत्रता संग्राम के लिये प्रेरित करना भी बड़ा दुष्कर कार्य था । ऐसे रूढ़ियों में जकड़े राजाओं के हृदय परिवर्तन का कार्य करने का श्रेय कवीन्द्र नाथूराम माहौर को है । माहौर जी ने विभिन्न राजाओं के दरबारों में जाकर अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा न केवल राजाओं का हृदय ही परिवर्तित किया अपितु दरबार में वे राजाओं द्वारा सम्मानित तथा पुरस्कृत भी किये गये । माहौर जी ने राज दरबारों में प्रवेश कर राजाओं को नवीन क्रान्ति के लिये प्रेरित किया वे जानते थे कि एक राजा जागरूक होकर ही अपनी समस्त प्रजा को जागरूक कर सकता है । इस प्रकार माहौर जी बुन्देलखण्ड के अनेक रा ज दरबारों में गये और वहाँ के राजाओं की मानसि क अवस्था को परिवर्तित कर उनके अन्दर शौर्य की भावना जाग्रत की । अपनी अन्तर्भावना की तृप्ति के लिये जो कवि श्रृंगार से उद्भुत नायिका - भेद के छन्द लिख रहा था , राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिये अब उसकी लेखिनी से राष्ट्रीय छन्द नि:सृत होने लगे ।[1]

माहौर जी बुन्देलखण्ड के अनेक राज दरबारों में समादृत हुये । इन दिनों बुन्देलखण्ड के विभिन्न राज्यों में कवि सम्मेलन तथा काव्य गोष्ठि-याँ हुआ करती थीं । प्रचलित परिपाटी के अनुसार ऐसे सम्मेलनों तथा गो-ष्ठियों का आयोजन राज्य के दीवान अथवा राजकवि किया करते थे । वे लब्ध प्रतिष्ठ कवियों को ही आमंत्रित किया करते थे । झाँसी में काव्य - क्षेत्र में माहौर जी की कीर्ति समस्त बुन्देलखण्ड में व्याप्त हो चुकी थी । रियासती काव्य क्षेत्र में भी उनका यश फैला था । ओरछा के राजा वीर-

---

1:- माहौर अभिनन्दन ग्रन्थ - पृ0- 24

सिंह देव जी साहित्य प्रेमी थे वे कवियों का बड़ा ही आदर सत्कार करते थे[1] । उनके दीवान पंडित श्याम बिहारी मिश्र हिन्दी के प्रकाण्ड पण्डित तथा अच्छे कवि भी थे । वे प्रतिवर्ष कवि सम्मेलन का आयोजन किया करते थे । बुन्देलखण्ड के सभी प्रतिष्ठित कवि आमंत्रित किये जाते थे । जिन कवियों की रचनायें विशेष रुचिकर एवं प्रशंसनीय होती उन्हें महाराज से मिलवाया जाता था महाराज यदि कविता सुनकर प्रसन्न होते तो कवि को पुरस्कृत किया जाता था । इसी सम्मेलन में माहौर जी की कविता सुनकर श्री श्याम बिहारी मिश्र बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने राजा साहब से माहौर जी का साक्षात्कार करवाया । माहौर जी ने बुन्देला वीर छत्रसाल की कृपाण का वर्णन कुलटा, दूती, गणिका आदि नायिका भेदों के रूप में अलंकृत भाषा में किया । कुलटा नायिका के रूप में छत्रसाल की कृपाण का वर्णन करते हुए माहौर जी ने कहा

म्यान से निकल कर नाची हुई जाती जब,
　　　　नाथूराम चपल दिखाती गति चाल की ।
रङ्ग बरसाती, अङ्ग सुषमा सुहाती दिव्य,
　　　　उपमा लजाती द्युति विद्युति के जाल की ।
+　　　+　　　+　　　+　　　+
कण्ठ प्रति कण्ठ से विहार कर जाती वेग,
　　　　कुलटा समान तीव्र तेग छत्रसाल की ।

वीर छत्रसाल की कृपाण का कुलटा, दूती और गणिका के रूप में वर्णन करने के पश्चात माहौर जी ने ओरछेश को "श्री वीर सिंह की तलवार चन्द्रहास" के कवित्त भी सुना डाले :कृपाण की सुहागनी : :-

त्याग कर बैरी घर कण्ठ का विहार व्रत,
　　　　दूती धर्म कर्म के न जाती कभी पास हू ।
नाथूराम स्वप्न में न नाचती रणाङ्गन में ,

1:- ओरछा नरेश वीरसिंह देव:प्रथम : के समय में सुकवियों और कलाकारों की प्राय: तीन सौ तक पहुंच गयी थी । यह प्रथा श्री वीरसिंह देव:द्वितीय : तक बराबर चलती रही । -श्री गौरीशंकर द्विवेदी- दैनिक मध्य देश दीपावली विशेषांक 1970-पृ0-13

म्यान रनवास में ही करती निवास हूँ ।

जाके कभी सम्मुख न देखती दिखाती मुख ,

मुख रुप जाके कभी दिव्य गुण रास हूँ ।

पूर्व के समान उपहास के न योग्य अब ,

अभी वीर नेह की स्वकीया चन्द्रहास हूँ ।

इन कवित्तों में ब्रिटिश गुलामी में पड़े अधिक राजाओं के प्रति व्यंग्य स्पष्ट ही है । गुणग्राही वीर सिंह जी देव ने माहौर जी के इन कवित्तों को सुन-कर प्रशंसा की और माहौर जी को साधुवाद देते हुये कहा -"माहौर जी आपने बहुत ही सुन्दर कहा है "[1] । ओरछा दरबार ने माहौर जीको "कवि-रत्न" की उपाधि प्रदान की[2] ।

खनियाधाना नरेश श्री खलक सिंह साहित्य संगीत के मर्मज्ञ थे और एक अच्छे लेखक और कवि थे । माहौर जी के खनियाधाना राज्य पहुँचने पर राजा द्वारा उनका सम्मान किया गया और राजा ने उनसे कुछ सुनाने के लिये कहा । महाराजा उस समय दुनाली लिये हुये शिकार को जाने की तैयारी कर रहे थे । उनकी दुनाली को लक्ष्य करके माहौर जी ने कहा-"श्री मन कृपाण काउलहना है, आज्ञा हो तो सुनाऊं[3] और यह कवित्त सुनाया -

म्यान मणि अन्दर के रखते हैं अन्दर ही ,

लेकर उनका कभी देते न दुनाली को ।

पास में न आते औ लगाते हैं न अंक मुझे ,

लाते हैं कलंक पढ़ुआ पूर्वज प्रणाली को ।

"नाथूराम" नयनभिराम रण रङ्ग भरी ,

म्यान में न देखे मुख लालिमा वहाली को ।

1:- माहौर अभिनन्दन ग्रन्थ - पृ० - 26

2:- माहौर माथुर वैश्य जाति एवं उसके संगठनों पर ऐतिहासिक अनुशीलन ले० रामेश्वर दयाल गुप्त - प्रकाशक - यतीन्द्र कुमार गुप्त, माहौर प्रकाशन :दतिया: - पृ० - 193

3:- माहौर अभि० ग्रन्थ - पृ० - 26

वीरता भिनावते न चाहते हैं मेरा स्वाद,

रखते हैं चिबोरी मोत सड़ग में बुनानी को ।।

उपर्युक्त छन्द सुनकर रावसाहब माहौर जी से अत्यधिक प्रभावित हुये और माहौर जी को विशेष सम्मान राजदरबार में दिया गया । श्री छत्रसिंह जी ने "सं. 1993 में विजयादशमी के शुभ अवसर पर माहौर जी को "कवीन्द्र" की उपाधि से विभूषित किया[1] । माहौर जी के हृदय में भी महाराजा के लिये विशेष स्थान था । अपनी पुस्तक "वीर वधू" माहौर जी ने राजा छत्र सिंह को समर्पित की है । पुस्तक के मुख पृष्ठ पर महाराजा का चित्र लगा है तथा समर्पण छन्द की चार पंक्तियाँ इस प्रकार लिखी हैं -

"वीर वंश - अवतंस वीर वर बल सागर गुण आकर ।
धरम धुरंधर सरस प्रकाशित पुन्य प्रभात प्रभाकर ।।
कवि कोविद हित कलन कुरत जन-रञ्जन अरिगन विमर्दन ।
श्री मन नृप के कर कमलनि में आदर सहित समर्पन[2] ।।

- भवदीय
नाथूराम माहौर ,
झाँसी

स्पष्ट है कि माहौर जी के हृदय में छनियाधाना नरेश श्री छत्र सिंह जी के प्रति अगाध श्रद्धा थी और नरेश भी माहौर जी को उचित सम्मान देते रहे ।

आरम्भ में माहौर जी न तो किसी भी सभा का सभापतित्व ग्रहण करते थे और न अपने काव्य के लिये किसी प्रकार का पुरस्कार स्वीकार करते थे । जहाँ कहीं कवि सम्मेलन आदि में जाते थे अपने खर्च से जाते थे और खर्च के लिये यदि पैसे नहीं रहते तो नहीं जाते थे लेकिन धनाभाव[3] के कारण इनमे

1:- बुन्देली का फाग साहित्य - श्याम सुन्दर बादल- पृ0 - 362

2:- वीर-वधू- मुद्रक- इण्डियन प्रेस लिमिटेड - प्रयाग

3:- "माहौर जी की काव्य साधना और कवि सेवा और मेरे "धन्नालाल-किशनलाल" ने घर में जो कुछ थोड़ी बहुत सम्पत्ति थी, सब ठिकाने लगा दी । दुकान मकान सब बिक गये ।.. ... घर की हालत बद से बदतर होती ही गई ।"-डा0 भगवानदास माहौर -:मा0अभि0 ग्रं0 - पृ0 - 29 :

कार करना पड़ा ।

सन 1930 - 31 का सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा विदेशी वस्त्र बहिष्कार आन्दोलन जोरों पर था । माहौर जी ऐसे समय में विदेशी वस्त्रों को झांसी में नहीं बेच सकते थे अत: अपने विदेशी वस्त्रों की दुकान लिये बुन्देलखण्ड की रियासतों में , रियासती मेलों में जाया करते थे । एक बार माहौर जी पन्ना पहुंचे वहां के राजकवि पं० हरनाथ जी माहौर जी के मित्र थे । वे वहां पर माहौर जी को दरबारी कवि सम्मेलन में ले गये । समस्या पूर्ति का विषय था - "कृपाण की" । अन्य कवियोंने राजा की चापलूसी करते हुये कृपाण का वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण ढंग से किया जब माहौर जी का नम्बर आया तो उन्होंने जो वर्णन कृपाण का किया उसे सुनकर दरबार दंग रह गया । राजकवि भयभीत हुये क्योंकि माहौर जी के कवित्त में राजा के ऊपर व्यंग्य था-

जानी थी शिवाजी उजबाल कर तानी जबै,
कीनी मनमानी दुरानी मुगलान की ।
जानी थी प्रताप करी बानी बैरियों की एक ,
ठीक ठान ठानी थी स्वतंत्रता महान की ।

+ + + +

जाने कहा निगुरे निगोड़े राजपूत कोरे ,
कायर कपूत कर कानी कृपाण की ।।

पन्ना नरेश ने माहौर जी की भूरि - भूरि प्रशंसा की । माहौर जी जानते थे कि राजासाहब हृदय से वीर हैं , चापलूसी पसन्द होने की बुराई वे न चाहेंगे । सम्मेलन के निर्णायकों द्वारा माहौर जी को पुरस्कार स्वरूप छत्रसाल ग्रन्थ और स्वर्ण पदक प्रदान किया गया[1] । दूसरे दिन राजा साहब स्वयं माहौर जी की दुकान पर गये और लगभग बारह सौ रुपये का कपड़ा खरीदा ।

राजदरबारों में तो माहौर जी का विशिष्ट सम्मान होता ही था । इसके अतिरिक्त झांसी में भी समय समय पर उन्हें विभिन्न उपाधियों -

---

1:- मा० अभि० ग्रन्थ - तृतीय खण्ड - पृ० 27

एवं पुरस्कार देकर समादृत किया गया । बुन्देलखण्ड रामायण महासभा ने श्रावण शुक्ल 7 सं० 2009 को माहौर जी को "बुन्देलखण्ड भूषण" की उपाधि द्वारा सम्मानित किया । रामायण महासभा द्वारा प्रदत्त अभिनन्दन पत्र से निम्न पंक्तियाँ उद्धृत हैं -

"आपके प्रति आन्तरिक श्रद्धा समर्पित करके हमारी यह विनय है कि हमारे हृदय से निःसृत आपके लिये "बुन्देलखण्ड भूषण" की उपाधि को आप स्वीकार कीजिये[1] ।"

श्री तुलसी मन्दिर , झाँसी — हम हैं आपके अपने:-

श्रावण शुक्ल 7, सं० 2009 — बुन्देलखण्ड श्री रा०म०स०के अधि० सद०

"ब्रज साहित्य मण्डल " मथुरा ने उनकी अनुमति पर :श्री निवास दास : पुरस्कार देकर सम्मानित किया[2] । माहौर जी के सम्मान में सन् 1959 में झाँसी की साहित्यिक जनता की ओर से उनकी हीरक जयन्ती का आयोजन किया गया जिसमें हिन्दी जगत के लब्ध प्रतिष्ठित पं० बनारसीदास चतुर्वेदी राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त प्रभृति ने भाग लिया और इस अवसर पर उनको एक हजार रुपये की थैली व और एक हस्तलिखित अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया[3] । श्री मोती लाल अशान्त अपने झाँसी दर्शन में इस तथ्य की पुष्टि करते हुये लिखते हैं - "सन् 1959 में झाँसी की साहित्य जनता द्वारा उनकी हीरक जयन्ती के अवसर पर एक हजार रुपये की थैली और एक हस्तलिखित ग्रन्थ भेंट कर उनका सार्वजनिक सम्मान किया गया[4] ।

1:- प्रस्तुत अभिनन्दन पत्र की एक प्रति "माहौर जी के दीन का दावा" :दूसरा, तीसरा, चौथा भाग : में शुरू में प्रकाशित है । "दीन का दावा" प्रकाशन काल सं० 2009 प्रकाशक-रवीन्द्र पुस्तकालय दीनगन कटरा, झाँसी

2:- दैनिक मध्य देश- गणतंत्र विशेषांक 1972 - पृ०- 141

3:- यह ग्रन्थ 11-10-1959 को स्वाधीन प्रेस द्वारा प्रकाशित हुआ ।

4:- झाँसी दर्शन - मोती लाल "अशान्त"

माहौर जी का देहावसान एवं संस्मरण :-

माहौर जी वृद्धावस्था में कैंसर रोग से ग्रस्त हो गये थे । अर्था-भाव के कारण विशेष चिकित्सा नहीं हो सकी, फिर भी साधारण चिकित्सा होती रही । दीर्घकाल पर्यन्त रोग तथा तज्जन्य व्यथा भोगते रहे । माहौर जी का शिष्य वर्ग, मित्रवर्ग तथा साहित्य प्रेमी सभी सेवा सुश्रूषा करते रहे परन्तु व्याधि असाध्य रूप धारण करती गयी । उस समय माहौर जी अपने जीवन के 74 वर्ष पूर्ण कर रहे थे और पचहत्तरवें वर्ष में पदार्पण करने वाले थे । झाँसी की जनता माहौर जी की हीरक जयन्ती मनाकर उनके अभिनन्दन की तैयारी कर रही थी परन्तु माहौर जी के गिरते हुये स्वास्थ्य को देख कर माहौर जी के मित्र वैद्य मुंशी देशराज ने अपना अभिमत व्यक्त किया कि माहौर जी सम्भवतः 75 वर्ष पूरे न कर सकेंगे अतः मित्रों ने यह सोचा कि यथाशक्ति शीघ्र माहौर जी के जीवन काल में ही यह सम्मान देते हुये अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जाय तथा एक सम्मेलन और कवि सम्मेलन का आयोजन किया जाये । परन्तु दुर्भाग्य यह था इस कार्य की गति से माहौर जी के स्वास्थ्य गिरने की गति अधिक वेगवती सिद्ध हुयी 1959 के द्वितीय सप्ताह में ही चिकित्सकों ने चेतावनी दी कि अब समय नहीं है । "19 जुलाई 1959 को अति शीघ्रता में माहौर जी के अभिनन्दन का एक आयोजन किया गया और उन्हें एक हजार रुपये की थैली, अभिनन्दन पत्र और यह अभिनन्दन ग्रन्थ पाण्डुलिपि के रूप में ही समर्पित किया गया "[1] । यह ग्रन्थ भारतीय साहित्य संगम द्वारा प्रकाशित होने के पश्चात दिल्ली में राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त के अभिनन्दन समारोह में राष्ट्रपति व अन्य विद्वानों को भेंट किया गया । इस समारोह में सूचना मंत्री डा० केसकर, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी , श्री रामधारी सिंह दिनकर , श्री जैनेन्द्र , डा० नगेन्द्र, श्री इलाचन्द्र जोशी आदि विद्वान उपस्थित थे सभी को ग्रन्थ की एक एक प्रति भेंट की गयी[2] ।

1:- मा० अभि० ग्रन्थ : आमुख : उस समय यह अप्रकाशित ही था । माहौर जी की मृत्यु के पश्चात प्रकाशित हो सका ।

2:- दैनिक जागरण 21 अप्रैल 1960 में प्रकाशित समाचार ।

माहोर जी को आभास हो गया था कि उनका निर्वाण समय निकट आता जा रहा है परन्तु वे कभी खिन्न नहीं हुये । श्री राम सेवक रावत ने उनके अन्तिम समय का अत्यन्त ही मार्मिक चित्र खींचा है लिखते हैं -

"उम्र की झुर्रियों से जकड़ कर वे 75 वर्ष के हो गये थे दूध से धुली सफेद मूछों के नीचे ओठों पर प्रसन्नता और मुस्कान खेल रही थी । बुढ़ापे ने शरीर को और दुर्बल बना दिया था । पैरों में लड़खड़ाहट , हाथों में कम्पन , उम्र के तकाजे के साथ आ गई थी । शरीर की ऐसी जर्जर अवस्था में कैंसर सरीखे प्राणघातक रोग ने फेफड़ों पर हमला कर दिया । रोग का विकराल प्रकोप हाड़ मांस व प्राणों को झकझोर रहा था । क्षण क्षण पर वे मौत से आंख मिचौली खेल रहे थे । समाज की विषमता और कृतघ्नता , गरीबी और असमर्थता उनके दामन को जंजीर की तरह पकड़े हुये थी । किन्तु वाह रे स्वाभिमानी कलाकार । परिस्थितियों की जंजीरें, विषमता का शिकार, कष्टों के कंटक , उपद्रवों के आतंक तुझे एक क्षण भी नहीं डिगा सके"[1] ।

आगे रावत जी ने लिखा है - "नगर के कुशल चिकित्सक मुंशी प्रेम-राज :उनके परम हितैषी मित्र : को उनके औषधालय में चिन्ता की भाव मुद्रा में एक दिन देखा । मैं उनकी मुखाकृति को देखकर समझ गया कि अब माहोर जी का अंत निकट आ गया है और यह विषाद की छाया मुंशी जी के चेहरे को घेरे हुये है । माहोर जी का शरीर शनैः शनैः क्षीण होता जा रहा है । रोग उन्हें मौत की ओर तेजी से घसीट रहा था + + + + और 22 जुलाई को मैंने प्रातः सुना कि माहोर जी का नश्वर शरीर धरती की गोद में सदैव के लिये चिरनिद्रा मग्न हो गया । उनकी रस भरी वाणी का स्वर पंचतत्व में मिल कर आकाश में लीन हो गया ..... वे वहां चले गये जहां से कोई लौट कर नहीं आता[2] ।

उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अभाव के कारण माहोर जी की -

1:- भा० अभि० ग्रन्थ - तृतीय खण्ड- पृ०- 5 - श्री रामसेवक रावत

2:- भा० अभि० ग्रन्थ - तृतीय खण्ड- पृ०- 7 - श्री रामसेवक रावत

किया । मुंशी देशराज उनके निजी चिकित्सक रहे । अन्तिम समय में उनके मित्रों तथा सहयोगियों ने ऐलोपैथी के डाक्टरों को दिखाया परन्तु रोग पर्याप्त जड़ पकड़ चुका था और उनको बचाया न सका । फलतः 21-7-59 रात्रि को माहौर जी ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया ।

22 जुलाई को प्रातः ही नगर में माहौर जी के निधन की सूचना व्याप्त हो गयी, वेदना से वातावरण आप्लावित हो उठा । दाह संस्कार के लिये आयोजित शव यात्रा में नगर के प्रमुख साहित्यकार , पत्रकार, राजनीतिक नेता, माहौर जी के परिवार जन तथा मित्र वर्ग सम्मिलित हुये । श्मशान स्थल पर शव - दाह संस्कार किया गया । विभिन्न साहित्यकारों द्वारा माहौर जी को श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गयीं । श्री रामसेवक रावत ने कहा -"माहौर जी अपनी शान के निराले ही कवि है"1 श्री रामचरण हयारण मित्र ने कहा-"जिया औरधार्य को नापने के लिये हिमालय के पास भी मापदण्ड नहीं है "। श्रीसत्येन्द्र त्रिपाठी ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये कहा -"माहुर जी ऐसे कवि है जिनके संस्पर्श से माहुर :विष : भी अमृतत्व प्राप्त कर लेता था "। डा० भगवानदास माहौर ने अश्रु पूरित नेत्रों से श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये दुःख प्रकट किया -"मामा हमारे तो पोषक, निर्माता तथा शिक्षा बोधक है "। कवि वर अखिलेश ने माहौर जी को श्रद्धांजलि समर्पित करते हुये निम्न पंक्तियाँ लिखी जो कि माहौर अभि० ग्रन्थ में प्रकाशित हुयी -

"भूल गई तारी लगी कैसे, अपने ही आप, आज महादेव को दुचिन्तचिन्न
हुवे गयो
तन की विद्युति फीकी, धूमिल दिखात सीस, भाल पै लगत जैसे तीसरो नैन
ढ़ैह गयो
उमक कहूं पै कहूं भूमि पै त्रिशूल परयो डम मग चाल हाल कौन दुःख दै गयो
बोले भोले बाबा कंठ भूषण हमारो प्रिये !माहुर न जाने हमें छोड़ि के छिपि
गयो" ।

1:- मा० अभि० ग्रन्थ - आमुख

2:- मा० अभि० ग्रन्थ - कविता पत्रि - अखिलेश शास्त्री - पृ० 10

माहौर जी के संस्मरण :-

माहौर जी के समकालीन कवि एवं उनके शिष्यों से साक्षात्कार करने पर , उनके द्वारा माहौर जी के जीवन की घटना विशेष ज्ञात हुयी जिन्हें संस्मरण के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है -

:1: "माहौर जी की मनोकामना"

माहौर जी के पिता की कामना थी कि बालक पहलवान हो । वे अपने पुत्र नाथूराम को अखाड़े भेजने लगे । कसरत करने से उनका रूप लावण्य निखरने लगा । एक बार अखाड़े के उस्ताद ने नाथूराम माहौर से पूछा," "तुम्हारी मनोकामना क्या है" । माहौर जी ने तत्काल उत्तर दिया - "मैं यदि सामर्थ्यवान बन सकूं तो सोये हुये भारत की समाधि को भंग कर दूं"[1] ।

:2: "अस्पृश्यता के विरोधी"

माहौर जी के समय में समाज में छुआ - छूत की भावना - व्याप्त थी परन्तु माहौर जी इस विकृत परम्परा में विश्वास नहीं रखते थे । झांसी में रघुनाथ जी के मन्दिर के पास माहौर जी की कपड़े की दुकान थी दुकान में अक्सर काव्य विषयक चर्चा होती थी एवं कवि गोष्ठी का भी आयोजन होता था । उनके पास तो अन्त्यज जन भी कविता सुनने आते थे । इस पर माहौर जी के पड़ोसी दुकानदार आपत्ति करते एवं माहौर जी को हीन दृष्टि से देखते । माहौर जी ने इन सब को उत्तर देते हुये कहा - "आप लोगों ने न तो भारतीयता को पहिचाना है और न ही भारत को । हमारी संस्कृति ने तो प्रेम को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है जो प्रेम पूर्वक हमारे हमारे पास आते हैं और साहित्य का रसास्वादन करते हैं मैं उनको कैसे छोड़ सकता हूं । मैं अपनी दुकान यहां से बदल सकता हूं लेकिन उन काव्य - प्रेमी अन्त्यज जन को नहीं छोड़ सकता "[2] ।

1:- माहौर जी के प्रिय शिष्य श्री सुन्दरलाल त्रिवेदी मधुकर से प्राप्त तथ्य ।

2:- आचार्य देवेन्द्र त्रिपाठी के सौजन्य से ।

:3: "शिष्य पर कृपा"

घटना उस समय की है जब माहौर जी कवि सम्मेलनों में आमंत्रित किये जाने लगे थे । वे अपने साथ ऐसे शिष्यों एवं सहयोगियों को भी ले जाते थे जो मंच पर सफलता पूर्वक कविता पाठ कर सकें माहौर जी के प्रिय शिष्यों में से एक श्री सुन्दरलाल द्विवेदी "मधुकर" भी थे । माहौर जी उन्हें भी कवि सम्मेलनों में ले जाया करते थे । माहौर जी को उनका मंच पर उतरना उचित नहीं प्रतीत होता था अत: वे कभी - कभी द्विवेदी जी को अपने साथ ले जाना ठीक नहीं समझते थे । एक अवसर पर टीकमगढ़ में आयोजित कवि सम्मेलन से निमन्त्रण आया । मधुकर जी ने भी जाने के लिये हठ किया परन्तु माहौर जी उन्हें न ले जाना चाहते थे अत: माहौर जी किसी प्रकार से मधुकर जी से बचकर निकल गये और अपने दूसरे शिष्य नाथूराम शर्मा को साथ ले गये । माहौर जब वापस लौटे तो मधुकर जी ने माहौर जी को निम्न व्यंग्यात्मक छन्द सुनाया -

"छल्ला - छली ललारि के परम पिछौरा हाथ ।
छल्ला - गुल्ला होय न जब मल्ला मम साथ ।।
मल - लल्ला मम साथ होय कविराज बनाऊ ।
धन धरती सुख माज और पद उच्च दिलाऊ ।
कै: ट्रेन में चढ़े घुमरते जाते कल्ला ।
खुजा राख ले हाथ संग में लगा फुछल्ला ।।

मधुकर जी की धृष्टता पर माहौर जी को किञ्चित मात्र क्रोध नहीं आया । वे मुस्कराये और कहने लगे -"अच्छा अब हमको ही व्यंग्य का लक्ष्य बनाया जाने लगा ।" मधुकर जी नतमस्तक होकर रह गये ।[1]

:4: "विनम्रता एवं सदाशयता"

माहौर जी की योजनाबद्धता थी । उस समय झाँसी में कई साहित्य तथा सैर सम्मेलन का बड़ा प्रचार था । ऐसे सम्मेलन दल बद्ध होते थे ।

1:- मधुकर जी से साक्षात्कार से प्राप्त तथ्य ।

भवानीपुर के दल का नेतृत्व पं. घनश्याम दास पाण्डेय तथा झाँसी के दल का नेतृत्व माहौर जी करते थे । यह सम्मेलन भवानी पुर में आयोजित था । सहस्रों की भीड़ में मालती छन्द में फाग पढ़े जा रहे थे । घनश्याम दास पाण्डेय के दल ने माहौर जी पर व्यंग्य करते हुये फाग के वस्तुनिष्ठ छन्द पढ़े । माहौर जी की ओर से भी फाग के छन्द के माध्यम से घनश्याम दास पर व्यंग्य किया पाण्डे जी उत्तेजित हो उठे । उन्होंने माहौर जी को इतने अपमान जनक एवं कुत्सित शब्द कहे कि उपस्थित जन समुदाय भी उत्तेजित हो उठा उनमें कुछ वकील तथा पुलिस अधिकारी भी थे । एक साहित्य प्रेमी मजिस्ट्रेट भी थे । सब ने माहौर जी से पुलिस में रिपोर्ट लिखाने के लिये प्रेरित किया माहौर जी मौन होकर सब की बातों को सुनते रहे और अन्त में कहा-"आपसी झगड़ा हमारी अपनी प्रिय मण्डली की है । हम लोग फागकारों के पक्ष पृथक हैं हमारे पारस्परिक विवादों उलझन अपनी हमारी सभायें निर्णीत करेंगी , कोई न्यायालय-नहीं " । दूसरे दिन दोनों पक्षों का समुदाय एकत्रित हुआ । वाद - विवाद के पश्चात सभा ने निर्णय लिया कि पाण्डेय जी का माहौर जी से क्षमा याचना करनी चाहिये । निर्णय के पश्चात माहौर जी उठे और आगे बढ़कर पाण्डेय जी के दोनों चरण पकड़ कर क्षमा याचना करते हुये बोले-"पाण्डेय जी हमारे समाज के गुरु तुल्य - वयोवृद्ध आचार्य कुल दीपक हैं । उनसे हमारा क्षमा याचना करने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता ।" पाण्डेय जी का हृदय द्रवीभूत हो उठा उन्होंने माहौर जी को अश्रुपूर्ण अंक में भर लिया , दोनों के दृग प्रेमाश्रु से आर्द्र हो उठे । सभा साधुवाद से गुंजित हो उठी । वातावरण प्रेम भावना से भर उठा ।

:5: "धरती के गीत"

काल की अनुकूलता तथा समयानुसार माहौर जी रेडियो पर कविता पाठ करने जाया करते थे । एक अवसर पर जब वे रेडियो से काव्य - पाठ करके लौटे तो उनकी भेंट सुविख्यात पत्रकार श्री रामसेवक रावत से हुयी उन्होंने माहौर जी से कहा -"माहौर जी आकाशवाणी से आपके द्वारा प्रसारित -

---

1:- मधुकर जी के सौजन्य से ।

तब गिरीश जी को तपती धरती पर दौड़कर आना पड़ा और मधुकर द्वारा वर्णित रहस्योद्घाटन का परिणाम भोगना पड़ा "[1]।

:7: "नायिका - परख "

मारवीर जी ने नायिका भेद का काव्य सृजन करने के लिये इस विषय पर कुछ चिन्तन किया जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें नायिका परखने की विशेष दृष्टि सी प्राप्त हो गयी थी । एक बार किसी यात्रा से मारवीर जी अपने कुछ मित्रों सहित लौटी आये । रेलवे - स्टेशन पर कुछ समय के लिये साहित्यिक गोष्ठी का आयोजन किया । वहीं बीच उनकी दृष्टि सेना के एक अधिकारी की पत्नी पर पड़ी । वे तीव्र दृष्टि से उसके अंग - प्रत्यंग को देखते रहे । दीर्घकाल तक अपनी पत्नी की ओर इस प्रकार देखते हुए मारवीर जी से सेनाधिकारी क्रोधित मुद्रा में बोला - "[illegible] जी आप मेरी पत्नी की ओर घूर-घूर कर क्या देख रहे हैं" । मारवीर जी ने उत्तर न दिया और मुस्करा कर तत्काल निर्मित नायिका भेद सम्बन्धी तीन छन्द सुनाये । सेना अधिकारी ने मारवीर जी की काव्य - प्रतिभा की भूरि - भूरि प्रशंसा की और कहा कि मुझे अपनी पत्नी में यह सब तो वर्षों में नहीं दिखायी दिया जो आपको क्षण - मात्र में दिखायी पड़ गया " । मारवीर जी ने कहा - "[illegible] , अर्जुन को भी कृष्ण की विभूतियों का दर्शन दिव्य दृष्टि प्राप्त करने पर ही हो सका था । कवियों जैसी दृष्टि आपके पास कहां है जो कि आप अपनी भार्या में निहित विभूति को परख सकें " । सेनाधिकारी ने मारवीर जी द्वारा विरचित छन्दों को लिपिबद्ध और मारवीर जी के प्रति आभार व्यक्त कर चला गया[2]।

:8: "रामायण की मन्त्र शक्ति में विश्वास "

मारवीर जी भी रामचरित मानस को सिद्ध मंत्रों का समूह मानते - थे । उनका विश्वास था कि मानस के अनुष्ठान से ऋद्धियां - सिद्धियां -

---

1:- मधुकर के सौजन्य से ।

2:- श्री मिश्र जी के सौजन्य से ।

प्राप्ति की जा सकती हैं तथा अनिष्ट निवारण किये जा सकते हैं । एक अवसर पर पं. बिहारी लाल वशिष्ठ को यहाँ एक नेपाल से आये सन्त ठहरे थे वे ज्योतिषी भी थे । चिम्मन नाम के एक दूध दही के व्यवसायी माहौर जी के भक्त थे । उन्होंने अपने पुत्र की जन्म कुण्डली बाबा जी को दिखायी तथा उसका भविष्य पूछा । बाबा जी ने जन्म कुण्डली देख कर कहा कि बालक को आज से आठ वर्ष पश्चात अकाल मृत्यु का योग है । चिम्मन ने उसके प्रति-कार का उपाय पूछा बाबा जी ने कहा कि यदि 101/ व्यय करो तो आपद टाली जा सकती है । इस बात की चर्चा चिम्मन ने माहौर जी से भी की । माहौर जी बोले रुपये लुटाने की बात नहीं है मैं तुम्हारी दुकान पर रामायण का पाठ करूँगा । एक मास पश्चात भगवान की कृपा से आपद टल जायेगी । चिम्मन ने माहौर जी की बात पर श्रद्धा रखते हुये उनसे मानस रामायण की प्रार्थना की । माहौर जी ने एक मास तक रामायण पाठ किया उसमें निम्न सम्पुट रखा -

" मन्त्र महा मणि विषय व्याल के ।
मेटत कठिन कुअंक भाल के ।"

पाठ समाप्ति पर हवन किया गया । रात्रि के तृतीय पहर चिम्मन ने स्वप्न देखा कि हनुमान जी उनसे कह रहे हैं कि -" वत्स ! तेरी मनोकामना पूर्ण हो-गी " । शनैः - शनैः वर्ष बीत गये अकस्मात एक दिन चिम्मन का बालक लक्ष्मी-ताल में गिर पड़ा , गहराई में डूबने से लगा । वहीं बीच उसे किसी अज्ञात पुरुष ने निकाल कर तालाब के किनारे खड़ा कर दिया । बालक पूर्ण स्वस्थ होकर घर आया परन्तु अपने निकालने वाले को वह न देख सका और न ही पहिचान सका "[1] ।

1:- यह घटना चिम्मन ने दिनांक 19-7-71 को बतायी ।

द्वितीय - अध्याय

तत्कालीन परिस्थितियाँ एवं माहौर जी की काव्य साधना पर - उनका प्रभाव

कवि या लेखक अपने समय का द्रष्टा और स्रष्टा दोनों ही होता है वह अपने समय से प्रभावित भी होता है और उसे प्रभावित भी करता है उसका तत्कालीन परिस्थितियों से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है । उसका काव्य युग का प्रतिनिधित्व करता है । सामाजिक प्राणी होने के नाते कवि के ऊपर उसके समय की गतिविधि का प्रभाव पड़ता है और यही प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसके साहित्य में अभिव्यक्त होता है । अत: साहित्यकार की तत्कालीन परिस्थिति के अध्ययन के बिना उसके साहित्य की मूल प्रवृत्तियों का अनुशीलन नहीं किया जा सकता । साहित्यकार पर उसके समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आर्थिक एवं साहित्यिक सभी स्थितियों का प्रभाव पड़ता है । प्रस्तुत अध्याय में हम माहौर जी के समय की प्रमुख परिस्थितियों का विवेचन करेंगे साथ ही इन परिस्थितियों का माहौर जी की काव्य साधना पर प्रभाव पड़ा, यह देखने का प्रयास करेंगे ।

:1:

राजनीतिक परिस्थितियां :-

कवीन्द्र नाथूराम माहौर का समय :सन् 1885 - 1959 : उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम चरण तथा बीसवीं शताब्दी का अर्धांश है । तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में माहौर जी की काव्य साधना का अध्ययन करने के लिये उस समय की परिस्थितियों का अनुशीलन अनिवार्य है । सर्व प्रथम हम तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे और - माहौर जी की काव्य साधना पर उसके प्रभाव को देखेंगे ।

1857 में देश - व्यापी सैनिक विद्रोह हुआ जिसका प्रभाव देश के सभी कार्य क्षेत्रों पर पड़ा । राजनीतिक क्षेत्र में तो इसका प्रभाव अविस्मरणीय-

है । इस विद्रोह के बाद राजनीतिक ढांचा एक नये सिरे से निर्मित हुआ[1]। इस विद्रोह के पश्चात भारतीयों के शासन की बागडोर "ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी" से छूटकर ब्रिटिश मंत्रि मण्डल के हाथ में आ गई । लार्ड कैनिंग :1856 से 1861 : भारत के प्रथम वायसराय तथा गवर्नर जनरल नियुक्त हुये । भारत में फैले असन्तोष को शान्त करने के लिये एक नवम्बर 1858 को ब्रिटिश साम्राज्ञी विक्टोरिया के घोषणा पत्र द्वारा यह विश्वास दिलाया गया कि प्रजा के लोग चाहे वे किसी जाति, रंग और धर्म के हों, बिना किसी भेदभाव के सरकारी नौकरियों में शिक्षा, योग्यता और कार्यक्षमता के अनुसार भरती किये जायेंगे । देशी राजाओं के अधिकारों, प्रतिष्ठा तथा गौरव का अपने अधिकारों, प्रतिष्ठा तथा गौरव के समान ध्यान रखा जायेगा । किसी व्यक्ति को उसकी धार्मिक भावनाओं तथा विश्वासों के कारण पक्षपात, उपेक्षा, घृणा अथवा अधीनता की दृष्टि से नहीं देखा जायेगा । प्रत्येक व्यक्ति को कानून की ओर से समान तथा पक्षपात रहित रक्षा प्राप्त होगी[2] । इस घोषणा पत्र से भारत की निराशा तथा "ईस्ट इण्डिया कम्पनी" के अत्याचारों से विक्षुब्ध जनता को आश्वासन मिला । उसे विश्वास हो गया कि कम्पनी द्वारा किये गये अत्याचारों का अब अन्त हो जायगा परन्तु भारतीयों की यह धारणा खण्डित हो गयी । 1866 में उड़ीसा तथा 1868-69 में राजपूताना और बुन्देलखण्ड में भयंकर अकाल पड़ा जिसमें सैकड़ों मनुष्यों की जाने गयी पर इसे रोकने के लिये सरकार की ओर से कोई समुचित प्रबन्ध नहीं किया गया[3]। जनता में बहुत असन्तोष फैला । 1870 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा[4] भारतीयों की आर्थिक स्थिति सुधारने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया । इसके पश्चात शनैः शनैः ब्रिटिश सरकार की नीति बदलने लगी ।

1:- दी डिस्कवरी आफ इण्डिया-ले० जवाहर लाल नेहरू-पृ0328-29

2:- भारत का संवैधानिक इतिहास :1957ई० : डा० वी०डी० महाजन तथा आर०आर० सेठी- पृ0 30 - 31

3:- ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास :1960ई०: - डा० वी०डी० महाजन तथा आर० आर० सेठी - पृ0 321

4:- आधुनिक हिन्दी साहित्य - डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - पृ0 53

विदेशी वस्तुयें अधिक मात्रा में देश में आने लगीं , जिससे अर्थ शोषण नीति में
वृद्धि होती गयी सन् 1878 में लंकाशायर के मिल मालिकों के आग्रह पर भार-
तीय मिलों के कपड़ों पर कर लगा दिया गया जिससे भारतीय कपड़े की खपत
कम हो गयी । लन्दन में होने वाली सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठने वालों
की उम्र घटाने का कारण भारतीयों को इस परीक्षा में न बैठने देना ही था ।[1]
इससे भारतीयों में बड़ी प्रतिक्रिया हुयी 1878 में ही ब्रिटेन ने "वर्नाक्युलर प्रेस-
एक्ट" बनाकर भारतीय भाषाओं में प्रकाशित समाचार पत्रों की स्वतंत्रता भी
छीन ली । इन सब कार्यों से जनता में असन्तोष तो बढ़ा ही साथ ही रा-
ष्ट्रीय चेतना के भी बीज अंकुरित होने लगे । जनता में देश भक्ति की भावना
एवं स्वतंत्रता प्राप्त करने की अभिलाषा बढ़ने लगी । यह तीव्रता से अनुभव किया
जाने लगा कि ब्रिटिश राज्य सत्ता ही भारत के पतन का कारण है । भारत
वासियों को उच्च पदों पर नियुक्त न करना , उद्योग धन्धों का सर्वनाश ,
टैक्स आदि से पीड़ित जनता यह अनुभव करने लगी थी कि कोई ऐसी संस्था
हो जो अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाये । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये
1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गयी[2] । 1886 में बने इन्कम
टैक्स एक्ट के तीव्र विरोध को इस संस्था द्वारा गति मिली । कांग्रेस इस
प्रकार एक जन प्रतिनिधि के रूप में आविर्भूत हुयी । शनैः शनैः भारतीय जनता
के नव जागरण का सूत्रपात हुआ । सारे देश में स्वदेशी आन्दोलन का प्रारम्भ
हो गया , विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार देशी वस्तुओं एवं राष्ट्रीय शिक्षा के
प्रचार पर बल दिया गया । इस राष्ट्रीय व्यापी आन्दोलन में विपिनचन्द्र
पाल, अरविन्द घोष तथा लोकमान्य तिलक आदि ने भाग लिया । ब्रिटिश
सरकार लोकमान्य तिलक के कार्यों से भय त्रस्त हो उठी और उन्हें 1908 में
गिरफ्तार कर लिया गया जिससे जनता में उत्तेजना फैली। सरकार ने राज -
द्रोही सभा बन्दी कानून 1907 में तथा प्रेस एक्ट 1909 में बनाये[4] ।

1:- रामराज्य : कानपुर : 1 अक्तूबर 1956-लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी -"पं. प्रताप - नारायण मिश्र का ब्राह्मण"

2:- कांग्रेस का इतिहास - पृ013-14 - पट्टाभि सीता रमैया

3:- "" वही "" - पृ064-66 - "" ""

4:- भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास-पृ.137,147-गुरुमुख निहालसिंह

1914 में प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हो गया । 1918 में यह युद्ध समाप्त हुआ । इस युद्ध में कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार की सहायता की । इसके प्रतिकार में कांग्रेस द्वारा स्वतंत्रता की माँग की गयी तो ब्रिटिश सरकार द्वारा इस स्वतंत्रता की माँग को ठुकरा दिया गया । 1919 में रौलेट एक्ट पास किया गया जिसके विरोध में सारे देश में हड़तालें हुयीं , सरकार ने दिल्ली में जुलूस पर गोलियाँ चलायीं , महात्मा गांधी को गिरफ्तार कर लिया गया । सरकार ने जनता के साथ अमानुषिक व्यवहार किया । जनरल डायर ने जलियाँवाला बाग में गोली चलवा कर भारत माता के सैकड़ों सपूतों को मौत की गोद में सुला दिया । 1920 में लोकमान्य तिलक का स्वर्गवास हो गया । इसी समय गांधी जी को कांग्रेस का नेता बनाया गया । इस समय से राजनीति का अर्थ "गांधी नीति" से लिया जाने लगा । 1921 में गांधी जी ने सरकार से असहयोग की घोषणा की । 1922 में उन्हें बन्दी बनाया गया तथा 1924 में उन्हें रिहा कर दिया गया इस समय हिन्दू मुस्लिम दंगे चरम सीमा पर थे अत: 1927 में कांग्रेस ने हिन्दू मुस्लिम एकता के लिये सम्मेलन किया । 1930 में गांधी जी ने नमक का कानून तोड़ा तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया । 1931 में ब्रिटिश सरकार ने गांधी जी से समझौता कर लिया 19 अगस्त 1942 को — "भारत छोड़ो" प्रस्ताव पारित किया गया । लार्ड माउन्ट बेटन ने भारतीय नेताओं के परामर्श से 15 अगस्त 1947 को भारत के हिन्दुस्तान एवं पाकिस्तान दो भाग करके स्वतंत्रता की घोषणा कर दी । इसके बाद साम्प्रदायिक दंगे चलते रहे । 30 जनवरी 1948 को गांधी जी को गोली का शिकार बनाया गया । डा० राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में भारत का संविधान निर्मित किया गया । 26 जनवरी 1950 को भारत गणतंत्रात्मक राज्य घोषित कर दिया गया।

कवीन्द्र नाथूराम माहौर ने जिस समय :सन् 1906 से : काव्य के क्षेत्र में पदार्पण किया , उस समय अंग्रेजों के शासन के विरुद्ध जनता के अन्दर असन्तोष एवं विद्रोह की भावना जन्म ले रही थी । साहित्य के क्षेत्र में राष्ट्रीयता के प्रचार के प्रयत्न हो रहे थे । बुन्देलखण्ड में मैथिली शरण गुप्त प्रभृति कवि राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रेरित होकर राष्ट्रीय कविता लिख कर जनता का मनोबल ऊँचा कर रहे थे । पुरानी परिपाटी का अलंकारवादी कवि होते हुये भी कोई वास्तविक कवि समय और देश की दशा के प्रति असंवेदन शील रह ही

नहीं सकता । माहौर जी भी इसके अपवाद न थे[1]। रामलीला में सक्रिय भाग लेने वाले माहौर जी के मन में भक्ति भावना विद्यमान थी । शनै: शनै: यह भक्ति भावना नायिका भेद की ओर उन्मुख हुयी और फिर राजनीतिक प्रवाह ने भक्त श्रीपति अंगारी माहौर जी को पूर्ण रूप से राष्ट्रीय बना दिया । कवि की लेखिनी से ओज पूर्ण राष्ट्रीय छन्द नि:सृत हुये । उनकी वाणी "व्यास" के माध्यम से यह "अभिलाषा" व्यक्त करने लगी -

"माँ तेरे चरणों में चित दे, हँस हँस सीस चढ़ाना है ।
सुख सम्पति सर्वस्व त्याग कर तुझे स्वतंत्र बनाना है[2] ।।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध स्वतंत्रता के आन्दोलन के समय माहौर जी ने सैकड़ों मुक्तक देश प्रेम त्याग और बलिदान के लिये नौजवानों को ललकारते हुये और प्रोत्साहित करते हुये लिखे । प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम की नेत्री प्रात: स्मरणीया झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई की वीरता का वर्णन करते हुये आपने "वीरबाला" लिखी । आपने देश प्रेम और स्वातंत्र्य युद्ध के लिये नवयुवकों को प्रोत्साहित करने के लिये अन्योक्तियों और समासोक्तियों का सहारा लेकर गोरी बीबी आदि छोटी छोटी प्रभाव पूर्ण रचनाये प्रस्तुत की[3] । "गोरी बीबी" के माध्यम से माहौर जी ने अंग्रेजों पर जो व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं वे उनकी राष्ट्रीय विचार धारा के परिचायक हैं -

"व्यापिर के आइ रही जब तू तब देखने में थी स्वभाव की भोरी ,
प्रीतम को बस में करके करने लगी हाय महा बर जोरी ।
चोरी करी है स्वतंत्रता की अब ओरी प्रतीत गई छल तोरी ,
ज्यादा कुचाल चली जो कहूं तो निकार के मायके भेजि दौं गोरी[4] ।

अंग्रेजों के द्वारा भारतीयों की स्वतंत्रता का अपहरण कर जो अत्याचार किये गये उनसे अंग्रेजों के प्रति भारतीयों का विश्वास पूर्णतया समाप्त हो गया था ।

1:- माहौर अभि0ग्रन्थ - पृ0- 31 - डा0 भगवान दास माहौर

2:- "अभिलाषा" शीर्षक में प्रकाशित व्यास-माहौर अभि0 ग्रन्थ पृ0 39

3:- माहौर अभि0 ग्रन्थ - पृ0-62- डा0 भगवान दास माहौर

4:- गोरी बीबी - नाथूराम माहौर

और अधिक अत्याचार करने पर अंग्रेजों को इस देश से वापस भेजने की कितनी सुन्दर व्यंजना कवि ने उपर्युक्त छन्द में की है । महात्मा गांधी भारत की राजनीति के मंच पर अवतरित होने के पश्चात भारत को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने की ओर उन्मुख हुये साथ ही इस देश से विदेशी सत्ता उन्मूलन का कार्यक्रम भी संचालित करने लगे । माहौर जी ने महात्मा गांधी को साम्राज्यवाद के लिये महाकाल बतलाते हुये अंग्रेजों से कहा कि तुम अपने साम्राज्यवाद को लेकर वहां निवास करो जहां महात्मा गांधी का प्रभाव न हो -

"हिन्द में तुम्हारो बिन्दुमात्र न गुजारो अब,
आसन उपारो निज शासन को जानो अन्त ।

\+ + + +

तज स्वच्छन्द यदि चाहते स्वतंत्रवास ,
एतो मैं न मेरो मान लीजे अति हितवंत।
भारत को त्याग वहां जाइ के निवास करो ,
होवे न जहां में जहां मूर्तिमान एक सन्त[1] ।

झांसी की क्रान्तिकारी राजनीतिक गतिविधियों ने भी माहौर जी को राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख किया । जिन दिनों माहौर जी काव्य-साधना में रत थे, उन्हीं दिनों उनके भान्जे डा० भगवानदास माहौर , अमर शहीद क्रान्तिकारी वीर चन्द्रशेखर आजाद तथा सरदार भगत सिंह आदि क्रान्तिकारियों के साथ मिलकर क्रान्तिकारी आन्दोलन का संचालन कर रहे थे । झांसी की राजनीति के मुख्य केन्द्र बिन्दु चन्द्रशेखर आजाद थे जो झांसी के प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्ताओं तथा नेताओं से मिल कर क्रान्तिकारी योजनायें बनाते थे । श्री पुत्र रघुनाथ विनायक धुलेकर :भूतपूर्व अध्यक्ष विधान सभा , उ० प्र० : श्री सीताराम भागवत और श्री कालिका प्रसाद अग्रवाल आदि झांसी के प्रमुख कांग्रेसी नेता आवश्यकता पड़ने पर आजाद और उनके मित्र तथा अनुयायियों को धन, भोजन और सुरक्षा प्रदान करते रहे । आजाद का परिचय श्री आत्मा राम गोविन्द खेर से भी था और समय समय पर खेर साहब श्री गणेश शंकर विद्यार्थी की मार्फत क्रान्तिकारी दल की झांसी शाखा का सम्पर्क प्रान्तीय शाखा से स्थापित कर -

---

1:- श्री गणेश स्तुति-स्फुट छन्द - नाथूराम माहौर

देने का काम कर देते थे[1]।

सदाशिव राव मलकापुरकर क्रान्तिकारी दल की झाँसी शाखा के नेता थे और इस कार्य में इनके सहायक थे श्री विश्वनाथ गंगाधर वैशम्पायन और श्री भगवान दास माहौर[2]। इस दल के सक्रिय सदस्यों में श्री बालूलाल उदेनिया श्री गोविन्द प्रसाद हिंगवासिया और श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा आदि। एक अन्य क्रान्तिकारी दल के सदस्य श्री रामसेवक रावत, श्री नित्यानन्द और श्री रतन आदि भी सक्रिय क्रान्तिकारी के रूप में झाँसी में कार्य कर रहे थे।

श्री भगवान दास माहौर अपने मामा कवीन्द्र श्री नाथूराम माहौर जी के ही घर पर रहते थे। बचपन में पढ़ने लिखने में श्री भगवान दास की रुचि देखकर श्री नाथूराम माहौर अच्छी शिक्षा के लिये उन्हें तथा उनके भाइयों के साथ उनके माता - पिता को भी झाँसी ले आये थे। अतः इस समय से श्री नाथूराम माहौर जी के यहाँ ही रहते थे[3]। श्री भगवान दास माहौर क्रान्तिकारी दल के सक्रिय सदस्य थे अतः घर पर क्रान्तिकारियों तथा कांग्रेसी नेताओं का आवागमन सदा बना रहता था[4]। श्री सदाशिव राव मलकापुरकर और श्री भगवान-दास माहौर को सितम्बर 1929 में भुसावल रेलवे स्टेशन पर हथियारों और बमों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया[5]। श्री भगवान दास एवं उनके साथियों की क्रान्तिकारी गतिविधियों से प्रभावित होकर कवीन्द्र नाथूराम माहौर भी पूर्णतया भावात्मक क्रान्तिकारी हो गये। उनकी वाणी राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित होकर मुखरित हो उठी -

पत्थर से पतित सुनायेंगे तिरछी तरह ,
पल्लव नवीन के पताके फहरायेंगे।

1:- मा० अभि० ग्र० - पृ० - 13 - क्रान्तिकारी झाँसी - देवेन्द्र शिवानी

2:- क्रान्तिपथ : डा० भगवान दास माहौर अभि० ग्र० : - श्री कुन्दन लाल गुप्त द्वारा लिखित लेख से उद्धृत

3:- मा० अभि० ग्र० - पृ० - 29

4:- श्री राम सेवक रावत से प्राप्त तथ्य

5:- मा० अभि० ग्र० - क्रान्तिकारी झाँसी - श्री देवेन्द्र शिवानी - पृ०-14

शमन करेंगे शीत भीत पराधीनता की ,

बल्लरी बल्लरी स्वाधीनता की छटा छहरायेंगे ।

नाथूराम विशद विशाल दिव्य हिन्द माहिं ,

हिन्दी की ललित लतायें लहरायेंगे ।

गायेंगे सुगीत ये स्वराज ऋतुराज ही के ,

विश्व में विजय की पताका फहरायेंगे ।

सन् 1931 में क्रान्ति के सच्चे उपासक सरदार भगत सिंह को जब ब्रिटिश सरकार ने फांसी के तख्ते पर लटका दिया तब श्री माहौर जी ने उस समय का जो चित्र खींचा वह निम्न छन्द में देखा जा सकता है -

"भारत के भाल से छुटा दाग परतन्त्रता का ,

फांसी पर वीर धूल अपने से धो गया

आन बान आला मतवाला था स्वतन्त्रता का ,

रत्न गरभा का था अमोल रत्न खो गया ।

नाथूराम खो गया अनूप स्वाभिमान तेज ,

मातृभूमि गोद में सदा के लिये सो गया ।

अम्बा सिंहिनी का सच्चा देश भक्त भगत सिंह ,

क्रान्ति का दिवाकर सा आज अस्त हो गया ।"

उस समय राजनीति का एक ही अर्थ लगाया जाता था कि येन - केन - प्रकारेण देश को विदेशियों की दासता से मुक्त कराना[1] । इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये सारी जनता में जोश तथा उत्साह जगाना ही नेताओं तथा साहित्यकारों का कर्तव्य हो गया था । माहौर जी भी इसी उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुये राजदरबारों में राजाओं को नव जागरण का सन्देश दे रहे थे । ब्रिटिश गुलामी में पड़े क्षत्रिय राजाओं के प्रति व्यंग्यात्मक कविताओं के माध्यम से उन्हें स्वातन्त्र्य संग्राम के लिये उत्तेजित कर रहे थे । सन् 1930 - 31 में माहौर जी ने पन्ना नरेश के दरबार में उत्साह बढ़ाने वाली कविता पढ़ते - हुये कहा -

---

1:- मेरी कहानी - पं. जवाहर लाल नेहरू - पृ० - 52

डूबे रुप में आज कल , लगी खेत को खान ।।
लगी खेत कौ खान , मुखहिं फैला फैला के ।
रक्षक भक्षक बनी कहैं , अब कासों जाके ।।
माहुर कवि यदि रही प्रथा जो ऐसी जारी ।
तुमहू तो अब कहो बचै कैसे फुलवारी [1] ।।

:2:

सामाजिक परिस्थितियाँ :-

जिस समय माहौर जी का जन्म हुआ उस समय तक मुसलमान भारत छोड़ चुके थे और अंग्रेजों का आगमन भारतवर्ष में हो चुका था । उस समय भारत में एक नये समाज का जन्म हो रहा था । समाज में नई क्रान्ति हो रही थी , वह बदल रहा था । पंडित जवाहर लाल नेहरू ने सामाजिक क्रान्ति से उत्पन्न विकृति के सम्बन्ध में लिखा है -' समाजी क्रान्ति उन दूसरी क्रान्तियों से जिनमें सिर्फ ऊपर ही परिवर्तन होता है बिल्कुल अलग मामला है । समाजी क्रान्ति राजनीतिक क्रान्ति से बहुत गहरी होती है , क्योंकि उससे समाज की बनावट ही बदल जाती है [2] । इस समय पुराने तथा रूढ़िवादी लोग अपनी मान्यताओं को त्यागना नहीं चाहते थे । भारतीयों ने सामाजिक रुप में किसी विदेशी दासता को स्वीकार नहीं किया था । रूढ़िवादी वर्ग आचरण , विश्वास , रहन - सहन , रीति - रिवाज , खान - पान आदि क्षेत्रों में पुरानी मान्यताओं को अपनाये हुये था । माहौर जी के पिता भी प्राचीन भारतीय संस्कृति के कट्टर - समर्थक होने के नाते रूढ़िवादी विचार धारा के पोषक थे । उन्होंने अपने पुत्र श्री नाथूराम को अंग्रेजी शिक्षा इसी विचार धारा तथा मान्यता से नहीं दी थी कि लड़का अंग्रेजी पढ़ कर किरिस्तान हो जायेगा [3] ।

पैतृक संस्कारों से युक्त माहौर जी के अन्दर भक्ति भावना का उदय -

---

1:- स्वदेश - विनोद - नाथूराम माहौर - प्रकाशित सं. 2006

2:- विश्व इतिहास की झलक दूसरा खण्ड - लेखक जवाहर लाल नेहरु - तीसरा-
पैरा - पृ0 - 704

3:- मा0 अभि0 ग्र0 - पृ0 - 18

हुआ । भारतीय सामाजिक मान्यताओं के अनुसार भक्ति चरित्र - निर्माण का एक विशिष्ट साधन रहा है । माहौर जी के पिता स्वयं भगवान राम के भक्त थे नित्य प्रति रघुनाथ जी के दर्शन को रघुनाथ मंदिर जाते थे । यदा - कदा वे ओरछा भी भगवान राम के दर्शनार्थ जाया करते थे । माहौर जी पितृसंस्कार से प्रभावित होकर राम भक्ति की ओर अग्रसर हुये । वे भी नित्य प्रति ही रघु-नाथ जी के मंदिर जाते थे । अपनी मण्डली के साथ अक्सर ही ओरछा पिकनिक पर जाते और भगवान श्री राम के दर्शन करते । माहौर जी की काव्य मण्डली के सभी शिष्य एवं साथी ईश्वर में विश्वास रखने वाले थे इन सबके प्रभाव स्वरूप माहौर जी भी पूर्ण भक्त हो गये[1] । उन्होंने रामलीला में अभिनय आरम्भ कर दिया । रामलीला के पात्रों के कथोपकथन के लिये छन्द लिखना प्रारंभ कर दिया जो मंच पर पठित होकर जनमानस में गुंजित होते थे । यह अभिनय तथा इनमें प्रयोग किये जाने वाले छन्द भक्ति भावना का प्रचार प्रसार करते थे । यह भक्ति भावना हिन्दू समाज को जीवन प्रदान कर रही थी । माहौर जी केवल राम के ही भक्त हों ऐसी बात नहीं थी वे राम और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं - मानते थे दोनों को ही विष्णु के अवतार मान कर समान रूप से दोनों की आरा-धना करते थे । भगवान राम की कथा आचरण मूलक थी तो योगेश्वर कृष्ण की लीला प्रेम प्रकाशिका दोनों का स्वरूप एक ही था । मधुरा भक्ति के प्रकाश-नाथ राधा - कृष्ण को माध्यम बनाकर नायिका भेद , फाग साहित्य आदि की रचनायें होने लगी थी । माहौर जी की काव्य साधना पर इन सबका प्रभाव पड़ा । राम भक्ति से ओत - प्रोत " राम महात्म्य" लिख कर राम की वन्दना की -

वेद रीति रीतिन पै , गीता ज्ञान गीतन पै ,
राजनीति नीतिन पै , नीति को जहाज है ।

\+ + + + +

नाथूराम शासन पै कुशल शरासन पै ,
रघु कुल नायक पै गाज गै गराज है ।

1:- श्री सुन्दर लाल त्रिवेदी से प्राप्त तथ्य ।

साज सरताजन पै , महाराज राजन पै ,

आज दया बाजन पै बाज रघुराज हैं[1] ।

"द्रोपदी दुकूल पचीसी" एवं "बिल्वमंगलखण्ड काव्य में कृष्ण महात्म्य का वर्णन करते हुये कृष्ण भक्ति रस धारा प्रवाहित की । समय समय पर माहौर जी ने गणेश स्तुति , देवी स्तुति , शंकर स्तुति तथा सरस्वती महिमा आदि का वर्णन कर उस समय की जनता की भक्ति परक भावनाओं को प्रस्तुत किया ।

गणेश स्तुति :-

करन गुरवारे कंज चरण निहारे मंजु ,

रंज भंज भारे अघ पुंज हारे के

विपति विदारे धन विघ्न निवारे वारे

कुमति नसारे वर सुमति सुधारे के ।

"नाथूराम" प्यारे दृग तारे भव तारे भव्य ,

विभव पसारे विभव पसारे के ।

चन्द्र मन्द भारे कोटि चन्द्र निज वार चन्द्र ,

भाल चन्द्र तारे सुत भाल चन्द्र धारे के ।

सरस्वती महिमा :-

मंजुल मयंक मुख मुक्ता सुधा के केश ,

नैन मन रंजन वे खंजन सुता के हैं ।

कुन्द विकास मृदुहास को विलास भास ,

केस पास तिमिर अकास समता के हैं ।

नाथूराम दिपत दुकूल चन्द्रमा के दिव्य ,

आभूषण तारागन सारे प्रतिभा के हैं ।

सुललित कला के भवन बुद्धि के पसारे तारे ,

चन्दो पद सरद निशा के सारदा के हैं[2] ।

1:- स्फुट पद - नाथूराम माहौर

2:- अप्रकाशित - स्फुट छन्द - कवीन्द्र माहौर

माथोर जी की काव्य साधना के आरम्भिक काल में देश की सामाजिक दशा अत्यन्त निकृष्टावस्था में थी । समाज कुरीतियों से ग्रस्त था । बाल - विवाह , दहेज - प्रथा , जाति - पाँति , छुआ - छूत , अन्ध - विश्वास अनेक कुरीतियाँ देश को जर्जर बना रही थीं । ईर्ष्या , द्वेष , भोग-विलास आदि व्यसन समाज में पनप रहे थे । अनेक संस्थायें इस क्षेत्र में समाज सुधार की ओर क्रियाशील थीं । आर्य समाज , ब्रह्म समाज , थियोसोफिकल , रामकृष्ण परम हंस मिशन सभी समाज सुधार में प्रयत्नशील रहे व तत्कालीन सामाजिक पुनरुत्थान के कार्य में आर्य समाज , थियोसोफिकल सोसायटी तथा रामकृष्ण मिशन ने पर्याप्त कार्य किया । इन संस्थाओं द्वारा पारस्परिक भेद - भाव मिटाकर विश्वबन्धुत्व की भावना , विशुद्ध मानव - प्रेम , ईश्वर में विश्वास , सब धर्म समन्वय आदि पर जोर दिया गया[1] । मिशन ने प्राचीनता एवं नवीनता का समन्वय करके एक ईश्वर में विश्वास आध्यात्मिकता , मानव-प्रेम आदि को जागृत करने में अत्यन्त सराहनीय कार्य किया[2]। विवेकानन्द की सांस्कृतिक विजय का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि पाश्चात्य सभ्यता की तड़क भड़क में आकर देश की शिक्षित जनता में जो एक हीनता की भावना जागृत हो गई थी उसकी जड़ देश के मानस में अधिक गहरी न होने पाई[3] सामाजिक नव-जागरण में स्वामी रामतीर्थ एवं श्री अरविन्द ने भी पर्याप्त योगदान दिया । रामतीर्थ ने अपने उपदेशों द्वारा सत्य , ज्ञान , सच्चरित्र , स्वार्थ का परित्याग , एक परमात्मा में विश्वास आदि का प्रचार किया[4] ।

कवियों ने सामाजिक प्राणी होने के नाते काव्य सृजन द्वारा अपने कर्त्तव्यों को पूरा किया । माथोर जी आंचलिक कवि हैं । उनका साहित्य यह क्षेत्र विशेष में पढ़ा जाता था । अधिकतर तो वह फड़ , मेले सम्मेलनों , कवि गोष्ठियों तथा कवि सम्मेलनों तक ही सीमित था , कभी - कभी वे -

---

1:- India's culture Through the ages — पृष्ठ- 353 - ले. एम. एल. विद्यार्थी

2:- ———— वही ———— पृष्ठ 356-57 ————

3:- आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका- पृ० 29- ले० शम्भुनाथ पाण्डेय

4:- साकेत में काव्य , संस्कृति और दर्शन - पृ० 29 - डा० द्वारका प्रसाद सक्सेना

रेडियो पर भी काव्य - पाठ करते थे । समाज के सुधार वादी आन्दोलन से माधोर जी भी अछूते न रह सके । माधोर जी ने भी वही लिखा जो युग की मांग थी , उन्होंने जो लिखा वह उनके अन्तस् की गाथा थी , वही देश की पुकार थी । नेता या समाज सुधारक जो तथ्य सीधे व्यक्त करता है कवि अथवा कलाकार उसे व्यंजना द्वारा सरस तथा सुन्दर शब्दों में व्यक्त करता है । समाज सुधार से सम्बंधित छन्द अनुमान में , शबरी के आंसू में देख जा सकते हैं । शबरी के आंसू के माध्यम से माधोर जी ने अस्पृश्यता की समस्या का समाधान किया है । स्वयं अपने जीवन के माध्यम से माधोर जी ने छुआ - छूत की समस्या का समाधान अछूतों के साथ काव्य - पाठ करते हुये किया । अछूतों के लिये तो वे अपनी दुकान तक त्यागने को तैयार हो गये थे । माधोर जी ने कविता के माध्यम से बुन्देलखण्ड के समाज के प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी स्वरूपों की झांकी प्रस्तुत की । उनके साहित्य में तत्कालीन समाज की सम्पन्नता , विपन्नता , निरक्षरता , संयम , जय - पराजय आदि समाज के सभी चित्र प्रस्तुत किये गये हैं । माधोर जी समाज की प्रत्येक अवस्था का प्रतिनिधित्व कर रहे थे । उनकी विचार धारायें सामाजिक गतिविधियों के साथ परिवर्तित होती चली गयीं । माधोर जी के कवि का रूप विराट था । कवि तथा उसका काव्य समाज का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने के साथ ही साथ उसे प्रेरक शक्ति भी प्रदान करता है । इस तथ्य की आपूर्ति निमित्त माधोर जी लोक जीवन को प्रभावित तथा उल्लसित करने वाले उत्सवों , त्योहारों में साधारण जन समुदाय में प्रवेश करते तथा जनता के बीच बैठ कर अपने काव्य रस की अजस्र धारा प्रवाहित करते । उत्सवों के अनुकूल गीत रचते तथा गाते थे जिनसे छोटे , बड़े , धनी , निर्धन , शिक्षित , अशिक्षित सभी वर्गों में आनन्द की लहर तरंगायित हो उठती ।

तत्कालीन समाज में राष्ट्रीयता के भाव जाग्रत करने के लिये व्यक्तियों में सहज अंकुरित प्रेम वृत्ति को जगाना , युग की आवश्यकता थी । महात्मा गांधी भी उस समय प्रेम और अहिंसा पर जोर दे रहे थे । इस प्रेम की वृत्ति ने माधोर जी को नायिका भेद की प्रवृत्ति और उन्मुख किया । माधोर जी न तो दरबारी कवि थे और न ही रीति कालीन कवि , फिर भी माधोर जी की लेखनी से विशुद्ध नायिका भेद सम्बन्धी छन्द निःसृत हुये । इसका एक मात्र -

कारण यह था कि समाज में परिवर्तन तीव्र गति से हो रहा था । जन जीवन नवीन अंगड़ाई ले रहा था और अन्तर्मन की कला प्रियता राज प्रासादों से निकल कर सर्व सामान्य में व्यापकता ग्रहण कर रही थी । यही प्रवृत्ति जन - कवियों को नायिका भेद की ओर उन्मुख कर रही थी । माहौर जी के समय में कवि गोष्ठियाँ बढ़ीं तथा कवि - सम्मेलनों का रिवाज था । शेर सम्मेलन भी यदा कदा - यदा कदा हुआ करते थे । ऐसे अवसरों पर भी माहौर जी प्रेम - तत्व का ही प्रचार प्रसार करते थे । ऋतु वर्णन के छन्द , राधा कृष्ण लीला विलास के छन्द तथा नायिका भेद के छन्द ऐसे अवसरों पर विशेष रूप से पढ़े जाते थे । नायिका भेद के माध्यम से माहौर जी ने जन -जीवन को आर्द्र बनाया , उसमें प्रेम रस का संचार किया तथा उचित पात्रों को देश - प्रेम की ओर लगाया । तत्कालीन समाज की पुकार भी यही थी ।

महात्मा गाँधी द्वारा संचालित स्वतंत्रता संग्राम के माध्यम थे - प्रेम और अहिंसा । इस कार्य के सम्पादन के लिये महान क्रान्ति की आवश्यकता थी । माहौर जी ने एतदर्थ करुण एवं वीर रस का समावेश एक साथ किया । उनका "दीन का दावा" नामक चार भागों में विभाजित खण्ड काव्य इसका विशिष्ट उदाहरण है । "दीन का दावा" में कवि जन - प्रतिनिधि बन कर ईश्वर के ऊपर दीन जन का दावा करता है । दीन बन्धु के ऊपर दावा करता हुआ दीन जन कहता है -

> यदि कर सकते हो नहीं , दुखी दीन आराम ।
> रखने का क्या हक तुम्हें , दीन बन्धु निज नाम ॥

[illegible] है । दीन ईश्वर के ऊपर दावा करता हुआ अन्ततो-गत्वा अपना दावा जताने में सफल होता है । ईश्वर को दीन के सामने झुकना पड़ता है । क्योंकि भक्त के पास तो गाँधी जी के प्रेम और अहिंसा नामक दो अमोघ अस्त्र हैं । इसी अहिंसा की शक्ति से भारतवासियों ने अंग्रेजों को निकाला स्वतंत्रता संग्राम में विजय प्राप्त की ।

भारतीय समाज में नारी की सदैव ही महान महिमा रही है ।

1:- दीन का दावा - कवीन्द्र माहौर

वैदिक काल में नारियों को विविध बन्धनों से मुक्त माना जाता था वे सर्व - भावेन पूज्या थी । मुस्लिमकाल में स्त्रियों की स्थिति में विविध परिवर्तन किये गये , परदा प्रथा , बाल विवाह , शिक्षा का अभाव इत्यादि कुप्रथायें स्वी - कार की गयीं । अंग्रेजों के समय में आर्थिक शोषण तो हो रहा था लेकिन सामा- जिक बर्बरता में वह पराकाष्ठा न थी जो यवन काल में थी । इस समय भारतीय समाज सुधारक समाज को इन दोषों से मुक्त कराने में प्रयत्नशील हुये , सती प्रथा पर तो वैधानिक प्रतिबन्ध हो गया । स्त्री शिक्षा पर भी जोर दिया गया । उन्होंने पुरुषों के साथ कन्धा मिला कर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया । इस सारे वातावरण का प्रभाव हमारे साहित्यकारों पर पड़ा । माहौर जी भी इससे अछूते न रह सके परन्तु उनकी विशेष बात यह थी कि उन्होंने इति- वृत्तात्मक शैली न अपना कर इसी तथ्य को बड़े ही कलात्मक तरीके से प्रस्तुत किया । माहौर जी ने स्त्री को केवल भोग की सामग्री नहीं अपितु शक्ति का स्वरूप माना और इसी तथ्य को प्रतिपादित करने के लिये "वीरवधू" नामक पुस्तक की संरचना की जिसमें श्रृंगार रस में वीर रस का अद्भुत समावेश है इसमें स्त्री के अंग प्रत्यंग का वर्णन वीर भाव के परिप्रेक्ष्य में किया गया है । रमा- शंकर शुक्ल "रसाल" जी के मत में तो इसमें नायिका के अंग "कनकादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" को चरितार्थ किया गया है । उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि तत्कालीन समय तथा समाज के प्रभाव ने ही माहौर जी को नारियों के आंगिक सौन्दर्य का वीर - रस में वर्णन के लिये प्रेरित किया है । श्रृंगार क्षेत्र में वीर रस की झांकी देखने के लिये माहौर जी की "वीर वधू" के निम्न लि- खित उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

:1: वेणी वर्णन

मृग मद बिन्दु इन्दु आनन पै , भौंहनि बिच मदभारो ।
कुंचित कचावलि धार लसी जनु , धनु राशी पर आरा[3] ।

1:- वीर - वधू की भूमिका - पृ० 3 पेरा 1:एक:

2:- वीर - वधू की भूमिका - पृ० 3 पेरा 2

3:- वीर - वधू की भूमिका - पृ०25 - कवीन्द्र माहौर

:2: उरोज वर्णन

रन आँगन के थुंग थुंग सों , अति उलंक दरसाये ।

रूप - सरोवर के तट मानों, रखवार बैठाये ।[1]

यह पुस्तक नवीन सामाजिक क्रान्ति उत्पन्न करने में "सक्षम" है । "वीर - बाला" लिख कर माहौर जी ने स्त्रियों के साहस तथा शौर्य का वर्णन किया है । स्त्रियों में साहस जाग्रत करने के निमित्त माहौर जी के समसामयिक लगभग सभी कवियों ने महारानी लक्ष्मी बाई को आलम्बन बना कर इसी प्रकार के वीर काव्य की रचना की । माहौर जी के द्वारा रचित "वीर बाला" का एक उदाहरण है जो स्त्रियों के शौर्य एवं साहस का प्रतीक है -

बाजी जीतिबे को करवाला ए निरदा जी आज ,

साजी संग सैन्य राजी कर मैं कृपानी है ।

लाजहि भर अङ्ग की उमङ्ग रन गाजी जब ,

भाजी शत्रु सैन्य जानी प्रान पे बुलानी है ।

मातृरान वीर रस मोति दरसानो दिव्य ,

देख्यो कुल जानी बाजि वाहन भवानी है ।

गंगाधर रानी सो गंगाधर रानी तेरी ,

वीरता की बैसें बैसें अजब कहानी है ।[2]

:3: आर्थिक परिस्थितियाँ :-

प्रत्येक देश की संस्कृति और कला के निर्माण में उस देश की आर्थिक परिस्थितियों का महत्व पूर्ण योग रहता है । अनुकूल आर्थिक परिस्थितियों में कला और कलाकार दोनों ही समृद्धि को प्राप्त होते हैं । ये परिस्थितियाँ "मनुष्य और समाज के मन तथा मनो विज्ञान को आच्छादित और कभी - कभी स्थायी रूप से प्रभा-

---

1:- वीर - बहू की भूमिका - कवीन्द्र माहौर - पृ० 66

2:- वीर बाला - माहौर

त्रित करती हैं[1] ।"

उन्नीसवीं शती में अंग्रेजी शासन की शोषण नीति , दुर्भिक्ष तथा महामारियों के परिणाम स्वरूप देश की आर्थिक स्थिति इतनी क्षीण हो चुकी थी कि पुनरुत्थान काल के कवियों को राजनीति दासता का उतना शोक नहीं था जितना आर्थिक पराभव का । राजनीतिक पराधीनता , धार्मिक संकट आदि विषम परिस्थितियों के साथ देश के आर्थिक ढाँचे का विनाश ही वह तत्व था जिसने भारतेन्दु युग की चेतना को भक्ति कालीन आत्म सन्तोष एवं रीति कालीन सुख विलास से आँख उठाकर जीवन के वास्तविक संघर्ष की ओर दृष्टिपात करने को विवश किया । एक नवम्बर सन 1858 के महारानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र का जनता ने हृदय से इसलिये स्वागत किया कि उसमें सामाजिक न्याय के साथ - साथ देश के आर्थिक विकास के भी संकेत थे[2] । जनता को यह विश्वास होने लगा था कि अंग्रेजी शासन सचमुच जनता का कल्याण करने के लिये भगवान ने दिया है फलस्वरूप भारतेन्दु काल के प्रारम्भिक वर्षों में गहरी राजभक्ति की कवितायें होने लगीं । स्वयं भारतेन्दु ने विक्टोरिया की प्रशंसा करते हुये लिखा -

"तुम पूरी अमी की कटोरिया हो ,
चिरजीवो सदा विक्टोरिया रानी ।"

प्रेमघन ने सन् 1893 में अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा करते हुये लिखा था -

जाकी कृपा प्रभाव गयो भारत को दुर्दिन ।
जब अंग्रेजी राज बसी आयो सुखमय दिन ।।
स्वच्छ भये स्वच्छन्द स्वाद लहि हर्षित हम तन ।
पाय ज्ञान विद्या नव उन्नति उद्यम लगे जन ।।
हरे अनेकन दुष्ट राजा जिन रहे हमारे ।
कंटक और के नये भये जे टरत न टारे[3] ।। "

1:- आधुनिक हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि - डा० भोला नाथ - पृष्ठ - 201

2:- आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका - डा० भगवानदास पाण्डेय- पृ०-15

3:- प्रेमघन सर्वस्व - प्रथम भाग - पृ० - 248

लार्ड रिपन का यश गान भारतेन्दु के रिपनाष्टक काव्य में मिलता है[1]। प्रेमघन ब्रिटिश राज्य की प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली से प्रभावित थे किन्तु उन्हें यह कष्ट कर प्रतीत होता था कि ब्रिटेन की सरकार अपने स्वार्थ के लिये भारतीय शासन सम्बन्धी नीति नियम बनाती थी और वही भारत की भाग्य विधात्री बनी हुयी थी[2]। अंग्रेजी राजभक्ति का एक मात्र कारण यह था कि अंग्रेजों की राज्य प्रणाली उन दोषों से मुक्त थी जिनसे युक्त मुगलों का शासन था। लेकिन शीघ्र ही ब्रिटेन की शोषण नीति का पर्दा - फाश होना प्रारम्भ हो गया। जब भारतीयों ने विदेशों में जाकर वहाँ की आर्थिक तथा शासन व्यवस्था का अवलोकन किया और विश्व के अन्य देशों के सम्मुख भारत को शोषित एवं उत्पीड़ित अवस्था में पाया, तो स्वतन्त्र भारत के गौरव गरिमा की झाँकियाँ उनके नेत्रों के समक्ष साकार होकर घूमने लगीं। शासकों के भयंकर उत्पीड़न को भूल कर वे अंग्रेजों के समक्ष ही भारत की दुर्दशा पर आँसू बहाने लगे।

भारतेन्दु युग वस्तुतः अंग्रेजों की व्यापारिक नीति का युग था। डा० श्री कृष्ण लाल ने इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है -"अंग्रेजी राज्य वस्तुतः व्यापारिक वर्ग का राज्य और इसके फलस्वरूप इस युग में देश वणिक और कृषक वर्ग का प्रभुत्व स्थापित हो गया, जिससे साहित्य में एक नवीन युग का आरम्भ हुआ"। विदेशी पूँजी भारतीय व्यापार पर नाना प्रकार की पाबन्दियाँ लगाकर उसे शोषित करता जा रहा था। विदेशी तैयार माल की खपत और कच्चे माल के निर्यात से जनता की आर्थिक स्थिति बिगड़ती चली जा रही थी। अंग्रेज यहाँ के इस व्यापार का विनाश करने में प्रयत्नशील रहे। इसी लिये उन्होंने भारत के समस्त व्यापार, ग्रामीण उद्योग धन्धों और कला कौशल को इंग्लैण्ड के हित में नियन्त्रित कर लिया[3]। परिणामतः एक मात्र कृषि पर ही भारतीय जन जीवन आधारित रह गया था। कृषि पर भी दैव के प्रकोप से दुर्भिक्ष पड़ गया। "19 वीं शती के उत्तरार्द्ध में दुर्भिक्षों का -

---

1:- भारतेन्दु ग्रन्थावली - दूसरा भाग - पृ- 815

2:- भारतेन्दु ग्रन्थावली - प्रेमघन सर्वस्व - प्रथम भाग - पृ- 249

3:- रत्नाकर की साहित्य साधना - ले० नवबहादुर पाठक - पृ- 28

देखा जाता था कि सहस्त्रों मनुष्यों ने भूख से तड़प कर जानें गवाईं[1] । परन्तु अंग्रेज इससे रंचमात्र भी द्रवीभूत नहीं हुये , प्रत्युत वे अपनी शोषण नीति को उग्रतर ही बनाते गये । व्यापारी वर्ग पर प्रतिवर्ष नए - नए टैक्स बढ़ते चले जा रहे थे । आर्थिक शोषण की तीव्रता के सम्मुख विक्टोरिया के शासन की शान्ति और सुव्यवस्था तथा साधनों के विकास का जनता के लिये कोई अर्थ न था । भारतेन्दु जनता की आर्थिक दुरवस्था को वाणी देते हुये लिखते हैं -

"अंग्रेजी राज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी ।।
ताहू पै महँगी काल रोग विस्तारी ।
दिन 2 दूनो दुख देत हा - हारी ।।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई ।
हा, हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई[2] ।।

धीरे - धीरे जनता में अंग्रेजों के प्रति जो आस्था थी वह समाप्त होती गयी । भारतेन्दु ने अन्तिम वर्षों में अंग्रेज साम्राज्यवादियों की खुल कर निन्दा की -

भीतर-भीतर सब रस चूसै, हँसि हँसि के तन मन धन मूसै ।
जाहिर बातिन मे अति तेज, क्यों सखि सज्जन नहिं अंग्रेज ।।

राष्ट्रकवि डा० मैथिली शरण गुप्त ने "भारत - भारती" सन् 1912 लिख कर नई राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न कर दी । इसके प्रारंभ में ही कवि ने कहा है -

हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी ।
आओ विचारें आज मिल कर यह समस्यायें सभी[3] ।।

गुप्त जी ने अतीत के वैभव तथा वर्तमान की शोचनीय विपन्नता का चित्रण किया है । भारतेन्दु जी के आविर्भाव काल में भारत बड़ी विपन्नावस्था में था । भारतेन्दु जी के समक्ष एक दीन - हीन , असहाय एवं उत्पीड़ित भारत का चित्र

1:- द हिस्ट्री ऑफ माडर्न इण्डिया- डा० ईश्वरी प्रसाद - पृ- 301-2

2:- भारत दुर्दशा :सं.1937:- भारतेन्दु नाटकावली -पृ-458

3:- भारत भारती मैथिली शरण गुप्त - सन् 1912

जितने गिर जायेंगे दीन के आंसू

उतने वर वीर जवाहर से ,

पल में प्रगटायेंगे दीन के आंसू[1]।।

माहौर जी की भविष्यवाणी सत्य ही फली भूतसिद्ध हुयी परतन्त्रता के युग में भारत में महात्मा गांधी , जवाहर लाल नेहरू , दयानन्द सरस्वती , राम- कृष्ण परमहंस इत्यादि अनेक महान विभूतियों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने युग परिवर्तन कर भारत को स्वतंत्र कराने में सराहनीय कार्य किया ।

"गोरी चोरी" नामक अपनी पुस्तक में भी माहौर जी ने भारत की आर्थिक दुर्दशा का चित्र खींचते हुये अंग्रेजों को ही भारत की आर्थिक विपन्नता का कारण बतलाया है । वे कहते हैं -

"छीन लिये छलिनी छल से ,

नव रत्नन के भरे कोष करोरी ।

देन लगी दुख दीन - दरार ,

करोर गये सुख भोग मरोरी[2]।

प्रस्तुत पुस्तक में माहौर जी ने व्यंग्योक्ति के माध्यम से बताया दिया है कि अंग्रेज यहां व्यापारी के वेश में आये और यहां के शासक को वश में कर लिया । शनैः शनैः इन गोरों ने भारत की स्वतंत्रता रूपी निधि की चोरी कर ली । यथा :-

व्यापारि के आई रही जब तू ,

तब देखने में रही सूरत की भोरी ।

प्रीतम को वश में करिके ,

करिके लगी हाय महा बरजोरी ।

चोरी करी है स्वतंत्रता की ,

अब चोरी प्रतीत भई सठ गोरी ।

1:- दीन के आंसू - नाथूराम माहौर
गोरी चोरी - नाथूराम माहौर - छन्द सं. 5

भार के भूषन भूषित देह , अभङ्ग अधीनता बसन साजत ।।

देखत दूसरी देह दशा उपमा मजनू के शरीर की लाजत ।

देखो "स्वराज" में राजा किसान के पेट में भूख की नौबत बाजत ।।

मजदूरों की दुर्दशा देख कर उन्होंने कहा था -

"भूलो इनको कभी देना नहीं , मजदूर ही है देश के दीपक ।"

:4: धार्मिक परिस्थितियाँ :-

राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों की भांति धार्मिक परिस्थितियों से भी उन्नीसवीं शताब्दी कम संक्रमणशील नहीं रही । इस शती में भी हिन्दू समाज के बीच अनेक धार्मिक उत्थान पतन के दृश्य उपस्थित हुये । धार्मिक अंध - विश्वासों तथा बाह्य आडम्बरों से समाज जकड़ा हुआ था धर्म के नाम पर अनेक पाप एवं अत्याचार हो रहे थे । धर्म में लोगों की निष्ठा कम हो चली थी और लोग बाहरी तत्वों से प्रभावित हो रहे थे । सात्विक उपासना से लोग उत्तरोत्तर दूर होते जा रहे थे । धर्म का वास्तविक स्वरूप विलुप्त होता जा रहा था । सती प्रथा , बाल विवाह आदि कुरीतियां समाज में प्रचलित थी , उनकी सम्पन्नता में ही समाज की अक्षय धर्म व्यवस्था का अस्तित्व सुरक्षित समझा जाता था । हिन्दू जाति के समक्ष कोई उत्कृष्ट धार्मिक आदर्श नहीं था ऐसे समय में कुछ सुधार वादी समाज चिन्तकों , एवं मनीषियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने समाज में फैलते हुये विष को तत्काल रोकने के लिये आवश्यक कदम उठाये ।

आर्य समाज , ब्रह्म समाज , रामकृष्ण मिशन , थियोसोफिकल सो- सायटी इत्यादि संस्थायें इस दिशा में विशेष रूप से प्रयत्न शील रहीं । ब्राह्म- समाज ने सामूहिक प्रार्थना , संगीत , उपदेश आदि पर जोर दिया , मूर्ति पूजा का विरोध किया तथा सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता का भाव रखने का आग्रह किया । आर्य समाज संस्था ने भी धार्मिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी सुधार किये । इसने वेदानुकूल धार्मिक अनुष्ठान एवं शिक्षा अस्पृश्यता निवारण की व्यवस्था की । थियोसोफिकल सोसायटी ने बताया कि सब धर्मों का मूल एक है।

अतः धार्मिक भेद - भाव का विरोध करते हुये धार्मिक सहिष्णुता का आदेश दिया । ईश्वर में विश्वास व धार्मिक समन्वय पर बल दिया । स्वामी राम-तीर्थ ने भी देश भ्रमण करके स्थान - स्थान पर सत्य , ज्ञान , सच्चरित्रता , एक परमात्मा में विश्वास का प्रचार किया । इसी समय गांधी जी ने भी धार्मिक विशालता का दृष्टिकोण जनता के सम्मुख रखा । उनका विश्वास था कि राजनीतिक परतंत्रता से मुक्त होने के लिये एक स्वतंत्र एवं स्वस्थ समाज का होना अत्यन्त आवश्यक है । गांधी जी ने धार्मिक भेद - भाव पर होने वाले अत्याचार एवं दंगों पर क्षोभ प्रकट किया और जनता को बतलाया कि मानव एक ही परमात्मा की सन्तान है । धर्म सम्बन्धी उनके दृष्टि कोण का यह सार था कि धर्म मनुष्य में मनुष्यता का विकास करता हुआ उसे आत्म - साक्षात्कार की स्थिति को प्राप्त कराता है । धर्म मनुष्य को आत्ममोह से मुक्त करता है और जगत को मात्र कर्म क्षेत्र का बोध कराते हुये मनुष्य में अनासक्ति भाव सुदृढ़ करता है[1] । इस समय तक तीर्थों , व्रतों , पर्वतों तथा नदियों में भी धार्मिक भावनाओं का आरोप किया जा चुका था । गोवर्धन पर्वत को तो श्री मद् भागवत के अनुसार देव स्वरूप माना जा रहा था । हिमालय को देवात्मा कहा जा चुका था[2] ।

माहौर जी अपने समय की धार्मिक परिस्थिति से अप्रभावित नहीं रहे । जन मानस की श्रद्धा के अनुकूल माहौर जी ने धार्मिक भावना से मनाये जाने वाले त्यौहारों के अवसर पर जो छन्द लिखे वे जनता की धार्मिक भावना का प्रदर्शन करते हैं । श्री कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर बुन्देलखण्ड में मन्दिरों में सप्ताह पर्यन्त भिन्न - भिन्न झाँकियाँ सजाई जाती हैं , वहाँ संगीत , कीर्तन तथा कवि गोष्ठियों के आयोजन होते रहते हैं । ऐसे ही एक अवसर पर माहौर जी ने जो समस्या पूर्ति सम्बन्धी छन्द लिखे उसमें भी कृष्ण के प्रति वात्सल्य भाव तथा ईश्वर भक्ति की प्रवृत्ति जाग्रत करने का उत्कृष्ट वर्णन है एक छन्द का उदाहरण निम्नलिखित है :-

"सुक सनकादि सेस सारदा गनेस जाकी ,

---

1 :- रत्नाकर की साहित्य साधना - दान बहादुर पाठक - पृ०- 27

2 :- अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः - कुमार सम्भव :कालिदास :

नवमी नवीन नव निधियां भरावे भौन,

दशमी विजै की वर विजय कियो करे[1]।

उस समय प्रचलित भक्ति भावना का भी प्रभाव माहौर जी के ऊपर पड़ा। रामभक्ति धारा का मर्यादित जीवन उनके साहित्य का उषा काल था। प्रारम्भ में राम-लीला अभिनय में गीतों के रूप में उन्होंने रामचरित्र का वर्णन किया। स्वयं उन्होंने रामलीला में अभिनय भी किया। ख्यालों तथा पद साहित्य में भी राम चरित सम्बन्धी वर्णन भी माहौर जी द्वारा लिखे गये हैं। माहौर जी ने खण्ड काव्य अथवा महा काव्य के रूप में राम कथा नहीं प्रस्तुत की लेकिन स्फुट छन्दों में उन्होंने राम कथा का मार्मिक तथा कलात्मक वर्णन किया है। हनुमान के आंसू शीर्षक से कतिपय स्फुट छन्द उन्होंने लिखे जिसमें करुण रस का हृदय स्पर्शी परिपाक हुआ है -

"विरहा कुल सीय की दीन दशा लखि हाय कही मुख सों दुख भीनी,
हनुमन्त की ग्रीवा झुकी [illegible] की कर लै [illegible] की जानी प्रवीनी ॥
अखियान ते धार में सोक भयौ उमड़ान सौ ज्यापी राम भरि लीनी,
करुनाकुल लेखिनी सौं भरि पत्र पै सोक व्यथा की कथा लिख दीनी[2] ॥

राम कथा के पश्चात माहौर जी का ध्यान कृष्ण की माधुर्य - भरी लीला की ओर आकृष्ट हुआ। माहौर जी ने भगवान कृष्ण को आलम्बन रूप में प्रस्तुत कर मधुरा भक्ति का प्रचार एवं प्रसार ही नहीं किया अपितु उद्धव - गोपी संवाद के छन्द लिख कर ज्ञान तथा भक्ति की गरिमा का भी बखान किया। माहौर जी ने कृष्ण के भक्ति निरूपक छन्द - कृष्ण सागर - सूर सुधा निधि तथा "द्रौपदी - दुकूल - पचीसी" भी लिखे।

माहौर जी गांधी जी की "अहिंसा व्रत" की भावना से अत्यधिक प्रभावित थे। इसी भावना से आश्रय होने पर व्यक्ति के अन्दर दया भाव तथा दीनों के प्रति सहानुभूति के भाव उत्पन्न होते हैं माहौर जी ने आगे -

---

1:- माहौर अभिनन्दन ग्रन्थ तृतीय खण्ड पृ०-11-कवीन्द्र माहौर-स्फुट छन्द

2:- हनुमान के आंसू - अप्रकाशित - स्फुट छन्द - कवीन्द्र नाथूराम माहौर

कवित्त द्वारा जनता को उपदेश दिया कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मनोवृत्ति को अन्तर्मुखी करना चाहिये और अजपा - जाप कर वास्तविक अमृत - रस का पान करते रहना चाहिये । इससे महातृप्ति का भाव जागृत होगा और सहज ही वैराग्य भूमिका उत्पन्न होगी ऐसी वृत्ति के उदय होने पर धन के व्यय में धर्म होगा और तब समाज में वास्तविक कर्त्तव्य परायणता परिव्याप्त होगी । इसी प्रकार व्यक्ति को उद्बोधन करने वाले अनेक वैराग्य परक धार्मिक छन्द माहौर जी ने लिखे ।

अन्ध विश्वास को लक्ष्य बनाकर अनेक अल्पज्ञों ने हिन्दू धर्म को संकीर्ण बतलाया । माहौर जी ने खण्डन - मण्डन की बात न कर अपनी बात को कलात्मक तरीके से कह कर उद्घोष किया कि अन्ध विश्वास को माध्यम बनाकर हिन्दू धर्म को हेय बताना , तर्क से ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयास , एक उन्माद है । माहौर जी हिन्दू धर्म में प्रेम और भक्ति को प्रधानता देते हैं । विश्व का कोई धर्म नहीं जिसमें प्रेम और भक्ति न हो । प्रेम उनके युग की आवश्यकता थी । महात्मा गांधी ने भी प्रेम पर अत्यधिक बल दिया था । माहौर जी प्रेम की व्याख्या करते हुये कहते हैं -

"प्रेम नेम के बीच में , अन्तर बहुत दिखात ।
प्रेम मिलावत राम सों , नेम भगावत गात ।।
कहाँ कहाँ लौं प्रेम की गौरवें लिखत बखान ।
माहुर को अमल करत प्रेम निवास महान ।।"

माहौर जी के "मीरा के आँसू" नामक छन्द भी उनकी प्रेम भक्ति के परिचायक हैं । भक्ति के क्षेत्र में वे राम , कृष्ण और शिव को ईश्वर स्वरूप मानते हुये उनका स्तवन गान करते हैं । गणेश , लक्ष्मी , सरस्वती के प्रति भी उनकी भक्ति है , वे सभी की वन्दना करते हैं तथा सभी की भक्ति को भवतारिणी मानते हैं । इस प्रकार माहौर जी की अद्वैतवाद में आस्था है परन्तु वह - द्वैतवाद के नाम पर उलझना उन्हें अनिष्ट प्रतीत होता है ।

बुन्देलखण्ड में तुलसी के मानस की मान्यता वेद पुराणों के तुल्य थी ।

1:- शान्ति सागर - नाथूराम माहौर - पृ- 17-18

माहौर जी भी मानस के प्रशंसक थे। रामायण की महिमा का बखान करते हुये माहौर जी कहते हैं -

> सत है सुधा का बसुधा को है अपार सुख,
>
> पार करिबो का भव नौका अनुसार है।
>
> \+ + + +
>
> बाल चिन्त गायन में सोभा सरसायन में,
>
> राम गुन गायन में रामायन सार है[1]।

तीर्थों के प्रति श्रद्धा का परिचायक उनका हरिद्वार शतक में लिखा गया निम्न छन्द है -

> पापिन को तार तार देत करतार स्वार,
>
> भार सब न्हावन को देवी हर द्वार है[2]।

इसी प्रकार से अन्य छन्दों से प्रमाणित है कि माहौर जी अपनी युगीन धार्मिक परिस्थितियों से प्रभावित थे तथा हिन्दू धर्म के कट्टर पोषक थे।

:5: साहित्यिक परिस्थितियाँ :-

आधुनिक काल से पूर्व रीतिकाल में साहित्य श्रृंगार और दरबारी तथा विलास में लिप्त था। इसका ध्येय नायक और नायिका के सौन्दर्य और विलास तक ही केन्द्रित था। क्योंकि इस काल के साहित्यकारों की लेखनी प्रायः उनके आश्रय दाता राजाओं के अधीन थी। भक्ति काल और रीति काल का अधिकांश साहित्य राजकीय महत्वाकांक्षा तथा आश्रय दाता की रुचि को ध्यान में रख कर लिखा गया[3]। इसलिये रीति काल में साहित्य का बहुमुखी विकास नहीं हो सका। इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं - "प्रकृति की अनेक रूपता, जीवन की भिन्न - भिन्न चिन्त्य बातों तथा जगत के नाना रहस्यों की ओर कवियों-

---

1:- माहौर अभि० ग्रन्थ तृतीय खण्ड - पृ० - 4

2:- शान्ति सागर - नाथूराम माहौर - पृ० - 13

3:- हि०साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ-डा०शिवकुमार शर्मा-पृ०-416

की दृष्टि नहीं जाने पाती । वह एक प्रकार से बद्ध और परिमित सी हो गयी । उसका क्षेत्र संकुचित हो गया । वाग्धारा बँधी हुयी नालियों में प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रस-सिक्त होकर सामने आने से रह गये । कवियों की व्यक्तिगत विशेषता की भी अभिव्यक्ति का अवसर बहुत ही कम रह गया[1]। इस प्रकार रीतिकाल का साहित्य "सत्यं, शिवं, सुन्दरम्" की भावना से पृथक हो चुका था । आगे चल कर :आधुनिक काल में : धीरे - धीरे युग की परिस्थितियों के साथ कवियों की मान्यतायें बदलीं । 1857 की क्रान्ति के पश्चात मुगल साम्राज्य का पूर्ण रूप से पतन तथा ब्रिटिश शासन के विकास के साथ ही कवियों के राज्याश्रय समाप्त होने लगे । 'कवि राजाओं के विलास को छोड़कर जनता के सम्पर्क में आने लगे और जन साहित्य का प्रणयन प्रारम्भ हुआ[2]।" अंग्रेजों के पूर्व साहित्य प्राय: पद्यात्मक था । भाषा का माध्यम ब्रज, स्थानीय बोलियाँ या उर्दू भाषा थी । अंग्रेजों ने आकर अंग्रेजी भाषा का प्रचार किया । अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन एवं प्रेरणा से भारतीयों को अपनी पराधीनता खटकने लगी और हिन्दी कविता में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उत्साह, साहस तथा राष्ट्रीय विचार की भावना को [illegible] प्रकट होने लगा ।

इसी समय साहित्य के क्षेत्र में भारतेन्दु का आविर्भाव हुआ । भारतीय इतिहास में सम्वत् 1922 से 1960 :सन् 1868 से 1903 : तक के काल को "नव चेतना का युग" कह सकते हैं । हिन्दी साहित्य के इतिहास में इसी को "भारतेन्दु युग" नाम दिया जाता है[3] । सन् 185[illegible] से 1900 तक का समय भारतेन्दु युग और उसकी पृष्ठभूमि के रूप में ग्रहण किया जा सकता है[4] । आलोचकों ने हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल को तीन युगों में विभाजित किया -

---

1:- हिन्दी साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल :2006 वि0: पृ0 - 237

2:- "प्रताप नारायण मिश्र"- जीवन और साहित्य - डा0 सुरेश चन्द्र शुक्ल - पृ0 - 127

3:- हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ- डा0 जगदीश नारायण त्रिपाठी- पृ0-119

4:- रत्नाकर और उनका काव्य - उषा जायसवाल - पृ0 - 41

है - भारतेन्दु युग , द्विवेदी युग , तथा छायावादी युग ।

भारतेन्दु युग का सूत्रपात भारतेन्दु के आविर्भाव के साथ होता है । भारतेन्दु जी ने साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति की । कविता के अन्तरंग और बहिरंग दोनों पक्षों में नये - नये प्रयोग हुये । इस युग के साहित्यकार अतीत और वर्तमान को साथ लेकर चले । अतीत परम्परा में एक ओर कबीर , सूर और तुलसी के अनुकरण पर उपदेशात्मक एवं भक्ति पूर्ण रचनायें हुयी तो दूसरी ओर बिहारी और मतिराम के अनुकरण पर श्रृंगार परक रचनायें की गयी[1]। इस प्रकार भारतेन्दु युग का कवि जहाँ एक ओर प्राचीनता का प्रेमी है , वहाँ वे दूसरी ओर अर्वाचीनता का सूत्रधार भी[2] । इस युग के साहित्यकारों में राष्ट्र - प्रेम प्रमुख रूप से विद्यमान था इससे नये - नये भावों और विचारों को साहित्य में स्थान मिला । भारतेन्दु युगीन कवि तत्कालीन समस्याओं के प्रति जागरूक थे । इस युग में प्राचीन जीवन का सम्मिलन , देश - प्रेम , समाज सेवा आदि भावनायें प्राप्त होती हैं । सामाजिक रचनाओं के अतिरिक्त उनकी प्रेम और श्रृंगार की रचनायें अनुभूति की तीव्रता में सरस हैं[3] । इस युग का साहित्य यथार्थ को लेकर चलने वाला मानवता वादी साहित्य है । इसमें आर्थिक शोषण , समाज की कुरीतियाँ , अन्ध विश्वासों आदि के सजीव चित्र प्रस्तुत होते थे ।

भारतेन्दु काल में कविता के क्षेत्र में ब्रजभाषा का प्रयोग किया और गद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली व्यवहृत हुयी । इस युग से पूर्व भी कवितायें ब्रजभाषा में ही लिखी जाती थी अतः भाषा के क्षेत्र में प्राचीन परिपाटी का ही अनुसरण हुआ । "विषय की दृष्टि से भारतेन्दु जी की कविता बहुत आगे बढ़ गयी पर तु पूर्ववर्ती रीतिकालीन काव्य का काव्य - आदर्श न आ सका[4] ।" कला की दृष्टि से रीतिकालीन पद शैली में कवित्त , सवैया , छप्पय , -

---

1:- प्रताप नारायण मिश्र - जीवन और साहित्य - डा० सुरेश चन्द्र शुक्ल - पृ० - 133

2:- हिन्दी साहित्य - युग और प्रवृत्तियाँ - डा० शिवकुमार शर्मा - पृ०-423

3:- प्रसाद का काव्य - डा० प्रेम शंकर - पृ०- 9

4:- आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास-डा० लक्ष्मी सागर - पृ० - 12

दोहा , चौपाई आदि का प्रयोग मिलता है । समस्यापूर्ति इस युग की एक विशेष कला थी । .... शृंगार और हास्य प्रचुर मात्रा में - मिलते हैं[1] ।

भारतेन्दु युग में जिन साहित्य रूपों और प्रवृत्तियों का बीज - वपन हुआ आगे चलकर द्विवेदी काल में वे पल्लवित एवं पुष्पित हुयीं । इस युग में साहित्य की नाना विधाओं ने अनेक नवीन विषयों का ग्रहण और विवेचन किया । इस युग की सम्पूर्ण साहित्य चेतना के सूत्रधार प्रस्तुत युग के प्रधान पुरुष पं० महावीर द्विवेदी प्रसाद थे । उन्होंने गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करके ब्रज और खड़ी बोली सम्बन्धी भाषा - विवाद का अन्त कर दिया । इससे गद्य तथा पद्य की भाषा तो एक हो गयी परन्तु अधि-कांश कवितायें अत्यन्त नीरस एवं सौन्दर्य हीन लिखी गयीं । उनमें कल्पना तथा सांकेतिकता का सर्वथा अभाव हो गया और इतिवृत्तात्मक एवं आलोचनात्मक प्रवृत्ति के अपनाने के कारण कल्पना की अपेक्षा बौद्धिकता की बाढ़ आ गयी । काव्य भाषा में परिवर्तन के कारण द्विवेदी युग के प्रथम दशक में स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त किसी महत्व पूर्ण कृति का निर्माण नहीं हो सका[2] । इतना अवश्य है कि भारतेन्दु काल की अपेक्षा इस काल में आकर काव्य विषय में पर्याप्त परि-वर्तन हुआ । भारतेन्दु कालीन निराश मनोवृत्ति भी दूर हो गयी और उसके स्थान पर कविताओं में आत्मविश्वास एवं दृढ़ता का स्वर गुंजायमान होने लगा । इस काल की कविता में रीतिकाल के शृंगार की ओर प्रतिक्रिया हुयी और इतिवृत्तात्मकता ने साम्राज्य स्थापित कर लिया । काव्य क्षेत्र में द्विवेदी युग के कवि किसी वाद में बंध कर नहीं रहे , यद्यपि सुधार वादी आन्दोलन का उनकी विचार धारा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा । इस समय सबसे बड़ा परि-वर्तन यह हुआ कि अभी तक हिन्दी कवि प्राचीन काव्य परिपाटी को ही अप-नाये हुये थे । रीतिकालीन तथा भारतेन्दु कालीन युग , छन्द व अलंकार ही प्रयुक्त किये जा रहे थे परन्तु अब द्विवेदी युग में आकर कवित्त , सवैये , घनाक्षरी दोहे सोरठे आदि के स्थान पर संस्कृत वर्णिक छन्दों तथा नये - नये

1:- रत्नाकर और उनका काव्य - उषा जायसवाल - पृ० - 43

2:- युग कवि प्रसाद - डा० गणेश खरे - पृ० - 28

स्वनिर्मित एवं यत्किंचित परिवर्तित छन्दों का प्रयोग होने लगा । स्वयं द्वि - वेदी जी ने भी संस्कृत के वृन्तों में कवितायें लिखकर हिन्दी कवियों को नवीनता की ओर मोड़ने का प्रयत्न किया था । .... काव्य में लक्षणा तथा व्यञ्जना की अपेक्षा अभिधा का ही प्राधान्य रहा[1] । द्विवेदी युग के अन्त तक गुप्त जी जैसे कवियों के प्रयत्नों के फलस्वरूप कविता के क्षेत्र में संस्कृत गर्भित अ- लंकृत शैली के स्थान पर प्रतीकात्मक नवीन अभिव्यञ्जना शैली का आदर होने लगा । .... वस्तुत: द्विवेदी युग की काव्य शैली प्रारम्भ में वाच्य प्रधान वर्णनात्मक ही रही , किन्तु अन्त में वह लक्षणा - प्रधान और प्रतीकात्मक बन गयी[2] ।

काव्य में पौराणिक कथा , प्रेम , उपदेशात्मकता , नैतिकता तथा देश भक्ति की भावना का प्राधान्य था । भारतेन्दु जी की देश भक्ति का विकसित रूप इस युग में देखने को मिलता है कवियों की मनोवृत्ति देश - प्रेम , समाज सेवा तथा संस्कृत प्रेम की ओर झुक रही थी । ईश्वर के अलौकिक रूप को लौकिक एवं मानवीय रूप देकर मानव जीवन के साथ सम्बन्ध करने का प्रयास हो रहा था । द्विवेदी युग के काव्य में वही अतीत गौरव के चित्रण और हिन्दू गुणगान की प्रवृत्तियां परिलक्षित होती हैं जिससे तत्कालीन जनता का हृदय आन्दोलित हो रहा था[3] ।"

द्विवेदी युग का काव्य इतिवृत्तात्मक था । प्रेम और शृंगार दूषित होता जा रहा था और शुष्क इति वृत्तात्मकता पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी । अत: काव्य कला के क्षेत्र में द्विवेदी युग की काव्य - धारा के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुयी , उसके अभिधा प्रयोग के विरुद्ध लक्षणा और व्यञ्जना का प्रयोग हुआ[4] । परिणाम स्वरूप एक नये युग का भी गणेश हुआ , जिसे छायावादी युग के नाम से अभिहित किया गया । इस युग का आरम्भ प्रथम विश्व - युद्ध :सन् 1914 : से माना जाता है । इस युग में आकर स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति को

1:- साकेत में काव्य,संस्कृति और दर्शन- डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना-पृ0- 44

2:- हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियां- डा० गोविन्दराम शर्मा-पृ0494

3:- आधुनिक ~~हिन्दी~~ काव्य धारा का सांस्कृतिक स्रोत-डा॰केसरीनारायण शुक्ल-पृ॰139

4:- हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ- श्री जयकिशन प्रसाद - पृ॰ - 212

को प्रोत्साहन मिला । इस स्वच्छन्द मनोवृत्ति के आधार पर की गई रचनाओं में शुद्ध एवं स्वस्थ शृंगार पूर्ण प्रगति - मुक्तकों की प्रधानता हो गई[1] । इस युग में विषय - प्रधान की अपेक्षा आत्म - प्रधान साहित्य की रचना अधिकांशतः हुयी ।

छाया वाद के पश्चात साहित्य ने एक नया मोड़ लेना आरम्भ किया । सन् 1936 से एक ऐसे जन वादी साहित्य की रचना आरम्भ हुयी जिसमें मजदूर, किसान आदि साधारण मानव की भावनाओं को अभिव्यक्त किया जाने लगा, साम्राज्यवाद एवं पूजी वाद का विरोध हुआ । इस साहित्य में सर्वहारा वर्ग की असीम शक्ति को संगठित करने का प्रयास किया गया । वास्तव में यह विचार धारा साहित्यिक की अपेक्षा राजनीतिक अधिक थी । आगे चल कर इसके दो वर्ग हो गये । पहला वर्ग तो राजनीति में ही अधिक रुचि रखने वाले साहित्यकारों का बना रहा , जो प्रगतिवादी साहित्यकार कहलाये । दूसरा वर्ग राजनीति को छोड़कर समस्त सभी समस्याओं का समाधान शुद्ध साहित्यिक धरातल पर करने लगा यह वर्ग प्रयोगवादी साहित्यकारों का बना । प्रगति वादी विचारकों ने छायावादी कविता को एक नया मोड़ देने में महत्व पूर्ण योग दिया था किन्तु अपने आपको राजनीतिक प्रचार तक सीमित रखने के कारण महत्व पूर्ण काव्य रचनायें हिन्दी साहित्य को न दे सके[2] । प्रयोग का भी गणेश मुख्य रूप से सन् 1943 में प्रथम तार सप्तक के प्रकाशन के साथ हुआ । तार सप्तक की भूमिका में अज्ञेय जी प्रयोगवादी कविता का पक्ष समर्थन करते हुये लिखते हैं-" प्रयोग शील कविता में नये सत्यों या नई यथार्थताओं का जीवित बोध भी है , उन सत्यों के साथ नये रागात्मक सम्बन्ध भी और उनको पाठक या सहृदय तक पहुंचाने यानी साधारणीकरण करने की शक्ति है । प्रयोग वादी कविता में विशृंखलता एवं उच्छृंखलता भी पर्याप्त मात्रा में बनी रही । इसमें भावहीन , बुद्धि बोझिल कथनों की भरमार रही । ये तथ्य कथन कभी खण्डित होते , कभी अखण्डित , कभी तुकबन्दी में बंधे होते तो कभी -

---

1:- साकेत में काव्य-संस्कृत और दर्शन-डा० द्वारका प्रसाद माहेश्वरी- पृ०-45

2:- आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका - डा० शम्भुनाथ पाण्डेय-पृ०-288

वे सूखे भटकते फिरते[1] ।

उपर्युक्त विवेचन हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की प्रवृत्तियों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराता है । हम देखते हैं कि हिन्दी काव्य धारा ने विभिन्न मोड़ लिये , उसमें अनेक बदलती हुयी भावनाओं का समावेश हुआ है , अनेक विचारों ने उसके परम्परागत स्वरूप को भी परिवर्तित किया है ।

गाडौर जी के काव्य प्रणयन काल में हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की समस्त विधायें प्रचलित थीं । जिस समय :सन् 1903: गाडौर जी ने काव्य क्षेत्र में पदार्पण किया वह समय हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु युग की इति श्री का समय था तथा द्विवेदी युग का भी श्री गणेश "सरस्वती पत्रिका" :सन् 1903 : के सम्पादन के साथ हो चुका था यह समय भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग का सन्धिकाल था क्यों कि भारतेन्दु युगीन प्रवृत्तियों का समापन पूर्ण रूपेण नहीं हुआ था और द्विवेदी युग भी शैशव अवस्था में था । गाडौर जी प्राचीन काव्य शैली के समर्थक थे । उन्हें काव्य की प्राचीन परिपाटी से हट कर चलना रुचिकर नहीं था । उनकी काव्य साधना रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियों से प्रभावित थी । यद्यपि आधुनिक काल अभिनव चेतना , नवीन परम्पराओं एवं नव्य प्रवृत्तियों का युग है , किन्तु आधुनिक काल के प्रारम्भ में विशेष रूप से काव्य पूर्व वर्ती श्रृंगार काल के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाया था । अतः आधुनिक काल के प्रारम्भ में अधिकांश पुराने विषयों जैसे बारह मासा , नख - शिख , नायिका भेद आदि को ही लेकर काव्य रचना करते रहे । यद्यपि आधुनिक काल के प्रारम्भिक कवियों के मस्तिष्क में नवीन परिस्थितियों के कारण नए विचार आने लगे थे , किन्तु कविता के क्षेत्र में प्राचीन काव्य परम्परा का ही अनुगमन होता रहा[2] । काव्य - क्षेत्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्राचीन काव्य परम्परा से सम्बन्ध बनाये रखने के साथ ही उसमें नवीन गति का प्रवर्तन किया । उन्होंने अपने युग की कविता में देश की आर्थिक , सामाजिक , सांस्कृतिक , राजनीतिक आदि समस्याओं -

---

1:- ~~समालोचक, नवम्बर 1958 पृ०-5 :आगरा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका~~ : हरि - सप्तक - भाग - १ - रश्मिका

2:- हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ - डा० जगदीश त्रिपाठी - पृ० - 113

समावेश किया ।

माहौर जी का रचनाकाल यद्यपि "द्विवेदी - युग" से आरम्भ होता है लेकिन उनके ऊपर द्विवेदी युग की छाप नहीं पड़ी । इसके आगे आने वाले छायावादी एवं रहस्यवादी प्रवृत्तियों की ओर भी माहौर जी का आकर्षण नहीं था । क्योंकि व इन सब तथ्यों से अभिज्ञ थे । माहौर जी के काव्य विषय यद्यपि नवीन थे , उनमें राजनीतिक , सामाजिक , आर्थिक आदि समस्याओं का समावेश था , फिर भी काव्य का कलेवर रीतिकालीन ही था । काव्य परम्परा उनकी रीतिकालीन ही थी । रीति कालीन कलेवर में माहौर जी ने अपने काव्य में युग के सन्देश को अभिव्यक्ति नवीन ढंग से की ।

द्विवेदी युग में यद्यपि ब्रज भाषा का अस्तित्व समाप्त हो चुका था उसका स्थान खड़ी बोली ले चुकी थी । परन्तु माहौर जी ने अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम ब्रज भाषा को ही बनाया । ब्रज भाषा के पक्ष समर्थन में रत्नाकर ने कहा था -" जब खड़ी बोली के पक्षपाती कवियों को अपने प्राचीन साहित्य अर्थात ब्रज भाषा की उपेक्षा करते उस दीन - हीन तथा सर्वथा दूषित बताते हुये देखता हू तो मुझे आन्तरिक व्यथा होती है । ..... आज प्राचीन साहित्य में ऐसे ऐसे ग्रन्थ विद्यमान हैं जो हिन्दी साहित्य के ही नहीं प्रत्युत वाङ्मय मात्र के भूषण कहे जा सकते हैं[1] । "ब्रज भाषा में जो रस , जो लालित्य , जो सौन्दर्य , जो माधुर्य है वह खड़ी बोली को अभी तक प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ[2] ।" प्रताप नारायण मिश्र ने ब्रज भाषा को कंचन और खड़ी बोली को "घास" बताया है । राधाचरण गोस्वामी ने ब्रज भाषा की सराहना करते हुये लिखा -"ब्रज भाषा से इतने बड़े रत्न भण्डार को छोड़कर नव कंकर - पत्थर चुनना हिन्दी के लिये कुसौभाग्य की बात नहीं वरन् बस ब्रज भाषा के भण्डार को निकाल देने से -

---

1:- रत्नाकर और उनकी साहित्य साधना -दान बहादुर पाठक-पृ०- 33

2:- प्रताप की कवितायें - सुधाकर पाण्डेय - पृ० - 33

हिन्दी में क्या गौरव की सामग्री रह जायेगी[1] । माहौर जी में यह विशेषता रही कि उन्होंने ब्रज भाषा की कोमल वाणी को पल्लवित पुष्पित तथा फलवती बनाने में तन , मन अर्पित कर आजीवन सेवा की । ब्रज भाषा से उन्हें स्वाभाविक प्रेम था , यही कारण है कि उनकी मुख्य भाषा ब्रज भाषा ही रही , परन्तु उन्हें परहेज खड़ी बोली से भी न था , आवश्यकतानुसार उन्होंने खड़ी बोली में भी साहित्य लिखापरन्तु सम्भवत: खड़ी बोली में काव्य - प्रणयन उन्हें इसलिये अधिक आकर्षित नहीं कर पाया कि खड़ी बोली काव्य क्षेत्र में वादों के प्रति जो आग्रह या दुराग्रह विकसित हो रहा था वे उनमें से किसी के साथ अपने को जोड़ने में असमर्थ पाते थे[2] ।

माहौर जी केवल प्राचीन परम्परा से ही बंध कर चल दी ऐसी बात नहीं । वे एक मौलिक विचारक भावुक भक्त तथा भारतीय संस्कृति के उपासक थे यही कारण है कि किसी पक्ष , वाद या दल के बन्धन में न रह कर भी आपने जन हित एवं सत्य के पक्ष का सदा निर्भीक समर्थन किया[3] । समय के अनुकूल माहौर जी ने अन्य साहित्यकारों की भांति देश , राष्ट्र तथा समाज को अपनी कविता का वर्ण्य विषय बनाया । द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियों की वास्तविकताको तथा आवश्यकताओं को तो माहौर जी ने ग्रहण किया लेकिन काव्य कला के स्वरूप को विकृत करने वाली प्रवृत्ति के पक्ष का समर्थन उन्हें स्वीकार नहीं हुआ । द्विवेदी जी ने इतिवृत्तात्मकता पौराणिक कथाओं से , प्रेम तथा उपदेश , शृंगार रस से घृणा तथा नैतिकता की ओर झुकाव पर अत्यधिक बल दिया था । माहौर जी को काव्य में इति वृत्तात्मकता की प्रवृत्ति पसन्द नहीं । वे जो भी कहना चाहते हैं कला पूर्ण ढंग से कहते हैं । माहौर जी ने पौराणिक कथाओं[4] को तो अपनाया परन्तु शृंगार रस से उन्हें -

---

1:- खड़ी बोली आन्दोलन- अयोध्या प्रसाद खत्री -पृ०- 41 - 42

2:- माहौर अभि० ग्रन्थ- तृतीय खण्ड-रामनारायण अग्रवाल-पृ०- 13

3:- माहौर जी की हीरक जयन्ती के अवसर पर समर्पित अभिनन्दन पत्र से उद्धृत - दिनांक 19-7-59

4:- रम्भा शुक सम्वाद - पौराणिक कथा है ।

घृणा नहीं है , उन्होंने खुलकर नायिका भेद किया । यदि काव्य को शृंगार रस से रहित कर दिया जाय तो उसकी आत्मा ही म्रियमाण हो जाती है शृंगार वर्णन तो प्राचीन काल से ही काव्य - परिपाटी रही है अत: माहौर जी उससे अलग रह कर काव्य रचना करने में सक्षम नहीं थे ।

द्विवेदी युग में राम - कृष्ण के अलौकिक चरित्र को लौकिक रूप दिया गया । माहौर जी ने राम - कृष्ण के चरित्र में अलौकिकता का त्याग नहीं किया क्यों कि अलौकिकता से काव्य में सौन्दर्य वृद्धि होती है । राम और कृष्ण आदर्श चरित्र हैं और आदर्श में अलौकिकता स्वाभाविक ही है । अत: माहौर जी को द्विवेदी युगीन लौकिकता ग्राह्य नहीं थी ।

माहौर जी के जीवन काल में ही मुक्त छन्द और अतुकान्त कविता लिखने की प्रथा का प्रारम्भ हो गया था जिसे मनीषियों ने " प्रयोगवादी " कविता " के नाम से अभिहित किया था । माहौर जी इस नयी परम्परा को बिल्कुल ही पसन्द नहीं करते थे । छन्दों की अपनी निजी महिमा तथा महत्ता होती है । छन्दों को कविता का बन्धन मान कर जो उसे मुक्त करना चाहते थे वे मानो जीवन को नियमों से हीन करना चाहते थे । माहौर जी ने ऐसी छन्द विहीन काव्य विधा को ग्रहण नहीं किया । वे कविता को छन्दों की मर्यादा में ही पालन करते थे । छन्द भी उन्होंने कुछ ही प्रकार के अपनाये थे । कवित्त , सवैया , दोहा , घनाक्षरी , लावनी , फाग इत्यादि छन्दों में ही माहौर जी ने काव्य रचना की ।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि द्विवेदी युग का उषा काल काव्य की वास्तविक अन्तरात्मा को प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं था अत: माहौर जी ने उसकी सभी काव्य - प्रवृत्तियों को नहीं ग्रहण किया । द्विवेदी युग के बाद रहस्यवाद , छायावाद, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद इत्यादि साहित्य के मंच पर अवतीर्ण हुये लेकिन माहौर जी ने इनमें कोई नवीनता नहीं देखी और न ही वे इनसे प्रभावित हुये ।

तृतीय अध्याय

माहौर जी की कृतियों का संक्षिप्त परिचय :-

अ:- प्रकाशित -

1:- वीर - वधू :-

कवीन्द्र नाथूराम माहौर की अनुपम कृति "वीर-वधू" इण्डियन प्रेस प्रयाग से सन् 1938 में मुद्रित हुयी । प्रकाशक माहौर जी स्वयं हैं । यह पुस्तक श्रीमान् महाराजा छत्रसिंह जू देव [illegible] नरेश को समर्पित की गई है । भूमिका लेखक प्रयाग विश्वविद्यालय के तत्कालीन हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० रमाशंकर शुक्ल रसाल हैं । पुस्तक "दो शब्द" कहते हुये माहौर जी ने बतलाया है कि इस पुस्तक के प्रेरणा स्रोत मऊरानीपुर निवासी कविवर श्री स्व० पं० [illegible] व्यास एवं झाँसी के उपन्यास सम्राट स्व० वृन्दावन लाल वर्मा रहे हैं । "वस्तुत: यह इन्हीं का सहयोग और प्रोत्साहन है जो इस रूप में यह कार्य सम्पन्न हो सका है"[1] ।

"वीर वधू" सम्भवत: झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को लक्षित कर लिखी गयी है[2] । इसके प्रेरक डा० वृन्दावन लाल वर्मा होने से कथन की सम्पुष्टि भी हो जाती है । माहौर जी का जन्म महारानी लक्ष्मी बाई की कर्म भूमि में हुआ , अत: उनके व्यक्तित्व में यदि ओज का अभाव पाया जाता तो यह आश्चर्य की बात होती । माहौर जी की वीर - वधू में प्रकारान्तर से महारानी लक्ष्मी बाई का ही चित्रण हुआ है । जब माहौर जी ने यह ग्रन्थ लिखा होगा तब रानी के व्यक्तित्व का भव्य चित्र अवश्य ही उनके हृदय में गहरा पैठा रहा होगा[3] । श्री स्व० वृन्दावन लाल वर्मा ने अपने उपन्यास "झाँसी की रानी लक्ष्मी -

---

1:- वीर-वधू - दो शब्द - कवीन्द्र माहौर

2:- माहौर जी के शिष्य स्व० सुन्दरलाल और दीपचन्द से प्राप्त तथ्य

3:- माहौर अभिनन्दन ग्रन्थ - पृ0- 12 - रामनारायण अग्रवाल

बाई में रानी के रूप लावण्य और शौर्य के सम्बन्ध में बतलाया कि रानी रूप-लावण्य की राशि थी , इसी कारण से आपने शैशव काल में छबीली उपन्यास से सम्बोधित की जाती थी शौर्य की तो मूर्तिमान प्रतिमा थी ही । विधाता की सृष्टि का यह एक अनुपम संयोग था कि रूप - लावण्य में शौर्य मूर्तिमान हुआ था । ऐसे स्वरूप का वर्णन भारतीय संस्कृति में आद्या शक्ति भगवती दुर्गा का किया गया है जहां अद्भुत रूप लावण्य और शौर्य का समन्वय था । लक्ष्मी बाई को भी महा शक्ति का अवतार माना गया । इसी माडोर जी ने वीर - बाला में लिखा है -

"देश में प्रशंसनीय बंस वाहिनी सी भव्य ,

सिंह वाहिनी सी दिव्य जे जे जाग वाहिनी" ।

ऐसी दिव्य शक्ति से सम्पन्न रानी को लक्षित करके ही वीर - बधू की रचना हुयी । पुस्तक का प्रणयन सन् 1936 में हुआ यह स्वतन्त्रता संग्राम का यौवन काल था ऐसे समय में जन जन के हृदय में स्वतन्त्रता के लिये शौर्य जाग्रत करना ही कवि का धर्म था । माडोर जी ने वीर - बधू लिख कर जन - जागरण :विशेष रूप से नारी जागरण : का कार्य किया । पुस्तक को ओनियाधाना नरेश खलक सिंह को समर्पित करते समय कवि ने महाराजा के शौर्य से [illegible] शत्रु संहारक आदि गुणों का स्मरण किया है -

"रविर वीर अतीव धीर धर तेज सागर गुण आकर ।

धरम ध्वजा धर सतत प्रजाहित पुण्य प्रभाव प्रभाकर ।।

रवि जोविद प्रीत करन शरन जन राजन अरिन विमर्दन ।

श्रीमन् नृप के कर कमलनि में आदर सहित समर्पन ।।

स्पष्ट है कि पुस्तक का लक्ष्य धर्म की रक्षा , शौर्य वृत्ति जागरित करना तथा शत्रु संहारक वृत्ति की ओर प्रेरित करना था । कवीन्द्र ने पुस्तक रचना का लक्ष्य घोषित करते हुये स्वयं कहा है -

---

1:- वीर - बधू - समर्पण - माडोर जी द्वारा रचित

"हे प्रभु । वीर वधू शिख नख जो पढ़े सुने चित्त लावे ।
घर घर सुघर विश्व विजयी वर वीरवधू बन जावे[1] ।।

समर्पण छन्द एवं कवीन्द्र का लक्ष्य विषयक छन्द अभिव्यंजित करते हैं कि पुस्तक का मन्तव्य भारत की नारियों को शौर्य सम्पन्न करना था, पत्नी को उन्हें श्रृंगार भोग सामग्री से दूर हटाकर अपने साथ रणांगण की ओर ले जाने के लिये प्रेरित करना था । रीतिकाल एवं हिन्दी साहित्य में श्रृंगार भावना से परिपूर्ण नख शिख वर्णन के अनेक ग्रन्थ मिल जायेंगे परन्तु श्रृंगार में वीर का समावेश करने वाला कोई ग्रन्थ मिलना दुर्लभ है । वीर रस में प्राय: श्रृंगार का समावेश दोष माना जाता है "बना युद्ध में कथत ज्यों रस सिंगार की बात" परन्तु माथोर जी ने वीर वधू में "शिख नख" वर्णन द्वारा अंग - प्रत्यंग में श्रृंगार के साथ वीरता के भाव का समावेश बड़ी ही कुशलता के साथ किया है । वीर वधू के "उरोज - वर्णन" में न केवल माथोर जी ने अश्लीलता से बचने का सफल प्रयास किया बल्कि वीर और श्रृंगार का अद्भुत समन्वय भी उपस्थित कर दिया है जो दृष्टव्य है -

रण-आंगन के संग संग रौं, अति उतंग दरसाये ।
रूप सरोवर के तट मानों, रणवारे बिठाये[2] ।।

श्रृंगार रस की प्राचीन रीतिकालीन परम्परा में वीर वधू का शिख - नख वर्णन माथोर जी की उनकी अपनी एक मौलिक उद्भावना थी जो उन्हीं जैसे काव्य प्रतिभा सम्पन्न और तेजस्वी कवि द्वारा सम्भव थी । भूमिका लेखक सुकवि एवं प्रबुद्ध समालोचक श्री रसाल जी के शब्दों में - "प्रस्तुत पुस्तक में कवि ने वीर-वधू के अंग प्रत्यंग का चमत्कृत वर्णन किया है । ....वीर वधू के चित्रण में कवि ने सर्वत्र वीरता का ही भाव दिखलाया है । उसमें सौन्दर्य तथा सौकुमार्य भी है । इस पुस्तक के प्रत्येक नायिका के अंग में "वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि - कुसुमादपि" को चरितार्थ करते हैं । । । । । यह वर्तमान समय तथा समाज का प्रभाव है कि माथोर जी ने वीर रस को प्रधानता देते हुये यह -

---

1:- वीर वधू - माथोर

2:- वीर वधू -:उरोज वर्णन : - कवीन्द्र माथोर

आंशिक वर्णन किया है[1]। पुस्तक की उपादेयता बतलाते हुये रसाल जी आगे लिखते हैं --

"पुस्तक अपने ढंग की एक ही है और समय तथा समाज के लिये उपादेय भी है। इस समय देश के लिये ऐसी ही पुस्तकों, कविताओं तथा कवियों की आवश्यकता है जिनके द्वारा समाज के अन्दर वीरता की टिमटिमाती हुयी ज्योति में नवल स्फूर्ति आ सके। कवि प्राचीन परिपाटी के आधार पर चलता हुआ भी देश काल की नई मांगों की पूर्ति का सफल प्रयत्न कर सकता है"[2]।

वीर वधू में नायिका का "नख शिख नख" वर्णन ओज की भाषा में समुपस्थित किया गया है। इस प्रकार का नायक या नायिका का आंगिक वर्णन साहित्य के क्षेत्र में दीर्घकाल से स्वतन्त्र विषय के रूप में गृहीत होता चला आ रहा है। शिख नख वर्णन को प्रेरणा देने वाले प्रमुख ग्रन्थों में कवि कल्पलता, अलंकार शेखर, वराह मिहिर की बृहत्संहिता आदि उल्लेखनीय हैं। नख - शिख वर्णन की परम्परा का एक रूप स्तोत्र साहित्य में भी मिलता है। हिन्दी के कवि विद्यापति, जायसी, सूर आदि में नख शिख वर्णन की परम्परा रही है। रीति काल के रचनाकारों ने नायक - नायिका के रूप - वर्णन को एक स्वतंत्र विषय के रूप में स्वीकार कर लिया था[3]। नख - शिख वर्णन के रीति कालीन प्रथम आचार्य केशव दास की कवि - प्रिया इस विषय की उत्कृष्ट रचना है। इसके बाद भिखारी, कुलपति मिश्र :नख - शिख: देव :नख-शिख प्रेम दर्शन:, सूरति मिश्र : नख - शिख :, तोष - निधि :नख - शिख :, रसलीन - :अंग दर्पण: आदि ने इस परम्परागत वर्णन में अपना सहयोग दिया। स्वतन्त्र रूप से नख शिख वर्णन की परिपाटी रीतिकालीन है[4]। इसी परम्परा का अनुगमन करते हुये आधुनिक युग में नाथूराम माहौर ने वीर - वधू लिखकर नख - शिख परम्परा को आगे बढ़ाया। माहौर जी का नख - शिख वर्णन मौलिकता लिये -

---

1:- वीर-वधू - भूमिका - डा० रमाशंकर शुक्ल "रसाल"

2:- वीर-वधू भूमिका - डा० रसाल

3:- कवित्रयी - डा० गिरीश चन्द्र तिवारी - पृ०- 40

4:- कवित्रयी - डा० गिरीश चन्द्र तिवारी - पृ०- 12

हुये है । अन्य साहित्यकारों ने नायिकाओं के अंग = प्रत्यंग का जो चित्रण किया उसमें हम देखते हैं कि नारी के प्रति पुरुष की भोग वृत्ति ही परिलक्षित होती है । माधौर जी द्वारा चित्रित शिख - नख वर्णन शौर्य की ओर ले जाता है उसमें ओज है शौर्य है तथा जीवन संग्राम की प्रेरणा है । यही माधौर जी की मौलिकता है , यही उनकी अभिनव व्यंजना है ।

माधौर जी रीतिकालीन काव्य परम्परा से प्रभावित थे । रीतिकाल में श्रृंगार के साथ साथ वीर काव्य परम्परा का भी विशेष महत्व था । श्रृंगार काव्य दृष्टि के कारण जीवन के अलस पक्ष से सम्बद्ध है परन्तु वीरकाव्य जागरूक जीवन का काव्य है । वीर काव्य में उत्साह पूर्ण वातावरण के निर्माण की चेष्टा है। उसमें देश की रक्षा का संकल्प , स्वाधीनता की भावना , अशिव तत्वों के प्रति विद्रोह विजय की भावना के मिले जुले स्वर अंकित हुये हैं[1] । माधौर जी की वीर - वधू की रचना अकारण ही नहीं हुयी स्वतन्त्रता संग्राम का उदय हो रहा था ऐसे समय में जन जागरण के लिये उत्साहपूर्ण वातावरण की आवश्यकता थी । देश की रक्षा का संकल्प नवयुवकों के समक्ष था । वीर- वधू में वर्णित शौर्य धन राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त युवकों के लिये संजीवनी का काय कर रहा था । श्रृंगार - परक वर्णन करते हुये उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से माधौर जी ने वीर - वधू के अंग - प्रत्यंग में अद्भुत शौर्य जाग्रत किया जो कि परिस्थिति - सापेक्ष था ।

काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में नख - शिख वर्णन की एक व्यवस्था दी गई है । कवि कल्पलताकार ने लिखा है कि मानवी - नख - शिख वर्णन में शिख से प्रारंभ करके पद नख तक वर्णन करना चाहिये और दिव्य रूप वर्णन में इसके विपरीत पद नख से शिख तक का वर्णन करना चाहिये[2] । आचार्य केशवदास ने भी इस परम्परा का समर्थन किया है[3] । फारसी काव्य पद्धति में भी "सरापा" का -

---

1:- वृन्दावन दास अभिनन्दन ग्रन्थ - सम्पादक - डा० आनन्द स्वरूप पाठक - ले० प्रो० नर्मदा प्रसाद गुप्त - पृ०- 294

2:- मानवा मौलितो वण्या देवाश्चरणत: पुन: ।।-कविकल्पना-1/3/57

3:- नख ते सिख लौं बरनिये देवी दीपति देखि ।
सिख ते नख लौं मानुषी केसवदास बिसेखि ।। कवि प्रिया 15/3

वर्णन मिलता है । इसमें "सर" से पैर तक के वर्णन में शिखनख की ही परम्परा का निर्वाह किया जाता है । पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है -" इनके यहां दिव्या दिव्य की स्थिति नहीं है । दिव्य निर्गुण है । डरते डरते उसके चरण और हाथों की उंगलियों तक की चर्चा किसी प्रकार की गई है । अन्य अंगों का प्रश्न ही नहीं । इसी से वहां अदिव्य वर्णन ही चला है सरापा या शिख नख तो साहित्य में आया पर नख शिख नहीं । नख शिख का सिलसिला भारतीय सरणि है जो स्थापना केशव ने की है वह उनसे पूर्व सूरदास और तुलसीदास ने भी दिखायी देती है । उन्होंने दिव्य और दिव्यादिव्य के वर्णन में वही क्रम रखा है अर्थात नख से शिख का क्रम ग्रहण किया है[1] । कवीन्द्र मालौर ने वीर - वधू का आंगिक वर्णन शिख नख परम्परान्तर्गत किया है ।

प्राय: आंगिक वर्णन में विशेषण तथा सादृश्य मूलक अलंकारों का ही प्राधान्य तथा बाहुल्य पाया जाता है और यह एक प्रकार से स्वाभाविक और अनिवार्य भी ही है इस प्रकार के आंगिक वर्णन को मुक्तक काव्य के ही अन्तर्गत माना गया है क्योंकि इसमें अंग - प्रत्यंग के चित्र - चित्रित करने वाले छन्द सर्वथा स्वतन्त्र सत्ता और महत्ता रखते हैं और परस्पर समाश्रित होकर एक प्रबन्ध का निरूपण नहीं करते । यह अवश्य है कि समस्त छन्द एक शरीर को अंकित करते हैं इस विचार से कुछ लोगों का विचार है कि यह एक प्रबन्ध हो जाता है किन्तु वास्तव में वह फिर भी मुक्तक ही रहता है[2] ।

विवेच्य पुस्तक "वीर - वधू" भी मुक्तक काव्य के अन्तर्गत आती है इसमें कवि ने एक "वीर - वधू" के अंग प्रत्यंग का चमत्कृत शैली में वर्णन किया है । साहित्य में प्राय: जितने भी आंगिक वर्णन मिलते हैं सबमें शृंगार - रस की प्रधानता पाई जाती है उदाहरणार्थ हम बिहारी , मतिराम , ग्वालकवि , देव आदि के आंगिक वर्णन को देख सकते हैं । बहुत कम वर्णन ऐसे मिलेंगे जिनमें अन्य रस को प्रधानता मिली हो । केवल "वीर - वधू" ही इसका एक मात्र अपवाद कहा जा सकता है । यह वर्तमान समय तथा समाज का प्रभाव है कि -

---

1:- केशव ग्रन्थावली - तृतीय भाग- सम्पादकीय - पृ०- 13

2:- वीर - वधू - भूमिका - पृ०- डा० रमाशंकर रसाल

कविवर "माहौर" जी ने वीर रस को प्रधानता देते हुये यह आंगिक वर्णन भावुकता तथा कुशलता के साथ लिखी[1]। वीर - वधू के चित्रण में कवि सर्वत्र वीरता का ही भाव दिग्दर्शित किया है। तत्कालीन परिस्थितियों में वीरता के भाव की ही आवश्यकता थी। माहौर जी ने विजय - प्राप्ति की कामना करते हुये वीर भाव से युक्त एवं नवों रसों की अधिष्ठात्री सरस्वती के श्री चरणों की वन्दना से ग्रन्थ का समारम्भ किया है -

"जय भारति, भारत आरति-हर सुमन लाय पद पूजे ।
सिद्धि- कारनी नव रस की , रसना विहारनी तू जे[2] ।।

माहौर जी ने अपने काव्य में बुद्धि तत्व को भी स्थान दिया है । प्रायः कवि लोग ऐसी उपमायें भी प्रस्तुत कर देते हैं जिनके विषय में शंका होने लगती है । परन्तु माहौर जी इस दुरान्वय दोष या क्लिष्टता से बचे रहे हैं । उनके सभी वर्णन स्वाभाविक एवं सामाजिक हैं । सिन्दूर से पूरित माँग के सौन्दर्य का उद्-घाटन करते हुये माहौर जी ने लिखा है कि ऐसा जान पड़ता है कि मानों मेघों के श्याम वर्ण शरीर को चीर कर बाल रवि की किरण ने प्रवेश किया हो -

माँग माँहि सिन्दूर लाली की सुछवि लगी विलसी है ।
तोयद -तन- तम चीर बाल रवि की जनु किरन धँसी है[3] ।।

यहाँ बालारुण का प्रयोग बहुत ही उचित और सामयिक है ऐसा वर्णन अप्रासंगिक भी नहीं जान पड़ता है । इसी प्रकार सिन्दूर युक्त माँग में वीर रस का भाव दिखाना समयानुकूलता का परिचायक है -

सेन्दुर-सहित माँग की सुषमा, उपमा सुचि रची है ।
मनहु वीर रस समय कसौटी , रेखा रुचिर खची है[4] ।।

कहीं - कहीं तो माहौर जी ने अंग - वर्णन में उपमाओं का वर्णन परम्परागत-

---

1:- वीर वधू - भूमिका - डा० रमाशंकर रसीला - पृ० - 3

2:- वीर वधू - मंगला चरण - कवीन्द्र माहौर

3:- वीर वधू - पृ०- 15 - छन्द - 30

4:- वीर वधू - पृ०- 15 - छन्द - 32

किया है लेकिन कहीं वे अपनी मौलिक उपमाओं का आश्रय लेते हैं ।[1] "नासिका वरनन" में वीर - वधू की नाक का वर्णन प्रथम पंक्ति में तो परम्परानुसार किया है जायसी इत्यादि के समान , परन्तु दूसरी पंक्ति में नाक को "दुनाली" ही बना दिया । कुछ लोगों का विचार है कि यह कुछ जमती हुयी सी उत्प्रेक्षा नहीं जान पड़ती ऐसे व्यक्ति यह भूल जाते हैं कि शृंगार में वीर का समावेश करना माधौर जी का लक्ष्य था और "दुनाली" वीरता की अभिव्यक्ति का सशक्त साधन है इसमें कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आने पायी -

"लाजै निसि-दिन सुक -समाज लखि सुघर नासिका गाजै[2] ।
तुम्ब कालिका अरिन शालिका, मनु द्विनालिका राजै ।।

प्रथम पंक्ति की तुलना जायसी से करने पर परम्परागत उपमान की सभी श्रीनता सिद्ध हो जाती है -

"नासिक देख लजानेउ सूआ"

द्वितीय पंक्ति में वीर भाव का समावेश द्विनालिका के माध्यम से कराना माधौर जी की अपनी मौलिक उद्भावना शक्ति का प्रतीक है । इसी प्रसंग में आगे का छन्द अत्यन्त ओजस्वी एवं कलापूर्ण है । वीर - वधू की नाक ने दिशा-दिशाओं में व्याप्त भारत के यश को देदीप्यमान किया । जो लोक अभिमानी है :नकचू : उनको "नाक - विहीन" कर दिया इस बात की साक्षी देव लोक भी देते हैं -

दिगदिगन्त भारत प्रताप की नाक नाक रखी है ।
बड़े नाक के लिये नाक बिनु नाक लोक साखी है[3] ।।

"नाक" शब्द का प्रयोग कर अनेक अर्थों की उद्भावना कर माधौर जी ने अपनी काव्य शक्ति का परिचय दिया है यदि माधौर जी की श्रद्धानुसार और बुन्देल-खण्ड की परम्परानुसार हम इस छन्द का आरोप भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम की -

---

1:- मा०अभि० ग्रन्थ- पृ०- 39 - श्याम सुन्दर बादल लाल दीक्षित

2:- वीर - वधू - "नासिका वरनन " - माधौर

3:- वीर - वधू - "नासिका वरनन " - माधौर

देवी महारानी लक्ष्मी बाई पर कर देवो छन्द प्रबन्ध और यशोगान दोनों ही अमर हैं ।

शृंगार में वीर रस का समावेश करने मे माधोर जी सिद्धहस्त हैं । ऐसे वर्णन साहित्य में दोषपूर्ण माने गये हैं लेकिन माधोर जी ने बड़े ही स्वाभाविक ढंग से ये वर्णन किया है । उरोज वर्णन में शृंगार और वीर का सम्मिश्रण है उसमें कहीं भी अश्लीलता का आभास नहीं होता -

> सोहत अमर समर गढ़ के गढ़ ,
>
> गुम्मद गोल सलोना ।
>
> रन के गुननि गम्भीर लसै जनु,
>
> वीर - वाकुरे छौना[1] ।।

माधोर जी ने "वीर-वधू" के अंग - वर्णन करते समय अनेक स्थलों पर अपने ज्योतिष ज्ञान का परिचय दिया है जो उनका प्राचीन के प्रति प्रेम का प्रतीक है । इस दिशा में उन्होंने बिहारी का अनुगमन किया है । बिहारी का ज्योतिष ज्ञान सम्बन्धी उदाहरण दृष्टव्य है -

> मंगल बिन्दु सुरंग, मुख ससि केसर आड़ गुरु ।
>
> इक नारी लहि संग, रसमय किये लोचन जगत[2] ।।

उपर्युक्त दोहे का अभिप्राय है कि जब चन्द्रमा, मंगल तथा गुरु एक नाड़ी - :राशि : पर अवस्थित हो जाये तो इतनी अधिक वर्षा होती है कि पृथ्वी जलमय हो जाती है । परन्तु कवि ने अपनी प्रतिभा से इनका समन्वय किया है नायिका के विषय में । मस्तक पर लगा हुआ बिन्दु गोल है अतएव मंगल है । मुख चन्द्रमा के समान है तथा केशर की जो आड़ लगी है वह वृहस्पति है यह सब नारी को प्राप्त हो गये हैं फलस्वरूप सभी के नेत्र "रसमय" हो गये हैं ।

ऐसे ही ज्योतिष ज्ञान की अभिव्यंजना कराने वाले वर्णन माधोर जी ने भी किये हैं । माधोर जी की और बिहारी की उत्प्रेक्षाओं में अन्तर है -

---

1:- वीर-वधू - "उरोज वरनन" - माधोर - पृ०- 67 - छन्द - 133

2:- बिहारी सतसई - 268

क्यों कि माहौर जी वीररस की प्रधानता लिये हुये हैं । माहौर जी के ज्योतिष शास्त्र में प्रत्येक स्थान पर वीरता के भाव की प्रधानता है । एक स्थान पर "मृग मद - बेंदी बरनन" में कवीन्द्र कहते हैं कि मृग मद का बिन्दु चन्द्र मुख पर लगा है जो भौहों के मध्य स्थित है ऐसा लगता है मानो धनु - राशि पर शनि आ गया है अतएव युद्ध निश्चित है -

"मृग-मद बिन्दु चन्दु आनन पे, भौंहनि बिच रसमाया ।
युद्ध करावन हार सनी, जनु धनु रासी पे आयो[1] ।।

एक स्थल पर बिहारी कवि और माहौर जी की उत्प्रेक्षाओं में पूर्ण साम्य लक्षित होता है । मीन , तुला तथा धनु राशि का शनिश्चर लग्नावस्था में जाकर पड़ता है तो इस प्रकार की कुण्डली वाला व्यक्ति नृपति होता है -

सनि कज्जल चख झख लगन उपज्यो सुदिन सनेह ।
क्यों न नृपति ह्वै भोगिवे, लहि सदेस सब देह ।।

:बिहारी : ।। 439 ।।

माहौर जी भी कुछ इसी प्रकार की बात कहते हैं -

दृगनि-तिलनि का अतुल जगत में, पायो जस पीनों है ।
मीन रासि में जनु सुराज हित सनि निवास कीनों है[2] ।।

:माहौर :

मीन राशि में जब शनि का निवास होता है तो समस्त प्रजाजन हर्षित और पुलकित होते हैं । नक्षत्रों के अतिरिक्त "योग" का प्रभाव भी पड़ता है । चन्द्र ग्रह के आस पास यानी दोनों तरफ ग्रह होने से दुहरा - योग बनता है । इस योग में रणोद्धत व्यक्ति को निश्चित रूप से विजय प्राप्त होती है । नख - शिख वरनन करते हुये माहौर जी ने मुख को "चन्द्रमा " मान कर कानों में पहने ताटंक को ग्रह निर्धारित किया और इस प्रकार दुहरा - योग का निर्माण ~~किया~~ हुआ -

---

1:- वीर-वधू - कवीन्द्र माहौर - 6-2 - संख्या - 30

2:- वीर-वधू - ---------- माहौर

श्रोन अंक ताटंक मनि जटित दिन-मनि रंक लजावें ।
विधि करन जस अमर करन जनु जोग दुधंरा राजें ।।

माहोर जी ने वीर - वधू में अपने व्यापक ज्ञान का परिचय पौरा - णिक उपाख्यानों , राजनीति , युद्ध आदि का वर्णन करते हुये दिया है । रा-मायण एवं महाभारत काल के उपमानों का उन्होंने वर्णन किया है । शंकर , विष्णु, कामदेव , गणेश , बलराम , भीम आदि का यथा स्थान उल्लेख हुआ है ।

शंकर जी का उल्लेख :-

कबहुं अति अभिराम नाम, छबि धाम हेरि हिमलाजें ,
बाहु चक्र बहि समर कटी में, हर- जटी जनु राजें ।

गणेश :-

जग में मंजु कलाप की फबि फहर सुजस पताकौ ।
बरनि विघ्न विनासन कौ, जनु रदन लाल गिरजा कौ ।

विष्णु और भीम :-

तलवार के अंग विज-फल , सोहत हिये सदा है ,
पदम सेज कमलाधर के क, बलधर भीम गदा है ।

युद्ध सामग्री , सैनिक , शिविर आदि का वर्णन भी माहौर जी ने वीर-वधू के अंग वर्णन के माध्यम से किया है । "लट बरनन"[1] के व्याज से सैनिक शिविर की कल्पना कितनी मनोहारिणी है -

"मुख - मण्डल पै मनहुं लटनि की लटकनि, लागति अति प्यारी है ,
ससि मण्डल पै मनहु "छावनी" अहि तानन तारी है[2] ।।

"दृष्टि बरनन" में चतुरंगिनी सेना की कल्पना तथा "नाभि बरनन"[1] में "चक्रव्यूह" की कल्पना कितनी स्वाभाविक एवं सजीव है -

---

1:- वीर-वधू - श्रवन भूषन बरनन - माहौर
2:- वीर-वधू - "लट बरनन" - माहौर

चतुरंगिनी सेना की कल्पना दृष्टि वरनन के व्याज से :-

गज, हय भी घूमें कुदके रथ -

पदचर - रीति ठमी है

मनु दर्प को दरन दीठि जनु

चतुरंगनी अनी है[1] ।

नाभि वर्णन में चक्र व्यूह :-

नाभी- व्यूह विलोकि मन हरन

ताको कवि जन भाख्यो ।

दुर्जन - व्यूह को दर्प दरन जन,

चक्र- व्यूह रचि राख्यो ।।

उपर्युक्त छन्द माहौर जी की बहुज्ञता के परिचायक हैं ।

शृंगार में वीर रस का समावेश हिन्दी में वीरगाथा काल से हमें बराबर देखने को मिलता है चन्दवरदाई ने जिनका काल 13 वीं शताब्दी वि० तक अनुमाना जाता है , पृथ्वी राज रासो में वीर और शृंगार का अद्भुत मेल किया है । यद्यपि पूर्व रीतिकाल के अन्तर्गत शृंगार की अबाध धारा में भूषण जैसे ही एक आध कवि मिलते हैं जिन्होंने वीर रस को प्रधानता दी है । उत्तर रीतिकाल में भी वीर रस की व्यापक चर्चा हमें नहीं मिलती । वीर - रस की चर्चा विशेष रूप से दो ही रूपों में देखने को मिलती है एक तो नवरस वर्णन के प्रसंग में और दूसरे प्रबन्ध एवं खण्ड काव्य के रूपों में । पहले रूपों की चर्चा अधिकतर: आचार्यत्व की झोंक में की गई है इसलिये उसमें वीर-रस का अच्छा परिपाक हमें देखने को नहीं मिलता है । खण्ड काव्यों में वीर रस अवश्य ही अच्छे-रूप में हमारे सम्मुख आया है । रीतिकाल के कवियों में इस प्रकार की रचना करने वाले पद्माकर, ग्वाल और चन्द्रशेखर ही प्रमुख रूप से आते हैं[1] ।

1:- कवि पद्माकर और उनका युग-डा० व्रजनारायण सिंह-पृ०- 43

माहौर जी की "वीर-वधू" में श्रृंगार में वीर रस की समायोजना रीतिकालीन प्रभाव के कारण ही है । वीर वधू का नख - शिख वर्णन कर प्रत्येक अंग में वीर रस का आरोप विभिन्न उत्प्रेक्षाओं द्वारा किया गया है । रीतिकाल के रचनाकारों ने नायक नायिका के रूप वर्णन को एक स्वतन्त्र - विषय रूप में स्वीकार कर लिया था उन्होंने शरीर के प्रत्येक अंगों का संस्कृत काव्यों के नख - शिख वर्णन के आधार पर अत्यन्त बारीकी से वर्णन किया । इस प्रकार के वर्णनों में उन्होंने प्राचीन तथा नवनीतम श्रृंगारिक उद्‌भावनायें की हैं । नये पुराने उपमानों का खुलकर प्रयोग किया । । नख - शिख के रीतिकालीन प्रथम आचार्य कवि केशव दास की कवि - प्रिया इस विषय की प्रतिष्ठित रचना है । इसके बाद बिहारी पजनेसलाद्ध मिश्र , तोषनिधि आदि कवियों ने इस परम्परागत वर्णन अपना सहयोग दिया । कवीन्द्र माहौर ने भी वीर - वधू का शिख - नख वर्णन कर रीतिकालीन परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा[1] ।

सम्पूर्ण वीर वधू श्रृंगार रस से परिपूर्ण है जिसमें उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से वीर रस का समावेश किया गया है एक प्रकार समस्त काव्य को उत्प्रेक्षा काव्य कहा जा सकता है क्योंकि प्रत्येक छन्द में उत्प्रेक्षा अलंकार ही प्रधान है । वीर वधू के चित्रण में कवि ने वीरता का भी भाव दिखलाया है । रीति कालीन साहित्य में वीर काव्य की प्रवृत्ति प्रचुर मात्रा में थी । "वीर काव्य की ओजमयी विशेषतायें इस युग के काव्य में अधिक निखरी हैं इस काल के कवियों की रचनाएँ वीरगाथा युग के कवियों की रचना से भी अधिक प्रभावकारी हैं[2] । इस प्रकार हम देखते हैं श्रृंगार और वीर रस के वर्णन में माहौर जी पर रीतिकाल का प्रभाव था यद्यपि दोनों का एक साथ समावेश करना उनकी मौलिक उद्‌भावना थी । वीर-वधू में शरीर के विभिन्न अंगों के सौन्दर्य एवं कान्ति के वर्णन में माहौर जी रीतिकालीन कवियों से पीछे नहीं रहे । उन्होंने रीति कालीन कवियों की भांति उरोजों के पीत श्यामल लालित्य से लेकर कटि की कमनीयता का वर्णन -

---

1:- कविश्री - डा०गिरीश चन्द्र तिवारी - पृ०- 40

2;- हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास - पं० रामबिहारी शुक्ल और - डा०भागीरथ मिश्र-खण्ड-2/74

पुराने और नये उपमानो के माध्यम से किया है -

"सनमुख उरज स्यामताई को, नील कमल लखि लाजे ।
सलपानि के पानि माँह जनु चक्र वाक छवि छाजे ।"

:उरोज बरनन :

इसी प्रकार "कटि बरनन" देखिये -

पट पट जात सुधा जगती तल पीवो परम नवीनी ।
कटि कटि जाति केहिरी की कटि कटि विलोकि अलि छीनी ।

: कटि बरनन :

अलंकारों के क्षेत्र में माहौर जी ने प्राचीन रीतिकालीन परिपाटी का ही अनुसरण किया है । प्राचीन काल में प्रचलित अनुप्रास , उपमा , सन्देह , रूपक , यमक आदि अलंकारों का प्रयोग माहौर जी ने "वीर-वधू" में किया है । उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग तो प्रत्येक छन्द में हुआ है जिससे सम्पूर्ण पुस्तक को रसाल जी ने तो "उत्प्रेक्षा काव्य" की संज्ञा से अभिहित कर दिया[1] । रीति - कालीन कवियों में अनुप्रास अलंकार के प्रति विशेष मोह दिखाई देता है[2] । वीर-वधू में भी चमत्कार प्रदर्शन का माध्यम अनुप्रास अलंकार ही रहा । अधिकांश छेकानुप्रास तथा वृत्यानुप्रास ही प्रयुक्त हुये हैं भावोत्कर्ष तथा भाषा में लालित्य और चमत्कार लाने के लिये कवि जन यमक अलंकार को अपनाते हैं[3] । वीर-वधू में कहीं - कहीं यमक और अनुप्रास एक साथ आये हैं जिससे छन्द में न तो शैथिल्य आने पाया और न ही कृत्रिमता अपितु झंकार , सरसता और सजावट ही आ गई है । उदाहरणार्थ --

यमक और अनुप्रास का एक साथ प्रयोग -

1:- समस्त पुस्तक या काव्य के "उत्प्रेक्षा काव्य" कहा जा सकता है क्यों कि प्रत्येक छन्द में उत्प्रेक्षालंकार ही प्रधान है - "रसाल" : भूमिका :

2:- वृन्दावनदास अभि०ग्रं० -डा० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा - पृ०- 516

3:- ---------------------- वही ------------- पृ०- 517

दिग दिगन्त भारत प्रताप की ,

नाक नाक राखी है ।

बड़े नाक के किये नाक विन्दु ,

नाक लोक साखी है ।

यहां "नाक" शब्द में यमक की छटा दृष्टव्य है "नाक नाक" में वीप्सा एवं यमक है । सम्पूर्ण छन्द में अनुप्रास की प्रधानता है । भाव व्यंजना के लिये वीप्सा एक आवश्यक उपकरण है वीप्साओं के प्रयोग से भाषा में प्रवाह एवं गति उत्पन्न होती है ब्रजभाषा के कवियों ने वीप्साओं के द्वारा व्यंजना में अधिक सफलता प्राप्त की है । माहौर जी ने वीर - वधू में स्थान स्थान पर वीरता का भाव व्यंजित करने के लिये "वीप्सा" का भी प्रयोग किया है । अनुप्रास के साथ प्रतीप का प्रयोग माहौर जी ने "वीर - वधू" के अंगों के सौन्दर्याधिक्य दिखलाने के लिये किया है जिसमें भाव शैथिल्य कहीं नहीं हो पाया है :-

मुख अकलंकी ससि सकलंकी ,

समता कछु पावै न ।

हरि मानि कै बस्यो जाय कै ,

सन्मुख समुदावै ना ।। 108 ।।

इस प्रकार अलंकारों के क्षेत्र में माहौर जी ने रीति कालीन परिपाटी का अनुपालन पूर्ण रूप से करते हुये "वीर-वधू" में अपने मौलिक भावों को अक्षुण्ण बनाये रखा ।

1:- वृन्दावन दास अभिनन्दन ग्रन्थ - डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा -पृ०- 316

2:- अश्रुमाल :-   प्रकाशित सन् 1943 , :नेशनल प्रेस इलाहाबाद :

कवीन्द्र नाथूराम माहौर द्वारा समय समय पर विविध प्रकार के अश्रुओं पर लिखे गये छन्द "अश्रुमाल" नामक कृति के रूप में सन् 1943 में प्रकाश में आये । प्रस्तुत पुस्तिका 125 छन्दों का एक संकलन है जिसे नेशनल प्रेस इलाहाबाद ने प्रकाशित किया । अखिल भारतीय ब्रज भाषा द्वारा पुरस्कृत की गयी । इससे भक्तों की अश्रुमाला भगवान को अर्पित की गयी है । प्रत्येक युग के भक्तों के आँसुओं का विवेचन करुणा एवं विप्रलम्भ शृंगार से आप्लावित है । भक्तों का वर्गीकरण युग के अनुरूप किया गया है । प्रारम्भ में वाणी वन्दना एवं मंगलाचरण से ग्रन्थ का श्री गणेश करने के पश्चात माहौर जी "प्रेम के आंसू" नामक उपशीर्षक द्वारा प्रेम को अभिव्यंजना युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में करते हैं । इसके पश्चात क्रमश: सत - युग , द्वापर युग - त्रेता युग एवं कलि युग के भक्तों के अश्रुओं के माध्यम से युग की उन विशिष्ट घटनाओं का चित्रण किया है जिन्होने तत्कालीन अश्रुओं को जन्म दिया । रीति कवियों की मुक्तक परम्परा के अनुरूप मुक्तक छन्दों में रचित है जिनमें किसी प्रकार का पूर्वापर सम्बन्ध नहीं है । अश्रुमाल का कलेवर यद्यपि रीतिकालीन है तथापि आत्मा स्वतन्त्रता संग्राम कालीन है । स्वातंत्र्य संघर्ष की कथा अश्रुमाल के माध्यम से रीति कालीन कलेवर में व्यंजित है । समस्त "अश्रुमाल" भक्ति भावना से आपूरित युग बोध कराने में सक्षम है ।

ग्रन्थ का समारम्भ माहौर जी ने प्राचीन काव्य परम्परा के अनुरूप ही मंगला चरण एवं वाणी वन्दना से किया है । कवि ने सरस्वती के उस रूप का स्मरण किया है जो भारतीय जनता को अभीष्ट लक्ष्य पूर्ति का वरदान देने में सक्षम है -

"प्रनवौं पुन पूरित पण्य पगो ,
पद भारती हिन्द सिंहासनी के"[1] ।

अश्रुमाल में वन्दनात्मक छन्द के पश्चात माहौर जी ने अश्रुओं के स्वरूप , उद्भव -

---

1:- अश्रुमाल - वाणी वन्दना

एवं उनकी शक्ति का लक्षण तथा प्रभाव प्रस्तुत करते हुये कतिपय कथानकों के माध्यम से अपनी मौलिक काव्य प्रतिभा द्वारा अपने कथन की पुष्टि की है । कथानकों में भारतीय पौराणिक गाथाओं के पात्रों यथा - ध्रुव , प्रह्लाद , द्रौपदी , शबरी, भरत, हनुमान, आदि विविध पात्रों का ही चयन किया है । ऐसी कथाओं ने युगों से जन मानस को उद्वेलित कर नई दिशा प्रदान की है , इसी लिये इन कथानकों को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर माहौर जी ने जन मानस में नवीन चेतना आपूरित कर राष्ट्रीय लहर व्याप्त कर दी है ।

अश्रुमाल माहौर जी की गाँधी वादी विचार धारा की पोषक एक अप्रतिम कृति है । माहौर जी के समय में गाँधी जी की विचार धारा , तथा उनका असहयोग आन्दोलन तीव्र गति से प्रसारित हो रहा था महात्मागाँधी कहते थे कि भारत अपने आत्म बल से सबको जीत सकता है । ईश्वर ही आत्मा परमात्मा है[1] । माहौर जी ने आँसुओं को ईश्वर से मिलाने का साधन बतलाया है --

"प्रनता विनयी यदि तेअसुआ ,
वश में इनके भगवान रहे "[2] ।

आँसू अहंकार वृत्ति को नष्ट करने का एक अप्रतिम साधन है । अहंकार हीनता ही ईश्वर से एकाकार वृत्ति उत्पन्न करती है[3] । तब मनुष्य ईश्वर भक्ति की ओर उन्मुख होता है । गाँधी की ईश्वर विषयक भक्ति विश्व कल्याण के लिये थी । वे सर्वदा जन कल्याण की ही कामना करते थे । उनकी साधना , प्रार्थना तपस्या सभी कुछ जन - हिताय अर्पित थे । माहौर जी ने भी अश्रुमाल में लोगों को अहंकार त्याग कर लोक हित की प्रेरणा दी है । वे अश्रुओं में सच्चिदानन्द का निवास बतलाते हुये मंगलाचरण के छन्द में कहते हैं -

---

1:- स्पीचेज एण्ड आफ महात्मा गाँधी - पृ0- 405

2:- अश्रुमाल - नाथूराम माहौर - पृ0- 3

3:- जब मैं था तब हरि नहीं , जब हरि तब मैं नाहि :कबीर :

"प्रथम प्रनवौं अंसुवान के विन्दु ,
अमद अनन्द के नीके निकेत है ।

\+ + + +

भव मुक्ति प्रभा भरिके उर में ,
प्रभु के कर मे कर कौ कर देत हैं"[1] ।

"अमद आनन्द" तो सहज सच्चिदानन्द परमेश्वर ही है । माधौर जी ने अश्रु और राम में अभेदत्व स्वीकार करते हुये उन्हें उसी प्रकार यश प्रसार का साधन बतलाया है जिस प्रकार ईश्वर की भक्ति व्यक्ति की आत्मा को आलोकित करती हुयी उसके की ज्योति का प्रकाश संसार में प्रसारित करती है , और व्यक्ति आत्मिक सुख में लीन हो जाता है -

मकरन्द समान अमन्द सदा,
अरविन्द सो दृग में विरमैं ।
कलि में चहुं ओर महीतल में ,
पल में बल लावत वे कल में ।।
दुःखता कवि माथुर जीवन की ,
यश ज्योति जगावत हैं जग में ।
नित राम में राज्य रम अश्रुआ ,
अंसुवान के मन्दिर राम रमै[2] ।।

अश्रुमाल के गम्भीर चिन्तन एवं मनन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि माथौर जी महात्मा गांधी के सिद्धान्तों की कलात्मक ढंग से अभिव्यक्ति कर रहे है । महात्मा गांधी का कहना था कि "स्वराज्य निर्भर करता है हमारी आन्तरिक शक्ति पर + + + + + उसे पाने का तरीका वही है जो एक एक आदमी के आत्म स्वराज्य या आत्म संयम का है "[3] । महात्मा -

---

1:- अश्रुमाल - पृ०- 2 - :मंगलाचरण :

2:- अश्रुमाल - पृ०- 4

3:- हिन्दी नवजीवन - 8-12-27

गांधी का यह आत्म स्वराज्य या आत्म संयम का साधन है प्रेम । महोर जी आंसुओं को प्रेम द्वारा भेंट किये मोती बतलाते हैं जिनको स्वयं परमेश्वर उस अवस्था में प्रदान करते हैं जब नैनों से उनका साक्षात्कार होता है -

"जीवन मुक्ति भरे सुथरे जल बिन्दु जगावत जीवन जोती ।
नैनन प्रेम सों भेंट करी, तब प्रेम ने भेंट किये यह मोती[1] ।।"

गांधी जी विश्व को और सम्पूर्ण मानव जाति को एक सत्य से साक्षात्कार कराना चाहते थे । उसी सत्य , अहिंसा और प्रेम से वे विश्व में एक नवीन क्रान्ति लाने का प्रयास कर रहे थे । उनका विश्वास था युद्ध विनाश के मार्ग पर चलकर मानव जाति शान्ति नहीं पा सकती । शान्ति का मार्ग तो सत्य द्वारा ही निर्दिष्ट हो सकता है । महोर जी ने अश्रुमाल में इस तथ्य को उद्-घाटित किया है कि जिन आंसुओं के द्वारा सत्य से साक्षात्कार होता है वही अश्रुमालायें अण्डज , पिण्डज , स्वेदज आदि सभी प्रकार की सृष्टि का निर्माण करने वाली है -

"नन्दन नन्दन की विधि सों ,
विधि को विधिता को विधान सजावे ।
अंडज, पिण्डज, स्वेदज आदि की ,
आकृति की आकृति सरसावे ।
\+ + + +
प्रेम को लोक बसावे को ,
अंखियां अंसुवानि की सृष्टि बनावें[2]" ।

महोर जी ने सतयुग , त्रेतायुग , द्वापर युग तथा कलियुग के भक्तों के अश्रुओं के माध्यम से अश्रुमाल में गांधी वादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है । गांधी नीति के द्वारा जन मानस को परिवर्तित करने का प्रयास किया है । प्रत्येक युग के भक्तों के अश्रुओं में कथानक पौराणिक घटनाओं से लिया गया है ।

1:- अश्रुमाल ~~भावप्रवेश~~ - पृ०- 6

2:- अश्रुमाल - पृ०- 8

अपनी कल्पना से रीतिकालीन कलेवर में गांधी वादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन माहौर जी की मौलिकता है । बात माहौर जी ने अपने समय की अपने तरीके से कहने का प्रयास किया है , जिसे आवरण रीति काल का दिया है । सतयुग भक्तों के आंसू के अन्तर्गत - ध्रुव , प्रह्लाद एवं गजेन्द्र के आंसू , त्रेता के भक्तों में - भरत , शबरी , एवं हनुमान , द्वापर युग के भक्तों में गोपियों और , द्रोपदी के आंसू तथा कलियुग के भक्तों में गोस्वामी तुलसी , मीरा, मातृ भूमि एवं दीन दुखियों के आंसुओं का संकलन कर अश्रुमाल की रचना हुयी है ।

अ:- सतयुग के भक्त :-

1:- ध्रुव के आंसू :-

ध्रुव के आंसओं के माध्यम से माहौर जी ने व्यक्ति को सांसारिक ऐश्वर्य को त्याग कर ईश्वर की ओरे उन्मुख होने की प्रेरणा दी है । प्रभु को हृदय में धारण किये ईश्वर से मिलने के लिये व्याकुल ध्रुव की आंखों में आंसुओं की धारा का प्रवाह कितना मार्मिक है -

"मातृ पिता सों तिरस्कृत ह्वै, ध्रुव प्रेम वियोग के बन उतारे ।
आनन भूमि के मातु कह्यौ, सुन तात प्रभु सब संकट टारे "।।
कानन पहुंचे जब राम तो नाम मिल कब राम से बात विचारे ।
धार लगे प्रभु को हिय में ,दृग वारे लगे असुआन की धारे ।।

इस छन्द की अन्तिम पंक्ति में माहौर जी ने अत्यन्त मृदु एवं मार्मिक तथ्य का प्रतिपादन किया है कि राम को हृदय में धारण करने के लिये हृदय के अज्ञान जन्य विकारों को ध्रुव ने आंसुओं के माध्यम से निकाल दिया ।

ध्रुव के साथ राम का नाम सम्पृक्त कर माहौर जी ने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है । पुराणों में कहीं भी ध्रुव के साथ राम का नाम नहीं आया क्यों कि ध्रुव के समय में राम का अस्तित्व ही नहीं था । माहौर

1:- अश्रुमाल - पृ0- 10

जी राम को केवल दाशरथि राम न मानकर व्यापक ब्रह्म मानते हैं । सर्वत्र रमण करने वाली सत्ता के रूप में उन्होंने राम को देखा है । इसी धारणा को लक्ष्य कर माहौर जी ने ध्रुव की आख्यायिका के साथ राम का नाम सम्पृक्त किया महात्मा गाँधी भी परम सत्ता को राम कह कर घोषित कर रहे थे, जनता में भी तुलसी कृत रामायण का विशेष प्रभाव था ।

2:- प्रह्लाद के आँसू :-

प्रह्लाद की आख्यायिका के माध्यम से माहौर जी ने अंग्रेजों की उत्पीड़न वृत्ति का मार्मिक चित्रण प्रतीकात्मक ढंग से किया है । "प्रह्लाद के आँसू" माहौर जी को गाँधी वादी सत्याग्रह की नीति को अभिव्यंजित करते हैं । इसमें सत्य के लिये आग्रह : राम की प्राप्ति के लिये प्रह्लाद का हठ : , उसके मार्ग की विविध कठिनाइयाँ :प्रह्लाद को दी गयीं विविध यातनायें : तथा अन्त में नरसिंह के रूप में सत्य का प्रादुर्भाव एवं प्रह्लाद के लक्ष्य की पूर्ति को अश्रुओं के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है । जिस प्रकार प्रह्लाद को सत्य मार्ग से विचलित करने को मायावी हिरण्यकशिपु विभिन्न प्रकार की यातनायें दे रहा था उसी प्रकार उपनिवेश वादी अंग्रेज महात्मा गाँधी को सत्य मार्ग पर चलने पर प्रताड़ित करते थे । अन्त में प्रह्लाद की ही भाँति गाँधी जी को असत्य के ऊपर विजय प्राप्त होती है । उन्हें तो प्रह्लाद ही की भाँति सत्य को परिणाम देने वाली अक्षय शक्ति में अटूट विश्वास था -

"हिरना कुश नास के हेतु किधौं, नरसिंह बनै प्रह्लाद के आँसू" [1] ।

प्रह्लाद की आख्यायिका के साथ माहौर जी ने सीता और राम के नाम का योग कर सीताराम नाम की सार्थकता सिद्ध की है । अन्य कथाकारों ने केवल राम की ही चर्चा प्रह्लाद के साथ सम्पृक्त की है । विष्णु पुराण में तो राम का नाम ही नहीं वहाँ तो विष्णु का नाम आया है [2] । माहौर जी ने सीता और राम का उल्लेख करते हुये लिखा -

---

1:- अश्रुमाल - पृ०- 12

2:- विष्णु पुराण प्रथम अध्याय 17 के 14 तथा 15 श्लोक

"सिया राम की भक्ति की भावना सों, रचिवे अति रम्य विधान लगे ।
बसिवे पितु जाँघ में प्रान लगे, बसिवे हिय में भगवान लगे ।।
भगवान की दिव्य कृपा को भलो नित देन प्रतक्ष प्रमान लगे ।
दृग प्रेम के अंसु बहान लगे, बरखा ऋतु कौ सरसान लगे ।।

यहाँ पर "राम" शब्द परम सत्य के लिये प्रयुक्त है और "सीता" शब्द सत्य की महाशक्ति के रूप में सार्थक है । भक्ति भावना पूरित छन्दों द्वारा माधौर जी ने करूणा में वीर भाव का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया है -

"प्रगट्यो प्रभु प्रेम प्रभाकर सों जग जीवन को मन कंज विकासु ।
दुरबुद्धिदनी होलिका ज्वाल की मास में होलिका के प्रिय प्रान विनास ।।
नित नेह निकुंज के सींचिवे को दृग राखत हैं दिन रैन सुपासु ।
हिरनाकुश नास के हेतु किधौं, नर सिंह बने प्रहलाद के आंसु ।।

3:- गजेन्द्र के आँसू:-

गजेन्द्र के आँसू के माध्यम से माधौर जी ने उस समय की दैन्य स्थिति को प्रस्तुत किया है जब भारतीय जनता पर घोर अत्याचार हो रहे थे और वह निराशा के अन्धकार में डूबी थी । जलियाँ वाला हत्याकाण्ड की भीषणता से जनता त्रस्त थी । जलियाँवाला काण्ड की नृशंसता का वर्णन करते हुये सुभद्रा कुमारी चौहान लिखती हैं -

"कोमल बालक मरे यहाँ गोली खा खा कर ।
कलियाँ उनके लिये गिराना थोड़ा लाकर ।।
आशाओं से भरे हृदय भी छिन्न हुये हैं ।
अपने प्रिय परिवार देश से भिन्न हुये हैं "[2] ।

इसी दृश्य का वर्णन माखन लाल चतुर्वेदी माता शीर्षक कविता में करते हैं -

---

1:- अश्रुमाल - पृ० - 12

2:- सुभद्रा कुमारी चौहान - मुकुल - पृ०- 81

"कते हुये पीटे जाते हैं, भारी शोर मचाते हैं ।

हा! हा! हमें पीटने वाले, जरा नहीं सकुचाते हैं"[1] ।।

ऐसी अवस्था में भारतीय जनता की अन्तरात्मा से विविध भावनायें गजेन्द्र के आँसू के रूप में प्रस्फुटित हुयीं । गजेन्द्र को भारत का प्रतीक उपयुक्त ही माना है । आख्यायिका के अनुसार गजेन्द्र अत्यन्त बलवान था परन्तु भाग्यवश उसे ग्राह ने पकड़ लिया था । ग्राह यहाँ अंग्रेजी शासन का प्रतीक है । जब गजेन्द्र का समस्त अहंकार नष्ट हो गया तो उसने भगवान को पुकारा भगवान ने उसे मुक्त किया। ठीक उसी प्रकार जब भारत ने हिंसक साधन तथा अहंकार त्याग मोहन :गाँधीजी : का सम्बल ग्रहण किया तो उसे स्वतंत्रता प्राप्त हुयी -

"दुख मोचन लोचन में उमड़े अवगाह,प्रवाह अगाह भये ।
करुणा के भरे करुणा निधि के, प्रगटाश्रम की चित ठान भये ।।
कवि "माथुर" हेममयी क्षिति में, तजु नेम सुप्रेम के बीज बये ।
तब नक्र-निकंदन हेतु अनंद गयन्द के आँसू गुविन्द भये"[2] ।।

ब:- त्रेता युग के भक्त :-

1:- भरत के आँसू :-

भरत के आँसू का कथानक रामायण से लिया गया है । उसमें नीति, भक्ति तथा त्याग का अद्भुत सामंजस्य है । भरत के आँसू के माध्यम से माथुर जी ने उस भारतीय संस्कृति का चित्र खींचा है जिसमें अगाध भातृ - प्रेम की भावना व्याप्त थी । समाज के लिये भाई राज्य रूपी विभूति को भी तिलांजलि दे देता है । इस कथानक को प्रस्तुत कर माथुर जी ने भारतीयों की त्याग वृत्ति सुदृढ़ कर राष्ट्र कल्याण भातृ - प्रेम को सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया । कैकेयी के चरित्र के माध्यम से तत्कालीन राजनीति की उस कुटिलता का दिग्दर्शन किया है जो स्वार्थ साधना निमित्त राष्ट्र - विभाजन की नीति को -

---

1:- माखन लाल चतुर्वेदी - "माता"

2:- अश्रुमाल - पृ०- 14

प्रोत्साहित कर रही थी -

"राम न जाते कबहु बन को,
गृह ऐसी कुटेकिनी मातु न होती ,
केकयी नन्द के नैननि तें,
बरसात बिना बरसात न होती ।। "

:अनुमान - पृ०- 14 :

सीता राम के दर्शनार्थ भरत चित्रकूट पहुंचते हैं उस स्थल का जो मार्मिक वर्णन माहोर जी ने किया वह कदाचित तुलसी और मैथिली शरण गुप्त भी न कर सके है । माहोर जी के भरत तो हृदय में राम के दर्शन की लालसा लिये भरतभाव से चित्रकूट की ओर जा रहे हैं , कितनी मार्मिकता है देखिये -

गवने सिय राम के दर्शन कों, मन मांहि मयूर सो ठाम ठने ।
रसना में सियराम सदा, नित चातक सी चित चाह सने ।।
सियराम की आस धरे उर में, उमगावत हैं जल विन्दु घने ।
घनश्याम से राम कों हेरत ही, घनश्याम भरत के नन बने ।।

भरत का भ्रातृ प्रेम भी अप्रतिम है । श्री राम की पादुका से रति रखने वाला भरत का हृदय कितना विशाल है -

प्रभु पादुका के प्रिय प्रेमी बने, नित नेमी बने सम चन्दन के
+ + + + +
यश कैसे कहैं यक आनन सों, सहसानन हारे फनिनन्दन के ।
अंसुआ गये कैकयी नन्दन के, वश में करिबे रघुनन्दन के ।।

भरत को भारत , राम को भारत का गौरव , सीता को उसकी श्री कैकयी की दुर्बुद्धि का प्रतीक मानकर यदि "भरत के आंसू" का चिन्तन किया जाय तो यह महात्मा गांधी के नेतृत्व में अग्रसारित भारत का वास्तविक चित्र प्रस्तुत - करता है ।

------------ 0 ------------

सबरी के आँसु :-

सबरी का कथानक रामायण में मिलता है जिसमें सबरी को राम की भक्ति में विह्वल दिखलाया गया है । राम भक्ति के वशीभूत हो उसका आतिथ्य प्रेम से स्वीकार करते हैं -

> कन्द मूल फल सुरस अति दिये राम कहुं आनि ।।
> प्रेम सहित प्रभु खाए बारम्बार बखानि[1] ।

तुलसी ने भक्तिजन के रूप में शबरी के चरित्र का विशेष उत्कर्ष दिखलाया है । मैथिली शरण गुप्त साकेत में इस प्रसंग में केवल यह कह कर सन्तोष कर लेते हैं -

> सदा भाव के भूखे प्रभु ने
> शबरी का आतिथ्य लिया[2] ।

माहौर जी ने शबरी के प्रसंग में जो आत्मीयता दिखलायी वह हृदय को स्पर्श करने वाली है -

> प्रभु कौं वर बेर समर्पन में ,
> सबरी दृग में अंसुआ भर लाई ।
> यह एकतें एक हैं मीठे महा,
> अस बेरहिं बेर कहीं रघुराइ ।
> बहु ऊख मयूख पियषहि की,
> बहु भाँति हरी मधु की मधुताई ।
> अंसुआन सौं बेरहिं बेर मनौं,
> भरिबे लगी बेरन में मधुराई[3] ।।

माहौर जी के समय में युग नयी करवट ले रहा था । छुआ छूत को मिटाने का अभियान तीव्र गति से चल रहा था । गाँधी जी की राष्ट्रीय भावना में -

---

1:- रामचरित मानस -अरण्य काण्ड - 34

2:- साकेत - 11 पृ०- 427 - गुप्त जी

3:- अनुमान - पृ०- 18 - माहौर जी

अस्पृश्यता निवारण अथवा अछूतों की दयनीय स्थिति का निराकरण अत्यधिक महत्वपूर्ण था । हिन्दू समाज एवं राष्ट्रीयता के लिये वे इस भेद भाव की भावना को घातक समझते थे । मैथिली शरण गुप्त ने गाँधी जी की इस विचार धारा का अनुमोदन करते हुये "अछूतोद्धार" कविता में लिखा है -

देकर सबको आदर दान,
दो निज मनुष्यत्व को मान[1] ।।

इसी समस्या का समाधान साकेत में गुप्त जी ने राम सीता को कोल , किरात, भील आदि निम्न जातियों के साथ आत्मीय सम्बन्ध जोड़ कर किया है । माहौर जी इस समस्या से अछूते नहीं रहे । वे भी छुआ छूत को समाज के लिये निन्दनीय मानते थे । स्वयं माहौर जी अछूतों एवं निम्न वर्ग के लोगों के साथ बैठ कर काव्य पाठ किया करते थे । शबरी के अंश को भी छुआ छूत निवारण के द्योतक के रूप में देखा जा सकता है -

"भक्ति की भावना जागी जब, तब संसृति मद वासना त्यागी ।
प्रेम के अश्रु की गंग बहाय, अछूतता अंग की धोवन लागी "[2] ।।

स:- हनुमान के आँसू :-

हनुमान के आँसू के माध्यम से माहौर जी ने नारी वर्ग की दुर्दशा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है । सीता को नारी वर्ग का प्रतीक मान कर उस की वेदना का सजीव चित्रण है । प्रस्तुत कथानक रामायण के सुन्दर काण्ड से लिया गया है । वाल्मीकि कृत रामायण में हनुमान जी अशोक वाटिका में बैठी सीता के समक्ष वृक्ष की ओट से राजा दशरथ के वर्णन से राम कथा प्रारम्भ कर देते हैं और फिर अन्त में राम की मुद्रिका देकर सीता के हृदय में विश्वास उत्पन्न करते हैं । लंका से वापस लौट कर सीता का तथा लंका का पूरा वृत्तान्त राम को सुनाते हैं । इसी प्रसंग का वर्णन माहौर जी ने बड़ी ही मार्मिकता -

---

1:- हिन्दू - पृ0- 114 - मैथिली शरण गुप्त

2:- अनुमाल - पृ0- 17

3:- वाल्मीकि कृत रामायण- सुन्दरकाण्ड 31/2 और 36/2

के साथ किया है । उनमें हनुमान केवल आँसुओं के माध्यम से ही राम का नाम लिख देते हैं आँसुओं की दो बूँदों से जो स्वाभाविकता और सरसता है वह अप्रतिम है -

> मुद्रिका डार कपीस दई, लख सीय के हीय भो सोच नवीनो ।
> कीस प्रवीनो बखानो प्रभु यश, सीय समीप प्रवेसति कीनो ।।
> लीनो विलोकन चीनों जबै, कपि दीनों दिखाय सुभ्चिह्न को चीनो ।
> नैनन में अँसुआन के बुंद, रकार मकार तबै लिख दीनो ।। अश्रु० ।।

राम के द्वारा सीता की कुशलता पूछने पर हनुमान उनकी वेदना को शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं कर पाते हैं भावातिरेक में वे केवल आँसुओं से नीर बहार कर ही सीता के वियोग की व्यथा का दिग्दर्शन कर देते हैं । ऐसा चित्रण रामायण में कहीं भी नहीं मिलता है । यह प्रसंग माहोर जी की मौलिक उद्भावना शक्ति का परिचायक है -

> पूछत राम सप्रेम कपीमहि, तास कहो सिय की कुसलाई ।
> दूज को सोम भो रोम बताय, बताय रहे तन की दुबराई ।।
> रं- दिखाय के नैनन को तन अंग की रंगत ह दरसाई ।
> सीय वियोग व्यथा की कथा करि सूचित नैननि नीर बहाई[1] ।।

सारी कथा आँसुओं की धारा द्वारा ही अभिव्यंजित हो जाती है । शब्द चित्र उपस्थित हो जाता है । रीति कालीन बिम्ब योजना , विचित्र कल्पना शक्ति एवं चित्रात्मकता प्रस्तुत कर कवि ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का परिचय दिया है । "दूज को सोम भो रोम बताय, बताय रहे तन की - दुबराई," में माहोर जी ने सीता जी के शरीर की कृशता के लिये द्वितीया के चन्द्रमा को उपमान चुना , जो रीति कालीन कवियों की शास्ति परम्परागत उपमान है । परन्तु इसमें एक नयी कल्पना माहोर जी ने की है वह यह है कि एक ही उपमान चन्द्रमा के माध्यम से भारतीय नारी की दुर्बलता , उसकी - पवित्रता तथा मंगलकारी स्वरूप उपस्थित किया है :द्वितीया का चन्द्रमा -

---

1:- अश्रुमाल - हनुमान के आँसू - माहोर

क्षीण काय होने के साथ पवित्रता तथा मंगल का भी सूचक है ।: इसी प्रकार अन्यत्र हनुमान के आँसुओं के माध्यम से जिस बिम्ब योजना को प्रस्तुत किया है वह माधौर जी की अप्रतिम कल्पना शक्ति का उदाहरण है -

"बिरहा कुल सीय की दीन दशा,
नहिं बात कही मुख सों दुख भीनी ।।
हनुमंत की ग्रीवा झुकी महि ओर ,
रुकी वर कंठ की बानी प्रवीनी ।।
अभिधान के पात्र में सोक मयी ,
अंसुआन की स्याही तब भरि लीनी ।।
कल्पीकृत लेखिनी सों महिपत्र ,
पैसीय बिथा की कथा लिख दीनी[1] ।।

3:- द्वापर के भक्त :-

अ:- गोपियों के आंसू :-

गोपियों के आंसू शीर्षक के अन्तर्गत जितने भी छन्द माधौर जी ने लिखे सभी में प्रोषित पतिका नायिका की वेदना का वर्णन किया है । समस्त छन्द घनश्याम वियोग पर ही आधारित हैं । इसमें कवि की नवीनता यह है कि वियोग का वर्णन इस रूप में किया है कि अन्त में भाव अश्रु पर ही आकर समाप्त होता है -

"श्याम वियोग में प्रान की हानि, न होय कहूं तब जान किये अस ।
जीवन राखिबे को अँखियाँ, अंसुआन ही में भर लाई सुधा रस "[2] ।।

उद्धव की योग कथा का उल्लेख हंस की नीर - क्षीर विवेचनी प्रवृत्ति के आधार पर किया गया है । गोपियों का मानस हंस योग के नीर को बिना स्पर्श किये ही कृष्ण छवि क्षीर का ही पान करता है । आगे चलकर इसी भाव को कवि ने

1:- अश्रुमाल - हनुमान के आंसू -माधौर
2:- अश्रुमाल - गोपियों के आंसू - माधौर

इन पंक्तियों द्वारा पूर्ण किया है -

अश्रु के बुंद भये मुक्ता ,

दृग गोपिन के भये मान सरोवर ।। अश्रुमाल ।।

कृष्ण प्रेम की योग से तुलना करती हुयी गोपियां अनेक उनमानों द्वारा अपने प्रेम की महानता बतलाती हैं । योग पर प्रेम की विजय दिखलाना कवि का अभीष्ट है । योग निवृत्ति मार्गी व प्रेम प्रवृत्ति मूलक है । गोपियों के आंसू के माध्यम से माहौर जी ने तत्कालीन निवृत्तिमार्ग के अनुयायियों को प्रवृत्ति मार्ग उपदेश देते हुये उन्हें जीवन की ओर अग्रसर करने की प्रेरणा देते हैं । देश को स्वतंत्र जीवन की ओर अग्रसर करने की प्रेरणा देते हैं । देश को स्वतंत्र कराने के लिये जीवन को गतिमान बनाये रखना युग की आवश्यकता थी । युग की पुकार थी कि हम गोपियों के प्रेम की भांति देश - प्रेम की ओर अग्रसर हों । गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम इस बात का प्रतीक है कि प्रेम के माध्यम से ही , गांधी वादी नीति का अनुसरण करते हुये , प्रवृत्तिमार्ग को अपना कर भारत वासी देश को स्वतंत्र कराने में सक्षम होंगे । गोपियों के आंसू में सारे भारत के आंसू है । गोपियां जनता की प्रतीक है और कृष्ण भारत के । गोपियों की कृष्ण के प्रति आसक्ति जनता की भारत के प्रति रागात्मक वृत्ति की परिचायक है । गोपियों के आंसू के माध्यम से माहौर जी ने युग सन्देश देकर भारत जनता के प्रति स्वदेश प्रेम की भावना को तीव्रतर किया है । गोपियों के प्रेम की विजय के रूप में भारतीय जनता की विजय दिखलाकर मौलिक उद्भावना का परिचय दिया है -

योग के संग में युद्ध के काज, समेट के अश्रु को व्यूह सजायो ।

ओजित ज्ञान के बान चले, भये बेधक रंचक ठौर न पायो ।

प्रेम प्रभाव त्रिलोकि सशोक, रनांगन त्याग के नेम परायो ।

कृष्ण के मित्र श्री उद्धव सो, ब्रज गोपिन [illegible] ति को पत्र लिखायो ।।

---------------- 0 ---------------

ब:- द्रौपदी के आंसू -

भारतीय जनता में पौराणिककथाओं के प्रति श्रद्धा के संस्कारों को पुंजीभूत देख कर माहौर जी ने अपने समय की जनता की दयनीय दशा की अभिव्यंजना द्रौपदी के आंसुओं के माध्यम से की है । द्रौपदी के चीर हरण की कथा महा-भारत की प्रसिद्ध आख्यायिका है । माहौर जी ने करुण रस के सात्विक अनु-भाव "आंसू" को विषयगत करके द्रौपदी के चीर हरण की कथा मूल रूप में प्रस्तुत न कर द्रौपदी के आंसू का चित्रांकन किया है , जो उनकी मौलिक उद्भावना शक्ति का परिचायक है । द्रौपदी के आंसू को प्रतीकात्मक रूप में ग्रहण कर कवि ने देश की दयनीय दशा का तथा उस दशा की अनुभूति कराने वाले आंसुओं का अद्भुत प्रभाव दिखलाया है ।

युगीन सामाजिक बिम्ब प्रस्तुत करने के लिये कवि ने कतिपय मौलिक उद्भावनायें प्रस्तुत की हैं । महाभारत की आख्यायिका में तो द्रौपदी के आंसू केवल करुणा के भाव से पूरित होकर ही निकलते हैं लेकिन माहौर जी ने द्रौपदी के आंसुओं में करुण के साथ श्रृंगार , वीर रसों की अभिव्यंजना बड़ी ही कुशलता से की है -

करुण में श्रृंगार रस -

"लख द्रौपदी दुष्ट दुर्योधन की,
    हिय-वासना आनन लौं दुरकी ।
द्रुत दौर दुशासन सारी गही ,
    कुच सीस सों सारी जौं सरकी ।
दुखिया दृग कंज लगे रचिबे ,
    रचना दूसरे रत्नाकर की ।
अँसुआन के रतन बटोर मना ,
    भर भेंट करें करुनाकर की"[1] ।।

1:- अश्रुमाल -द्रौपदी के आंसू - माहौर

करुण में वीर रस -

सुचि पाण्डव राज के धर्म की धारना ,

धारन में जगवीर बने ।

दुर्योधन दुष्ट दुसासन का ,

दरित कई भीम प्रवीण बन ।

अंग अंग लाज बचायबे को ,

मृदु मंजुल विस्तृत चीर बने ।

कु वंस की द्रौपदी के असुआ ,

किधौं पारथ वीर के तीर बने"[1]।

कलियुग के आंसु :-

1:- तुलसी दास के आंसू :-

तुलसी दास के आंसू के माध्यम से माहोर जी ने तुलसी दास के जीवन की उस घटना का विवरण काव्य कथा द्वारा प्रस्तुत किया है जिसके प्रभाव स्वरूप वे अपने वैवाहिक विषय भोग की कामना को त्याग राम की भक्ति की ओर उन्मुख हुये । तुलसी के आंसू भी गांधी के सिद्धान्तों का पोषण करते हुये प्रतीत होते हैं । अपनी पत्नी को त्याग कर राम की भक्ति में लीन तुलसी मानों भारतीयों का त्याग और बलिदान का सन्देश दे रहे हैं -

उपदेश सुदेस सुन्यो जब तें ,

अवधेस रमेस पुकारन लागे ।

जगतीतल कौं कदलीतरु ,

बिनु सार विचार उचारन लागे ।

हरि नेह नये नव नैनन में ,

रतनावली अंसु को धारन लागे ।

1:- अनुमान - द्रौपदी के आंसु - माहोर

प्रभु नाम की रतनावली पै,

अपनी रतनावली वारन लागे[1]।

जगतीतल तभी तक है जब तक मनुष्य अपने स्व के तुष्टी करण के लिये विषय वासना की ओर दौड़ता है । अन्ततोगत्वा यह संसार कदली के समान असार है क्यों कि उसमें शाश्वत आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती । शाश्वत आनन्द का धाम तो एक मात्र राम का मन्दिर है । जिन दिनों माहोर जी ने यह छन्द लिखे, उस समय सारी जनता अपना सर्वस्व त्याग मातृभमि के लिये बलिदान कर रही थी । "प्रभु नाम की रतनावली पे अपनी रतनावली वारन लागे" कह कर माहोर जी ने अभिव्यंजित किया है कि जिन व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण जनता पतन की ओर जा रही थी, वे हेय हैं तथा उनको अपने देश के ऊपर बलिदान कर देना भारतीयों का परम लक्ष्य है यही गांधी जी कहते थे, उनका रामराज्य स्वराज्य ही था और उसकी प्राप्ति के लिये भौतिक स्वार्थों को त्याग कर चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर होना भारतीयों का परम कर्तव्य है । इस प्रकार तुलसी के आंसू के माध्यम से माहोर जी ने अप्रत्यक्ष रूप से [illegible] के त्याग बलिदान एवं स्वराज्य के प्राप्ति के साधनों की ओर संकेत किया है ।

2:- मीरा के आंसू :-

"मीरा के आंसू" के माध्यम से माहोर जी ने महात्मागांधी के सत्य प्रेम और अहिंसा के सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन किया है । महात्मा गांधी के अहिंसा वादी सिद्धान्तों को न मानने वालों के मार्ग को गांधी जी पुद्गल का रास्ता कहते थे । वे तलवार के मार्ग को ही अपना कर स्वातंत्र्य संग्राम जीतना चाहते थे परन्तु गांधी जी का सिद्धान्त इसके विपरीत था । वे अहिंसा और प्रेम के द्वारा युग में परिवर्तन लाने का कार्य कर रहे थे ।

माहोर जी ने मीरा के आंसू में मीरा को जनता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया और गांधी के परम सत्य को भगवान कृष्ण के रूप में कल्पित कर बीस सवैया छन्दों में सम्पूर्ण रूपक को आबद्ध किया है ।

1:- अनुमान - तुलसी के आंसू - कवीन्द्र माहोर

भारत की जनता गांधी के सिद्धान्तों में उसी प्रकार अनुरक्त थी जैसे कि मीरा भगवान कृष्ण की भक्ति में लीन थी । जनता अपने मन को सारी वृत्तियों से हटाकर केवल महात्मा गांधी के पीछे चल रही थी ।

मोर बना घनश्याम को है , जग के मग सों मन मोर के मीरा ।

\+ + + + + +

चोर लयो चित चोर हु को नव नवनन नेह निचोर के मीरा ।।

: अनुमाल :

जिस समय "मीरा के आँसू" छन्द माहौर जी ने लिखे उस समय महात्मा गांधी के सत्य , अहिंसा और प्रेम की व्यापकता भारत में ही नहीं अपितु विश्व में व्याप्त हो चुकी थी । नेता अपने भाषणों द्वारा गांधी वादी सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे , कवि और कलाकार उन्हीं सिद्धान्तों का समर्थन अपनी कृतियों के माध्यम से कर रहे थे ।

यदि उपर्युक्त "मीरा के आंसू" नामक छन्दों का अर्थ भक्ति को पुष्ट करने तथा उसका व्यापक प्रचार के सन्दर्भ में लिया जाय तब भी महात्मा गांधी के लक्ष्य का ही पोषण होता है क्यों कि गांधी का स्वातन्त्र्य संग्राम भक्ति से परिचालित था वे नित्य प्रार्थना करते तथा अपने स्वतन्त्रता संग्राम को एक तप - साधना कहते थे , जो कि भक्ति का ही पर्याय है । देखिये माहौर जी इसी बात को मीरा के आँसू के माध्यम से इस प्रकार कहते हैं -

"जगतीतल जोति जगायन को ,
जस पाय गई रस प्रेम की पाली ।
मन मोहिबे को मन मोहन मन्त्र सों ,
मंजु सनेह के यन्त्र में ढाली ।
भव भाविनी भक्ति की भावना सों ,
दृग अश्रु को अंग उमंग सम्हाली ।
विष प्याला विलोकि के मीरा मना ,
भर ल्यायी अमोल पियूष की प्याली ;।।

: अनुमाल -पृ0-40 :

यहाँ "मनमोहन मन्त्र" को "गाँधी के सिद्धान्त" तथा मीरा को जनता का प्रतीक मानने पर लक्ष्यार्थ स्पष्ट हो जाता है ।

माहोर जी के ही समान उनके समकालीन अन्य कवियों ने भी मीरा की आख्यायिका के माध्यम से युगीन घटनाओं का प्रतिपादन किया है । ब्रज-भाषाचार्य श्री सेवकेन्द्र त्रिपाठी ने "मीरा का विषपान" शीर्षक से कतिपय छन्द लिखे, जो गाँधी वादी नीति का ही उद्घोष करते हैं । अभिधार्थ की दृष्टि से मीरा विष में साक्षात भगवान कृष्ण के दर्शन करती है और विषपान कर जाती है । वह विष के प्रभाव से अक्षत मुक्त रहीयहाँ तक कि विष स्वयं अमरत्व पद प्राप्त कर गया[1] । "मीरा के विषपान" से मे गाँधी की टेकवादी अहिंसात्मक नीति अभिव्यंजित है । स्वतन्त्रता संग्राम में सत्याग्रह तथा असहयोग आन्दोलन में जो यातनायें जनता को सहन करनी पड़ती थी वे निश्चय ही विषपान के समान प्राण घातक थीं परन्तु परिणाम उनका कल्याण कारी था जनता को आत्म बल प्राप्त हो रहा था । सारे विश्व के लिये सन्देश प्राप्त हो रहा था ।

"मिल्यौ भोज में भोज न प्रानन को, विषपान में जीवन प्रान मिल्यौ ।
अपमान में आपुनेह गृह के, जिहि को जग को सनमान मिल्यौ ।
अभियान को धारन तारन हार उसासन में ध्रुव ध्यान मिल्यौ ।
जिहि वेदना में वरदान मिल्यौ, जिहि भावना में भगवान मिल्यौ ।[2]

3:- मातृ भूमि के आंसू :-

6 सवैयों छन्दों में मातृभूमि के आँसुओं का वर्णन कवि ने आँसुओं के लक्षण के रूप में किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि कवि के "मातृभूमि के आंसू" लक्षण सूचक हैं तथा इसके पूर्व ~~वर्णित~~ वर्णित आख्यायिकायें इन लक्षणों के उदाहरण के रूप में

1:- विष के अमृत्व से तात्पर्य है कि मीरा की कहानी के साथ विषपान की कथा तथा विषपान से मीरा के अमृत्व की कथा अमर हो गयी ।

2:- ब्रज वर्तिका – श्री सेवकेन्द्र त्रिपाठी – पृ०- 39

वर्णित हैं । इन छन्दों में जिन तथ्यों की अभिव्यक्ति है वह तत्कालीन परि-स्थितियों तथा घटनाओंके बिम्ब स्वरूप है । करुणाप्लावित अश्रु उन व्यक्तियों के हृदय के उद्‌गार है जो दीर्घ कालीन परतन्त्रता के कारण पूर्ण रूपेण अपना स्वत्व खो बैठे थे । देश की दुर्दशा एवं उत्पीड़न से अवगत कराने वाले मातम् के आँसू समाचार पत्रों की भांति भाव विस्तारक हैं -

> कै करुणा के कलेवर के हिय पीड़ित के उदगार हैं आँसू ।
> कै पराधीनता दीनता के दरबार के ये प्रतिहार हैं आँसू ।
> कै दुख दारुन क्लेस के लेख प्रकासन को अखबार हैं आँसू ।
> कै कहिबे करतार सों हाल अपार वे तार के तार हैं आँसू[1] ।

यहाँ पर "अखबार" के रूप में अश्रुओं की कल्पना माहौर जी की मौलिक एवं नवीन उद्‌भावना है । मानवता के रूप में परमेश्वर स्वयं साकार हुआ है । इन आँसुओं ने भारत की दुर्दशा को , उसके उत्पीड़न को परमेश्वर तक पहुँचाने का कार्य किया है । "कै कहिबे करतार सों हाल अपार वे तार के तार है आँसू । " कवि की यह उक्ति स्पष्ट ध्वनित कर रही है कि भारत की जनता अपनी करुण कहानी अदृश्य सत्ता परब्रह्म परमेश्वर से अश्रुओं के रूप में कह रही है । "वेतार के तार" शब्द माहौर जी के वैज्ञानिक ज्ञान को अभिव्यक्त करते हैं ।

महात्मा गांधी ने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में तपस्या के महत्व को बतलाते हुये कहा था ------ मैं दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूँ कि यदि भारत ने दुख और तपस्या की आग में से गुजरने जैसे धीरज दिखाया तो वह दुनिया की शान्ति और ठोस प्रगति में स्थायी योगदान कर सकता है[2] । माहौर जी ने भी अश्रुओं के माध्यम से तपस्या को ही स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये अनिवार्य बतलाया है । आँसू दिन रात्रि की तपस्या के सूचक हैं -

> "मानस तन्त्र को क्लेश मयी ,
> मृदु तारन की झंकार हैं आँसू ।

1:- अश्रुमाल - मातृभूमि के आँसू - ब्रजेन्द्र माहौर

2:- यंग इण्डिया - 11-8-27

रैन दिना वर वेदना के,

भरे वेदिना के अवतार हैं आंसू ।।

ये मातृभूमि के आँसू मानो स्वतन्त्रता के उपहार हैं क्यों कि आंसू हर्षातिरेक के बोधक भी होते हैं -

"हार है मातृभू के हिय के -

के स्वतंत्रता के उपकार है आंसू ।।

मातृभूमि के आँसुओं में नवीनता यह है कि करुणा में वीर रस का समावेश माहौर जी ने बड़ी ही कुशलता से किया है -

पाप पहार प्रहारन कों, वर वज्र प्रती बन जायेंगे आंसू ।

ताप त्रिताप के नाशिबे का, सरदेन्दु कला सरसायेंगे आंसू ।

क्लेश के व्यूह विछेदन का, रघुवीर के तीर सुहायेंगे आंसू ।

दूर करें जग की करुना, करुना निधि को प्रगटायेंगे आंसू[1] ।।

4:- दीन दुखियों के आंसू :-

इस शीर्षक के अन्तर्गत सात सवैया छन्द हैं । "दीन दुखियों के आंसू" भारत की दीन एवं असहाय जनता के आंसू हैं, जो स्वतन्त्रता के लिये सतत संघर्ष रत है । महात्मा गाँधी के सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से प्रतिपादन है । स्वातन्त्र्य संग्राम में अहिंसा, धरना देना व असहयोग आन्दोलन आदि गांधी वादी नीतियों का जनता अनुसरण कर रही थी । स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये भारत माता द्वारा अपने पुत्रों का बलिदान ही मानो आंखों से निकलने वाले अश्रु हैं-

"अँखियाँ हैं ललात्पती तेरे लिये, निज गोद के लाल लुटा रही" ।

दूसरे छन्द में तो पूर्ण रूपेण स्पष्ट है कि समस्त अश्रुमाल महात्मा गाँधी की नीति का अनुसरण तथा उसकी व्याख्या है -

---

1:- अश्रुमाल - मातृभूमि के आंसू - माहौर

"सुख सम्पत्ति मंगल मोद सब ,

अभियोग को योग लगे करने ।

परतंत्रता यन्त्रता के तरु में ,

दुख के फल फूल लगे फरने ।

अति दीनता दासता भारत के ,

दृग अश्रु के बिन्दु लगे भरने ।

बन संगी विपत्ति के आंसु मनो ,

झरने सदा आन लगे झरने[1] । "

"अभियोग" शब्द "असहयोग आन्दोलन" की अभिव्यंजना कर रहा है । अन्तिम पंक्ति में गांधी का "धरना देना" का सिद्धान्त प्रतिपादित है । यही गांधी द्वारा संचालित वास्तविक स्वतन्त्रता संग्राम था ।

प्रस्तुत छन्द में शोषित तथा ~~पीड़ित~~ पीड़ित भारतीयों की दुरावस्था का चित्र खींचा गया है -

"परतन्त्रता पापिनी पाल परी ,

जब से दुख दीह कसाले भरे ।

धनहीन सदा तिलतें किसान ,

दिन रैन अंजन के तन कढ़े ।

मन छीन भये तन सूख गये ,

नित भूख के पेट में दाह दहे ।

अँसुआ तन के दुखिया जन के ,

हिय के जनु फूट के छाले बहे ।

पराधीनता के समय भारतीय जनता की असहाय स्थिति का बड़ा ही मार्मिक चित्र खींचा है । ऐसी स्थिति में जनता ने गांधी का आश्रय लिया । वह गांधी की ओर आकर्षित हुयी । अहिंसा एवं असहयोग आन्दोलन द्वारा -

---

1:- अश्रुमाल - दीन दुखियों के आंसू - कवीन्द्र माथोर

स्वतन्त्रता संग्राम लड़ा गया जिसमें भारतीय जनता ने अंग्रेजी शासक की हिंसक नीतियों को दलित कर दिया -

> परतन्त्रता वीर प्रवाह भरी ,
>
> सुख शान्ति के सेतु की ओर चली ।
>
> मन मोहित द्रोहिन के दल को ,
>
> मन मोहन मन्त्र की ओर चली ।
>
> गई ओरन सों कर जोर प्रजोर ,
>
> स्वतन्त्रता की रन रोर चली ।
>
> अंसुआन की धार दुखी जन की ,
>
> तरवार की धार की ओर चली ।

अश्रुमाल के सन्दर्भ में कवीन्द्र नाथूराम माहौर के समकालीन कवि श्री कवनेश जी का एक "आंसू" विषयक छन्द देखा जा सकता है जिसमें उन्होंने स्पष्ट कहा है कि भारत की स्वतन्त्रता जनता के आर्द्र आंसुओं का ही प्रति फल है । "अश्रु" का महत्व प्रत्येक युग में रहा । प्रत्येक युग का इतिहास ही मानो अश्रुओं द्वारा लिखा गया । श्री कवनेश जी का छन्द माहौर जी के सम्पूर्ण अश्रुमाल का सारांश प्रस्तुत करता है -

> "भारत कराया मात्र द्रौपदी के आंसुओं ने ,
>
> सीता जी के आंसुओं ने रावण को मारा है ।
>
> देवकी के आंसुओं ने ब्रह्म को बनाया नर ,
>
> दैत्य कुल मार भूमि भार को उतारा है ।
>
> कवनेश रेणुका के आंसुओं ने बार बार ,
>
> भार भार क्षत्रियों का क्षय किया सारा है ।
>
> निठुर स्वतन्त्रते क्या बाजती है तेरे लिये ,
>
> तीन कोटि भारतों के आंसुओं की धारा है ।

-------- 0 --------

3:- सूर - सुधा - निधि : प्रकाशित :

:सं• 2008 : श्रावण पूर्णिमा : सन् 1950 :

कवीन्द्र माथोर द्वारा विरचित "सूर सुधा-निधि" एक चरित्र - प्रधान खण्ड काव्य है जिसमें 99 छन्दों में कवि[1] ने बंगाल के प्रसिद्ध संस्कृत कवि श्री बिल्वमंगल सूरदास का जीवन चरित्र वर्णित किया है । इसके प्रकाशक स्वयं कवीन्द्र माथोर हैं तथा मुद्रक गोस्वामी श्री बिन्दु जी महाराज हैं । पुस्तक दो भागों में है - पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध ।

सन 1950 में भारत स्वतन्त्र हो चुका था अत: नये भारत के निर्माण की समस्या सामने थी । स्वराज्य तो प्राप्त हो चुका था लेकिन "सुराज्य" की कामना जन - मन में थी । जनता में सन्तोष प्रसन्नता की लहर व्याप्त न थी साधारण जन मानस खिन्न था । "व्यंग्य विनोद" में माथोर जी ने इस कांग्रेसी राज्य पर तीव्र प्रहार करते हुये बतलाया है कि शासन नीति से जनता क्षुब्ध थी । नैराश्य की भावना व्यक्ति को ईश्वरोन्मुख बनाती है । व्यक्ति सबकुछ भूलकर ईश्वरोन्मुख हो जाता है । भक्तिकाल के अभ्युदय का कारण तो नैराश्य भावना ही थी । माथोर जी ने उदासीन जनता के दुःख हरने के लिये मानवता के उद्धार के लिये बिल्वमंगल के चरित्र के माध्यम से ईश्वर की ओर से उन्मुख होने की प्रेरणा दी है तथा ईश्वर को ही मुक्ति का साधन बतलाया है । बिल्वमंगल सूर के चरित्रांकन का उद्देश्य निम्न छन्द में व्यंजित है -

> पुण्यतम परम पुनीत इतिहास यह ,
>
> अति सुख राशि दुःख दारुन दरन है ।
>
> असरन सरन कृपेश की कृपा के केन्द्र ,
>
> तारन तरन भक्ति भाव को भरन है ।
>
> हरन कुबुद्धि त्रयताप, अघ ओघन कों,
>
> जैसे तम तोय हित तरङ्गनि किरन है ।
>
> बरन बरन वर बानी को विलास सदा,
>
> मंगल प्रमोद मुक्ति भुक्ति को करन है ।

1:- सूर सुधा निधि - पृ0- 4

कवीन्द्र ने पुस्तक का प्रारम्भ "नगण" से किया है तथा शुभ व्यंजन "ज" का प्रयोग किया है[1] जिसका फल स्वर्ग लाभ तथा सुख - प्रद होता है -

"जयति कुण्डलित शुण्ड गण्ड मंगल छवि छाजे"[2] ।

"सूर सुधा निधि" खण्ड काव्य में माथौर जी ने बंगाल के प्रसिद्ध संस्कृत भाषा के कवि श्री बिल्वमंगल सूरदास का चरित्रांकन किया है । श्री वल्लभाचार्य के शिष्य रुनकता वाले सूरदास और बिल्वमंगल सूरदास दोनों ही कृष्ण भक्त है दोनों की काव्य कला एवं भक्ति पद्धति प्राय: समान है अन्तर केवल जीवन चरित्र में है ।

कथानक स्वत: ही ऐसा उपलब्ध हो गया था जो कि सामयिक आवश्यकता की पूर्ति कर रहा था । उसकी गाथा प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दोनों मार्गों की शिक्षा दे रही थी । अन्त में संसार से वैराग्य तथा भगवद्भक्ति को श्रेयस्कर बतलाया । विवाहिता नारी का पातिव्रत धर्म , पुरुषों की स्वच्छन्दता तथा नारी का कल्याणमय स्वरूप आदि के चित्रण की भी सामग्री प्राप्त हो गयी थी । इन सभी उपादानों को लेकर उक्त चरित्र काव्य की रचना की गयी ।

पुस्तक का प्रारम्भ "मंगलाचरण" से करने के पश्चात कवि ने सूर का जन्म स्थान , पिता का नाम तथा पिता द्वारा ईश्वर से पुत्र कामना की प्रार्थना का चित्रण किया है -

बंग प्रान्त शिव ग्राम इक राजत रुचिर महान ।
द्विज कुल दीपक बसत तहँ रामदास श्री मान ।।

\+ \+ \+ \+

जल बिन सूनौं कमल सर, जीव बिना जिमि देह ।
सुमन बिना सूनौं विटप, सुत बिन सूनौं गेह ।।
यहि प्रकार प्रभु सों कहत, बारहि बार पुकार ।
पार करो दुख सिन्धु तें, कृपा सिन्धु पतवार[3] ।।

1:- गो नाकाच सुख प्रद: क्रमिद प्राक्षर्णानां तथा: ।

2:- सूर सुधा निधि - पृ०- ।

3:- सूर सुधा निधि - मंगलाचरण - कवीन्द्र माथौर

बिल्वमंगल सूर के पिता का नाम रामदास बतलाया गया है । वल्लभ कुली सूरदास के पिता का नाम भी रामदास थे ऐसा विवरण आइने अकबरी और मुंतखिब-उल-तवारीख में आया है । उसमें सूरदास का नाम बाबा रामदास के साथ अकबर की सभा के कलावन्त गायकों में आया है और सूरदास को बाबा राम दास का बेटा कहा गया है । भविष्य पुराण में बिल्वमंगल तथा मदन मोहन सूरदास को अकबरी दरबार से सम्बद्ध किया है परन्तु वल्लभी सूर को चन्द-बरदायी का वंशज बतलाकर उनसे पृथक कर दिया है । अधिकांश विद्वान वल्लभी सूर के पिता को रामदास न मानने के पक्ष में हैं । अत: बिल्वमंगल के पिता को रामदास माना जा सकता है ।

रामदास की प्रार्थना ईश्वर ने सुनी एक सुन्दर गौरवर्ण पुत्र का जन्म हुआ । जन्मोत्सव मनाया गया और पण्डितों से जन्म कुण्डली तैयार करायी गयी । ज्योतिषियों ने कहा कि पुत्र को परम रूपवती तथा पतिव्रता स्त्री मिलेगी , परन्तु यह स्वयं वेश्यागामी होगा । कुछ दिनों पश्चात इसे वैराग्य उत्पन्न होगा और यह परमेश्वर का परम ईश्वर भक्त होगा । पुण्य लाभ कर यह विष्णु पद प्राप्त करेगा -

"भोग विलासिता कों तजके,
फिर नामी बने हरि को अनुरागी ।
त्याग सब धन धाम धरा ,
जग पूज्य बने प्रिय सत विरागी ।

\+ + + +

समस्त पृथ्वी कल्याण करने वाला होगा कृष्णचरित्र का गायन कर महाकवि के रूप में विख्यात होगा -

गावहिं गावहि कृष्ण- चरित्र पवित्र ,
महाकवि को पद पाय अदागी ।
पान करे हरि नाम सुधा,
यहि तें वसुधा बनि है बड़भागी ।।

माता पिता ने बड़े प्यार से पुत्र का लालन - पालन किया उसका नाम बिल्वमंगल रखा गया । विद्याध्ययन के पश्चात एक कुलीन तथा रूपवती -

कन्या से उसका विवाह किया । वैवाहिक यज्ञ अवसर पर चिन्तामणि नामक नाराङ्गना नृत्य करने आई । बिल्वमंगल वहीं उस पर आसक्त हो गये । कुल एवं समाज की लज्जा को त्याग बिल्वमंगल चिन्तामणि वेश्या के यहाँ जाने लगे । पतिव्रता स्त्री के वर्जित करने पर स्पष्ट कह दिया कि वह चिन्तामणि वेश्या पर पूर्ण आसक्त है , वह उसका त्याग नहीं कर सकता । उसकी स्त्री रम्भा उसे रोकने का असफल प्रयास करती है परन्तु सब विफल । पिता ने पुत्र को अपनी सम्पत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया ।

बिल्वमंगल निरन्तर चिन्तामणि के घर जाने लगा एक रात्रि चिन्तामणि के यहाँ जाते समय मार्ग में घोर वृष्टि हुयी , अन्धकार छा गया , मार्ग दिखलायी नहीं पड़ा दैवयोग से एक शव को काष्ठ खण्ड अनुमान कर उस पर बैठ नदी पार की । दरवाजे बन्द मिलने पर खिड़की में लटके सर्प को रस्सी समझ उस के सहारे खिड़की के मार्ग से प्रविष्ट हुये । चिन्तामणि ने बिल्वमंगल को फटकारते हुये कहा कि मेरे अस्थि पंजर युक्त शरीर को छोड़ परमात्मा से प्रेम करो तो संसार सागर से पार हो जाओ । यहीं से बिल्वमंगल को वैराग्य उत्पन्न हो जाता है वे हरि भजन में लीन हो गये और चिन्तामणि भी ईश्वर भक्ति की ओर उन्मुख हो गयी । यहाँ पूर्वार्द्ध की कथा समाप्त हो जाती है । उत्तरार्द्ध में बिल्वमंगल के सन्यासी वेश में विचरणा , तथा एक गृहस्थ के घर में स्वागत की चर्चा है वहाँ पर वे उसकी पत्नी पर आसक्त हो जाते हैं वह रमणी भी बिल्वमंगल को उपदेश देती है उन्हें पश्चात्ताप होता है वे सुई माँग कर अपनी आँख फोड़ लेते हैं । वे ब्रजधाम को चल देते हैं मार्ग में नेत्रहीन होने के कारण एक कूप में गिर पड़ते हैं उसमें श्री कृष्ण स्वयं पथिक बन कर उन्हें निकालते हैं । वे सूर को ब्रज तक ले जाते हैं प्रसाद स्वरूप खीर खाने को देते हैं । चिन्तामणि से भी मिलाप होता है उसे भी श्री कृष्ण दर्शन होते हैं इस प्रकार कथानक समाप्त होता है ।

बिल्वमंगल के जीवन चरित्र का कथानक नाभादास ने भक्त माल में वर्णित किया है ।मासोर जी ने भी उसी का अनुसरण किया है । भक्त माल के छप्पय 4। में बिल्वमंगल सूर का जो प्रसंग आया है मासोर जी ने भी उसी प्रसंग को ज्यों का त्यों ले लिया है -

चिन्तामणि की प्रीति में, नीति गयो सब भूल ।

पतिव्रता निज नारि हित, बन्यो हृदय को शूल[1] ।।

सूरदास व्दारा सुई से आंखे फोड़ने की घटना व्यक्ति का पश्चाताप है जो उसे भगवद्भक्ति की ओर ले जाता है । कूप में गिरना फिर भगवान व्दारा निकाल लिया जाना इस बात का द्योतक है कि व्यक्ति का नैतिक पतन हो जाने पर ईश्वर भक्ति से उसका उत्थान सम्भव है । वह ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो सांसारिक माया मोह उसे नहीं प्रभावित करते -

जिन के उर ध्यान के बान लगे,

फिर मन के बान लगे न लगे ।

जिन के मन सांवरे रंग रंगे ,

जग के फिर रंग रंगे न रंगे[2] ।

इस प्रकार बिल्वमंगल के जीवन के माध्यम से कवि ने व्यक्ति को प्रेरणा दी है कि वह भोग विलास को त्याग कर ईश्वर भक्ति की ओर उन्मुख हो इसी में समाज का कल्याण है ।"सूर सुधा निधि " में बिल्वमंगल के पिता व्दारा जन्म पत्री आदि की चर्चा के माध्यम से कवि ने ज्योतिष शास्त्र तथा जन्म पत्री आदि में अपनी आस्था प्रकट की है -

ज्योतिष पंडित को बुलवाय प्रमोदित मंजुल बैन उचारो ।

जन्म को पत्र पत्रिका बनाय, शुभ घरि को चित विचारो ।।

\+ + + + +

कर विचार तब ज्योतिष सों सोधन लग्न ।

सावधान सुनिये सकल बालक के गुन दोष[3] ।।

भारतीय नारी की चारित्रिक उत्कृष्टता का सुन्दर चित्र उपस्थित कर उसे -

---

1:- सूर सुधा निधि - कवीन्द्र माहौर

2:- सूर सुधा निधि - कवीन्द्र माहौर

3:- सूर सुधा निधि - कवीन्द्र माहौर - पृ0- 6-7

पातिव्रत धर्म में लीन दिखाया । अपने पति का कल्याण ही उसकी कामना होती है । सूरदास द्वारा अपनी पत्नी से यह कहने पर -

> प्रिय धीरज धरि सुन प्रिये, सत्य कहत हो तोहि ।
> जसे मैं भूल्यो तुम्हें, भूल जाव तुम मोहि ।।

उसकी स्त्री कहती है -

> आप हमारे प्रान प्रान को भूलों कैसे ।
> आप हमारे ध्यान ध्यान को भूलों कैसे ।
> हो अनाथ के नाथ, नाथ को भूलों कैसे ।
> लाये हो निज साथ, साथ को भूलों कैसे ।
> हो मेरे सरताज, ताज को भूलों कैसे ।
> हिन्दु कुल की लाज, लाज को भूलों कैसे ।
> \+ । + +
> पतिव्रत नारी धर्म, धर्म को भूलों कैसे ।
> पति सेवा को कर्म, कर्म को भूलों कैसे ।

बिल्वमंगल की पत्नी के चरित्र के माध्यम से कवि ने एक आदर्श गृहणी का चित्रांकन किया है जो कि नारी जाति के लिये प्रेरक है । नारी त्याग और बलिदान की प्रति मूर्ति है । बिल्वमंगल की पत्नी रम्भा भी एक ऐसी ही नारी है जो अपने पति के लिये सर्वस्व त्याग देती है -

> "सुख सम्पत्ति सर्वस्व प्रानपति यही हमारे ।
> जीवन के आधार प्रान हू ते है प्यारे ।।"

:सूर सुधा :[1]

बिल्वमंगल सूर का चरित्र लिखते समय माथोर जी ब्रज भाषा के महाकवि सूर को भी भूले नहीं हैं । उत्तरार्द्ध में उनकी भावनायें दोनों ही सूर के प्रति समर्पित होती हैं । भूमिका में भी विन्दु गोस्वामी ने लिखा भी है -

---

1:- सूर सुधा निधि - कवीन्द्र माहोर - पृ0- 17

"-- दोनों ही सूर हैं, दोनों ही भक्त राज हैं, दोनों ही के उपास्य देव नन्द नन्दन कृष्ण है और दोनों ही ख्याति प्राप्त महाकवि हैं अत: एक ही चरित्र लिख कर यदि दोनों की वन्दना का पुण्य प्राप्त हो सके तो अति उत्तम हो। मेरे विचार से पूर्वार्द्ध में भी बिल्वमंगल सूर का ही इतिहास है और उत्तरार्द्ध में फिर - दोनों ही सूर के प्रति सम्मिलित भावनाएं प्रदर्शित की गयी हैं"[1]।

"सूर सूर तुलसी ससी" यह उक्ति ब्रज भाषा के कवि सूर के लिये प्रसिद्ध है। माहोर जी इस का खण्डन करते हुये सूर को सूर्य से भी बढ़कर सिद्ध करते हैं --

कोविद कवि जन, सूर को कह्यो सर समान।
पर न जोग उपमा अह वरना जासु प्रमान।
\+ + + +
निरभीक बने विहरें जग में,
उत राहु-ग्रहे की डरा डरी है,
इन सूर की पुण्य प्रभाकरी सें,
इन सूर की कान बराबरी है[2]॥

ऐसा प्रतीत होता है कि माहोर जी दोनों ही सूर की बात एक साथ करते हैं -

"पूरि रह्यो मधि में महा, सुखद सूर को साख।
मोहन की प्रिय आंख सौं, लगी सूर की आंख"॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि "सूर सुधा निधि" भक्ति का एक सागर है जिसमें निमज्जित होने से हृदय की कालिमा धुल जाती है। मन पवित्र हो जाता है।

आधुनिक विचारों की अभिव्यक्ति करने वाले भक्ति कालीन भाव रीति कालीन परिवेश में चित्रित हैं। सामग्री माहोर जी ने युगानुकूल ली है जिस पर आवरण है रीतिकाल का।

1:- भूमिका "सूर सुधा निधि" - कवीन्द्र माहोर

2:- सूर सुधा निधि - कवीन्द्र माहोर

4:- द्रौपदी - दुकूल :पचीसी : :प्रकाशित :

रीतिकालीन कवियों की "पचीसी" लिखने की परम्परा[1] का अनुसरण करते हुये कवीन्द्र नाथूराम माहौर ने "द्रौपदी दुकूल"पचीसी" की रचना की , जो सन् 1950 में राधेश्याम प्रेस बरेली से प्रकाशित हुयी । कवीन्द्र ने पुस्तक के आदि में "दो शब्द" शीर्षक से प्राक्कथन अंग्रसरित करते हुये लिखा है -

"द्रौपदी दुकूल" पर प्राचीन तथा अर्वाचीन बड़े बड़े महानुभाव कवियों ने बड़ी बड़ी उत्कृष्ट रचनायें की हैं । प्रत्येक कवि की दो दो चार चार रचनायें मुझे दृष्टि गोचर हुयीं .... मेरे मन में केवल पांच ही छन्द लिखने की कल्पना का आरम्भ में प्रादुर्भाव हुआ था । परन्तु श्री भारती भवानी की परिपूर्ण अनुकम्पा से पांच की जगह पचीस पद्यों की यह पुस्तिका आपके समक्ष उपस्थित है "[2] । स्पष्ट है आरम्भ में कवि केवल पांच छन्द लिखना चाहता था परन्तु शनैः शनैः उनकी संख्यापच्चीस हो गयी इस प्रकार माहौर जी पचीसी परम्परा के केन्द्र बिन्दु का स्पर्श करने लगे ।

द्रौपदी दुकूल के कथानक का आधार तो महाभारत की प्रसिद्ध आख्यायिका "द्रौपदी चीर हरण " है परन्तु भावनायें जो काव्य के माध्यम से जन - हृदय को उद्वेलित करती हैं , सर्वथा मौलिक हैं -

"जहाँ तक बन सका है वहाँ तक इसकी रचना में मैंने मौलिक भावों का संकलन किया है " मौलिक भावनाओं का प्रादुर्भाव परम्परागत संस्कार तथा समसामयिक परिस्थितियों के संकलन से होता है । इस पुस्तिका की संरचना इस तथ्य का अपवाद नहीं कही जा सकती । कवीन्द्र ने स्वयं द्रौपदी दुकूल के मन्तव्य को व्यंजित करते हुये पुस्तिका के प्रारंभ में लिखा है-

---

1:- पद्माकर द्वारा कवित्त -"श्रृंगार पचीसी" ग्वाल कवि की गोपी पचीसी - रीति कालीन परम्परा के अन्तर्गत

2:- "दो शब्द" - द्रौपदी दुकूल पचीसी कवीन्द्र माहौर

3:- "दो शब्द" - द्रौपदी दुकूल पचीसी कवीन्द्र माहौर

"शूल समूल विनाशन कों ,
मुद-मूल अमूल दुकूल पचीसी"

कवि के द्वारा लक्षित लक्ष्य को गम्भीरता से चिन्तन करने पर ज्ञात होता है कि पचीसी का उद्देश्य तत्कालीन व्याप्त व्यथाओं को समूल नष्ट करना तथा राष्ट्र में मोद - व्याप्त करना रहा है । पचीसी के माध्यम से कवि ने देश के नव युवकों को प्रेरणा दी कि वे देश में व्याप्त पराधीनता की व्यथा एवं असन्तोष का समूल निवारण कर राष्ट्र को सुख सम्पन्न बनाने में सहयोग दें । जिस प्रकार एक कुशल चिकित्सक रोगी का सम्यक परीक्षण कर सर्व प्रथम रोग एवं उसके कारणों की खोज करता है तत्पश्चात औषधि का विधान कर रोग को समूल नष्ट कर जीवन को रोग - मुक्त कर आनन्द मय बनाता है उसी प्रकार कवीन्द्र ने सर्व प्रथम देश में व्याप्त रोग एवं उसके कारणोंको अभिव्यंजित किया तत्पश्चात उस रोग से मुक्ति का उपाय भी बतलायाओर मोद बढ़ाने का लक्ष्य पूरा किया ।

"द्रौपदी दुकूल पचीसी" का प्रकाशन स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त सन् 1950 में हुआ , उस समय तक भारतीय समाज में व्याप्त व्यथा :दासता : का कारण तो नष्ट हो चुका था परन्तु जन जीवन पीड़ित था , वांछित सुख की उपलब्धि नहीं हो पा रही थी । भारतीयों के अन्दर स्वार्थ भावना जाग्रत हो चुकी थी , देश - प्रेम केवल भाषणों एवं आलेखों में अवशेष रह गया था । शोषकों तथा जमाखोरों का वर्ग सबल हो रहा था , भारत माता अपमानित हो रही थी । माहौर जी देख रहे थे कि इस समय व्यक्ति के क्षुद्र स्वार्थी भावनाओं के कारण राष्ट्र प्रेम को भूलकर स्वार्थ सिद्धि में संलग्न है । इसी तथ्य को द्रौपदी दुकूल पचीसी के माध्यम से उन्होंने अभिव्यंजित किया । भारत माता को द्रौपदी का प्रतीक मानकर तथा शोषकों को कौरव मान कर माहौर जी ने व्यंजित किया है कि जिस प्रकार द्रौपदी के पांचपति थे उसकी लाज बचाने में असमर्थ थे उसी प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त अपनी सरकार बन जाने पर भी पंच मौन और असहाय थे , शोषक , मुनाफा खोर , चोर बाजारिये आदि भारत की जनता को लूट रहे थे , भारतीयता निर्वसना की जा रही थी , ऐसे विपत्ति काल में एकमात्र सम्बल ईश्वर ;कृष्ण : ही हैं जो कि द्रौपदी रूपी भारत की जनता की रक्षा करने में सक्षम है-

नीच कुरु राज सभ्य पाण्डव समाज बीच,
अकृत, अनीति कृत दंभ धंभ गाडो है ।
पाप को अखण्ड भरपूर भर भांडो तथा,
राख्यो रोप फूट कूट नीति को अखाड़ो है ।।

:द्रौ० दु० ११ :

ऐसी स्थिति में तो -

नीच कुलवंस अंस हसंसबे को जगत बीच,
कृष्णा भक्ति की ये अमर कहानी है ।

:द्रौ० दु० -२१ :

माहौर जी के शिष्य सर्व श्री रामकिशोर मिश्र "किशोर", सुन्दर लाल द्विवेदी तथा दीपचन्द आदि से ज्ञात हुआ कि द्रौपदी दुकूल पचीसी के छन्द माहौर जी ने स्वतन्त्रता संग्राम में लिखे थे और उसी समय जनता को उत्साहित करने के लिये स्थान - स्थान पर उनको पठन पाठन एवं सस्वर गान होता था बाद को 1950 में उन्हें संकलित कर प्रकाशित कर दिया गया । कोई लिखित प्रमाण इस सम्बन्ध में नहीं मिलता है । द्रौपदी दुकूल के छन्दों को यदि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व का मान लिया जाय तो सन्दर्भ अधिक स्पष्ट हो जाता है । अंग्रेजों द्वारा लूटी जाने वाली भारत माता की लज्जा की रक्षार्थ जन शक्ति जिसके प्रतीक श्री कृष्ण हैं, का आवाहन ही द्रौपदी दुकूल का लक्ष्य है । जब भारत की जनता को भारतीय संस्कृति एवं मर्यादा की प्रतीक स्त्रियों के अपमान का स्मरण काव्यात्मक विधा द्वारा दिलाया गया हो तो उसमें नव - स्फूर्ति तथा नव जागरण की लहर दौड़ जाना स्वाभाविक ही था -

क्रूर कुरुनन्दन द्रुपदनन्दनी की ओर,
हेर्यो निज वीरता को नाश कियो पानी है ।
माहुर सुकवि वीर पारथ के आनन पै,
कृष्ण आन बान पै चढ़ाय दियो पानी है ।
करुण की पुकार में ही पानीदार जानी सुन,
पानी राखिबे के हेतु भयो दियो पानी है ।

पानीदार अम्बर बढ़ाय श्याम सुन्दर ने ,

पानीदार द्रोपदी को राख लियो पानी है ।

महाभारत की आख्यायिका के अनुसार तो द्रोपदी नितान्त असहाय थी उसमें स्वत्व रह ही नहीं गया था , उसके कंठ से मात्र करुणा के स्वर फूट रहे थे और वह भी कृष्ण को सहायतार्थ आर्त स्वर में पुकार रही थी । इस सन्दर्भ में माहौर जी ने प्रसंग को पूर्णतया परिवर्तित कर मौलिक उद्भावना शक्ति का परिचय दिया उन्होंने तो इस कथानक के व्याज से उपनिवेशवादी आततायियों को ललकारा है तथा भारतीय जनता में नव - जीवन एवं नव - स्फूर्ति का संचार किया है । कहीं भी आर्त स्वर नहीं है । माहौर जी द्वारा प्रस्तुत शौर्य भावना का अवलोकन द्रोपदी के केशों के माध्यम से कीजिये -

"दमन दुशासन को द्रुपद सुता के केस ,

काल के कराल व्याल- छौना वर वीर में ।

भीष्म, द्रोणह, कर्ण शल्य जैद्रथ से महारथी ,

वरिन विनाशकारी आशु विषतीर में ।

दुष्ट दुरयोधन से योधन -निधन काज ,

दृग लाज-श्याम के निधारी समसीर हैं ।

चमकीले चीर के सु एक एक धागे मनों ,

कु- वंश के चीरबे कों गाण्डिव तीर में ।। -1-।।

इसी प्रकार -

कृत्य दुरयोधन के भैरवी अनन्त भरे ,

गौरव के गहुव गुमान गढ़ टूटेंगे ।

माहुर सुकवि चारु चीर बढ़े के आप ,

पाप के पहार छरि छरि होय फूटेंगे ।।

उपर्युक्त छन्दों में जिन भावनाओं की व्यंजना है उनमें स्पष्टत: वीर तथा रौद्र रस की धारा प्रवाहित है । करुण रस की तो मात्र आधार शिला है । अत:

1:- द्रोपदी दुकूल पचीसी- कवीन्द्र माहौर - छन्द सवैया-।

स्पष्ट है कि छन्द स्वतन्त्रता के पूर्व लिये गये जो किन्ही कारणों वश सन् 1950 में प्रकाशित किये जा सके । जिस समय ये छन्द लिखे गये उप निवेशवाद द्वारा मानवता ग्रस्त थी । मानवता का तथा भारतीय जनता का प्रतीक द्रौपदी को माना गया है । कवि ने द्रौपदी दुकूल के ब्याज से महा क्रान्ति की चेतावनी देते हुये उपनिवेश वादी अंग्रेजो से कहा कि उपनिवेश वादियों , तुम जिस जनता को निर्वसना कर रहे हो उसके अश्रु और आर्त पुकार से तुम्हारे समस्त योद्धाओं का विनाश निश्चित है -

"भीष्म द्रोणद कर्ण आदि बड़े बड़े वीरन के ,
अंग प्रति अंग असि प्राण प्रिय लूटेंगें ।
भीमाकार लीके असि द्रुपद सुता के अंक ,
चीर के सुतार तार तीर जन छूटेंगें ।।" :6:

ब्रिटिश उपनिवेश वादियों की शक्ति एवं सामर्थ्य देखते हुये लोगों में निराशा व्याप्त थी । ऐसे ही अवसर पर महात्मा गाँधी सत्य , अहिंसा और ईश्वरवाद का उपदेश दे रहे थे महात्मा गाँधी का कहना था कि जिस राम के नाम ने प्रह्लाद कोभयंकर विपत्तियों से बचाया वह अवश्य ही उत्पीड़ित जनता की रक्षा करेगा । माथोर जी ने द्रौपदी लाज के रक्षक श्री कृष्ण के माध्यम से बताया कि जिस प्रकार विपत्तियों के बीच पड़ी द्रौपदी के आर्त्त-स्वर को सुनकर कृष्ण ने उसकी रक्षाकी और कौरवों की हार हुयी उसी प्रकार ईश्वर ब्रिटिश उपनिवेश वादियों से भारतीयों की रक्षा करेगा -

"गाज गाज दुःशासन खेंचो है दुकूल मनों,
द्रौपदी की लाज पे गिराई कुराज गाज ।
दुखे कर अधीर ब्रजराज सों पुकार कही,
लाज रह जाय ऐसो कीजिये इलाज आज ।
बसन बढ़ों है मानोंसिन्धु उमड़ा है तामें ,
डूब गयो पापी कुराज को समाज लाज ।

1:- द्रौपदी दुकूल पचीसी - कवीन्द्र माथोर - छन्द संख्या - 6

माथुर सुकवि कृष्ण भक्ति की विजय भर्व ,

धर्मराज सीस पै सुसोभित भो धर्म आज ।।"[1]

द्रौपदी दुकूल पचीसी रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियों से प्रभावित एक खण्ड काव्य है । रीति कालीन "पचीसी" लिखने की परम्परा के अनुकूल ही इसमें पच्चीस छन्द है और नाम भी इसका द्रौपदी दुकूलपचीसी रखा गया है । रीति काल कोइ भी कवि भक्ति भावना से हीन नहीं है क्यों कि भक्ति उसके लिये एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी[2] । द्रौपदी दुकूल भी भक्ति भावना से ओत - प्रोत है सम्पूर्ण ग्रन्थ में कृष्ण भक्ति की महिमा का वर्णन है -

नीच कुन्वंस अंस ढकेंवे की जगत बीच,

कृष्णा कृष्ण भक्ति की ये अमर कहानी है ।। 21· ।।

पुस्तक का समापन भी माथोर जी कृष्ण भक्ति पर ही करते हैं -

कौरव के कल गौरव को ,

गलता लख चौर प्रसार लखी सी ।

द्रौपदी भक्ति की भावना में ,

कवि "माथुर" कल्पना शक्ति सची सी ।

कृष्ण कृपामृत दृष्टि विलोक के,

काव्य कलाकृत सृष्टि रची सी ।

सूल समूल विनासन कों ,

मुदमूल कुमल "द्रौपदी दुकूल पचीसी" ।। 25 ।।

कलात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से देखने पर द्रौपदी दुकूल रीतिकालीन कला के अधिक निकट है । अलंकारिक चमत्कृति ता कहीं कहीं रीति कालीन काव्यो-त्कर्ष से भी उत्कृष्ट है । यमक अलंकार की लड़ी की सुन्दर व्यंजना देखी जा सकती है । ऐसे अलंकारों का प्रयोग रीति काल में अधिकांश होता था उसी

1:- "द्रौपदीदुकूल पचीसी" - माथोर - छन्द - 22

2:- हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ -डा० शिवकुमार वर्मा-पृ०-316

के प्रभाव स्वरूप माहौर जी ने भी ऐसे ही काव्य रूपों का यथेष्ट प्रयोग किया है। "पानी" शब्द को लेकर "द्रौपदीदुकूल" में यमक अलंकार के माध्यम से जो चमत्कृति कवि द्वारा उत्पन्न की गयी वह श्लाघनीय है -

कूर कुरु नन्दन द्रुपद नन्दिनी की चीर,
खैंच्यो निज वीरता को नाश कियो पानी है।
माहुर सुकवि वीर पारथ के आनन पै,
कृष्ण आन आन पै चढ़ाय दियो पानी है।
कृष्ण को पुकार में ही पानीदार बानी सुन,
पानी राखिवे के हेतु ध्यायो कियो पानी है।
पानीदार अम्बर बढ़ाय श्याम सुन्दर ने,
पानीदार द्रौपदी को राख लियो पानी है।[1]

प्रस्तुत पुस्तिका का एक एक छन्द अनेक अलंकारों से युक्त है। एक ही छन्द में अनेक अलंकारों का समायोजन करना माहौर जी की विशिष्टता थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि द्रौपदी दुकूल की आत्मा तो भक्ति कालीन है लेकिन कलेवर रीति कालीन।

---------------- 0 ----------------

1:- द्रौपदी दुकूल पचीसी - कवीन्द्र माहौर

5. दीन का दावा : प्रकाशित :

माधोर जी द्वारा रचित "दीन का दावा" चार भागों में प्रकाशित भक्तिपरक ग्रन्थ है । इसका प्रकाशन काल सन 1938 है , प्रकाशक हैं भगवान दास माधोर । प्रथम भाग के मुद्रक हैं अयोध्या प्रसाद शर्मा , स्वाधीन प्रेस झांसी तथा दूसरे , तीसरे और चौथे भाग के मुद्रक गोस्वामी श्री [illegible] जी महाराज , प्रेमधाम प्रेस वृन्दावन हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ में माधोर जी ने भक्त और भगवान के बीच का पूर्वाग्रही संकोच मिटा कर भक्त को [illegible] और [illegible] करने का संदेश दिया है । भक्त द्वारा अपने उद्धार की प्रार्थना तो प्रत्येक युग में की गयी है लेकिन माधोर जी ने भक्त द्वारा भगवान के ऊपर मुकदमा दायर कर उनकी ओर से ऐसे अकाट्य तर्क उपस्थित किये कि भगवान को निरुत्तर हो जाना पड़ा । अभियोग के दौरान ऐसी दलील पेश की गयी जिसे सुनकर बड़े बड़े न्यायाधीश दांतों तले अंगुली दबाते हैं । दीन के दावा में माधोर जी का न्यायालयों की चार दीवारी का परिज्ञान प्रत्यक्ष होता है । भक्त द्वारा भगवान के ऊपर दावा करवाना तो माधोर जी की विशिष्टता है ।

"दीन का दावा" की विषय वस्तु तो प्राचीन है परन्तु प्रस्तुतीकरण की प्रणाली नवीन है । दीन की ओर से भगवान के ऊपर किया गया दावा यद्यपि व्यक्तिगत प्रतीत होता है परन्तु उसमें सम्पूर्ण भारत वर्ष के दीन निराश्रयों महा-[illegible] का वर्णन किया गया है । कवि ने कलियुग में बढ़ते हुये अत्याचार को देख कर भगवान को उनकी प्रतिज्ञा "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत + + + + [illegible] तदात्मानं सृजाम्यहम् " का स्मरण दिलाकर कहा -

भारत में अब आना चाहिये जरूर नाथ ,

परम पुनीत वाक्य गीता में लिखाना है ।

नाथूराम दीनों का अधीनों का चुकाना कर्ज ,

दीनता सहित पराधीनता हटाना है ।

परम उदारता दयालुता दिखाना फेर ,

फिर वन्दनीय वही कीरति कमाना है ।

सोये हुये आपको शताब्दियां व्यतीत हुयीं ,

नाथ उठ जागो जागने का ये जमाना है[1]।

कवि ने "दीन के दाता" में भारत की दीनता का कारण परतन्त्र होना बतलाया है। पराधीनता के हटते ही दीनता स्वयमेव दूर हो जावेगी। दीन के दाता में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का आकलन करता हुआ कवि भगवान से आजादी दिलाने और सारे कष्टों के निवारण की प्रार्थना करता है -

ख्याल कर लीजे भोगने का क्या ख्याल अब ,

हो रहे सवाल जब कि पूर्ण आजादी के[2]।

भक्ति के माध्यम से राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यंजना माहोर जी की अभिव्यंजक मौलिक प्रतिभा की परिचायक है।

"दीन का दाता" में कवि ने विभिन्न पौराणिक आख्यानों का आश्रय लेते हुये कहा है कि भगवान ने अनेक पतितों एवं अपने भक्तों का उद्धार किया लेकिन ये प्रसंग तभी सत्य माने जायेंगे जब कि वह दीन का उद्धार दीनबन्धु करेंगे। उनके दीन बन्धु , कृपासिन्धु दयासागर आदि नामों की सार्थकता दीन के उद्धार करने में ही है -

गज के बचाने का प्रसंग सत्य होता तभी ,

आज कर ग्राह कलिकाल से बचाते आप।

लाक्षिकादि नाशन की होती तब सत्य पोती जब ,

त्रिविध त्रिताप दाप सकल नशाते आप।

मुनि नारि तारने की मानते प्रतीति तब ,

दुख के पषाणेन को तारके दिखाते आप।

शंभु चाप तोड़ना सफल जब होता नाथ ,

मेरी दीनता का चाप तोड़ बतलाते आप[3]।

1:- दीन का दाता - माहोर - पृ० 29 :प्रथम भाग:

2:- दीन का दाता - माहोर - पृ० - 11 दूसरा भाग

3:- दीन का दाता - माहोर - पृ० - 15 प्रथम भाग

भक्त और भगवान के बीच विरह का बड़ा ही स्वाभाविक चित्र कवि ने अंकित किया है । भगवान अपने पक्ष में दलील देते हुये कहते हैं कि सांसारिक प्राणी अपने अपने कर्मों का फल भोगते हैं कर्मो के अनुसार ही प्राणी को सुख दुख की प्राप्ति होती है । भगवान के इस तर्क का खण्डन दीन बड़े ही स्वाभाविक रूप से करता हुआ अपने पक्ष में पौराणिक कथाओं का प्रमाण प्रस्तुत करता है-

कर्म ही का पाते सभी जीव जो सजीव फल ,
अजामिल ऐसो नीच स्वर्ग धाम जाते क्यों ।
तार सभी गणिका का मुक्त सप्रेम मंज ,
नाथ रंगनाथ माथ नाथ अपनाते क्यों ।
सदा पिता के गति गीध को न देते कभी ,
दीनता सुदामा की दीन की मिटाते क्यों[1] ।

दीन के ऐसे अकाट्य तर्क को सुनकर भगवान निरुत्तर हो जाते हैं और उन्हें दीन से विरह कष्ट करने को विवश होना पड़ता है -

छड़ी एक हम आपकी, भूले कभी न याद ।
पद पाकर भूले तुम्हीं, यश करने बरबाद ।
न्यायोचित उत्तर सुभग, दिये प्रमाणित दीन ।
दीन बन्धु ने दीन से, विरह कष्ट कर दीन[2] ।।

दीन के बयान सुनकर भगवान ने स्वीकार किया कि सांसारिक विधि विधान के अनुकूल ही उनका व्यवहार है उनके जन्म का कारण भी भूमि भार का शमन करना है । ईश्वर एक मात्र प्रेम का ही नाता मानते हैं । भगवान का निवास वहीं है जहां प्रेम और भक्ति है -

दोहा:- विधि विधान के नियम युत, करता हूं व्यौहार ।
भूमि भार के शमन हित, लेता हूं अवतार ।।

1:- दीन का दाता - तीसरा भाग - पृ०- 22

2:- दीन का दाता- तीसरा भाग - पृ०- 23

:घनाक्षरी :

भक्ति भावनाओं में ही रमता सदैव रहे ,

शत्रु मित्र पिता पुत्र स्वामि सखा भ्राता में ।

समानता न और कछु नैतिक आचार मात्र ,

मानता पुनीत एक प्रेम ही का नाता मैं ।।

\+ + + +

"नाथूराम" नामों को सुसाध्य बनाने हेतु ,

समयानुकूल अवतार धर आता मैं ।।

अन्त में विजय दीन की होती है । दीनबन्धु के अनुकूल वचन को सुनकर दीन का हृदय प्रफुल्लित हो गया, विपत्तियाँ भागने लगीं, और दीनता समाप्त हो गयी -

सोरठा :- समुझे निज अनुकूल, दीन बन्धु के वचन प्रिय ।

खिला हृदय का फूल, रहा सम्पत्ति जो सदा ।

घनाक्षरी:- दाता पर शंकर की लगी सुखी छाप देख ,

आपसे ही आप आपदा भी भागने लगी ।

मरती हुयी आशायें पुलकित होने लगीं ,

दीन बन्धु की कृपा ज्योति जागने लगी ।।

मानुष सुकवि जन मन की भी दया दृष्टि ,

मन अनुकूल अनुराग पागने लगी ।

दीन बन्धु की दुहाई देत आई अब ,

दीनताई दीन की विदाई मांगने लगी ।।

दोहा :- दाता एक पद धूल हुआ, भाग्य सहित सम्पत्ति ।

दीन बन्धु की दीन पर, कृपा हुयी पर्याप्त[2]।

"दीन के दाता" के माध्यम से कवि ने प्रकारान्तर से गांधी जी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है । स्वतंत्रता संग्राम का संचालन -

---

1:- दीन का दाता - माथेर - तीसरा भाग - पृ०- 30

2:- दीन का दाता - चतुर्थ भाग - पृ०- 19

करते समय गांधी जी के सन्देश थे प्रेम और अहिंसा । भक्त के सहारा प्रेम और अहिंसा से भगवान को झुका कर कवि ने परोक्ष रूप से यह सिद्ध किया है कि भारत-वासी प्रेम और अहिंसा से ही अंग्रेजों का दमन कर सकते हैं । प्रत्येक युग के भक्त ने भगवान से दीनता पूर्वक अनुनय विनय कर शक्ति प्राप्त की है परन्तु कवीन्द्र माहौर ने भगवान पर दावा कर दीन भारत के कष्ट निवारण करने पर विवश किया यही माहौर जी की विशिष्टता है । पुस्तक में भाषा तथा अभि अत्यन्त सरल है परन्तु महान गूढ़ सम्बन्ध तथा सिद्धान्तों की अभिव्यंजना कर रहे हैं । कवि ने प्रायः बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया है यदा कदा उर्दू-बुन्देलखण्डी एवं ब्रजभाषा का भी समावेश किया है । पुस्तक लिखने का मन्तव्य कवि ने पुस्तक के प्रारम्भ में "दो शब्द" में स्पष्ट कर दिया है -

"मैंने यह दावा आधुनिक ढंग पर लिखा है । मुझे आनन्द उसी समय प्राप्त होगा, जब कि लोगों के स्वार्थ एवं परमार्थ में कुछ सहायता पहुँचेगी जो महानुभाव इस पुस्तक को सप्रेम पढ़ने का कष्ट करेंगे वह लौकिक-पारलौकिक आनन्द का उपभोग करने के भाजन होंगे" । चतुर्थ भाग के अन्त में "फल स्तुति" शीर्षक में दीन के दावा का उद्देश्य स्पष्ट करता हुआ कवि कहता है -

चारों भाग दावा के सप्रेम अपनायेंगे जो ,
जग में सदैव उन्हें सब अपनायेंगे ।।
पाकर सुकवि [illegible]-दीनता-महत्ता सदा,
दीन बन्धु जी के कृपा पात्र बन जायेंगे ।।
कवि के कलुष [illegible] समूह न आवें कभी ,
[illegible] प्रताप से [illegible] ।।
चारहू विकार को निवार है [illegible] ,
चारों युग चारों वर्ण चारों फल पायेंगे ।

---------- 0 ----------

1:- दीन का दावा - माहौर - चतुर्थ भाग - पृ०- 2[illegible]

6· शान्ति सागर :- :प्रकाशित :

यह सन 1950 के लगभग प्रकाशित माहोर जी की शान्त रस की अद्भुत रचना है । यह भक्ति एवं नीति का अथाह सागर है , जिसमें निमज्जित होकर सांसारिक प्राणी अखण्ड शान्ति की अनुभूति करते हैं । प्रेम और श्रद्धा के सम्मिलन से भक्ति का उदय होता है[1]। जब प्रेम भौतिक धरातल पर रहता है तब लौकिक श्रृंगार की पुष्टि होती है और प्रेम का आलम्बन ब्रह्म अथवा ईश्वर हो जाता है तब उससे भक्ति रस की निष्पत्ति होती है[2]। भगवान के प्रति एकनिष्ठ प्रेम ही भक्ति है । नारद भक्ति सूत्र में ईश्वरीय प्रेम की अत्यन्त महत्ता मानी गयी है जिस प्रेम को प्राप्त कर लेने पर भक्त न तो कुछ चाहता है, न चिन्ता करता है, न द्वेष करता है , न किसी वस्तु में आसक्त होता है और न उसे विषय भोगों की प्राप्ति में उत्साह होता है[3]।

माहोर जी को भक्ति भावना अपने पिता श्री राम लाल माहोर से विरासत रूप में प्राप्त हुयी थी । इनके पिता धार्मिक व्यक्ति थे , नित्य प्रति रघुनाथ जी के दर्शन करने जाते , मानस पाठ करते एवं अन्य देवी देवताओं की आराधना विधिवत करते थे इन सबके परिणाम स्वरूप कवीन्द्र माहोर ईश्वर भक्त हो गये , रामलीला में स्वयं अभिनय करने लगे । वर्ष में कतिपय अवसरों पर माहोर जी रामायण का नवाह्न पाठ भी करते थे ।

"शान्ति सागर" माहोर जी की भक्ति भाव परित एक अनुपमेय एवं सर्वोत्कृष्ट कृति है । कवि ने पुस्तक का प्रारम्भ मंगलाचरण से किया है वन्दनात्मक मंगलाचरण के द्वारा कवि ने पुस्तक का समारम्भ ही भगवद् भक्ति से किया-

कुन्दन कलित कोटि काम-कमनीय कान्ति -
कान्ति क्लान्तिकारी है कलाधर करोर के ।

1:- चिन्तामणि - भाग-1 - रामचन्द्र शुक्ल - पृ०- 54

2:- हिन्दी काव्य धारा में प्रेम प्रवाह- श्री परशुराम चतुर्वेदी - पृ०- 9

3:- नारद भक्ति सूत्र संख्या - 5

कलि के कलुष-कोष कोशन-कदन कुल-
कल्पद्रुम, कामधेनु- कीरति - निचोर के ।।
+ + +
करन निकन्द द्वन्द आनंद के कन्द वन्दौ -
युगल पदार विन्द युगल किशोर के ।।

मंगलाचरण के पश्चात कवि स्थान स्थान पर ईश्वर महिमा का बखान विभिन्न उपमानों के माध्यम से करता है । अधिकांश पदों में श्री राम की महिमा का बखान किया है । "श्री राम नाम महिमा" शीर्षक से कवि राम नाम का महात्म्य बतलाता हुआ कहता है कि राम के गुण गान से मानव का संसार से उद्धार हो जाता है -

राम-गुन-गण गाय मानव ।
सिन्धु भव तरजाय मानव ।।
पद्म-पद-सेवा किये जा-लाभ जीवन का लिये जा ।
भक्ति भावामृत पिये जा-अमर बन युग युग जिये जा ।
पुण्य-प्रद प्रतिभा पसारे-परम प्रिय पद पाय मानव[1] ।।

राम के नाम के समक्ष तो भुक्ति एवं मुक्ति दोनों ही नतमस्तक हैं एक बार जो "सीताराम" का उच्चारण कर लेता है उसको तो मोक्ष की आवश्यकता ही नहीं, मुक्ति तो बार बार उसके ऊपर बलिहारी जाती है -

दिव्य भुक्ति-मुक्ति बलिहार जात बार बार ।
एक बार सीताराम नाम जो उचार जात[2] ।।

"राम महिमा" के पश्चात कवि ने "श्री शिव नाम महिमा" शीर्षक से शिव के विभिन्न नामों की उपादेयता का वर्णन कर "यमक" अलंकार के माध्यम से शिवा-रचना का महत्व बतलाता है -

ईश के कहे ते अघ ओघ बीस बीस देत ,
विश्वनाथ कहे भर विश्व की विभूति देत ।।

1:- शान्ति सागर - माधौर - पृ०- 3
2:- शान्ति सागर - माधौर - पृ०- 7

आसुतोष कहै आसु पूर्ण कर देत आस,

सुषमा-प्रकाश-राशि आनंद अकूल देत ।।

पुर पुर पूत कौ सु देत अवधूत कहैं,

भूतनाथ कहैं पंचभूत मजबूत देत ।।

गंगा के कहे तें गंगा गंगा न रहन पावे ।

गंगा कर देत श्रुति शाजित सबूत देत[1]।।

भारतीय संस्कृति में तीर्थों को विशेष महत्व दिया गया है । माहोर जी भारतीय संस्कृति के उपासक थे अतएव तीर्थों के महात्म्य से कैसे अनभिज्ञ रहते हरिद्वार की महिमा का भी बड़ा स्वाभाविक एवं सजीव वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है -

दरस लिये तें हिय हरष अपार होत-

परस किये ते होत पारस प्रकार के ।

माहुर सुकवि होत माहुर सुधा सुमंजु-

होत छार छार पुंज कलि के विकार के ।

जीवन में जीवन को सार भर देत सदा -

पार कर देत भव सागर अपार के ।

एक बार बावत सप्रेम हरि-द्वार ताहि-

खोलत किवार हरिद्वार हरि-द्वार के[2]।

उपर्युक्त उद्धरण से यह प्रतीत होता है कि माहोर जी ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिये रीतिकालीन आलंकारिक शैली का परिपालन किया है ।

माहोर जी प्रारम्भ में रामलीला के लिये छन्द लिखा करते थे स्वयं अभिनय भी करते थे । रामलीला के लिये प्रणीत कुछ छन्दों का संकलन शान्तिसागर में है । "जनकपुर में विश्वामित्र एवं विदेह का संवाद" , विभीषण- शरणागति एवं "मन्दोदरी रावण संवाद" आदि शीर्षक से रामलीला के लिये छन्दों का संकलन किया है । इन सभी प्रसंगों में अन्ततोगत्वा राम के ही महात्म्य को -

---

1:- शान्ति सागर - माहोर - पृ०- 9

2:- शान्ति सागर - माहोर - पृ०- 12

प्रदर्शित करना कवि का अभीष्ट रहा है । विभीषण के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का सुन्दर आकलन किया गया है व्यक्ति पाप कर्म में लिप्त रहता है । पापों का प्रायश्चित्त एक मात्र रघुनाथ की ही शरण सम्भव है, इस तथ्य की पुष्टि माहोर जी ने विभीषण के इस कथन से की है -

जानों न मरम भक्ति भावना उपासना को,
करम कुवासना तुलान मैं तुलानों हों ।।

+ + + +

"नाथूराम" स्वीकृत को दीजिये प्रमाण पत्र ,
पतित पुरानन मैं पतित प्रमानों हों ।

हाथ गहि लीजिये पसार के कृपा को हाथ ,
अब रघुनाथ हाथ आपके बिकानों हों[1]।।

भक्ति के अतिरिक्त नीति विषयक छन्द भी शान्तिसागर में संग्रहीत है । नीति एवं उपदेश की प्रवृत्ति भी रीति कालीन परम्परा के अनुरूप है । रीतिकाल में अन्योक्तियों के माध्यम से नीतिपरक उपदेशों का प्रचलन था माहोर जी ने इस परम्परा का निर्वाह करते हुये रीति परिपाटी को नहीं त्यागा । रीति काल में प्राय: प्रकृति के माध्यम से उद्बोधनात्मक उपदेश दिये जाते थे माहोर जी ने भी नीति एवं उपदेशों के लिये कहीं कहीं प्रकृति का आश्रय लिया -

इठलाता किस नाज पर ला दिल में कुछ होश ।
बरसाती सरिता सरिस जीवन जोबन जोश ।।

+ + + +

नाथूराम मोद धाम राम के न गाता गुण ,
तुच्छ इस जीवन पै ऐसा इठलाता है ।

ओस का टलक यों ही आवेगा पलक ही में ,
जोबन जवानी को क्या झलक दिखाता है[2]।

1:- शान्ति सागर - माहोर - पृ0- 26

2:- शान्ति सागर - माहोर - पृ0- 35

ब:- अप्रकाशित रचनायें -

1:- गोपी - उद्धव - संवाद :अप्रकाशित :

कवीन्द्र नाथूराम माहौर ने गोपी - उद्धव - संवाद पर केवल ग्यारह छन्द लिखे । अनुमान में विरचित "गोपियों के आँसू" को भी यदि गोपी - उद्धव संवाद के अन्तर्गत लिया जाय तो असंगत न होगा क्यो कि गोपियों के आँसुओं में उद्धव की चर्चा भी भी आई है । गोपी उद्धव संवाद का कथानक भ्रमर गीत परम्परा पर आधारित है । भ्रमर गीत की कथा का सर्वप्रथम निरूपण श्री मद्-भागवत के दशम स्कन्ध के 46 वें और 47 वें अध्यायों में मिलता है । 46वें अध्याय में कृष्ण के सन्देशवाहक उद्धव की ब्रजयात्रा और उनका नन्द - यशोदा से वार्तालाप है । 47वें अध्याय में गोपियों और उद्धव का कथोपकथन है । कृष्ण के समान रंग और वेशभूषा से सुसज्जित उद्धव को देख कर गोपियां उनसे कृष्ण विषयक वार्ता करती हुयीं उनकी लीलाओं का स्मरण कर भाव - विभोर हो उठीं इसी बीच गुंजार करते हुये एक भ्रमर को लक्ष्य कर गोपियों ने अन्योक्ति द्वारा कृष्ण के निष्ठुर स्वरूप पर प्रेम - भरे उपालम्भ दिये । भ्रमर गीत की यही आधार मूल कथा है जिसकी निबन्धना श्री मद्भागवत के उपयुक्त अध्याय के 12 से 21 तक के श्लोकों में हुयी है ।

हिन्दी साहित्य में भागवत की यह संक्षिप्त कथा विभिन्न एवं विस्तृत रूपों में मिलती है । कथा का यह विकास कवि की प्रतिभा एवं परिस्थिति के अनुकूल होता गया । हिन्दी साहित्य के प्रथम गीत कार सूरदास ने ही इस कथा को अनेक रूपों में अति विकसित एवं विस्तृत रूप प्रदान किया है । भ्रमर गीत की घटना अत्यन्त साधारण एवं संक्षिप्त है कृष्ण के हृदय में ब्रज - स्मृति की जागृति एवं उद्धव के मथुरा भेजने की कथा भी अनेक रूपों में वर्णित है । भागवत में गुरु - गृह से आकर कृष्ण को ब्रज - स्मृति हो आती है किन्तु सूर के कृष्ण प्रतिक्षण ब्रज की ही बाते सोचते हैं । उद्धव की ज्ञान - चर्चा ब्रज - स्मृति को तीव्र कर देती है । वे उद्धव को प्रेमाभक्ति में रंग जाने के उद्देश्य से ही ब्रज भेज देते हैं । इसप्रकार ज्ञान पर भक्ति और निराकार निर्गुण के

स्थान पर साकार सगुण प्रेम की महत्ता प्रदर्शित करना समस्त भ्रमर गीतों का मूलाधार रहा है किन्तु कालान्तर मे परिस्थिति की भिन्नता के कारण कुछ कवियों ने इस प्रसंग में कुछ परिवर्तन कर इसे युग सापेक्ष्य कर दिया । घटना विकास में राष्ट्रीय भावना के आग्रह स्वरूप कृष्ण के दिव्य स्वरूप की अपेक्षा उनके लोक नायक रूप का उद्घाटन भी हुआ ।

जगन्नाथ दास "रत्नाकर" ने ब्रज स्मृति के प्रसंग का विकास नवीन ढंग से किया है । प्रायः हम अपने व्यस्त जीवन में इतने तल्लीन हो जाते है कि पूर्व घटनाओं पर विचार करने का अवसर ही नहीं मिल पाता किन्तु कोई वस्तु या घटना हमें उसका स्मरण करा देती है । "रत्नाकर" ने ब्रज स्मृति प्रसंग को इसी रूप में चित्रित किया कृष्ण के व्यस्त जीवन में ब्रज स्मृति जाग्रत करने के लिये रत्नाकर ने यमुना स्नान और कालिन्दी में बहते कमल की कल्पना की । रत्नाकर की यह कल्पना मौलिक होने के साथ ही प्रभाव पूर्ण एवं नाटकीयता से युक्त है -

> न्हात जमुना में जलजात एक देख्यो जात ,
>
> जाको अध ऊरध अधिक मुरझायों है ।
>
> कहैं रत्नाकर उमहि गहि स्याम ताहि ,
>
> बास बासना सों नैकु नासिका लगायो है ।
>
> त्यों ही कछु धूमि झूमि बेसुध भए के हाय ,
>
> पाय परे उखरि अभाय मुख छायो है ।
>
> पाय घरी द्वैक में जगाइ ल्याइ ऊधो तीर ,
>
> राधा नाम कीर जब औचक सुनायो है[1] ।

डा० श्याम सुन्दर लाल दीक्षित ने अपने "श्याम सन्देश" में स्मृति जागरण - प्रसंग को पूर्णतः नवीन रूप में रखा । उनके अनुसार असुरों के विनाश के पश्चात मथुरा में स्वतन्त्रता दिवस मनाने का आयोजन किया गया जिसमें कृष्ण के बाल जीवन को नाट्य रूप में प्रस्तुत किया गया रास लीला का दृश्य आरम्भ होने पर कृष्ण वियोग से पीड़ित गोपियों का दृश्य देख कर कृष्ण को अतीत के साथ-

---

1:- उद्धव शतक - जगन्नाथ रत्नाकर

वर्तमान घटना भी स्मरण हो आई -

करुन कथा की लिखा उती उर में अति पीरें ।

माधव मन अभिराम विरह की चिनगी छीरें ।

\+ \+ \+ \+

प्राय: अधिकांश कवियों ने जिन्होंने भ्रमर गीत प्रसंग को उद्धव गोपी संवाद रूप में लिखा है ब्रज स्मृति के प्रसंग को छोड़ दिया है । ब्रज स्मृति प्रसंग के पश्चात उद्धव - मथुरा गमन एवं गोपी उद्धव संवाद का प्रसंग आता है जिसका वर्णन भी विविध रूपों में मिलता है ।

कवीन्द्र माहौर द्वारा वर्णित गोपी - उद्धव संवाद में प्रारम्भ में "पाती प्रसंग" की कल्पना है । गोपियों ने पत्र सम्प्रेषित कर कृष्ण को ब्रज की सुधि दिलायी है । यह प्रसंग माहौर जी की नितान्त मौलिक उद्भावना है । पत्र के द्वारा ब्रज स्मृति किसी भी कवि ने नहीं दिलायी । गोपियों के पत्र को पढ़कर ही कृष्ण ब्रज की गोपियों का स्मरण करते हैं और उद्धव को ब्रज भेजते हैं -

पाती बाँच आओ, बारे पन के संघाती स्याम ,

छाती न जलाओ ये मिटाओ दाह छाती के ।

चातक बूंद को लगी प्यास को बुझाओ, आज

पूरी करो प्यास को बुझाओ घन जाओ बूंद स्वाती के[1] ।।

पत्र प्राप्त होने पर -

पाती बाँच स्याम ने बुलायो सखा उद्धव को ,

पूरी करो आस पास गोपिन के जाओ तुम ।

डूब रहीं हमरे वियोग सिन्धु माहि उन्हें

ज्ञान-योग में बिठार पार कर आओ तुम[2] ।

1:- गोपी-उद्धव-संवाद - कवीन्द्र माहौर - अप्रकाशित

2:- गोपी-उद्धव-संवाद - कवीन्द्र माहौर - अप्रकाशित

उद्धव -गोपी - संवाद के मध्य भ्रमर का प्रवेश का उल्लेख भागवत में हुआ है । सूरदास , नन्ददास , हरिऔध आदि कवियों ने "भ्रमर" प्रसंग का उल्लेख किया है । जिन कवियों ने मुक्तक के रूप में गोपी उद्धव संवाद लिखा उन्होंने भ्रमर प्रवेश प्रसंग का उल्लेख नहीं किया । माहोर जी ने भी मुक्तक परम्परा का अनुसरण किया उन्होंने भी भ्रमर प्रवेश प्रसंग का उल्लेख कहीं नहीं किया ।

भ्रमर गीतके इस विकास पर विचार करते समय यह स्पष्ट हो जाता है कि भ्रमर गीत में घटना - विकास के लिये अधिक स्थान नहीं था । भ्रमर गीत का यह विकास शताब्दियों का प्रयास है जिसके मूल में सामाजिक , धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का बहुत हाथ है । साहित्य में धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप अनेक भावधारायें जन्म लेती हैं । भ्रमर गीत परम्परा की अजस्र धारा युग भावना को वहन करने में पूर्ण समर्थ रही है । भक्ति युग के कवियों ने भ्रमर गीत द्वारा भगवान की आराधना के साथ ही अपने सिद्धान्तों को भी प्रकट किया निराकार निर्गुण के ऊपर सगुण साकार तथा ज्ञान के ऊपर भक्ति की महत्ता स्थापित करने का सफल प्रयत्न किया गया है । रीतिकाल में निर्गुण - सगुण विवाद प्राय: शान्त हो गया और भ्रमर गीत प्रसंग खण्डिता तथा विप्रलब्धा नायिकाओं के चित्रण का आधार बन गया । भ्रमर गीत की भक्ति भावना का स्थान लौकिक ईर्ष्या भावना ने ले लिया । धीरे धीरे कवियों की विचार धारा में परिवर्तन हुआ । आधुनिक युग की वैज्ञानिक विचार धारा के अनुरूप भ्रमर गीत में राष्ट्रीय जागरण का भाव आया फलस्वरूप आधुनिक युग के भ्रमर गीतों में आध्यात्मिकपक्ष के स्थान पर लौकिक एवं कल्याण कारी पक्ष की प्रधानता हो गयी । शताब्दियों से प्रवाहमान भ्रमरगीत में विरह , उपालम्भ और व्यंग्य के साथ धीरे-धीरे लोक कल्याण एवं राष्ट्र कल्याण की भावना का भी विकास हुआ है । सत्य नारायण कविरत्न ने तो भ्रमर दूत को राष्ट्रीय भावाभिव्यक्ति का साधन बनाया है । उनके भ्रमर गीत की यशोदा के विरह वर्णन में दुखी भारत माँ का करुण क्रन्दन ही ध्वनित होता है ।

कवि की रचना पर उसकी सामयिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता ही है । माहोर जी के गोपी-उद्धव-संवाद के विषय में भी यह कथन ~~पूर्णतः~~ पूर्णत:

चरितार्थ होता है । यह छन्द स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व रचे गये प्रतीत होते हैं । इस तथ्य की पुष्टि माहोर जी के समकालीन कवियों तथा उनके शिष्यों[1] से हो जाती है । माहोर जी के समय में परिस्थितियां नया मोड़ ले रही थीं । दीर्घ कालीन दासता के कारण भारतीय जनता में जीवन तथा प्रवृत्ति मार्ग से पराङ्मुखता व्यक्त थी । उस सुप्तावस्था को प्राप्त भारतीय जनता के अन्दर जन जागरण का सन्देश तिलक ने कर्म योग के आदेश से दिया । आर्य समाज एवं कांग्रेस के आन्दोलनों ने भारतीयों को उनके अभावों के प्रति सजग कर दिया था । तिलक ने कहा "स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है" । इस क्रम में माहोर जी ने भी "गोपी उद्धव संवाद" लिख कर स्पष्ट कर दिया कि योग, सन्यास अथवा निराकार निर्गुणवाद निवृत्तिमार्ग की ओर ले जाता है जो जीवन की जाति में बाधक है । लोकाचार के लिये लौकिक जीवन के रंग मंचीय नाटक को पूरा करने के लिये प्रवृत्तिमार्ग ही श्रेयस्कर है । प्रवृत्ति मार्ग जीवन को शक्ति देता है जिससे राष्ट्रवाद की भावना सशक्त होती है । निवृत्ति मार्गी तो सदैव यही कहते रहेंगे -

> "अंग्रेज राज सुख साज सबै सब भारी ।
> पै धन विदेश चल जाय यहै अति ख्वारी" ।

माहोर जी ने गोपियों द्वारा सर्व प्रथम कृष्ण के पास पत्र भेज कर प्रेम का सन्देश दिया । यह भारतीयों की एकता का प्रतीक है । ऐसा सन्देश पाकर भी जो केवल यही कहते हैं ईश्वर सब में है जो भाग्य में है वही होगा । हम स्वतन्त्र हैं या परतन्त्र, सभी स्थितियों में सुखी हैं, ऐसे लोगोंको ही चेतावनी देते हुये गोपियों द्वारा प्रवृत्ति मार्ग का सन्देश दिया । उद्धव प्रतीक है अकर्मण्यवादी लोगों के जो कि स्वतन्त्रता तथा देश प्रेम के उन्माद को कसाइयों की तरह हत्या करने वाला मानते हैं ऐसे लोगों का तो यही कहना है -

> जोरो जोग तें, सिधारो प्रेम भोग रोग,
> भोग में वियोग दुख होत है विचार लो ।

1:- सर्व श्री दीपचन्द, रामकिशोर, रामचरण ह्यारण मित्र आदि

माथुर सुकवि मन मोरो मन मोहन तें ,
तोरो मोह की जंजीर जीवन सुधार लो ।
त्यागों दुख दायिनी कसाइनी सगुन प्रीति,
निरगुन ग्यान की रसायन को पार लो[1] ।

: गो०उ० संवाद :

"कसाइनी सगुन प्रीति" कह कर माथौर जी ने तत्कालीन परिस्थितियों का सच्चा चित्र उपस्थित कर दिया ह उपर्युक्त छन्द में "मोहन" शब्द का अर्थ यदि गांधी से लिया जाय तो व्यंजना और अधिक स्पष्ट है । स्वतन्त्रता संग्राम गांधी के नेतृत्व में लड़ा जा रहा था गांधी के अहिंसा , प्रेम और सत्याग्रह में जनता को आस्था थीलेकिन कुछ निवृत्तिमार्गी लोग "मन मोरो मन-मोहन तें" कह कर गांधी के सिद्धान्तों के प्रति उदासीन थे । उनके लिये यथा-स्थिति ही श्रेयस्कर ह । दूसरी ओर जनता :जो गोपियों की प्रतीक है : गांधी में ही आस्थावान थी वह तो उनके लिये विषपान तक करने तथा प्राणान्त करने को तत्पर थी । यह भक्ति ही उस काल की महती आवश्यकता थी । महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धा , प्रेम तथा विश्वास को दृढ़ करने तथा स्वातन्त्र्य अधिकार की ओर उन्मुख करने के लिये ही प्रेरणाशील माथौर जी के गोपी उद्धव संवाद के छन्द हैं । उद्धव के द्वारा निर्गुण का उपदेश देने तथा सगुण को - "कसाइनी प्रीति" कहने पर गोपियां :जो जनता की प्रतीक है : कहती हैं कि "ऊधो तुम अपने ज्ञान को अपने पास रखो हम सगुण साकार :प्रवृत्ति मार्गी राष्ट्रीय विचार धारा : को नहीं त्याग सकती । विषपान अथवा प्राणान्त हमको इष्ट ह परन्तु अव्यवहारिक "सर्वं खल्विदं" ब्रह्म" का सिद्धान्त जो निवृत्ति मार्ग की ओर ले जाने वाला है , हमें स्वीकार नहीं" । इस दृढ़ विचार धारा का प्रतिपादन माथौर जी कितनी सशक्त उक्ति द्वारा करते हैं -

ऊधो तुम्हें कपटी ने कपटी बनायो यासों ,
लाये ऐसे योग ताहि बांधोगी कुठारी सों ।

1:- गोपी - उद्धव - संवाद- कवीन्द्र माथौर - :अप्रकाशित :

अति बरसान बान छेदो उर माहिं किधौं ,

मारिधौं कृपान कै काटिधौं कुठारी सों ।

नाथूराम श्याम तजि केधौं नहिं और धाम ,

लैहौ विषघोल घोल घोल के पिटारी सों ।

ये ही चितधारी गिरधारी के वियोग माहि ,

मारोगी कटारी किधौं गिरोगी अटारी सों ।

:गो०उ० संवाद :

गोपी उद्धव संवाद में परम्परा का पूर्ण निर्वाह किया गया है । कुब्जा का सन्दर्भ भी आ गया है , परन्तु नाम मात्र को ही आया है -

माहुर सुकवि चेरी कूबरी के चेरे भये ,

ऊंचे भये हमको अँधेरी अधराती के ।

इस प्रतीक के माध्यम से माहौर जी ने अभिव्यंजित किया है कि भारत जनता के रक्षक ब्रिटिश कम्पनी के गुलाम हो गये तथा सारी जनता महान अन्धकार में डूब गई है ।

गोपी उद्धव संवाद में अन्त में निवृत्ति मार्ग पर प्रवृत्ति मार्ग को विजय दिखलाकर माहौर जी ने समाज की महती आवश्यकता को पूरा किया समाज को चलाने में निराकार वादी व्यक्ति असमर्थ हैं वे तो राष्ट्रवाद को विनष्ट करने वाले हैं उनको फटकारते हुये तथा गोपी उद्धव संवाद का उपसंहार करते हुये माहौर जी कहते हैं -

गोपिन के अंग अंग भर्‌यो लख श्याम प्रेम को मेला ।

मिल्यो न टूटे जोग जोग को ठिल्यो ज्ञान को ठेला ।।

ज्ञान अज्ञाने में ऊधो के रह्यो न एक अधेला ।

ज्ञान भयो ऊधो को ऐसो जैसे नीम करेला ।।

गुरु बनन आये थे ऊधो बन गये उल्टे चेला ।

दूर गयो ज्ञान प्रेम वारिधि में मिसरी कैसो ढेला ।

माहुर सुकवि हार गये, ऊधो वरे प्रेम को हेला ।

आये भर प्रिय-प्रेम, ध्यान को करिके दूर अमेला[1] ।।

1:- गोपी उद्धव संवाद - नाथूराम माहौर - :अप्रकाशित :

2:- रम्भा - शुक - संवाद :अनूदित कृति :

रम्भा शुक संवाद माहौर जी की अनूदित कृति है जो अप्रकाशित है । रम्भा शुक संवाद मूल रूप में संस्कृत भाषा में है जिसका शब्दश: अनुवाद माहौर जी ने हिन्दी भाषा में बड़ी ही कुशलता के साथ किया है । अनुवाद एक ऐसी कला है जिसके माध्यम से एक भाषा दूसरी भाषा की ज्ञान सम्पत्ति से सुपरिचित होती है तथा अपनी भावराशि को समृद्ध बनाती है । आधुनिक युगीन अन्य अनेक विधाओं की भांति अनुवाद का सूत्रपात भी "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र " ने ही किया था । संस्कृत , प्राकृत और बंगला की कुछ पुस्तकों का अनुवाद करके वे इस क्षेत्र में भी मार्ग दर्शक बने । उन्होंने शेक्सपियर के "मर्चेन्ट आफ वेनिस" का भी अनुवाद हिन्दी में किया । भारतेन्दु के बाद अनुवाद के क्षेत्र में अनेक व्यक्ति सामने आये । पण्डित श्रीधर पाठक ने "गोल्ड स्मिथ " की तीन कृतियों के पद्यानुवाद "ऊजड़ ग्राम" , "श्रांत पथिक" तथा "एकान्तवासी-योगी" नामों से प्रस्तुत किये ।

अच्छा अनुवाद वही होता है जिसमें मूल भावों की रक्षा के साथ ही अनुवाद की भाषागत प्रकृति भी अक्षुण्ण बनी रहे । अनुवादक का कार्य अपेक्षाकृत मूल कृति कार से अधिक कठिन होता है क्यों कि मूल कृतिकार के सम्मुख अपनी अभिव्यक्ति में कोई भाषागत अवरोधक प्रतिबन्ध नहीं होता है जब कि अनुवादक की भावाभिव्यक्ति पर मूल कृति का अंकुश पग पग पर होता है । डा० भगवान दास ने अनुवाद कला पर प्रकाश डालते हुये कहा है --" अनुवाद शब्दानुवाद नहीं आशयानुवाद भावानुवाद होना चाहिये । अनुवाद की भाषा ऐसी होनी चाहिये कि पढ़ने वाले को जान पड़े कि मानो स्वतंत्र लेख है । ऐसी नहीं कि पढ़ने वाले को जान पड़े कि भाषान्तर का अनुवाद है । उसके आशय और भाव का यथोचित संशोधन भी कर लेना चाहिये । ऐसे अनुवादों के द्वारा विविध ज्ञान पीकर और अपने मनोमय तथा विज्ञान मय कोश में उसका जागरण पाचन करके उसके बल से नये ग्रन्थ का आविष्कार होना चाहिये"[1] ।

1:- पुरुषार्थ-डा० भगवानदास - 1947 - नई दिल्ली से प्रकाशित

उपर्युक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में माहोर जी द्वारा अनूदित "रम्भा-शुक संवाद" का अध्ययन करने पर विदित होता है कि उसमें अनुवाद के वे सारे महत्व पूर्ण अंग उपांग विद्यमान हैं जो कि एक अच्छी अनूदित कृति में होना चाहिये। माहोर जी भी अनुवाद कला की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने वाली उनकी अनुदित कृति "रम्भा शुक संवाद" ही है यह अनुवाद इतना उच्च कोटि का बन पड़ा है कि मूल भाव उसके समक्ष नीरस प्रतीत होते हैं। उदाहरण देखिये -

रम्भा:-

मासे मासे नूतनं च्यूत खण्ड, खण्डे खण्डे कोकिलानां विरावा: ।
रात्रे रात्रे मानिनी मान भंग, भंगे भंगे मन्मथ पंच बाण: ।।

कवीन्द्र माहोर कृत अनुवाद :-

फूले फिरे फैल फैल प्रफुल्लित फूलन पै ,
गन्ध मन्धु घूम घूम गुंजत अलान के ।
मग मग मंजु मंजु नूतन रसाल खण्ड ,
खण्ड खण्ड पै अखण्ड शब्द कोकिलान के ।
लोनी ललिकान पै विलोको वर व्यास नन्द ,
मण्डे कल लाम मान खण्डे अबलान के ।
ऋतुपति साम के निसान दरसाने लागे ,
बैठे हिये आम आन तान पंच बान के[1]।

प्रस्तुत अनुवाद मूल छन्द से कहीं अधिक श्रेष्ठ , सरस , मादक तथा प्रभावशाली है। स्पष्ट है कि कवि ने मूल के आशय तथा भाव को अपने मनोबल तथा विज्ञान मय कोष में धारण पालन कर अपनी भाषा में स्वतंत्र आलेख तुल्य प्रस्तुत किया है। आवश्यकतानुसार भावों को घटाया बढ़ाया भी है।

1:- रम्भा शुक संवाद - माहोर -: अप्रकाशित :

माहीर जी की अनुदित कृति को पढने से मूल कृति से अधिक रसानु - भूति होती है । "रम्भा शुक संवाद" में कुछ छन्दों का तो भावानुवाद है और कुछ में अपनी नवीन योजना से सम्पृक्त कर उन्होंने अपनी मौलिक उद्भावना शक्ति का परिचय दिया । शब्द प्रयोग की दृष्टि से ही नहीं प्रत्युत "रम्भा-शुक संवाद" के संस्कृत की प्रत्येक पंक्ति के भाव को काव्य कला के माध्यम से माहीर जी ने किस प्रकार उतारा है यह छवि देखते ही बनती है । यथा -

रम्भा :-

झणत्कटी नूपुर मंजु घोषा,
नासाग्र मुक्ता नयना भिरामा ।
न सेवित्ता येन भुजंग वेणी ,
वृथा गतं तस्य नरस्य जीवितम ।।

इसका अनुवाद देखिये कितना आकर्षक एवं मूलभावों को सुरक्षित रखे हुये हैं -

कवीन्द्र माहीर कृत अनुवाद :-

कटि मृग राज लाज गति गज राज लाजे ,
नूपुर पगन बोल भृंग झंकार है ।
सुखमा दराज राज रूप सरताज ताज ,
अति छवि छाव बोलि जोबन बहार है ।
नासूराम नयना भिराम छवि धाम वाम ,
नासाग्रमध्य मुक्ता गुच्छ स्वच्छ छविदार है ।
व्याल वर वेणी अस सेवन करी न जिन ,
तिन जग जीवन को जीवन असार है[1] ।।

प्रस्तुत अनुवाद में कवि ने अपनी ओर से बहुत से उपादानों को प्रस्तुत किया है इस बात का ध्यान रखा है कि मूल भाव तिरोहित न हो जाय । जैसे "कटि-

---

1:- रम्भा शुक संवाद - माहीर - अप्रकाशित

मृग राज साज गति मृग राज गाजै" । इस आशय का मूल छन्द में वर्णन नहीं है केवल "बलत्कशी" कह कर ही मूल कृतिकार ने इन उद्दीपन क्रियाओं को नि:सृत किया । इसी प्रकार "सुखमा दराज राज रूप सरताज ताज" आदि की भी सृष्टि कवि की मौलिक कल्पना है ऐसा करने पर अनुदित छन्द का सौन्दर्य मूल से भी द्विगुणित प्रतीत होता है । दराज, सरताज जैसे उर्दू भाषा के शब्दों को इस प्रकार प्रयुक्त किया कि वे हिन्दी के साथ पूर्ण रूपेण घुल मिल गये हैं । इसी प्रकार अन्य छन्दों में भी नवीनता एवं मौलिकता के दर्शन होते हैं । माधोसिंह जी द्वारा पाँच छन्दों का ही अनुवाद किया गया है जो अपने में अभूतपूर्व है । अनुवाद के कारण रस में बाधा नहीं आती अपितु अनुवाद रस निष्पत्ति में सहायक ही सिद्ध हुआ है ।

"रम्भा - शुक संवाद" में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मार्ग का खण्डन - मण्डन किया गया है । शुक के मुख से संसार असारता के भावों की अभिव्यंजना करते हुये जीव को ईश्वरोन्मुख होने की प्रेरणा दी है । रम्भा ने उक्त तर्क को सारगर्भित बतलाया है ।

रम्भा शुक संवाद में वर्णित विचार धारा अति प्राचीन है । भारत में चारों पुरुषार्थों का चिन्तन किया गया है अर्थ, धर्म, काम, और मोक्ष यही चार पुरुषार्थ माने गये हैं समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अर्थोपार्जन प्रथम पुरुषार्थ है, उस अर्थ के वितरण के लिये उचित आचरण, व्यवहार की आवश्यकता है वह कर्त्तव्य या धर्म नामक द्वितीय पुरुषार्थ है । उपलब्ध वैभव के भोगने की कामना करना 'काम' है पूर्ण तृप्ति लाभ कर शरीर त्यागना ही पुरुषार्थ है । दासता आ जाने पर सारे पुरुषार्थ समाप्त हो जाते हैं उस समय केवल एक ही अवलम्ब रह पाता है भक्ति का ईश्वर के प्रति भक्ति । ईश्वर ही स्वामी है लौकिक भोग ऐश्वर्य की सम्प्राप्ति की दुर्लभता देख जनता को प्रतीत हुआ कि संसार अनित्य है, असार है एक मात्र ईश्वर ही सर्वस्व है और व्यक्ति ईश्वर की ओर उन्मुख हुआ । उसे संसार से विरक्ति हो गयी लेकिन हमारे कवियों तथा चिन्तकों ने जन जीवन को अनवरत गति से जगाने का प्रयास किया उन्होंने समझाया कि संसार असार नहीं है यहाँ -

अपरिमित आनन्द है , विषयानन्द तो ब्रह्मानन्द का सहोदर ही है । विषया-
नन्द सुलभ है , ऐसी मान्यता वैदिक काल से चली आ रही है स्वयं गुप्त जी
ने कहा -

> मैं नहीं यहाँ सन्देश स्वर्ग का लाया ।
>
> इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।।

भूतल को ही स्वर्ग बनाने का तात्पर्य था कि इस जीवन में ही सारे भोगों की उपलब्धि करा देना । इसी विचार धारा को दृष्टिगत रखते हुये माहोर जी ने "रम्भा शुक संवाद" का अनुवाद ब्रज भाषा में किया जिससे यह उपदेश जन सामान्य के हेतु हो सके । सम्पूर्ण अनूदित " रम्भा शुक संवाद " में रीति कालीन प्रवृत्ति विद्यमान है । श्रृंगारिकता , आलंकारिकता, ब्रज भाषा का माधुर्य आदि रीति कालीन समस्त विशिष्टताओं की प्रतिच्छाया विद्यमान है ।

3:- शृंगार - वागीश :अप्रकाशित :

कवीन्द्र नाथूराम माहौर ने "शृंगार वागीश : नामक कोष स्वतन्त्र पुस्तक की रचना नही की । उनकी शृंगार परक एवं नायिका भेद सम्बन्धित रचनाओं का संकलन माहौर जी के शिष्यों द्वारा किया गया जिसे "शृंगार वागीश" संज्ञा से अभिहित किया गया । माहौर अभिनन्दन ग्रन्थ में "शृंगार वागीश" शीर्षक उन्नीस घनाक्षरी छन्द मिलते हैं, खोज करने पर अन्य शृंगार - सम्बन्धी छन्द भी मिले हैं जिन्हें शृंगार वागीश के अन्तर्गत ही लिया जा सकता है सम्भव है संकलन कर्ताओं को केवल उन्नीस छन्द ही "शृंगार - वागीश" के अन्तर्गत प्राप्त हो सके हों ।

माहौर जी के समकालीन कवियों तथा उनके शिष्यों से ज्ञात हुआ कि "शृंगार-वागीश" के अन्तर्गत संकलित छन्द समय समय पर गोष्ठियों एवं कवि सम्मेलनो में पाठ करने के हेतु लिखे गये । अनेक छन्द समस्यापूर्ति विषयक है कतिपय राज दरबारों मे समस्यापूर्ति एवं फड़ों का आयोजन होता था वहां माहौर जी भी जाते थे तथा विभिन्न समस्यापूर्ति विषयक छन्द लिखा करते थे । "शृंगार-वागीश" में उन्हीं सब छन्दों को संकलित कर दिया गया है । अधिकांश पद संयोग - शृंगार के ही हैं ।

शृंगार भावना संसार के सभी साहित्यों का अनिवार्य अंग है जो चिरकाल से अपने व्यापकत्व के कारण महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त करती आई है । शृंगार रस का सम्बन्ध सृष्टि के दो महान जीवन तत्वों से बताया जाता है, उनमे एक है सौन्दर्य दूसरा है प्रेम[1]। इसी कारण शृंगार की परम्परा सदैव वर्तमान रही है । मानव समाज के साथ ही जिस प्रकार साहित्य किसी न किसी रूप में विकसित होता आया है, उसी प्रकार साहित्य के साथ शृंगार का भी उद्भव हुआ है सृष्टि के मूल में शृंगार भाव निहित है और साहित्य के मूल में मानव । डा० मुंशी राम शर्मा के शब्दों में मानव जीवन का अधिकांश भाग -

---

1:- कला, कल्पना और साहित्य - डा० सत्येन्द्र - पृ०- 70

शृंगार रस की मूल प्रवृत्ति से ही प्रेरित होता है[1]। देश और काल की सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार शृंगार रस की प्रवृत्तियों में भी परिवर्तन और विकास होता रहता है । अन्य भाषाओं के साहित्यों की भाँति हिन्दी साहित्य में भी शृंगार भावना का प्रारम्भ उसके आरम्भिक काल से दिखाई पड़ता है ।

हिन्दी का आदि काल वीरगाथाओं का युग है किन्तु उसमें अप्रत्यक्ष रूप से और कहीं कहीं प्रत्यक्ष रूप से शृंगार भावना अन्तर्निहित है सम्पूर्ण वीर गाथाओं के मूल में नारी वर्तमान है । वीरगाथाओं में शृंगार रस के साथ वीर रस वाली घटनाओं की भी प्रधानता रहती है किन्तु दोनों का समान अनुपात दिखाई नहीं देता[2]। बीसलदेव रासो ,पृथ्वीराज रासो आदि ग्रन्थों में शृंगार के विशद वर्णन मिलते हैं । इस प्रकार शृंगार की भावना ने हिन्दी साहित्य के आरम्भिक-युग में ही अपनी महत्ता और व्यापकता स्पष्ट कर दी थी । लोगों का यह विचार निराधार और भ्रामक है कि रीतिकाल में विलासी राजाओं को प्रसन्न करने के लिये उनके आश्रित कवि शृंगार परक कविताओंलिखा करते थे यदि ऐसा होता तो सूर और तुलसी शृंगारिक कविताओं से वंचित रहते लेकिन ऐसा नहीं है सूर और तुलसी दोनों ही किसी भी राज्याश्रित नहीं थे और दोनों ने ही शृंगारिक कवितायें भी लिखी है । सूर ने तो नायिका भेद तक के पद लिखे -

खण्डिता - नायिका :-

आज हरि रैनि उनींदे आये ।
बिनु गुन माल विराजति उर पर चन्दन रेख लगाये ।
+ + + +
नख की रेख विराजति उर पर कंकन पीठि बनाये ।

इसी प्रकार समाज में अश्लील कहे जाने वाले वर्णन तक सूर ने किये -

"नीको ललित गही जदुराई ।
जबहि सरोज धरेउ श्री फल पर तब जसुमति गइ आइ ।

1:- भारतीय साधना और साहित्य- डा० मुंशीराम शर्मा - 344

2:- हिन्दी काव्यधारा में प्रेम प्रवाह - पं. परशुराम चतुर्वेदी - 33

स्पष्ट है कि प्रत्येक युग में शृंगार - वर्णन कवियों द्वारा किये गये । कवि अपने युग का प्रतिनिधित्व करता है । माहौर जी भी युग का प्रतिनिधित्व पूर्ण रूपेण कर रहे थे । वे स्वातन्त्र्य संघर्ष युग के कवि थे । जिस प्रकार वीरगाथा काल में पृथ्वी राज रासो आदि वीर काव्य में शृंगार और नायिका भेद के वर्णन साभिप्राय किये गये । उसी प्रकार संघर्ष युग में लोगों में उत्साह जाग्रत करने के लिये वीर काव्य के साथ शृंगार की भी आवश्यकता थी । माहौर जी के काव्य में वीर भाव के साथ शृंगार भावना प्रचुर रूप में देखने को मिलती है । शृंगार के माध्यम से राजाओं के सोये हुये दर्प एवं वीर वृत्ति को जाग्रत किया । माहौर जी ने एक ही छन्द में शृंगार और वीर रस तथा देश प्रेम की भावना, सभी का समावेश बड़े ही सुन्दर ढंग से किया -

"सज्जित अरुण वस्त्र रत्न भूषणों से अंग,
अंग की दमक दिव्य हीरक समान थी ।
सुभग रक्ताभ हास-भास की प्रभाव भरी,
विदित जहान वीर महिमा महान थी।
नाथूराम विद्युत सी नाचती रणांगन में,
छन छन शब्द के सुनाती तान तान थी ।
दल मुगलों के प्राण छन करने के लिये,
गणिका समान छत्रसाल की कृपाण थी ।।

माहौर जी के युग को राजनैतिक दृष्टि से हम गांधी- युग कह सकते हैं । उस युग की सम्पूर्ण राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना गांधी जी की नीतियों से परि-चालित थी । गांधी अहिंसा और प्रेम की शिक्षा दे रहे थे । प्रेम का पोषक तत्व है शृंगार अतः उस युग में शृंगार परक रचनायें भी लिखी गयीं । माहौर जी के समकालीन कवि घासीराम व्यास तथा हनुमान दास पाण्डेय ने भी शृंगार परक कवितायें लिखी । माहौर जी ने हिन्दी के सभी कालों का प्रति-निधित्व किया । वीर रस परक रचनाओं द्वारा वीरगाथा काल, भक्ति-परक गीतों द्वारा भक्तिकाल, "शृंगार एवं नायिका भेद आदि की रचनाओं द्वारा रीतिकाल तथा देश प्रेम युक्त राष्ट्रीय रचनाओं द्वारा आधुनिक काल-

का प्रतिनिधित्व किया । माहौर जी ने श्रृंगार का वर्णन केवल रूप लिप्सा या सौन्दर्य दर्शन के ही लिये नही अपितु श्रृंगार द्वारा युग को उद्बोधन किया -

"ताने पंचबान कैसी भृकुटि कमाने पेखि
आली टूट जायेगी कमाने मघवान की"[1]।

इस का व्यंग्यार्थ यह है कि महात्मा गाँधी द्वारा निर्देशित प्रेम के शस्त्र से युद्ध करने पर इन्द्र के सदृश शस्त्र धारी गोरों के शस्त्र कुंठित हो जायेंगे ।

जिन छन्दों को श्रृंगार वागीश के अन्तर्गत रखा गया है उनमें से कुछ तो नायिका भेद के छन्द है और कतिपय छन्द श्रृंगार परक है । जब नायिका के रूपमात्र का वर्णन होता है तो श्रृंगार छन्द कह सकते हैं और जहाँ नायिका की मन:स्थिति उसके हाव भाव व्यापार का वर्णन होता है वहाँ नायिका भेद होता है ।

श्रृंगार वागीश के अन्तर्गत जिन छन्दों का संकलन किया गया वे छन्द एवं दोहों के रूप में है । माधुर्य गुण युक्त, कोमलकलित पदावलियों से सज्जित अनुप्रास , उपमा , उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से सम्पन्न ये छन्द पूर्ण प्रभाव सशक्त एवं मार्मिक प्रभाव डालने वाले हैं ।

माहौर जी की श्रृंगार परक तथा नायिका भेद की समस्त रचनायें फड़ों, कवि सम्मेलनों तथा गोष्ठियों में समय समय पर पढ़ी जाने वाली कवितायें हैं । समस्यापूर्ति के लिये भी अक्सर श्रृंगार परक कविताओं का ही प्रचलन था । ऐसी कविताओं में प्रति स्पर्द्धा की भावना कार्य करती थी इस कारण कलात्मकता का ध्यान रखना आवश्यक था ।

स्वतन्त्रता संग्राम में जनमानस में राष्ट्रीयता की भावनाओं का संचार किया जा रहा था । लोग महात्मा गाँधी के पद - चिन्हों का अनुसरण कर रहे थे । स्त्रियों की मनोवृत्तियां भी परिवर्तित हो रही थी वे घर से बाहर आकर पुरुषों के साथ स्वतन्त्रता संग्राम में भाग ले रही थी । इस प्रकार का -

---

1:- श्रृंगार - वागीश - माहौर

वातावरण बनाये रखना तथा जनमानस में राष्ट्रीयता की भावना भर उन्हें प्रेरणा देना, कवियों का ही कार्य था । अपनी कविता के माध्यम से कवि- कवियों का आश्रय लेकर प्रतीकों के माध्यम से कविगण जनमानस को राष्ट्रीयता की ओर ले जा रहे थे । माहौर जी भी समय से अछूते नहीं थे उन्होंने भी नायिका भेद आदि के माध्यम से राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति की । रूप गर्विता नायिका के माध्यम से माहौर जी ने कितनी महान राष्ट्रीयता की व्याख्या की है, देखिये -

आनन जो फेरोगे तो आनन न पै हो आन ।
आन तज देहो सब मान हर जावेगी ।
निपट विशाल लाल हहो मेन कानन तें,
मन्द मुसकान की कृपान जुरि जावेगी ।
कमल कपोलनि के भौंर से भ्रमोगे भूरि,
नाथूराम रोम रोम छवि भर जावेगी ।
परे रहो ओट ले नहीं तो कुछ कोरन की,
ले हो जो करोट तो करोट परि जावेगी ।।

: श्रृंगार-वागीश :

इस छन्द में रूप गर्विता नायिका के माध्यम से कवि ने बतलाया है कि भारतीय जनता के मुख की दीप्ति के तुल्य विश्व में किसी की मुख दीप्ति नहीं । भारतीय जनता का तेज अपूर्व है उसके प्रतिनिधि गांधी से कोई आँख नहीं मिला सकता । उनकी मन्द मुस्कान भीषण क्रान्ति की जनक है । उनके प्रेमो - द्दीपक अंगों का संस्पर्श मात्र युग की धारा को परिवर्तित कर देता है ।

इसी प्रकार गणिका नायिका के माध्यम से अंग्रेजों पर किया गया तीव्र प्रहार देखिये -

नाथूराम बिन्द विशाल छवि बाल लाल,
कासे वह लाल हाल हेर मन भाय हैं ।
कर कर चाल ढाल बाल मन पींजरा में,

केते छर छाल छाल लाल पाल राखे है[1] ।।

इसमें स्पष्ट है कि अंग्रेजों की कूटनीतिक चाल की भर्त्सना है जिसके माध्यम से उन्होंने गणिका नायिका की भांति विश्व के कितने ही राष्ट्रों को अपना गुलाम बना लिया है ।

नारी के सौन्दर्य वर्णन के क्षेत्र में अंकुरित यौवन तथा वय: सन्धि की अवस्था के चित्रण का बड़ा महत्व है । शरीर तथा मन में होने वाले क्रमिक परिवर्तनों का चित्रण कवियों का प्रिय विषय रहा है[2] । माहौर जी भी इस प्रभाव से अछूते न रह सके उन्होंने "श्रृंगार-वागीश" में नायिका की वय: सन्धि का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है । यहाँ हम उन्हें रीतिकालीन कवियों के निकट पाते हैं -

"गहब गुराई गुल गालनँ गुलाई गाई ,
अंगन लुनाई ओज तन तरुणाई की ।
दृगन दिठाई चंचलाई छवि छाई आई ,
कुचन उचाई पाई काम निपुणाई की ।
लंक छीनताई औ नितम्ब पीनताई आई ।
गन्ध सरसाई गेह देह सुख दाई की ।
का कहा कीजे नाहिं हाँसि हँसि लागी कँठ,
"नाथूराम" बाल चाल त्यागी लरकाई की[3] ।"

उपर्युक्त छन्द में नायिका की वय: सन्धि अवस्था का कितना स्वाभाविक चित्रण है अनुप्रास की स्वाभाविक छटा ने तो मानो चार चाँद लगा दिये हैं ।

समस्या पूर्तियों के लिये लिखे गये अनेक छन्द "श्रृंगार-वागीश" में प्राप्त होते हैं जिनमें तत्कालीन कलात्मक अभिव्यक्ति देखी जा सकती है । माहौर जी समस्यापूर्ति में सिद्ध हस्त थे । कठिन से कठिन समस्या की पूर्ति माहौर जी

1:- श्रृंगार वागीश - माहौर

2:- रीतिकालीन और आधुनिक हिन्दी कविता-डा०रमेश शर्मा -पृ०- 106

3:- श्रृंगार वागीश-माहौर

ऐसी चमत्कार पूर्ण रीति से करते थे जिसे सुनकर लोग दाँतों तले उंगली दबा लेते थे । ये समस्यायें कभी कभी नायिका भेद से सम्बन्धित होती थी कभी पूर्ण रूप से श्रृंगारिक । "घट में समायो" समस्या को लेकर अनेक छन्द श्रृंगार-वागीश के अन्तर्गत संकलित हैं । उदाहरण के लिये निम्न छन्द देखा जा सकता है जिसमें "वचन विदग्धा" नायिका का बड़ा ही सुन्दर चित्र माहौर जी ने खींचा है -

बात सतरात बतरात बतरात बात,
बात में बनाव बात सों सुन सहा करौं ।
बैन दिन मैन के मरोरन औंन बैन ,
बैन परबैन चित चैन में चहा करौं ।
"नाथूराम" लाल बिन कल कल मचाव कल ,
पल में विकल कल कैसे लहा करौं ।
पनघट आय के तट देत है उठाय घट ,
घट में बसो है लाल घूंघट कहा करौं[1] ।।

जहाँ एक ओर नायिका-भेद के छन्द श्रृंगार वागीश के लिये माहौर जी ने लिखे वहीं दूसरी ओर नायिका के रूप सौन्दर्य का चित्रण करने में भी वे रीतिकालीन कवियों से पीछे नहीं रहे । सद्यस्नाता का जो चित्र माहौर जी ने खींचा है उसमें उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति रीतिकालीन कवियों से कहीं उच्चकोटि की है -

भानुजा नहाय वृषभानुजा पधारी गेह ,
देह दुतिवारी दुति विद्युत लजोवे है ।
सारी जरतारी धारी अंग सुकुमारी भारी ,
केशन सँभारी न्यारी कुच कुम्भ जोवे है ।
नाथूराम लोनी लोनी लाँबी लटकारी लट ,
लटकी कुच पै लख उपमा सजोवे है ।
मानो कलधौत के उतंग श्रृंग अंग ऊपर ,
केलि कर पन्नगी पसार फन सोवे है[2] ।

1:- श्रृंगार वागीश - माहौर

2:- श्रृंगार वागीश-माहौर

इस प्रकार हम देखते हैं कि "शान्ति सागर" भक्ति एवं नीति का अगाध सागर है ।

---------- 0 ----------

अप्रकाशित :-

4:- षड्ऋतु - दर्पण -

रीति कालीन कवियों की मनोवृत्ति सभी ऋतुओं को उद्दीपन रूप में चित्रित करने की रही है । इसी परम्परा का अनुगमन करते हुये माहौर जी ने षट् ऋतुओं का वर्णन "षड्ऋतु दर्पण" में किया है । यह माहौर जी की अप्रकाशित कृति है इसके कुछ छन्द "माहौर अभिनन्दन ग्रन्थ" में प्रकाशित हैं । श्रृंगार रस के अन्तर्गत प्रकृति के उद्दीपन रूप को लेकर षड्ऋतु एवं बारहमासे के वर्णन की परम्परा रीति काल के कवियों ने अपनायी । वैसे तो साहित्य में प्रकृति का वर्णन अन्य रसों में भी मिलता है किन्तु प्रधान रूप से प्रकृति का वर्णन श्रृंगार रस के ही अन्तर्गत किया गया है । माहौर जी षड्ऋतु दर्पण में छ:ओं ऋतुओं का अत्यन्त हृदयग्राही तथा यथार्थ चित्रण किया है । कवि का षट् ऋतु यद्यपि परिपाटी बद्ध है किन्तु उसमें भावों की अभिव्यक्ति परम प्रभविष्णु है । रीतिकाल से प्रभावित होने के कारण माहौर जी सभी ऋतुओं के स्वतंत्र एवं आलम्बन रूप में चित्र अंकित नहीं कर पाये हैं । षड्ऋतु दर्पण में प्रकृति को सर्वदा उसके उद्दीपक रूप में ही स्वीकार किया है । रीति-परिपाटी के अन्तर्गत विभिन्न ऋतुओं का जो उद्दीपन के लिये प्रयोग किया जाता है उसमें प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों को सुखदायी अथवा दुखदायी रूप में नायक अथवा नायिका को प्रभावित करते हुये चित्रित किया जाता है । माहौर जी ने भी "षड्ऋतु दर्पण" में प्रकृति के सुखद एवं दुखद दोनों ही रूपों की कल्पना की है । नायिका के हृदय में काम भावना उद्दीप्त करने वाले ऋतुराज बसन्त का चित्रण कवि ने बड़ी ही स्वाभाविकता के साथ रीति परिपाटी का अनुसरण करते हुये इस प्रकार किया है -

ऋतु बसन्त में मान अब रहे कौन को मान ।
पंचबान के प्रबल जब छूटें छोर निसान ।

मम्मग आम्र मौर जगमग होंहि मंजु,
            मगमग भौर पुंज गुंजत छायेंगे ।
अलि कलपायेंगे न नेक कल पायेंगे ,
            पु पिक कल कण्ठी सुक कलह गायेंगे ।
"नाथूराम" भौन भौन विपिक्ष सुमोन देव ,
            गौन कर आगम बसन्त को सुनायेंगे ।
मान गढ़ मान के रहेंगे न निसान कहूं,
            वीर पंचवान के निसान फहरायेंगे[1] ।

बसन्त का आगमन उस राजा के समान है जिसके आने पर प्रजा सुख एवं समृद्धि को प्राप्त करती है शत्रु पक्ष प्रबल राजा के आगमन पर भयभीत होकर भाग जाता है सर्वत्र राजा की विजय पर प्रजा आनन्दित हो जाती है । माहौर जी ने बसन्त के माध्यम से राष्ट्रीय भावना का परिचय देते हुये, बसन्त के मानवीकरण की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है । ऋतुराज बसन्त को राजा के रूप में "षड्ऋतु दर्पण" में इस प्रकार चित्रित किया गया है -

आक्रमन हेर सीतराज के प्रवीर पत्र ,
            मोरचान त्याग यत्र तत्र भागने लगे ।
दखल जमायौ ऋतुराज ने सकल आन,
            सीत के अदल हो विकल भागने लगे ।
नाथूराम फूल फूल पाने लगे मोद मूल,
            सुतल प्रजा जन के भाग जागने लगे ।
कटक गुलाबन के चटक सुनाय मानों ,
            विजयरे बसन्त को सलामी दागने लगे[2] ।

ऋतुराज बसन्त की विजय के ब्याज से अंग्रेजों पर भारतीयों की विजय की परिकल्पना माहौर जी के काव्य वैशिष्ट्य का द्योतक है । कवि की यह उद्भावना-

---

1:- षड्ऋतु दर्पण - माहौर - अप्रकाशित

2:- षड्ऋतु दर्पण - माहौर -

नूतन है , मार्मिक है , समयानुरूप है तथा इसमें रीति परिपाटी का नूतन उप - योग किया है । प्रकृति का चित्रोपम वर्णन भी यहाँ दृष्टव्य है ।

शृंगार वर्णन की प्राचीन परिपाटी के अन्तर्गत जिन विभिन्न अवस्थाओं की कल्पना की जाती है , उनमें होली उत्सव का अपना विशेष स्थान होता है । षड्ऋतु दर्पण में माहौर जी ने होली का वर्णन भी परम्परागत रीतिकालीन शृंगारी भावना के अनुरूप ही किया है -

होरी आज होरी बरजोरी बरजोरी भई ,
अधिक निहोरी गई प्रीतम बिदेस पै ।
कीनी सरबोर प्रीत रीत रस बोर बोर ,
जात चित चोर चोर सुखमा सुदेस पै ।
अलकै नवीनी रंगभीनी सबै आनन पै ,
उमंग उरोजन की ओजता सुवेस पै ।
माथुराम मानो मन अति ही आनन्द मान,
अम्रित के कुन्द चन्द कुवत महेस पै[1] ।

होली के चित्रण में नायिका एवं नायक के प्रेम की बड़ी सुन्दर अभिव्यंजना कवि ने की है जो कि रीतिकालीन कवियों की प्रेम भावना से किसी प्रकार कम नहीं है ।

कवि ने ग्रीष्म ऋतु का अत्यन्त प्रभाव पूर्ण वर्णन किया है । रीतिकालीन कवियों ने ऋतुओं का प्रभाव सर्वत्र दिखलाया है । सेनापति ने तो सभी ऋतुओं का बड़ा ही यथार्थ एवं मनोहारी चित्र उपस्थित किया है सेनापति द्वारा चित्रित भीषण ग्रीष्म का इससे यथार्थ चित्र और क्या हो सकता है जब पवन भी किसी शीतल स्थान पर क्षणभर के लिये ठहर कर घाम बिता रहा हो । माहौर जी ने भी ग्रीष्म की प्रचण्डता का बड़ा ही यथार्थ चित्र अंकित किया है । यमक एवं उत्प्रेक्षा की छटा ने ग्रीष्म के वर्णन को और भी सजीवता एवं स्वाभाविकता प्रदान की है -

---

1:- षड्ऋतु दर्पण - माहौर

कंज मुखी किलद बसन्त को विलोक अन्त ,

कंजन अनन्त लाज साजत अनन्द में ।

कंज दल मंजु पुंज महल छिपाये छाये ,

कंज के आभूषनांग पहरे स्वच्छन्द में ।

झिलमिल होत कंज नैनन में स्याम तिल ,

हिल मिल रहे प्रेम मधु मकरन्द में ।

नाथूराम ग्रीसम की तपन बुझायबे कों ,

बैठ आय मानो री गुविन्द अरविन्द में[1]।

कवीन्द्र का "पावस वर्णन" उद्दीपन के क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय है उसमें प्रकृति का स्वाभाविक तथा चित्रोपम वर्णन भी है तथा इसके साथ साथ उद्दीपक स्वरूप का संकेत भी है -

बोरे देत बुन्दुमी झकोरे घन छोरे सोरें ,

सोरें देत सकल दिशान छिति छोरें देत ।

छोरें देत लाज को पिया के बिन जारें देत,

सरिता हिलोरें देत मदन मरोरें देत ।

रोरें देत विरही, विरहीन तन तोरें देत,

मानों मेघ चंचला सों आज गांठ जोरें देत ।

जोरें देत बदरा बुलन्द बड़ बुन्दन सों ,

बरस बरस मेघ आज महि बोरें देत[2]।

माहौर जी ने पावस ऋतु का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक एवं हृदयग्राही किया है यद्यपि ऋतु का प्रभाव संयोगावस्था में भी कहीं कहीं चित्रित किया गया है किन्तु वर्षा में नायिका के विरहाधिक्य का चित्रण अधिक है । प्रिय के विरह में वर्षा नायिका की विरह व्यथा को द्विगुणित कर देती है -

पवन झकोर घोर जल की हिलोर छोर ,

मोरन को सोर सुन सुन मन झलोंगी ।

1:- षड्ऋतु दर्पण - माहौर

2:- षड्ऋतु दर्पण - माहौर -"पावस-वर्णन" - अप्रकाशित

फूले अरविन्द मकरन्द मद फूले भूले ,

फिरत मलिन्द वृन्द फूले नहिं फलोंगी ।

दादुर डरावें कल कोकिला कलापें दाधें ,

नाथूराम चातक अलापें किम भूलोंगी ।

रंभन के खंभन पै छम्मन करावो वीर,

अम्बन कदम्बन पै झूलन न झूलोगी[1]।

प्रकृति के उद्दीप रूप के अतिरिक्त कहीं कहीं माहौर जी ने प्रकृति के मानवीकरण रूप की सुन्दर झाँकी अंकित की है । मानवीकरण के अन्तर्गत प्राकृतिक पदार्थों को सचेतन मानवों की भांति चेष्टा एवं व्यापार करते हुये चित्रित किया जाता है । माहौर जी ने षड्ऋतु दर्पण में वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुये पुष्पों के द्वारा मानवोचित चेष्टाओं का प्रदर्शन कर मानवीकरण की व्यंजना इस प्रकार की है -

आगम वसन्त की खुशाली में मुकुल फूल ,

झूम रहे लाली भरे डाली की बहाली में ।

पाली खाँड़,अमल अझोल डोल राखे रूख ,

डासे कुसकोय के खजाने खुशख्याली में ।

नाथूराम माफक दिलों के दिल खोलकर ,

दान दे रहे हैं दयादान की प्रणाली में ।

बना रहे मधुपों को अति मतवाले आज ,

पिला रहे प्यार से पराग भर प्याली में[2]।

इस प्रकार हम देखते हैंकि "षड्ऋतु दर्पण" में माहौर जी ने प्रकृति के मृद मंजुल रूप की अत्यन्त मनोहर झाँकी अंकित की है जिसमें देशगत, कालगत एवं सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ साथ गहन अनुभूति एवं प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण विद्यमान है । कवि ने शब्दों के संयोजन में रंचमात्र भी असावधानी नहीं बरती । भावानुरूप शब्द विन्यास ने वर्णन में पर्याप्त प्रभावोत्पादकता और सरलता ला दी है ।

---------- o - --------

1:- षड्ऋतु दर्पण - माहौर -"पावस वर्णन" - अप्रकाशित

2:- षड्ऋतु दर्पण - माहौर

5 . बेतवा - बत्तीसी :- :अप्रकाशित :

बुन्देलखण्ड जनपद की पावन नदी बेतवा के महात्म्य को प्रदर्शित करने वाली "बेतवा बत्तीसी" कवीन्द्र माहोर की अनुपम कृति है । यह अप्रकाशित है इसके कुछ छन्द माहोर अभि० ग्रन्थ में प्रकाशित है । भारतीय संस्कृति में जन्म भूमि के प्रति अगाध प्रेम एवं अखण्ड श्रद्धा स्थापित करने के लिये तथा देश प्रेम की उत्कट भावना की जागृति के लिये भारत के तीर्थ स्थानों को अत्यधिक महत्व दिया गया है । इन तीर्थों में नदी , वन ,पर्वत, नगर आदि प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य शाली अवयव सम्मिलित हैं । देश प्रेम की भावना से आपूरित माहोर जी ने बुन्देलखण्ड के पवित्र तीर्थ ओरछा में कल कल निनाद करती बेतवा के महात्म्य का वर्णन "बेतवा-बत्तीसी" में आलंकारिक शैली में करते हुये रीतिकालीन परिपाटी का पूर्ण रूपेण पालन किया है । कवि ने पुस्तक का समारम्भ सरस्वती वन्दना से करने के पश्चात "बत्तीसी" का महत्व बतलाते हुये कहा है -

> चातक चित्त को शान्ति प्रदा,
>
> सुखदा सदा स्वाति की बुन्द बत्तीसी ।
>
> \+ + -+-
>
> छन्द प्रसूनन की सुख कन्द ,
>
> मतिन्दन को मकरन्द बत्तीसी[1]।।

इसके पश्चात कवि बेतवा के गुणों का बखान करता हुआ कहता है कि बेतवा के जल में स्नान करने से सांसारिक त्रिताप का विनाश हो जाता है । बेतवा का ध्यान करने मात्र से यमराज भी व्यक्ति के पास आने में भयभीत होते हैं यम के लो द्वार उस व्यक्ति के लिये सदैव बन्द ही रहते हैं -

> मंजन किये ते सदा भंजन त्रिताप होत ,
>
> ध्यान किये तें जम धाम द्वार बन्द होत[2]।

1:- बेतवा - बत्तीसी - माहोर - अप्रकाशित

2:- बेतवा - बत्तीसी - माहोर

राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने "सिद्धराज" में बेतवा को गंगा और यमुना से बढ़ कर बतलाते हुये कहा -

> वेत्रवती तीर पर नीर धन्य जिसका ,
> गंगा सी पुनीत जो सहेली यमुना की है ।
> रखती है किन्तु छटा दोनों से निराली जो ।

माहोर जी ने बेतवा के महात्म्य का वर्णन करते हुये कहा है कि बेतवा के कल - कल निनाद को सुनकर यमराज का दिल भी दहल जाता है । यमलोक में उथल - पुथल मचाती हुयी यमुना पापियों के लिये मुक्ति के द्वार खोल देती है सांसारिक कष्टों को दूर करती हुयी प्रभु से साक्षात्कार कराने में सक्षम है -

> कल कल नाद भरी धार की धुकार सुन ,
> जम दूतन को दिल हिल जात है ।
> उथल पुथल मच जात जमलोक मां हि ,
> दुष्ट पुष्ट नर्कन को ठेला ठिल जात है ।
> पापिन के हेतु खुल जात दिव्य मुक्ति द्वार ,
> तरल त्रितापन को किला हिल जात है ।
> "माहुर सुकवि" बेतवा के पास जात ताको,
> प्रभु पास जायबे को पास मिल जात है[1]।

बेतवा के प्रति अपनी भक्ति भावना प्रदर्शित करते हुये राष्ट्रकवि गुप्त जी कहते हैं -

> नेत्र रंजिनी वेत्रवती पर ,
> हमें हमारे राम मिले ।

राम के द्वार तक पहुंचाने में सक्षम बेतवा के इसी रूप को माहोर जी ने "बेतवा-बत्तीसी" में दिखलाया है -

> दौर दौर दुनिया के दौर को छुड़ाये जात,
> दौर दौर राम जी के दौर पहुंचाये जात[2]।

1:- बेतवा - बत्तीसी - माहोर

2:- बेतवा - बत्तीसी - माहोर

रीति परम्परा का अनुगमन करने के कारण माहौर जी के काव्य में अलंकारों की बहुलता रही है । शृंगार भावना रीतियुग की प्रमुख विशेषता थी । माहौर जी के काव्य में शृंगार भावना की चरम परिणति नायिका भेद के वर्णन में मिलती है । वेतवा का वर्णन करते समय भी कवि नायिका भेद के मोह को नहीं छोड़ सका । वेतवा को रूपगर्विता नायिका के रूप में चित्रित करते हुये माहौर जी ने प्रकृति के मानवीकरण की सुन्दर अभिव्यंजना की है । वेतवा असंख्य पुष्पों का शृंगार किये हुये तुंगारण्य में भेंट करती हुयी हृदय में उमंग की भावना लिये जामिन धसान आदि सहेलियों के साथ रूपगर्विता नायिका की भांति सुशोभित है-

> वेत्रवती तुंगित तरंगिनी तरंगनि सों ,
> तन तरुनाई को पसारें चली आवे है ।
>
> तुंगारण्य भेंटत समेटत अरण्य पुष्प,
> पुष्पन-सिंगार को सम्हारे चली आवे है ।
>
> माहुर सुकवि नव छवि की तरंग अंग ,
> अंग में उमंग निरधारें चली आवे है ।
>
> जामिन धसान आदि संग में सहेली लिये ,
> रूपगर्विता सी गर्व धारे चली आवे है[1]।

भक्ति भाव से आपूरित "वेतवा बत्तीसी" का कलापक्ष भी उत्कृष्ट है । कवि ने वेतवा को श्लेष और यमक की छटा से युक्त कर उसके महत्व को और भी आधिक्य प्रदान किया है -

> धारें जात धर्म धुज धवल धाम धाम ,
> वेत्रवती पातिकीन बीन बीन तारें जात ।
>
> तारें जात तरल त्रितापन के तापन तें ,
> पापिन को पार कर पार पर डारें जात ।
>
> \+ \+ \+
>
> गारें जात गरब गुमान जमदूतन को ,
> जीवन सौं जीवन को जीवन सधारे जात[2]।

1:- वेतवा - बत्तीसी - माहौर

2:- वेतवा - बत्तीसी - माहौर

यहाँ "श्लिष्ट पद" दृष्टव्य है । रीति कालीन कलेवर में प्रस्तुत "बेतवा बत्तीसी" माहौर जी की भक्ति भाव पूरित अनुपम कृति है ।

2:- राष्ट्रीय रचनायें -

अ:- प्रकाशित -

1:- गोरी - बीबी -

माहौर जी द्वारा रचित "गोरी बीबी" प्रकाशित आठ छन्दों की अन्योक्ति के रूप में एक छोटी सी राष्ट्रीय कृति है । इसके प्रकाशक हैं - सुन्दर लाल द्विवेदी और मुद्रक - अयोध्या प्रसाद शर्मा , स्वाधीन प्रेस झाँसी हैं । ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वतंत्रता के आन्दोलन के समय माहौर जी ने सैकड़ों मुक्तक त्याग और बलिदान के लिये नवयुवकों को प्रोत्साहित करते हुये लिखे । इसी समय सन 1931 में माहौर कवि मण्डल की एक बैठक में प्रस्ताव पारित किया गया कि अब जो राष्ट्रीय साहित्य लिखा जाय वह अन्योक्ति में लिखा जाय[1]। इसी के आधार पर माहौर जी ने अन्योक्ति रूप में "गोरी बीबी" की रचना की ।

"गोरी बीबी" में भारत में अंग्रेजों के आगमन, भारतीयों की स्वतंत्रता का अपहरण एवं उनके साथ अत्याचार आदि का चित्रण गोरी बीबी की व्यंजना से प्रस्तुत किया है । गोरी सरकार का चित्रण माहौर जी ने उस नव विवाहिता वधू के समान किया है जो आरम्भ में भोली स्वभाव की है परन्तु अन्ततोगत्वा जब श्वसुराल में कुचाल चलने लगती है तब उसको पुनः मायके भेजने के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं है । कवि ने अंग्रेजों के भारत में प्रवेश करने के पश्चात उसकी कुचाल देखते हुये उसे भारत से निकालने की प्रतारणा "गोरी बीबी" में कितने सशक्त स्वर में अभिव्यंजना की है -

ब्याहि के आय रही जब तू ,
तब देखने में थी स्वभाव की भोरी ।

1:- माहौर अभि॰ग्रं॰- नाथूराम माहौर की राष्ट्रीय काव्य साधना-मिश्रजी-पृ-46

प्रीतम को बस में कर के ,

करबे लगी हाय महा बरजोरी ।

चोरी करी है स्वतंत्रता की,

अब ओरी प्रतीत गई उठ तोरी ।

ज्यादा कुचाल चली जो कहूं ,

तो निकार के मायके भेज है गोरी[1]।

गोरी बीबी :अंग्रेज : के प्रति पति :भारतीय जनता : का विश्वास समाप्त हो गया है । अपने ही पति का धन अपने मायके भेजना प्रारम्भ कर दिया है , ऐसी गोरी बीबी की कलई खुल गई है अब उसकी एक भी चाल नहीं चलने वाली है । माहोर जी ने देखा कि अंग्रेज भारत की सम्पत्ति को विदेश ले जा रहे हैं तो कवि की वाणी अन्योक्ति रूप में अंग्रेज सरकार की भर्त्सना "गोरी बीबी" में इस प्रकार करती है -

लूटवे माल पति को लगी ,

लगी भेजने को निज मायके ओरी ।

तोरी गई खुल पोल खरी ,

अरी ओरी पिशाचनी पापनी गोरी[2]।

अब तो अंग्रेज चाहे जितने प्रयास करें , उनकी दाल भारत में गलने वाली नहीं -

चाहे जितेक उपाय करो ,

इस बात में दाल गले नहीं गोरी[3]।।

अंग्रेजों ने भारत में जो रक्तपात किया उसकी अभिव्यंजना बड़ी ही स्वाभाविक रूप में गोरी बीबी के माध्यम से कवि ने इस प्रकार की है -

फागुन के दिन लाग भरी ,

अरी केसी मचाय रही खरी होरी ।

1:- गोरी बीबी - माहोर - छन्द सं. - 1

2:- गोरी बीबी - माहोर - छन्द सं. - 2

3:- गोरी बीबी -माहोर - छन्द सं. - 4

लाल किये अंग लालन के ,

उल्टी लगी आय लगायवे खोरी ।

\+ + +

चाहे कितौ कर जोरी करो ,

फगुआ में कछु नहीं पाओगी गोरी[1]।

कवि गांधी के सत्य , अहिंसा , प्रेम के सिद्धान्तों की दुहाई देता हुआ अंग्रेजों से कहता है कि हिंसा के स्थान पर अहिंसा , घृणा के स्थान पर प्रेम की शिक्षा देकर भारत की जनता अंग्रेजों को भारत के साथ मैत्री का पाठ पढ़ाकर उन्हें भी स्व - देशी बनाने की क्षमता रखती है । "गोरी बीबी" में गांधी के सिद्धान्तों की अभिव्यंजना करते हुये कवि ने सशक्त राष्ट्रीयता का परिचय दिया है -

चाल सके न कुचाल कभी अब ,

चाल सुचाल चलायेंगी गोरी ।

पाठ पढ़ायेंगी प्रेम को पम ,

पतिव्रत धर्म सिखायेंगी गोरी ।।

मंजुल रंग से अंगन में ,

नव साज स्वदेशी सजायेंगी गोरी ।

गोरी से कारी बनाय तबै ,

निज बाँह की छाँह बसायेंगी गोरी[2]।

------------ 0 ------------

1:- गोरी बीबी - माहौर - छन्द सं. - 8

2:- गोरी बीबी - माहौर - 6- सवैया - 7

2. दीन के आंसू - : प्रकाशित :

राष्ट्रीय भावनाओं से आपूरित "दीन के आंसू" कवीन्द्र माहोर जी की एक अनुपमेय कृति है । स्वातन्त्र्य संग्राम के समय भारतीय नवयुवकों के हृदय में राष्ट्रीय जाग्रत कर उन्हें देश की स्वतंत्रता के लिये प्रोत्साहित करने वाली इस राष्ट्रीय कृति को ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था ।

माहोर जी के साहित्य पर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का विशेष रूप से प्रभाव पड़ा था । माहोर जी जिस समय काव्य प्रणयन कर रहे थे वह राष्ट्रीय जागरण का युग था । 1920 - 21 में भारतीय राजनीति की बागडोर गांधी जी के हाथ में आयी और 1921 का प्रथम अहिंसात्मक राष्ट्रीय संघर्ष का श्री गणेश हुआ । असहयोग , विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार , सविनय अवज्ञा आन्दोलन इस संघर्ष के मुख्य कार्यक्रम थे । कविगण एक स्वर से स्वतंत्रता संग्राम का समर्थन करने लगे ।असहयोग आन्दोलन के पश्चात सन 1930 में पुन: स्वतन्त्रता प्राप्ति का सक्रिय उत्साह भारतीय जनता में छा गया । गांधी जी द्वारा प्रचरित रचनात्मक कार्यक्रम ने देश के वातावरण को राष्ट्रीय आन्दोलन के उपयुक्त बना दिया था । स्वतंत्रता भारतीयों का जन्म सिद्ध अधिकार है यह स्वर पुन: निनादित हुआ । अंग्रेजों को भारत से निकालने का दृढ़ संकल्प करते हुये भारतीय नवयुवक गांधी वादी सिद्धान्तों का अनुकरण कर रहे थे । सन् 1930 के जन - आन्दोलन मे हजारों देश भक्तो को कारागार में डाला गया तथा राष्ट्र को वाणी देने वाला राष्ट्रीय साहित्य अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया उन्ही दिनों कवीन्द्र माहोर ने "दीन के आंसू" की रचना की जिसमे राष्ट्रीय चेतना के सशक्त स्वर मुखरित हैं , भारत की जनता की दैन्य दशा का चित्रण करते हुये कवि ने गांधी और जवाहर लाल की दुहाई देकर कहा कि -

महि मातु की गोद में आह भरे जितने गिर जायेंगे दीन के आंसू ।
उतने वर वीर जवाहर मे पल में प्रकटायेंगे दीन के आंसू[1] ।।

अन्य राष्ट्रीय साहित्य के साथ कवीन्द्र माहोर की "दीन के आंसू" को भी -

---

1:- दीन के आंसू - माहोर

ब्रिटिश सरकार ने अपने कब्जे में कर लिया । इसके परिणाम स्वरूप नवयुवकों में आक्रोश बढ़ता हो गया और राष्ट्रीय भावना में अभि वृद्धि होती गयी । "दीन के आंसू" के जन्म होते ही उनके अन्तर्मन को अधिक बल मिला औरफिर उन्होंने जो राष्ट्रीय साहित्य निर्भीकता तथा दृढ़ता पूर्वक लिखा , उससे राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्र होता गया[1]।

"दीन के आंसू" माहौर जी की आधुनिक राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत राष्ट्रीय कृति है । कवि ब्रिटिश साम्राज्यवाद से क्षुब्ध है । आततायी शासन जितना जुल्म भारतीय जनता पर कर रहा है , एक दिन असहाय एवं निर्बल भारत की जनता के निकलने वाले आंसू अंग्रेज सरकार को रुलायेंगे और दीन बना कर भारत से निष्कासित करेंगे -

> दिन रात रुलावत है जितना ,
>
> इतना ही रुलायेंगे दीन के आंसू ।
>
> कलपाय रहा दिल आज जितो ,
>
> कल ही कलपायेंगे दीन के आंसू ।
>
> इकबार सतावते के बदले ,
>
> सतबार सतायेंगे दीन के आंसू ।
>
> कर जुल्म तू दीन बना ही चुका ,
>
> तुझे दीन बनायेंगे दीन के आंसू[2]।

अंग्रेजी सरकार के पास तोप और पिस्तौलों का बल था जिस पर मगरूर होकर वे भारतीयों पर अत्याचार कर रहे थे । दीन के आंसू अंग्रेजों के उस बल का नाश कर उसके आसन को शीघ्र हिला देंगे -

> मगरूर गरूर तेरा कर चूर जरूर जरायेंगे दीन के आंसू ।
>
> तलवार तमंचन तोपन के बल भूर नसायेंगे दीन के आंसू ।।

1:- दैनिक जागरण - श्री राम चरण हयारण मित्र - दैनिक जागरण - 25 अगस्त-1959

2:- दीन के आंसू - कवीन्द्र माहौर - छन्द सं+ ।

दुख देत कुशासन आसन को अब हेरि हिलायेंगे दीन के आंसू ।
अब जालिम तोय जहां के तहां जलदी पहुंचायेंगे दीन के आंसू[1]।

कवि ने "दीन के आंसू" में गांधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलन का समर्थन करते हुये कहा कि भारत वासी बिना शस्त्र ग्रहण किये ही अंग्रेजों को पराजित कर देंगे । इसके साथ ही माहौर जी ने गांधी जी के चरखा के महत्व का प्रतिपादन भी "दीन के आंसू" में किया है -

सम चक्र कुचक्रन चक्रन पै चरखा चलवायेंगे दीन के आंसू ।

+ + + +

बदरंग बनायेंगे रंग सभी निज रंग रंगायेंगे दीन के आंसू ।
हथियार बिना गुनहगार तुझे हरबार हरायेंगे दीन के आंसू[2]।

अन्त में कवि ने "दीन के आंसू" का महत्व बतलाते हुये उन्हें परतंत्रता का नाशक एवं जीवन में नव ज्योति विकीर्ण करने वाला बतलाकर "दीन के आंसू" के उद्देश्य की सार्थकता सिद्ध करते हुये पुस्तक का समापन निम्न लिखित छन्द से किया है -

सुख संयुत साज समाज सदा सब भांति सजायेंगे दीन के आंसू ।
रस वीर प्रवाह अवीरन के हिय में प्रगटायेंगे दीन के आंसू ।।
नव जीवन ज्योति जवाहर सी जग मध्य जगायेंगे दीन के आंसू ।
तर जायेंगे ते परतंत्रता से जे सुनेंगे सुनायेंगे दीन के आंसू[3]।

3. वीर बाला - :प्रकाशित :

प्रस्तुत पुस्तक मुक्तक काव्य शैली में विरचित राष्ट्रीय भावनाओं की जागृति करने वाली अनुपम कृति है । इसमें कवि ने 1857 के स्वातन्त्र्य संग्राम के युद्ध में प्रातः स्मरणीया झांसी की रानी लक्ष्मी बाई के शौर्य एवं रण कौशल का अद्भुत परिचय देकर भारत की नारियों के अन्दर अदम्य साहस एवं वीरता का भाव जागृत करने-

---

1:- दीन के आंसू - माहौर - छन्द सं. 2

2:- दीन के आंसू - माहौर - छन्द सं. 4

3:- दीन के आंसू - माहौर - छन्द सं. 8

का सफल प्रयास किया है । झाँसी और बुन्देल खण्ड के जन कवियों और जन-कलाकारों में कदाचित ही ऐसा कोई अभागा होगा जिसकी कला ने महारानी के शौर्य और देशभक्ति से प्रेरणा न ग्रहण की हो । 1920 में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सत्याग्रह संग्राम से देश में जो शक्ति आई उससे 1857 के संग्राम को स्वाधीनता संग्राम के रूप में साहित्य में ग्रहण करने की प्रबल शक्ति आई और उसमें रानी लक्ष्मी बाई के सम्बन्ध में अनेक साहित्यिक रचनायें प्रणीत हुयी , "वीर बाला" रानी विषयक उन्हीं रचनाओं में से एक है । कवीन्द्र माधौर ने रानी विषयक प्रचुर छन्दों का प्रणयन किया परन्तु उनके बीस घनाक्षरी "वीर-बाला" में प्रकाशित हैं ।

"वीर बाला" में कवि ने यह स्थापित किया है कि रानी देश की स्वतंत्रता के लिये लड़ीं और उनका यह आत्म बलिदान स्वातन्त्र्य संघर्ष में त्याग और बलिदान की प्रेरणा देने वाला है । रानी के शौर्य एवं त्याग की कहानी देश की युवतियों के लिये प्रेरणा की अजस्त्र स्त्रोत है -

बाजी जीतबे को बरबाजी पे बिराजी आन ,

साजी संग सैन्य राजी कर में कृपानी है ।

\+ + + +

गंगाधर रानी सम गंगाधर रानी तेरी ,

वीरता को देस देस अकथ कहानी है[1]।

इसमें कवि ने "अहिंसा के कवच" बिना ही अंग्रेजी आधिपत्य के विरुद्ध रानी के सशस्त्र संग्राम की सराहना की है -

भालन तें कठिन कराल करवालन तें ,

काटे छे कपाल काल सम किलकारी दे ।

रोष पुण प्रबल प्रकोप रण ओप ओप ,

लोप तोप तोपन की चोट फटकारी है ।

"नाथूराम" बाई साब वीरता प्रचारी जबे ,

1:- वीर - बाला - माधौर - छन्द - सं. 19

मारी है शुमार मार देश की गुजारी है ।

अंग अंगरेजन के नेजन तें डारे भेद ,

भेजे काट लीने ये करेजन कटारी है[1]।

यहाँ शब्दों की ध्वन्यात्मकता एवं अनुप्रास की छटा दृष्टव्य है , जो कि रीति-परम्परा के अनुकूल है ।

भारत पर अंग्रेजों की दासता के युग में झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई एक युग पुरुष के रूप में अवतरित हुयीं उनका हृदय जन जीवन के स्पन्दनों से स्पन्दित था और जब जब भारत में ही नहीं विश्व में भी स्वातंत्र्य रक्षा के लिये शौर्य और बलिदान की आवश्यकता रहेगी , रानी के चरित्र को प्रेरणा के रूप में स्मरण किया जावेगा । माधौर जी ने "वीर बाला" लिखकर रानी के पराक्रम का वर्णन कर यह कामना प्रकट की कि "वीर बाला वीर बाला बन जायेगी" । रानी को रणचण्डी के रूप में चित्रित कर उसकी वीरता का वर्णन कर कवि ने नारी वर्ग में वीरत्व की भावना जाग्रत की । दुष्टों का दलन करने के लिये रानी कालिका के समान अलौकिक रूप धारण कर शत्रु का विनाश करती हुयी आगे बढ़ रही है कवि ने इस तथ्य का बड़ा ही सजीव एवं स्वाभाविक वर्णन इस प्रकार किया है -

दीप मालिका सी दिव्य ज्योति बालका सी भासी ,

काल बालका सी कालिका सी चलचण्डी थी ।

बाई साब झाँसी की निवासी कमला सी पूज्य ,

वीरता विलासी खासी कीर्ति कुल मंडी थी ।

नाथूराम जग में उमंडी देश द्रोहिन विहंडी बन ,

प्रबल प्रचण्डी मातृ भू के रण चण्डी थी[2]।

हिन्दी साहित्य में रानी लक्ष्मी बाई का उल्लेख और उनके वीर चरित्र का अंकन राष्ट्र के गत एक शताब्दी के स्वातन्त्र्य संघर्ष में उत्तरोत्तर विकसित होती हुयी-

---

1:- वीर बाला - माधौर छन्द सं० - 7

2:- वीर बाला - माधौर छन्द सं०- 3

जन जागृति का प्रतीक है । झाँसी की रानी की काव्य परम्परा में माहौर जी ने वीर बाला लिख कर स्वातन्त्र्य संघर्ष के लिये यहा की नारियों को प्रोत्साहन दिया । माहौर जी ने वीर बाला में वीर रस की उद्भावना भूषण के ढंग से की जिसमें शत्रुओं की नारियों की दुर्दशा का वर्णन परिपाटी के अनुकूल ही हुआ है -

पिसकुट खातीं तें न पिसकुट पाती कहूं ,
पतिकूल साया बिन साया बिन डोलती ।।
फिरतीं फिराक में फिराक हीन ग्रामिन व्है ,
साय की सुवाय भरी पलक न खोलती ।
खाली रहीं खाजरी न खाजरी में खाती रही ,
तेह तब खाजरी में हाजिर व्है बोलतीं ।
साहं साब गोर वर्ग वारीं वर बैरि वधू ,
आय के शरण तेरे चरण टटोलती[1]।

उपर्युक्त छन्द की यमक की छटा देख कर भूषण की ये पंक्तियां याद आ जाती है - "तीन बेर खाती थीं वे तीन बेर खाती है " । शत्रुओं की नारियों की दुर्दशा का चित्रण माहौर जी ने भूषण से कम नहीं किया वे तो भूषण से भी एक कदम आगे बढ़-कर कहते हैं कि शत्रुओं की नारियां तो - "आये के शरण तेरे चरण टटोलती" झांसी दुर्ग की रक्षा के लिये दुर्गा का अवतार धारण किये हुये हंस वाहिनी एवं सिंह - वाहिनी के समान रानी की जय कार करता हुआ कवि कह उठता है -

झांसी दुर्ग द्वार माहिं बनें उग्र रूप तुही ,
द्रोही दल दाहनी भई थी देश दाहिनी ।
रण अवगाहनी तू छलन उपायनी तू ,
साहनी सजी थी संग सुभट सराहिनी ।
नाथूराम चित्त माहि छाइनी सुयश छत्र ,
छत्रपति छेद छेद प्रण निबाहिनी ।

1:- वीर-बाला - माहौर - छन्द सं.- 16

वेग में प्रशंसनीय हंस वाहनी सी भव्य ,

सिंह वाहनी सी दिव्य है वे वाज वाहिनी[1]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 1857-58 के स्वातंत्र्य संग्राम में झांसी की प्रात: स्मरणीया रानी ने जिस देश भक्ति रण कौशल और संगठन शक्ति का परिचय दिया वह स्वाधीनता संग्राम के सभी सेनानियों के लिये तथा कवियों के लिये अजस्र प्रेरणा का अक्षय स्रोत रहा है[2]।

------- o -------

4. व्यंग - विनोद - :अप्रकाशित :

कवीन्द्र माहौर द्वारा लिखित "व्यंग विनोद" खण्ड काव्य के प्रकाशक डा० मदन लाल अग्नि हैं । यह 1949 में लिखी गयी अप्रतिम कृति है । इसमें कवि का व्यंग्य और परिहास एक साथ परिलक्षित हुआ है । सन 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त माहौर जी ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से इस तथ्य का अवलोकन कर लिया था कि हमारे प्रशासक द्वारा अपनाया गया मार्ग देश को अन्धकार के गहरे गर्त में ढकेल रहा है । दासता के पूर्व जिन दुष्प्रवृत्तियों ने देश की अखण्डता को खण्डित कर राष्ट्रीयता की भावना का अवसान किया था वही दुष्प्रवृत्तियाँ पुन: अंकुरित हो रही थी । "व्यंग्य विनोद" में कवि ने जनता में व्याप्त असन्तोष एवं भारतीय प्रशासन द्वारा किये जा रहे अत्याचार का वर्णन बड़े ही प्रभावोत्पादक ढंग से किया है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त देश के निर्माण का प्रश्न भारतीय सरकार के समक्ष था परन्तु अपने अधिकार के मद में लिप्त शासकों द्वारा प्रजा का शोषण किया जाने लगा तो माहौर जी ने व्यंग्य विनोद के माध्यम से राष्ट्र के कर्णधारों के नेत्र खोलने का प्रयास किया माहौर जी ने पुस्तक के आरम्भ में "दो शब्द" शीर्षक के अन्तर्गत स्वयं स्वीकार किया -"पूर्व कालीन कविवर गिरधर राय तथा दीन दयाल जी आदि कवियों ने समयानुकूल हर एक वस्तुओं के गुण, दोषों पर व्यंगात्मक -

---

1:- वीर-बाला - माहौर - छन्द सं. ।

2:- मदनेश कृत लक्ष्मी बाई रासो -सम्पादक डा० भगवान दास माहौर

आलोचना करने की रचनायें कुण्डली छन्दों में ही की है , ---------- कवि लोग ऐसी रचनायें इस उद्देश्य से किया करते हैं कि हर एक व्यक्ति अपने अपने गुण दोषों का भली प्रकार से अनुभव करता हुआ सद्मार्ग की ओर अग्रसर हो । देश का उत्थान करने का श्रेय कवियों को ही प्राप्त है , जो कि इतिहासों से विदित है"[1]।

उपर्युक्त दो शब्द कह कर कवि ने अपनी इस पुस्तक के मन्तव्य को स्वयं अभिव्यक्त कर दिया है । वे देश के उत्थान हेतु राष्ट्र के कर्णधारों को चेतावनी देते हुये उन्हें देश की प्रगति के लिये अग्रसर करने को प्रेरित करते हैं । माथोर जी इस पुस्तक लिखने के परिश्रम को तब सार्थक समझेंगे "जब मानव मात्र इससे शिक्षा - ग्रहण कर देश की उन्नति के मार्ग में हर प्रकार से सहयोग देने में अग्रसर हो"[2]। पुस्तक के प्रारम्भ में "वाणी वन्दना" के माध्यम से कवि कहता है कि उसके व्यंग्य विनोद लिखने का मन्तव्य राष्ट्र में व्याप्त अज्ञानता रूपी अन्धकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश विकीर्ण करना है । इसी लिये भगवती सरस्वती से अपनी वाणी में निवास करने की प्रार्थना करता है , जिसके परिणाम से वह ऐसा व्यंग विनोद लिखने में समर्थ हो सके जो सभी सुन्दर मन वालों में व्याप्त हो तथा कुमति को दूर कर सुमति उत्पन्न करे -

वाणी ! बानी में रमहु, हरहु अज्ञ-तम-राशि ।
सविता-सम अनुपम करहु, व्यंग-विनोद-प्रकाश ।।
व्यंग-विनोद-प्रकाश सकल सुमनन में माचे ।
करे कुमति-द्युति दूरि, सुमति कीरति-उपराजे ।।
"माथुर कवि सब सुखी, होंय भारत के प्रानी :
ऐसो अब वर-देहु, मातु ! वरदायिनि वाणी"[3]।।

वाणी वन्दना के पश्चात कवि ने मंगलाचरण में मातृभूमि तथा मातृ भाषा की वन्दना-

---

1:- व्यंग-विनोद - माथोर - :दो शब्द :

2:- व्यंग- विनोद - माथोर

3:- व्यंग-विनोद - माथोर - वाणी-वन्दना

की है जो कि कवि की राष्ट्रीय भावना का परिचायक है -

मातृभूमि जय अति सुखद, जय हिन्दी जय हिन्द ।
जय स्वतंत्रता के मृदुल, प्रवनइ पद अरविन्द[1]।

मंगलाचरण के बाद कवि ने व्यंग विनोद के अनेक छन्दों में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त शासकों व्दारा गरीब जनता को लूट कर अपने स्वार्थ में लिप्त दिखाकर शासन के ऊपर तीव्र व्यंग किया है । इस शासन के व्दारा किये गये अत्याचार को "राम राज्य की लूट" संज्ञा से अभिहित करता हुआ कहता है -

राम राज की लूट है, लूटत बने सु लूट ।
फिर पाछे पछितावगे, प्रान जायेंगे छूट ।।
प्रान जायेंगे छूट, कूट जामें जिन जानो ।
भर लो आज अटूट, लूट के मिस खजानों ।
चिन्ता करो न चिन्त, बीच जमराज-साज की ।
कोउ का कर लेय, लूट है राम-राज की[2]।

व्यंग विनोद के माध्यम से कवि ने कांग्रेस प्रशासन से क्षुब्ध होकर उसकी तीखी आलोचना की है । जिस कांग्रेस ने स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय जनता को समृध्द और खुशहाली का आश्वासन दिया था , वही खद्दर धारी कांग्रेसी प्रशासक आज अपने स्वार्थ पूर्ति की लिप्सा में लिप्त होकर जनता का शोषण कर रहे हैं । ऐसे प्रशासकों पर व्यंग करता हुआ कवि जनता को इन प्रशासकों की वास्तविकता से अवगत करा देता है ऐसे कांग्रेसियों को "गंगा के पण्डा" कह कर सम्बोधित करता हुआ कवि तीव्र एवं मार्मिक व्यंग इन शब्दों में करता है -

गंगा तेरे घाट के, पण्डा रहे मुटाय ।
मन मानी निज दक्षिना मांगे मुंह फैलाय ।
मांगे मुंह फैलाय, घाट पे जो कोई आवे ।
बिना दिये अस्नान, नेकहू करन न पावे ।।

1:- व्यंग-विनोद - माथोर - मंगलाचरण
2:- व्यंग-विनोद - माथोर - पृ०-2 "राम राज्य की लूट"

माहुर कवि का कहैं, अकति के चरित घनेर ।
करैं चोट पै चोट , ओट मैं गंगा तेरे ।।
गंगा तेरे घाट के, पण्डा जग-विख्यात ।
कहैं कहा वे आज कल ,करन लगे उत्पात ।।

\+ + + +

पण्डन को जो रहा सर्वदा पैसो दंगा ।
बात न पूछे, कोउ तिवारी जग मे गंगा[1] ।।

भारतीय नेताओं ने जनता के साथ विश्वासघात किया । जनता का भाग्यवाद का सहारा लेना पड़ा और राष्ट्र से पुंसत्व नष्ट हो चुका था । कवीन्द्र ने ऐसे स्वार्थी नेताओं को व्यंग के माध्यम से सावधान करते हुये कहा -

जिन पन्नन को प्रान-सम पाले तुम्हें-सप्रीति ।
फूलत ही पतझार कियो, यही तुम्हारी नीति ।
यही तुम्हारी नीति, मीत तुम भये न उनके ।
फूले हो बर भाँति, छत्र - छाया मे जिनके ।
फूले फूले, फिरे, फूल में भूले वे दिन ।
सुन पलास क फूल, फूल में भूल-करे जिन[2] ।।

स्वतंत्रता संग्राम के समय ऐसा प्रतीत होता था कि स्वातन्त्र्य संघर्ष की अग्नि मे तपे हुये सभी नेतागण स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त ईमानदारी से राष्ट्र का निर्माण करेंगे , परन्तु कुछ नेताओं का अपवाद स्वरूप छोड़कर सभी स्वार्थ साधना रत हो जनता का शोषण करने लगे । जनता की आशाओं पर तुषारापात हो गया इस तथ्य को कवि ने इन शब्दों द्वारा अभिव्यक्त किया -

वर्तन सारे अवा के, गये सप्रेम पकाय ।
उपयोगी जिय-जानिके, खोलौं अवा-सुहाय ।
खोलौ अवा सुहाय, जान जनता-हितकारी ।
पैठे सब के काम, नाम-पैठे जग - भारी ।।

1:- व्यंग-विनोद - माहौर - पृ0- 3,- गंगा के पण्डा

2:- व्यंग-विनोद - माहौर - पृ0- 4,- पलास के फूल

माहुर कवि का कहे, भयो ऐसो परिवर्तन ।
चार पांच को छोड़, कड़े सब फूटे वर्तन[1] ।।

समाज में व्याप्त दुराचार, रिश्वत, काला बाजारी आदि के ऊपर बड़ा ही तीव्र व्यंग कवि ने किया है । अब तो हमारे रक्षक ही हमारे भक्षक बन गये हैं, ऐसी परिस्थिति में असहाय जनता के समक्ष और कोई मार्ग नहीं है -

दुराचार को आज कल, रहो न पारावार ।
रिश्वत चोरी जेब की, गरमा गरम बजार ।।
गरमा गरम बजार पार कहु कैसे पावें ।
रक्षक भक्षक बने, कहन अब कासों जावें ।।
रहा न नेकु विचार, चारु चित-सदाचार का।
भयो विशद साकार-रूप, अब दुराचार का[2]।

अन्त में कवि जवाहर लाल की महिमा का बखान करता हुआ कहता है कि जवाहर लाल सदृश कर्मठ, जनता के शुभ चिन्तक नेता ही राम राज्य की स्थापना इस धरती पर करने में सक्षम हो सकते हैं -

देय जवाहर जनता को, करिहैं दीन-निहाल ।
भरिहैं सुख-सम्पति-सुखद, हरि हैं विपति विशाल ।
हरि हैं विपति-विशाल, हा-बेहाल-मिटे हैं ।
कवि "माहुर" श्री राम राज का दरश दिखे हैं[3]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि माहौर जी ने व्यंग विनोद के माध्यम से जनता के अन्दर व्याप्त असन्तोष एवं कुण्ठा का प्रदर्शन अनुकूल विधान द्वारा बड़ी ही सरलता के साथ किया है ।

1:- व्यंग-विनोद - माहौर - पृ0- 5 - "कुम्हार का अवा"

2:- व्यंग-विनोद - माहौर - पृ0- 13- "दुराचार का संसार"

3:- व्यंग-विनोद - माहौर - पृ0- 27 - "जवाहर"

1. राष्ट्रीय लहर - :अप्रकाशित :

राष्ट्रीय लहर में कवीन्द्र नाथूराम माहौर द्वारा रचित स्वतंत्रता संग्राम के समय लिखे गये राष्ट्रीय छन्दों का संकलन है । कवि का हृदय भारतीय संस्कृति और भारत देश के प्रति अगाध प्रेम से आपूरित था अत: राष्ट्रीय संघर्ष के अन्तराल कवि की वाणी से अपनी मातृभूमि के गुणों एवं प्रखर के स्वरों का नि:सृत होना स्वाभाविक ही था । "राष्ट्रीय लहर" में भारत देश के प्रति गुणों का बखान करके कवि ने अपनी राष्ट्रीय मनोवृत्तिका परिचयदिया है । कवि ने राष्ट्रीय लहर का आरम्भ भारत की अजेय शक्ति के वर्णन से किया है भारत के समक्ष शक्तिशाली देश भी नत मस्तक हैं उसकी शक्ति को देख कर सब उसके गुणों का गान करते हैं , ऐसे भारत देश पर कवि को गर्व है वह राष्ट्रीय लहर में भारत महिमा का वर्णन इस प्रकार करता है -

अय भारत देश के शक्ति तेरी ,
कर भक्ति गुणावली गाते रहे ।
कर बद्ध समक्ष में आते तेरे ,
पद क्षत को शीश चढ़ाते रहे ।
बल देख बली बलि जाते रहे ,
जयकार पुकार सुनाते रहे ,
मुख ताज रहे सब ताज रहे ,
चरणाम्बुज में झुक जाते रहे[1]।

सब देशों के बीच भारत वर्ष की स्थिति सर्वोच्च है । ऐसी सर्वोत्कृष्ट भारत भूमि पर भगवान ने भी अवतार लेकर उसके महत्व को बढ़ाया है -

सब देश नक्षत्र थे चन्द्र था त,
अरविन्द अरी मुरझाते रहे ।
चरणा खिल जो रहते थे तेरे ,
कुमुदों से खिले सब पाते रहे ।

1:- राष्ट्रीय लहर - माहौर - अप्रकाशित

जगदीश भी तो लख तेरे यहां ,

धरने अवतार को आते रहे ।

प्रभुता-प्रद लोक विलोक सदा ,

सुरलोक से लोक लजाते रहे[2]।

स्वतंत्रता संग्राम में गांधी वादी सिद्धान्तों में अपनी आस्था रखते हुये सत्य और अहिंसा पर विशेष बल दिया । भारत में राम राज्य कल्पना को कवि साकार देखना चाहता है देश के नवयुवकों के समक्ष वीर शिवाजी, महाराजा छत्रसाल और महाराणा प्रताप के आदर्श प्रस्तुत करता हुआ उन्हे देश की बलिवेदी पर बलिदान होने की प्रेरणा देता है -

गाना सत्य शान्ति का है सरल तराना सदा ,

भारत की वीरता का दृश्य दिखलाना है ।

धाना द्वेष फूट का उठाना है सदा के लिये ,

दासता पिशाचिनी को दफन कराना है ।

शिवा छत्रसाल महाराणा का निभाना ध्येय ,

मरमिट जाना परतंत्र ना कहाना है ।

फूले हुये फूलों को चढ़ाना बलिवेदी पर ,

घर घर लाना राम राज्य का जमाना है[2]।

"राष्ट्रीय लहर" में खड़ी बोली के माध्यम से सशक्त राष्ट्रीय भावना का प्रस्फुटन हुआ है । कवि ने निम्नलिखित छन्द में स्वराज्य प्राप्ति की मनोकामना का सुन्दर रूपक बांधा है, जो कि उसकी राष्ट्रीय विचार धारा का परिचायक है -

एकता को बीज बोय सलिल स्नेह सींच ,

बारी दो लगाय छवि वारी संगठन की ।

प्रगट्यो पवित्र प्रेम पत्र पूर्ण यत्र तत्र ,

शान्तिता लखाय दो लतान उरन की ।

नाथूराम ठाम ठाम हिन्द के अराम मांहि,

बिहरे सुतंत्र छांह सीतल सुमन की ।

1:- राष्ट्रीय लहर - माहोर - अप्रकाशित

2:- राष्ट्रीय लहर - माहोर

समन करा दो फैल फूट की सुगन्ध बन्धु ,

चाहत सुगन्ध जो स्वराज्य के सुमन की[1]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि "राष्ट्रीय लहर" कवीन्द्र माहौर की स्वदेश अनुराग से परिपूर्ण एक सशक्त राष्ट्रीय कृति है ।

------------ 0 --------

2. बीज की कहानी - :अप्रकाशित :

"बीज की कहानी" में कवीन्द्र माहौर द्वारा विरचित राष्ट्रीय छन्द संकलित हैं । इसमें कवि ने "बीज" के माध्यम से देश प्रेम की भावना अभिव्यक्त की है । जिस प्रकार ठुकराया हुआ बीज मातृभूमि का स्नेह पाकर पल्लवित होता है उसी प्रकार परोक्ष रूप से कवि कहता है कि व्यक्ति के लिये मातृभूमि से बढ़कर प्रेम कहीं नहीं मिल सकता "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" की भावना कवि के देश के नवयुवकों के समक्ष बीज की कहानी के माध्यम से रखता हुआ मातृभूमि के लिये बलिदान हो जाने की प्रेरणा देता है पं. माखनलाल चतुर्वेदी ने भी मातृभूमि के प्रति ऐसी ही भावना फूल के माध्यम से व्यक्त की है -

मुझे तोड़ लेना वन माली उस पथ पर तुम देना फेंक ,।

मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जाये वीर अनेक ।

माहौर जी के भाव भी इसी प्रकार के है -

जिसके उर से उत्पन्न हुआ ,

उसका ही सदा गुण गाना मुझे ।

जिसका सुखदा पय पान किया ,

उसका बदला है चुकाना मुझे ।

अरे माली न तोड़ना भूल कभी ,

कुछ जीवन का फल पाना मुझे ।

1:- राष्ट्रीय लहर - माहौर

जननी वसुधा पद पंकजों में ,

हँसते हँसते चढ़ जाना मुझे[1]।

"बीज की कहानी" में कवि ने राष्ट्रीय विचारधारा की अभिव्यंजना करते हुये नवयुवकों के हृदय में मातृभूमि के लिये प्रेम उत्पन्न करने का अविरल प्रयास किया है -

ठुकराया गया था कभी किसी से ,

नया जीवन का उसे सार मिला ।

बहु वारि भरे हुये वारिदों का ,

सहयोग सुखी बहु बार मिला ।

लघु रूप में था जो प्रसार हुआ ,

करतार कृपा का अधार मिला ।

अनुभूति-विभूति समुन्नति का ,

मही मातु की गोद का प्यार मिला[2]।

कवि का देश प्रेम अनुपम है । द्विवेदी युगीन सभी कवियों में देश प्रेम की उत्कट भावना दिखलाई पड़ती है माथोर जी भी इसके अपवाद न थे उनके हृदय में स्वदेश के लिये अनुराग की भावना उनके राष्ट्रीय पक्ष का द्योतन करती है । भाषा भावानुरूप है , कवि ने खड़ी बोली का प्रयोग किया है । तत्सम शब्दों की बहुलता भी दृष्टव्य है । कवि की कामना है कि व्यक्ति अपना जीवन आपस में लड़कर व्यर्थ बरबाद न होने दें बल्कि जीवन की सार्थकता देश के लिये प्राणोत्सर्ग करने में है । कवि "फूल की कामना " शीर्षक में ऐसे ही विचार प्रस्तुत करता है जो कि उसके देश प्रेम को अभिव्यंजित करते हैं -

गजरा गुन गूथ के कामिनी के ,

कल कण्ठ न भूल सजाना मुझे ।

1:- बीज की कहानी-के"फूल की कामना" शीर्षक से - माथोर

2:- वही " " " - माथोर

धन के क्षण के या प्रलोभन में ,

कर कायरों के न गहाना मुझे ।

सड़ने न देना कभी वन में ,

सबको यह याद दिलाना मुझे ।

कर वीर स्वदेश सिपाहियों के ,

सिर दे चरणों मे चढ़ाना मुझे[1]।

-------0-------

3, वीर छत्रसाल गुणावली :अप्रकाशित :

प्रस्तुत अप्रकाशित कृति कवीन्द्र माहोर की सशक्त राष्ट्रीय विचारधारा की पोषक है । द्विवेदी युगीन कवियों ने अपने देश वासियों को प्राचीन वीरों के वीर कर्मों की स्मृति दिलाकर उन्हें देश के प्रति अपने कर्तव्य की ओर प्रेरित किया था । हिन्दी साहित्य में अतीत कालीन भौतिक उत्कर्ष के अन्तर्गत सबसे अधिक वर्णन वीर भावना का हुआ है । पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाओं मे वीर - चरित्रों का चयन किया गया , जिनसे देश वासियो को स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु संग्राम - रत होने के लिये प्रोत्साहन मिलता था । "वीर छत्रसाल गुणावली" कवीन्द्र माहोर द्वारा रचित एक ऐसी कृति है जिसके माध्यम से कवि ने ब्रिटिश गुलामी में पड़े रियासती राजाओं की सोयी हुयी मनोवृत्ति को जाग्रत कर उन्हें स्वातंत्र्य संग्राम के लिये प्रेरित किया । भूषण की छत्रसाल-दशक" शैली में लिखी "वीर छत्रसाल गुणावली" बुन्देलखण्ड के नवयुवकों में राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत कर उन्हें युद्ध के लिये प्रेरित करने में सक्षम रही है । जिस प्रकार भूषण ने वीर छत्रसाल एवं शिवाजी के गुणों का , उनकी वीरता का बखान कर राष्ट्रीयता का परिचय दिया , उसी के अनुरूप माहोर जी ने "वीर छत्रसाल गुणावली" में बुन्देला वीर छत्रसाल के यश और वीरता का वर्णन कर राष्ट्रीय भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है । शिवाजी और छत्रसाल की वीरता के वर्णनों को कोई कवियों की झूठी खुशामद नहीं कह सकता ।

बीज की कहानी - माहोर -"फूल की कामना" शीर्षक से ।

के आश्रयदाताओं की प्रशंसा की प्रथा के अनुसरण मात्र नहीं है। इन दो वीरों का जिस उत्साह के साथ सारी जनता स्मरण करती है, उसी की व्यंजना भूषण ने की है[1]। भूषण द्वारा वर्णित ये जननायक राष्ट्र के कर्णधार थे, उनके प्रति वर्णित भावों में कवि की राष्ट्रीय भावना सर्वत्र परिलक्षित होती है।

कवीन्द्र माहौर ने "वीर छत्रसाल गुणावली" में राजा छत्रसाल को सत्य न्याय और प्रेम की मूर्ति बतलाते हुये अरि मर्दन में सक्षम क्षत्रियधर्म का पालन करने वाला वर्णित किया है -

> साल है सदैव सत्रु सूदन सों सत्रु उर,
>
> कर में पवित्र शस्त्र सत्य को सम्हालो है।
>
> संग में अचल बल प्रेम को अभंग दल,
>
> रंचक मचल रण रंग ते न चालो है।
>
> चूर कर दिया है अधर्म को मसालो सब,
>
> नाथूराम दूर कियो प्रजा को कसालो है।
>
> छत्रपति हस्ताधीश छत्री छत्रसाल वीर,
>
> छत्री धर्म पालो हाथ दीन पै न हालो है[2]।

छत्रसाल बुन्देला स्वातंत्र्य संग्राम के अमर सेनानी के रूप में ही नहीं अपितु उदार, अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने वाले, नीति प्रिय शासक के रूप में भी विख्यात है। छत्रसाल की प्रतिभा की भूरि भूरि प्रशंसा अनेक कवियों ने विभिन्न प्रकार से अपनी काव्यकला के माध्यम से की है। माहौर जी छत्रसाल की प्रशंसा करते हुये कहते हैं -

> चालो चहुं ओर से कुचाल का अचल दल,
>
> छालो दुराचार को उताल छनो छमसान।
>
> सालो सत्रु सूदन सो सत्रु उर सत्र तक,
>
> विनपट निकालो विपरीत रीति को विधान।
>
> "नाथूराम" टालो कलिकाल का कसालो सब,
>
> पालो प्रण पूर्ण करें का सों गुन गन गान।

1:- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ0- 235

2:- वीर-छत्रसाल गुणावली - माहौर - अप्रकाशित

हालो व अनीतिकृत सिंहासन ओजनीय ,

हालो जब छत्रसाल राघव सो नीतिवान[1]।

छत्रसाल की तलवार के कौशल का वर्णन माहोर जी ने भूषण के समान ही किया है । यमक एवं अनुप्रास की छटा से पूर्ण माहोर जी के व्दारा वर्णित छत्रसाल की कृपाण भूषण की "छत्रसाल दशक" में वर्णित कृपाण से किसी प्रकार कम नहीं है -

म्यान से उड़ान भर धन दरम्यान आन ,

दीप्तिवान बैरिन के कंठन कढ़ी फिरे ।

अड़ी फिरे अचल विशाल भाल- भालन पै ,

काल सी मचल जोति-जाल चमड़ी फिरे ।

"नाथूराम" छत्रसाल कीर्ति करवाल कत ,

वीरता बढ़ाई मधि-मण्डल मढ़ी फिरे ।

चढ़ी फिरे रत्न सम तस्न गया के अंक ,

अचढ़ अंक बैरि शीसन चढ़ी फिरे[2]।

छत्रसाल की कृपाण का अनेकविध वर्णन माहोर जी का काव्य वैशिष्ट्य है । कृपाण को कुलटा , गणिका आदि नायिका के रूप मे चित्रित कर उसमें राष्ट्रीयता का समावेश करना माहोर जी की प्रतिभा का परिचायक है । कृपाण का वर्णन "गणिका-नायिका के रूप में देखिये , किस प्रकार कवि शृंगार में वीर का समावेश कर अपनी मौलिकता का परिचय देता है । कृपाण को गणिका के रूप मे वर्णित कर देश के नवयुवकों को स्वातंत्र्य समर के लिये उत्तेजित करना कवि की मौलिक विशेषता है -

गणिका अरु तरु रत्न भवनों मे अंग ,

अंग की उमंग जिनका हीरक समान थी ।

कुल एकांत हाव भाव की प्रभाव भरी ,

विदित जहान बीच महिमा महान थी ।

1:- वीर-छत्रसाल गुणावली - माहोर - अप्रकाशित

2:- वीर-छत्रसाल गुणावली - माहोर - अप्रकाशित

नाथूराम विद्युत सी नाचती रणांगण में ,

छन छन शब्द के सुनाती गान तान थी ।

दल मुगलों के प्राण-धन हरने के लिये ,

गणिका समान छत्रसाल की कृपाण थी[1]।

छत्रसाल की कृपाण का वर्णन यमक अलंकार के माध्यम से कवि ने जिस कुशलता के साथ किया उसे पढ़कर भूषण की इन पंक्तियों की स्मृति सहज ही आ जाती है -

पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने बीर ,

तेरी बरछीने बर छीने हैं खलन के[2]।

माहौर जी के द्वारा वर्णित कृपाण की प्रशंसा देखिये -

पानीदार भारत का पानी राखबे में तेज ,

पानी दार वीर छत्रसाल की कृपाण थी[3]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि माहौर जी की "वीर छत्रसाल गुणावली" जहाँ एक ओर आधुनिक राष्ट्रीय विचारधारा की पोषक है वहीं दूसरी ओर उसमें रीति-कालीन कलात्मकता के भी दर्शन होते हैं ।

1:- वीर-छत्रसाल गुणावली - माहौर - आ[illegible]

2:- कवित्त -दशक - [illegible]

3:- वीर-छत्रसाल गुणावली - माहौर

चतुर्थ अध्याय

माहोर जी के काव्य का विषय विवेचन :-

1:- माहोर जी का प्रकृति चित्रण :-

मानव के स्थूल भौतिक शरीर का विनिर्माण जिन पांच तत्वों से हुआ है वे मूलत: प्रकृति के ही विविध रूप हैं । स्पष्ट है कि प्रकृति का अस्तित्व मानव से पहले था । मानवी सृष्टि की संरचना प्रकृति की ही क्रोड़ में हुयी । अत: मनुष्य का प्रकृति से रागात्मक सम्बन्ध होना स्वाभाविक है । अपना विनिर्माण करने वाली प्रकृति के प्रति यदि मानव मन में जन्म - जात प्रेम का भाव विद्यमान रहता है तो यह कोई अलौकिक या आश्चर्य जनक बात नहीं[1] । प्रकृति से विनिर्मित होकर उसी के द्वारा प्रदत्त तत्वों से पोषित होकर और अन्त में उसी में समाहित होकर मानव समग्रत: उसी से तादात्म्य कर लेता है । सृष्टि विकास के साथ उत्तरोत्तर नव विकसित सभ्यता की जटिलताओं के बीच भी हम इन दोनों का सम्बन्ध अभिन्न देखते हैं । आज की वैज्ञानिक और बुद्धि प्रदान सभ्यता के कर्म - व्यस्त युग की भीषण अशान्ति के बीच भी मनुष्य , प्रकृति और मानव हृदय के बीच स्फुरित हुये उसी आदिम सम्बन्ध की रक्षा और उसका निर्वाह करता हुआ चला आ रहा है । अनियन्त्रित न तथ्य - संग्रह कारिणी तर्क बुद्धि के ओर और उन्मत्त उपासक होकर मनुष्य ने अपने हृदय का वास्तविक अंश खो दिया है किन्तु फिर भी प्रकृति से चिरन्तन सम्बन्ध स्थापित रखती हुयी हमारी प्रकृति प्रेम की मूल रागात्मिका वृत्ति हमारे अन्दर अभी बहुत कुछ संरक्षित है ।

काव्य का लक्ष्य मनुष्य की भावात्मक सत्ता पर अपना मार्मिक और गूढ़ प्रभाव डालना है अत: कवि के लिये यह आवश्यक है कि वह उन्हीं रूपों और व्यापारों की सुसम्बद्ध योजना काव्य में करे जो कि पाठक के -

---

1:- वृहत साहित्यिक निबन्ध - डा० राम सागर त्रिपाठी - पृ० - 660

हृदय का मार्मिक स्पर्श कर सके । मनुष्य का हृदय अनेक भावात्मक है अत: अनेक भावों के संवरण के लिये कवि ऐसे लोक सामान्य और चिरंतन हृदय स्पर्शी आलम्बनों को अपना विषय बनाये जो एक ओर तो उसके लोक हृदय को पहिचानने की शक्ति के परिचायक हों और दूसरी ओर पाठक के हृदय के साथ उनका पूरा - पूरा साधारणीकरण हो । मनुष्य की अन्तर्वृत्तियों की तृप्ति के लिये प्रकृति के पुनीत और रमणीय प्रांगण में जितना अक्षय भण्डार भरा पड़ा है उतना और कहीं नहीं है । प्रकाश और अन्धकार , जन्म और मरण , सुख और दुख हास और अश्रु के नैसर्गिक आनन्द के बीच में से अव्यक्त काल से छूटी हुयी सृष्टि बराबर अग्रसर होती जा रही है । अत: सुख और दुख अथवा प्रकाश और अन्धकार जगत और जीवन के नित्य पक्ष है । इन दोनों पक्षों के भीतर मानव हृदय की समस्त वृत्तियों का समावेश हो जाता है और दोनों की अभिव्यक्ति प्रकृति के खुले क्षेत्र में होती है । सामान्यतया धर्म , दर्शन , साहित्य और कला , इन सभी में प्रकृति चित्रण को स्थान मिला है किन्तु काव्य में उसे सर्वाधिक महत्व प्राप्त हुआ है । इसका मुख्य कारण यह है कि काव्य का रचयिता कवि होता है और कवि साधारण मानव की अपेक्षा अधिक संवेदन शील प्राणी होता है । अपनी इसी संवेदन शीलता के कारण वह प्रकृति के विभिन्न रूपों में , बहुत शीघ्र और अधिक अभिभूत होता है । यह उसी संवेदन शीलता का प्रभाव है कि कवियों ने प्रकृति को देवत्व तक प्रदान कर दिया ।

प्रकृति चित्रण की परम्परा :-

मानव सृष्टि का मूल उद्गम स्रोत प्राकृतिक तत्व ही है । इसी कारण काव्य या साहित्य के नाम पर हमें विश्व की जो प्राचीनतम रचनायें उपलब्ध होती हैं उनका प्रारम्भ वास्तव में प्रकृति चित्रण से ही हुआ है । संसार की प्राचीनतम उपलब्ध रचना ऋग्वेद के अनेक सूक्त हमारे कथन का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । आदि काव्य रामायण में भी प्रकृति के विभिन्न मनोहारी -

---

1:- कविता क में प्रकृति - चित्रण - रामेश्वर लाल पृ० - 7

स्वरूप विशेष रूप से दर्शनीय है । कवि ने ऋतुओं के चित्रण में तो अपनी सौन्दर्यान्वीक्षणी सूक्ष्म प्रतिभा का अद्भुत परिचय दिया । यहाँ प्रकृति के स्वतन्त्र - चित्रण के भी अनेक उदाहरण मिल जाते हैं । रामायण से भी बढ़ कर प्रकृति का सुन्दर एवं प्रभावी चित्रण महाभारत में हुआ है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि ऋग्वेद से प्रकृति - चित्रण की जो परम्परा चली थी रामायण और महाभारत तक आते आते वह परम्परा क्रमशः विकसित होती गयी । प्रकृति में देवत्व की स्थापना का स्थान अब क्रमशः मानवीकृत रूपों ने ले लिया । रामायण तथा महाभारत के उपरान्त संस्कृत में जो काव्य ग्रन्थ लिखे गये उन सभी प्रकृति वर्णन की भरमार है । परवर्ती महाकाव्यों में तो प्रकृति - चित्रण को महाकाव्य का अपरिहार्य तत्त्व स्वीकार कर लिया गया । कालिदास ने मेघदूत में प्रकृति की भव्य झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं । उन्होंने रघुवंश, शिशुपाल वध, किरातार्जुनीय आदि महाकाव्यों में भी प्रकृति वर्णन को प्रमुख स्थान दिया है ।

हिन्दी काव्य में प्रकृति - चित्रण :-

विगत एक हजार वर्षों के हिन्दी साहित्य पर दृष्टि डालने पर हमें यह बात आश्चर्य के साथ देखना पड़ती है कि चन्दवरदाई से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक प्रकृति के प्रति स्वतन्त्र अनुराग की न्यूनता नहीं के बराबर है । अलंकार, वातावरण, पृष्ठ भूमि प्रतीक आदि में कवि का प्रकृति के प्रति झुकाव अवश्य दिखलाई देता है परन्तु वह परोक्ष था । जो भी हो प्रकृति निरीक्षण की मौलिकता चित्रण की दृष्टि से हम भारतेन्दु को प्राचीन व नवीन की सीमा रेखा मान सकते हैं । प्रकृति का मुख्यतः उद्दीपन मात्र रूप ग्रहण करने की दृष्टि से चन्द से लेकर भारतेन्दु के उदय तक का काव्य आलोच्य विषय की दृष्टि से प्राचीन कविता की सीमा से किया जा सकता है ।

आदि काव्य में प्रकृति - चित्रण :-

रासो काव्य में प्रकृति का सिद्ध वर्णन मुख्यतः उद्दीपन एवं उपमान -

रूप में हुआ है । चन्द के समय देश शत्रुओं से आक्रान्त था । अनवरत युद्ध की लपटों एवं पारस्परिक वैमनस्य से वह नष्ट हो रहा था अत: ऐसे काल में काव्य - शैली में कोई नवीन सुधार सम्भव नहीं था उस समय काव्य वीर - रस प्रधान था जिसमें शृंगार का पुट रहता था । राजाओं के शौर्य और वीरोत्साहपूर्ण चरित्रों का गुणगान ही कवि कर्म रहा । प्रकृति का उपयोग अधिकांश अप्रस्तुत विधान के ही अन्तर्गत था । जहाँ पर नायिका के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है वहाँ पर प्रकृति के विभिन्न उपादान अलंकार बन कर आये और जहाँ कवि का उद्देश्य नायिका विरह वर्णन रहा है । वहाँ उसने प्रकृति को उद्दीपन रूप में चित्रित किया । पृथ्वी राज रासो के कवि ने पदमावती के रूप वर्णन के लिये विभिन्न उपमानों को प्रकृति से ही ग्रहण किया है -

> "मनहु कला ससि भान , कला सोलह सो बन्निय ।
> बाल वैस ससि ता समीप अम्रित रस पिन्निय ।।

रासो काव्य में प्रकृति के उद्दीपन रूप के चित्रण के लिये "बीसल देव" का यह प्रसंग द्रष्टव्य है जिसमें नायिका की भादों मास की झड़ियाँ नायिका विरहाग्नि को और अधिक उद्दीप्त करती है ।

प्राकृतिक पदार्थों के अंकन में विद्यापति की भी दृष्टि रासो काव्य कारों की ही भांति रही है , अर्थात उन्होंने भी अपने काव्य में प्रकृति का उपयोग मुख्यत: उपमान , विधान और उद्दीपन के लिये किया है । प्रकृति के विभिन्न पदार्थों को उपमान रूप में प्रयुक्त करते हुये वे लिखते हैं -

> "पीन पयोधर दूबर गता, मेरु उपजल कनक लता" ।

मध्य एवं रीति कालीन काव्य में प्रकृति चित्रण :-

यद्यपि सन्त कवियों का उद्देश्य प्रकृति का चित्रण करना कभी नहीं रहा तथापि उन्होंने अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति के विभिन्न रूपों को अपनाया । आध्यात्मिक प्रेम की साधना उस सत्य तन्मयता और एक निष्ठता का उल्लेख सन्त कवियों ने प्रकृति के व्यापक क्षेत्र से चुने हुये रूप-

कों के माध्यम से किया है । इस प्रकार के पद्यों में प्रकृति के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है -

> मान सरोवर सुभग जल , हंसा केलि कराहिं ।
>
> मुक्ताहल मुक्ता चुगै , अब उड़ि अनत न जाहिं । "

जायसी में प्रकृति के उपमान उद्दीपन तथा रहस्यात्मक रूपों का प्राचुर्य है । उन्होंने जहां सादृश्यमूलक अलंकारों की योजना की है वहां प्रकृति के पदार्थो एवं व्यापारों को उपमान रूप में प्रस्तुत किया है । नख - शिख वर्णन के प्रसंग में उन्होंने प्राय: प्रकृति चित्रण के उपमान रूप में ही कार्य किया -

> "ससि मुख अंग मलैगिरि बासा । नैन ओठ बूडज जस राता ।"

तुलसी दास की वृत्ति प्रकृति वर्णन में अधिक नहीं भी है फिर भी जहां कहीं भी उन्होंने प्रकृति को चित्रित किया , वहां उनका चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़ा है और वह प्राय: उपमान तथा उद्दीपन रूप में आया है । उनके काव्य में प्रकृति उपदेशिका बनकर भी कई स्थलों पर आयी है ।

कृष्ण काव्य में प्रकृति मुख्यतया उद्दीपन और आलंकारिक रूप में चित्रित हुयी है । संयोग दशा में प्रकृति मानव हृदय के उल्लास एवं आनन्द को जगाती है किन्तु विरह दशा में वह हृदय को अधिक व्याकुल बना देती है ।--

> "पिया बिनु नागिनि कारी राति ।
>
> कबहुँ जामिनी होत जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जाति ।"

रीति काल में प्राय: सभी कवियों ने प्रकृति वर्णन किया तथापि उनके प्रकृति निरूपण में कई स्थलों पर हृदय स्पर्शिता का अभाव है । रीतिकाल में प्रकृति के उद्दीपन रूप का बाहुल्य है । रीतिकालीन कवि राज्याश्रित थे । अत: राज दरबारों में आश्रय दाताओं की विलास प्रिय मनोवृत्ति को स सन्तुष्ट करने के लिये रीतिकालीन कवियों ने नायक नायिका के सौन्दर्य को प्रकाश में लाने का प्रयास किया स्वतंत्र रूप से प्रकृति के सौन्दर्य के उद्घाटन में उनकी दृष्टि नहीं रमी । इन कवियों ने नायक नायिका के सौन्दर्य , हाव भाव , प्रेम - क्रीड़ा आदि के वर्णन में प्रकृति के उपमानों की योजना -

करते हुये अलंकारों के रूप में में भी प्रकृति - चित्रण को अपनाया है । उपमा , रूपक , उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के लिये उन्होंने अधिकांश उपमान प्रकृति से चुने हैं । उनके उपमान परम्परागत ही हैं ।

आधुनिक युगीन हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण अत्यन्त व्यापक स्तर पर हुआ है । आधुनिक युग में कवियों का दृष्टि कोण प्रकृति के प्रति महत्व पूर्ण दिखलाई देता है । वर्तमान युग के प्रकृति - वर्णन पर योरोपीय साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ा । यूरोप के प्रकृति वादी कवियों से हिन्दी कवियों को प्रकृति वर्णन की नई प्रेरणा मिली । इसका यह रूप भारतेन्दु और द्विवेदी युग तक रहा[1] । भारतेन्दु से पूर्व रीतिकाल के कवियों ने प्रकृति को उद्दीपन रूप में अथवा अलंकार रूप में ही प्राय: अपनाया है लेकिन नव जागरण काल , भारतेन्दु युग में प्रकृति को आलम्बन बनाकर अनेक हृदय ग्राही चित्र उपस्थित किये गये । द्विवेदी युग के कवियों की दृष्टि ने भारतेन्दु युग से भी अधिक प्रकृति के सौन्दर्य में रमण किया । इस काल के अधिकांश क कवियों ने प्रकृति को काव्य का वर्ण्य - विषय बनाकर स्वतन्त्र रूप में प्रकृति का वर्णन किया[2] । आरम्भ में भी हर पाठक एक सच्चे प्रकृति के अनुरागी बन कर आये । इनके द्वारा प्रचलित प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण की परम्परा का द्विवेदी युग में अनुगमन प्रारम्भ हो गया । हरिऔध जी ने प्रकृति के कुछ आलम्बन रूप में चित्र खींचे किन्तु उनमें चित्रोपमता का अभाव था , वस्तुओं के नामों का उल्लेख मात्र था । आगे चलकर अयोध्या सिंह उपाध्याय कवि रत्न सत्यनारायण श्री मैथिली शरण गुप्त ने प्रकृति को स्वतंत्र रूप में पर्याप्त समादर दिया[3] ।

माहोर जी ने जिस समय :सन् 1903: काव्य के क्षेत्र में पदार्पण किया वह समय भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग का सन्धिकाल था क्योंकि भारतेन्दु

1:- साहित्यिक निबन्ध - राजनाथ शर्मा-:प्रकृति चित्रण : पृ० - 380

2:- आधुनिक हिन्दी का विकास- डा० श्रीकृष्ण लाल - पृ० - 75

3:- आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग - ले० डा० उदयभान सिंह - पृ० - 40

युग समाप्त प्राय था और द्विवेदी युग शैशवावस्था में था । स्पष्ट था कि माहोर जी की काव्य - साधना भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग से प्रभावित होती । माहोर जी आधुनिक युग से प्रभावित तो थे लेकिन वे प्राचीन शैली के समर्थक थे । उनकी काव्य शैली रीतिकालीन परम्परा से प्रभावित थी यद्यपि कर्ई विषय आधुनिक काल से भी उन्होने लिये । आधुनिक काल के कर्ई माहोर जी के काव्य में रीतिकालीन परिवेश में चित्रित हुये हैं । प्रकृति चित्रण की शैली भी माहोर जी ने रीति काल से ही ग्रहण की लेकिन इस क्षेत्र में वे आधुनिक शैली से भी अछूते नहीं रहे ।

प्रकृति चित्रण के विविध रूप :-

1:- आलम्बन रूप :-

आधुनिक काव्य में प्रकृति चित्रण की जितनी विधाये प्रचलित हैं, प्रायः सभी विधाओं के दर्शन माहोर जी के साहित्य में हो जाते हैं । इसका कारण ये था कि प्रकृति - चित्रण के क्षेत्र में भारतेन्दु युगीन कवियों ने पूर्ण रूपेण रीति कालीन परिपाटी का अनुसरण किया था[1] । अतः माहोर जी के काव्य में प्रकृति चित्रण की रीतिकालीन एवं आधुनिक शैली दोनों के ही दर्शन होते हैं । रीतिकालीन कवियों के विषय में कहा जाता है कि उन्होने प्रकृति की अनेक रूपता की ओर ध्यान नहीं दिया[2] । कुछ विद्वान तो कहते हैं कि रीति कालीन कवियों ने प्रकृति की ओर से अपनी दृष्टि ही खींच ली थी[3] और उन्होने प्रकृति का चित्रण केवल उद्दीपन के हेतु ही किया था, कहा जाता है कि उन्होने इस बन्धन को तोड़ने का प्रयत्न ही नहीं किया[4] ।

1:- रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता-डा० रमेशकुमार शर्मा-पृ०-82

2:- हिन्दी साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल-रीतिकाल - पृ० 237

3:- प्राचीन स्वच्छन्द काव्य धारा की विशेषतायें :हिमालय पत्रिका:9 अक्टूबर 1946 पृ० 29- प्रो० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

4:- प्राचीन स्वच्छन्द काव्य धारा की विशेषतायें-:पटना से:

इस विषय में यह कहा जा सकता है कि रीतिकालीन कवि उस प्राचीन परिपाटी के अनुयायी थे जिसका प्रचलन भक्तिकाल में हो चुका था । प्रकृति के स्वतंत्र आलम्बन रूप के चित्रण का प्रयत्न इस परिपाटी के मानने वाले नहीं करते । यदि प्रकृति को आलम्बन माना जाय तो उससे प्रेरित स्थायी भाव कौन सा होगा ! संचारी तथा अनुभाव क्या होंगे । आश्रय तो स्वयं कवि को ही मानना पड़ेगा । इन प्रश्नों का सन्तोष जनक उत्तर न मिलने के कारण प्रकृति को केवल अपने प्रिय की प्राप्ति का सहायक साधन मात्र मान कर वे भावुक भक्त कवि चले थे[1] । कवियों को विरासत में प्रकृति का उद्दीपन हेतु किया गया वर्णन ही मिला था , भक्ति काल के सब कवियों ने भी प्रकृति की ओर यही दृष्टि कोण रखा था । स्पष्ट है कि रीतिकालीन कवियों ने यदि आलम्बन रूप में प्रकृति को नहीं देखा तो यह उनका दोष नहीं , उस समय का पूर्वकाल से प्राप्त परिपाटी ही ऐसी थी । रीति काल के कुछ कवियों ने संस्कृत कवियों के समान प्रकृति का आलम्बन रूप में भी प्रयोग किया है । आलम्बन रूप में चित्रोपम प्रकृति चित्रण , जो स्वयं रूप में वातावरण भी संकेत करता है हिन्दी साहित्य में सर्व प्रथम सेनापति ने किया । रीति काल में उद्दीपन हेतु प्रकृति चित्रण सबने किया लेकिन स्वतंत्र आलम्बन रूप प्रकृति चित्रण करने वाले सेनापति जैसे सूक्ष्म दृष्टि वाले[2] अनेक कवि भी इस काल में हुये । [illegible] जी ने प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण एकाध स्थान पर ही किया है लेकिन वहाँ प्रकृति का केवल नाम परिगणन प्रणाली के अन्तर्गत , एक कर ही चित्रित किया है । सेनापति के समान स्वाभाविक चित्रण करने में वे असफल रहे हैं । आलम्बन रूप में प्रकृति कवि के लिये साधन न बन कर साध्य बन जाती है[3] । कवि का मन आत्मविभोर होकर उसमें रमा जाता है । इस रूप में दो प्रवृत्तियों का प्रचलन दिखाई देता है[4]

1:- "[illegible] मनोराज्य" - वियोगी हरि

2:- हिन्दी साहित्य:चतुर्थ संस्करण :नवाँ अध्याय-पृ0-201-श्याम सुन्दरदास

3:- हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण -डा0 किरण कुमारी गुप्ता-पृ0- 32

4:- ऐतिहासिक प्रकाश में काव्य,संस्कृति और दर्शन-डा0द्वारिका प्रसाद सक्सेना पृ0-138

1:- बिम्ब ग्रहण प्रणाली - जिसमें प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र अंकित किये- जाते हैं ।

2:- नाम परिगणन प्रणाली - जिसमें प्राकृतिक पदार्थों के केवल नाम ही गिना दिये जाते हैं ।

माहौर जी का काव्यानुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि उन्होंने बिम्ब ग्रहण प्रणाली का प्रयोग कहीं नहीं किया । कवि ने एकाध स्थल पर नाम परिगणन - प्रणाली के आधार पर प्रकृति के आलम्बन रूप का चित्रण किया है । इस प्रणाली का प्रयोग करते हुये कवि ने प्रकृति के सौन्दर्य नामों का परिगणन किया है । उन्होंने वन्य पुष्पों के नामों को गिनाया है । शब्द - सौन्दर्य पद - लालित्य के चारु चयन से चमत्कृत परिगणनात्मक चित्रण देखिये -

"केवरो , कनेर , कुन्द केतकी कदम्ब केर ,
कलित कदम्ब के न आवत नगीचे हैं ।
चन्द्र मुखी चम्पा फूल चांदनी चमेली चारु ,
चारों ओर फूल मुखी देख दृग मीचे हैं ।
मोतिया हजार के उतार मालती का हार ,
नाथूराम केसर के रंगन उलीचे हैं ।
गेंदा , गुलदाउदी अनार के अनार नार ,
काहे रो गुलाब को गुलाब जल सींचे है¹ । "

:शृंगार वागीश :

अनुप्रास की कोमल छटा को निखार कर कोमल शब्द चयन से प्रकृति चित्रण को हृदयग्राही बना दिया है ।

2:- उद्दीपन रूप :-

जहाँ प्रकृति मानवीय भावनाओं को उद्दीपन करती हुयी अंकित की जाती है , वहाँ कवि का वह प्रकृति चित्रण "उद्दीपन के रूप में कह -

---

1:- शृंगार वागीश - नाथूराम माहौर - अप्रकाशित

जाता है[1]। भारतीय काव्य शास्त्रों में प्रकृति की मान्यता उद्दीपन विभाव के रूप में भी स्वीकार की गयी है। जब किसी स्थायीभाव का आलम्बन प्रकृति न होकर अन्य कोई प्रत्यक्ष आलम्बन होता है उस समय प्रकृति उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत ही आती है। प्रकृति और मनुष्य का सम्बन्ध चिर - स्थायी होने के कारण मन की किसी भी दशा में प्रकृति उसके समानान्तर लगती है। चित्त की आनन्दमयी स्थिति में प्रकृति का उल्लास आनन्द को द्विगुणित करता है और कभी मनुष्य की व्यथा से निरपेक्ष रह कर उसे कष्ट पहुँचाता है[2]। प्रकृति के सुन्दर और भयङ्कर रूप संयोग या वियोग में आश्रय के हृदय में जगे हुये भाव को तीव्रतम कर देते हैं। यही कारण है कि काव्य शास्त्रों में और विशेष का श्रृंगार रस के कवियों में प्रकृति के उद्दीपन पक्ष को अधिक महत्त्व दिया गया है। प्राय: सभी कवियों के षड्ऋतु वर्णन एवं बारह-मासे के वर्णन की प्रवृत्ति श्रृंगार रस के अन्तर्गत प्रकृति के उद्दीपन रूप को लेकर ही प्रगट हुयी है[3]।

माहौर जी के काव्य में प्रकृति को उद्दीपन रूप में श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों में चित्रित किया गयाहै। संयोगावस्था में प्रकृति के दृश्य पारस्परिक आकर्षण में संकुचित करते हैं। शीतल परिमलमय पवन ज्योत्स्ना, निर्झर, कल्लोलिनी, उपवन, खग कूजन तारक विरचित गगन आदि प्रेमी प्रेमिका के आकर्षण में एक विशिष्ट प्रकार की तीव्रता, सरसता और मधुरता का संचार कर देते हैं। सर्वत्र उसे आकर्षण, उल्लास, आनन्द, मिलन, उमंग, प्रेम आदि के दर्शन होते हैं किन्तु विरह में वे सभी आकर्षण विकर्षण में परिणत हो जाते हैं। प्रकृति के उद्दीपन के अन्तर्गत षड्ऋतु और बारह मासा के माध्यम से श्रृंगार निवेदन करना भारतीय कवियों की एक अत्यन्त प्राचीन प्रथा है। षड्ऋतु वर्णन मिलन जन्य आनन्द में उद्दीपन का संचार करता है। कवीन्द्र माहौर जी ने "षड्ऋतु" दर्पण " में -

---

1:- हिन्दी के आधुनिक कवि- डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना - पृ०-328

2:- केशव और उनका साहित्य - डा० विजयपाल सिंह - पृ०- 284

3:- रस - रत्नाकर - डा० हरिशंकर शर्मा - पृ०- 248

4:- हिन्दी साहित्य का आदि काल -पं॰हजारीप्रसाद द्विवेदी-पृ०-84

विभिन्न ऋतुओं के माध्यम से प्रकृति के उद्दीपन के सुखद एवं दुखद दोनों प्रकार के चित्र बड़ी ही कुशलता से स्वाभाविक रूप से खींचे हैं । नायिका या नायक जहाँ एक ओर वर्षा एवं बसन्त ऋतु में प्रफुल्लित हैं , मोदयुक्त हैं , वहीं दूसरी ओर नायिका को प्रकृति के तथाकथित उपादान दुखदायी प्रतीत होते हैं । वर्षा ऋतु में प्रकृति की सुखद अनुभूति का एक दृश्य दृष्टव्य है -

सावन में सांचो सुख देन घनश्याम संग ,
　　　　रंग घन श्याम अंग अंग उछरत है ।
हेरत हरत हीय भरत अनंद भूर ,
　　　　उछर उछर छवि भूतल परत है ।
नाथूराम सुखमा समेट के समग्र अंग ,
　　　　नीलमणि उग्र प्रभा पुंज निदरत है ।
विकसित विचित्र अरविन्द पै विलोको वीर ,
　　　　मत्त मलिन्द नत्य नाद सो करत है[1] ।

इसी प्रकार वसन्त ऋतु में प्रफुल्लित नायक एवं नायिकाओं के हृदयगत भावों के माध्यम से प्रकृति का उद्दीपन रूप देखा जा सकता है -

वन उपवन ब्रज वीथिनि घन बेलनि सरसंत ।
ब्रज बनि तानि ब्रजराज पै वरसो परे वसंत ।।

होत मन मुग्ध देख लुब्ध चंचरीक ,
　　　　सुमन सुगन्धन की महक दराज सौं ।
नाथूराम गहक गहर भरी चारों ओर ,
　　　　चरचें चहक चारु पन्छिन समाज सौं ,
कोकिला कलाम हेरि भारी कलपे है चैन ,
　　　　कैसे कल पैहे रस राज सरताज सौं ।।
सब सुख साज लोक लाज को न काम आज ,
　　　　खेलिये बसन्त है मैं बसन्त ब्रजराज सौं[2] ।।

1:- षड्ऋतु दर्पण - कवीन्द्र माहौर - अप्रकाशित

2:- वही -

कभी - कभी कवियों ने पात्रों के मुख से ऋतु सौन्दर्य का उद्घाटन करवाया है । "कर्पूर मंजरी" में इस प्रकार के कई सुन्दर श्लोक मिलते हैं[1] । माथोर जी ने भी कहीं - कहीं पात्रों के ही मुख से ऋतु - वर्णन का आस्वादन करने का प्रयास किया है । सावन का ऋतु में नायक के आने पर नायिका द्वारा प्राकृतिक आनन्द का दृश्य उसी के शब्दों -

सावन में आवन जो होय मन भावन को ,

पावस संगीत रीत रुचिर रचावोंगी ।

चातक चकोर मोर सोर को जल तरंग ,

मंजुल मृदंग धुनि घन की मचावोंगी ।

"नाथूराम" झिल्ली झनकारन सितारन की ,

दादुर मंजीर टकोरन टचावोंगी ।

हरित सुहावनी सुभूमि मन भावनी पै ,

कामिनी कनाई नटी दामिनी नचावोंगी[2] ।

डा० किरन कुमारी का कथन है कि उद्दीपन में प्रकृति का अपना महत्व नहीं है , संयोग अथवा वियोग दोनों अवस्थाओं में प्रकृति का एक ही उपयोग है - मनोगत भावों को उद्दीप्त करना[3] । वस्तुत: मनोगत भावों को उद्दी-प्त करना ही प्रकृति का अपना महत्व है और बिना प्रकृति के अपने महत्व के भाव भले ही उद्दीप्त हो जायं पर उनमें अपेक्षित , तीव्रता , सरसता और प्रभविष्णुता का अभाव रहेगा । माथोर जी ने भी प्रकृति के माध्यम से नायक एवं नायिका के मनोगत भावों को उद्दीप्त कराया है उनके काव्य में जहां प्रकृति एक और प्रियतम के समागम के लिये उल्लास पूर्ण उत्कण्ठित हैं वहीं दूसरी ओर उसके वियोग में व्यथा को बढ़ाने वाली है -

ऋतु बसंत के मान अब रहै कौन को मान ।

पंचबान के प्रबल जब छूटें छोर निशान ।।

1:- कर्पूर मंजरी - राज शेखर - 1/7

2:- उ ऋतु दर्पण - कवीन्द्र माथोर - अप्रकाशित

3:- हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण - डा० किरन कुमारी - पृ०- 53

मगमग आम्र मौरे उगमग होहिं मंजु ,

मग मग भौंर पुंज गुंजत आयेंगे ।

अलि कलपायेंगे न नेक कल पायेंगे ,

सु पिक कल कण्ठी सुक कलरव गायेंगे ।

नाथूराम भौन भौन विविध सुभौन देख ,

गौन कर आगम वसन्त को सुनायेंगे ।

मान गढ़ तान के रहेंगे न निशान कहूं ,

बीर पंचबान के निशान फहरायेंगे ।।

: षड्ऋतु दर्पण :

कवि ने विरहानुभूति का मार्मिक चित्र खींचा है । प्रकृति का प्रत्येक उपकरण कवि की विरह भावना को उद्दीप्त कर रहा है । वियोगावस्था में विरह व्यथित नायिका के विरह को उद्दीप्त करती हुयी प्रकृति अत्यन्त चित्ताकर्षक झाँकी अंकित की है -

पवन झकोर घोर घन की झिलोर छोर ,

मोरन की सोर सुन सुन मन झूलोगी ।

फूले अरविन्द मकरन्द मद फूले फूले ,

फिरत मलिन्द वृन्द फूले नहिं फूलोगी ।

दादुर डरावैं कल कोकिला कलापैं हायें ,

नाथूराम चातक अलापें किम भूलोगी ।

राधन के झुलन पै झुमन करावो बीर ,

अवन कदम्बन पै झूलन न झूलोगी ।।

इस प्रकार मा ेर जी ने अपने काव्य में संयोग एवं वियोग शृंगार के माध्यम से प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप में सम्यक रूप से किया है ।

3:- उपमान रूप :-

अपनी भावाभिव्यक्ति के चरमोत्कर्ष के लिये प्रायः कवि की प्रकृति प्रकृति के उपादानों को अलंकार रूप में ग्रहण करते हैं । ऐसा करने से वे प्रकृति

गृहीत उपमानों के माध्यम से सौन्दर्य को अधिक तीव्र, प्रगाढ़ और मार्मिक अभिव्यक्ति देने में सक्षम हुये हैं । मानवीय सौन्दर्य की पूर्ण और प्रभावमयी अभिव्यञ्जना के लिये कवि को प्रकृति में सब कुछ मिल जाता है । वह उपमा उत्प्रेक्षा , रूपकादि के द्वारा अपने प्रतिपाद्य विषय में सौन्दर्य लाने के लिये सारी दृष्टि डाल डालता है । कवि चन्द्रिका चर्चित चन्द्रमा में सुन्दर मुख का सा सुधा - स्नात शैत्य - पावनत्व भाव पाता है , मृग - शावक के सुदीर्घ नैनों में मुग्ध सारल्य का अनुभव करता है , मदमस्त कुंजर की मंथर गति में प्रियतमा की गति का प्रत्यक्षीकरण करता है सावन की कजरारी घन - घटा में घुंघराली केशराशि को देखता है । इस प्रकार उपमानों की सहायता से जड़ प्रकृति में चेतन - सौन्दर्य का जीवन्त और स्पन्दन शील आरोप किया जाता है । कवियों के ऐसे ही प्रयोगों को देखकर काव्यशास्त्रियों ने कुछ उपमानों को रूढ़ कर दिया है जो कवि साहित्यिक परम्परा से बंधे होते हैं वे प्रकृति का अप्रस्तुत रूप में उपयोग रूढ़ि के आधार पर ही करते हैं किन्तु कुशल और प्रतिभाशाली कवियों ने कुछ नये और सुन्दर प्रयोग किये हैं । माहोर जी ने आलंकारिक चित्रण यद्यपि परम्परा से लेकर किया तथापि उनकी उपमायें एवं उत्प्रेक्षायें अपने आप में सर्वथा मौलिक ही प्रतीत होती हैं । उनके अलंकार प्रकृति के भार नहीं प्रतीत होते वरन् उसके रूप को निखारने में सहायक तो होते ही हैं , साथ ही साथ उनकी सार्थकता भी स्वयं सिद्ध है । अलंकारों के माध्यम से माहोर जी केवल काव्य के बाह्य सौन्दर्य की अभि - वृद्धि मात्र नहीं करते अपितु उनकी उपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं को स्थल विशेष पर साभि प्राय प्रयुक्त किया गया है "वीर - वधू" के नख शिख वर्णन में माहोर जी ने प्रकृति का अलंकारों से शृंगार किया है लेकिन ये उपमान प्रत्येक स्थल पर साभिप्राय है । वीर - वधू में शृंगार के माध्यम से वीर रस की अभि व्यंजित की गयी है । उत्प्रेक्षा एवं उपमा अलंकार के द्वारा ही वीर - रस की सफल अनुभूति हो पायी है -

वीर वधू की हाथ की अंगुलियों का वर्णन कवि उत्प्रेक्षा के माध्यम

1:- मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य-शिवसहाय पाठक - पृ०- 228

से करता हुआ वीर भाव का संचार इस प्रकार करता है -

> प्रभा पुंज चमरी[1] छवि - चमरी[2] ,
>
> मृदु अंगुरी करकी हैं ।
>
> अग्नि तोम - सम इस दिव्य ,
>
> जनु किरनें दिनकर की हैं ।

नायिका के मुख सौन्दर्य का वर्णन करताहुआ कवि मुख को चन्द्रमा के समान बतलाता है और फिर प्रसिद्ध उपमान का अपकर्ष प्रतीप अलंकार के माध्यम से करता हुआ वीरता का संचार करता है इस प्रकार दो या अधिक अलंकारों का एक साथ प्रयोग करके माहौर जी प्रकृति के सौन्दर्य की अधिकाधिक अभि वृद्धि करते हैं -

> मदन कदन छवि - सदन बदन की ,
>
> सुजस सुकवि जन गावैं ,
>
> चन्द - समान विलोकि अग्नि हैं ,
>
> कमलानन कुम्हलावैं[3] ।।

उपर्युक्त छन्द में उपमा , रूपक और प्रतीप अलंकारों का एक साथ प्रयोग किया गया है । इसी प्रकार ऋतु - वर्णन में भी माहौर जी ने प्रकृति को अलंकार के चश्मे से देखा है कहीं उपमा रूपक एवं अपन्हुति की छटा एक साथ लिये वर्षा का आगमन हृदय को कहीं आकर्षित कर रहा है -

> चादर सी तानें आन बादर समारे करे ,
>
> वारि, जिन गिरैं लर सरिता बिलोरी है ।
>
> प्रगटत वृक्ष स्वच्छ पल्लव प्रसून लक्ष ,
>
> लक्ष कर चंद लेत बिज्जु चित चोरी है ।
>
> नाथूराम नये नये रंग कहलाय दृग ,
>
> काम कृत पौन गौन डारे झकोरी है ।

1:- चमरी 2:- मेघ

3:- वीर वधू - कवीन्द्र माहौर

करत ठगोरी फिरे देखो यह छोरी छोरी ,

पावस न होय गोरी जादूगर छोरी है ।

: षड्ऋतु दर्पण :

"श्रृंगार वागीश के अन्तर्गत प्रतीप के माध्यम से प्रकृति चित्रण अत्यन्त मनोहारी बन पड़ा है । प्रकृति का प्रभाव अलंकार के सहज संयोजन द्वारा बड़ा ही मोहक एवं आकर्षक हो गया है -

मन सकुचाने घन सघन पराने लखि ,

केसन सुवेसन की श्यामता अपारी लेत ।

चन्द्र जनु संकुचित गगन दुरानो दखि ,

भौंहन की दिव्य बंकताव अनुहारी लेत ।

नाथूराम आभरन दुति जुगनून जोति ,

दामिनी समेत दुरि मान पिय हारी लेत ।

पावस निकन्द छन्द राजत प्रमन्द बाल ,

आनन पै तेरे सद चन्द बलिहारी लेत ।।

:श्रृंगार वागीश :

4:- उपदेशात्मक रूप :-

कवि जन प्राकृतिक वस्तु - व्यापारों से नैतिक आदर्श या तथ्यों का प्रतिपादन भी करते हैं । मनुष्य जीवन के आदर्शों की स्थापना करते हुये प्रकृति को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करता है । जीवन के सभी सिद्धान्त उसे प्रकृति में मिलते हैं । कवि प्रकृति से मानवीय कार्य कलाप , आचार विचार की तुलना कर तथा जीवन की क्षण भंगुरता का प्रकृति में स्पष्ट आभास देकर जीवन सिद्धान्तों का निगार्ण करता है । वह प्रकृति के स्वाभाविक क्रिया कलापों से मानव को चेतावनी देता है, भारतीय धर्म ग्रन्थों में प्रकृति को उपदेशक के रूप में चित्रित किया गया है । प्रकृति का विराट प्रांगण अनगिनित आचारों से भरा पड़ा है । श्री मद्भागवत में प्रकृति को नीति और उपदेश के माध्यम के रूप में गृहीत किया गया है । इसी से प्रभावित होकर तुलसी दास ने रामचरित मानस के किष्किन्धाकाण्ड -

मे नीति और उपदेश के लिये प्रकृति को गृहीत किया है[1]। नाथूराम जी ने भी प्रकृति के उपदेशात्मक रूप में चित्रित करते हुये प्रकृति के माध्यम से मानव को चेतावनी दी है कि जीवन ओस की बूंद के समान क्षणभंगुर है अत: मानव को स्वार्थ त्याग कर राम का भजन करना चाहिये तभी सच्चे सुख की प्राप्ति हो सकती है -

इठलाता किस नाज पर ला दिल मे कुछ होश ।
बरसाती सरिता - सरिस जीवन जोबन जोश ।।

जाता है कुसंग में सुसंग मे न आता कभी ,
लाता है कुढंग रंग मान मद माता है ।
माता है पिता है, सुत भ्राता है विचार देख ,
कोई ना प्रदाता सुख स्वारथ का नाता है ।
"नाथूराम" मोद धाम राम के न गाता गुन ,
तुच्छ वस जीवन पै ऐसा इठलाता है ।
ओस सा ढलक यों ही जावेगा पलक ही में ,
जोबन जवानी की क्या झलक दिखाता है" ।

: शान्ति सागर "चेतावनी" :

क्षणभंगुर जीवन की परिकल्पना करते हुये कवि मानव को उद्बोधन देता है कि वह इस क्षण भंगुर सुख में ईश्वर को भूल बैठा है जीवन तो चार दिन की चांदनी है अत: व्यक्ति को ईश्वर को विस्मृत नहीं करना चाहिये -

तजि कुसंग सत संग, भज भव मोचन सुख देन ।
चार दिना की चांदनी , फेर अँधेरी रैन ।।

1:- श्री मद् भागवत स्कन्ध 10अध्याय 20 :श्लोक 15-96-17-33 : और
रामचरित मानस कि0 काण्ड दोहा 16, 17
बुन्द अघात सहहिं गिरि कैसे । खल के बचन संत सह जैसे ।
दामिनि दमक रही घन माहीं । खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ।।
राम0मानस

गर्भ में दु:ख सहे जितना,

सुधि भूल गयो सबही वदना की ।

प्रेम क्षमा के फंस्यो जबसे ,

तबसे तू फंस्यो छवि में गुमना की ।

जन्म गयो बरबाद सबै ,

नहि याद कबहूं विपदा की ।

चेत जा चेत से जीवन चैन की ,

चाँदनी रैन है चार दिना की ।।

: शान्ति सागर :

व्यक्ति को जीवन में फल की प्राप्ति कर्मों के अनुसार होती है इस तथ्य का उदाहरण माहौर जी ने प्रकृति के माध्यम से इस प्रकार किया है -

सुखद अनन्त शुभ सुन्दर बसंत माहि ,

मंजु मृदु पत्र क्यों करील में न आते हैं ।

रवि के प्रकाश में उलूक देख पाते नहीं ,

कंज खिल जाते औ कमुद मुंद जाते हैं ।।

कोई तरु प्राप्त कर ले तो दिव्य फल फल ,

कोई तरु सिर्फ फूल फूले ही दिखाते हैं ।

विधि का विधान यही दोष का किसी को कहो,

जैसे बीज बोते वह वैसे फल पाते हैं ।।

: दीन का दावा, दूसरा भाग :

5:- प्रतीक रूप :-

विशेष धर्म या गुण के प्रकाशक प्रकृति के कुछ पदार्थ जो , सामान्यत: सबके हृदय में एक सी भावना जगाते हैं , कविता में प्रतीक कहलाते-हैं । प्रतीक भारत का बहुत प्राचीन शब्द है । निर्गुण निराकार ब्रह्म भ-

---

1:- " स य नाम ब्रह्मत्युपास्ते" इत्येवमादिषु प्रतीकोपासनेषु संशय:

वना को हृदयंगम कराने के लिये जिन गोचर अथवा मूर्त्त रूपों का सहारा लिया जाता है वे प्रतीक कहलाते हैं । अभिप्राय यह है कि "प्रतीक" सूक्ष्म के स्थान पर प्रयुक्त स्थूल पदार्थ होते हैं । यही प्रतीक शब्द की व्यापक भावना है । प्रकृति के सभी पदार्थ किसी न किसी धर्म या गुण के प्रतीक ठहराये जा सकते हैं किन्तु लोक हृदय ने बिना किसी शास्त्रीय विधान के कुछ विशिष्ट पदार्थों में सबसे अधिक प्रतीकत्व स्थापित कर लिया है । कमल , चन्द्रमा , मीन , मेघ , कोकिल ; उषा लहर आदि ऐसे ही कुछ प्रतीक हैं जो अपने विशिष्ट गुणों से सम्बद्ध या समानान्तर सूक्ष्म भावना की अभिव्यक्ति के लिये उनके स्थान पर काम में लाये जाते हैं । भावो - द्वेग के कारण जब व्यक्ति साधारण अभिधा से ही काम नहीं चला सकता तभी वह चिरपरिचित प्रतीकों का सहारा लेता है । प्रतीको का प्रयोग यह सूचित करता है कि कवि का भाव - प्रवाह बहुत गम्भीर हो चला है जो साधारण लौकिक व्यवहार की भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता ।

माहौर जी ने अपने काव्य में स्थान - स्थान पर प्रतीकों का सहारा लिया है । प्रकृति के प्रतीको को उन्होने जहाँ भी प्रयुक्त किया है वहाँ उनकी भावी व्य जना अत्यन्त ही सफल एवं प्रौढ हो गई है । "दीन का दावा" में कवि ने भक्त के द्वारा ईश्वर से अपना उद्धार करने के लिये , कष्ट निवारण हेतु दावा दायर करवाया है । भक्त दीन बन्धु के नाम की दुहाई देता हुआ अपने उद्धार की प्रार्थना करता है और उद्धार न होने पर ईश्वर के ऊपर दावा करता है । "दीन का दावा" चार खण्डो में है । अन्त में भक्त की विजय होती है उसकी दीनता दीन बन्धु दूर करतेहैं । प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रकृति का चित्रण यथा स्थान उपदेश एवं प्रतीको के रूप में बड़ी ही कुशलता से किया गया है । जिस समय यह ग्रन्थ लिखा गया उस समय :1938 में प्रथम खण्ड लिखा : स्वतन्त्रता का आन्दोलन तेज था नव युवक अंग्रेजी शासन से मुक्ति हेतु प्रण करते हुये स्वा- तन्त्र्य संग्राम की ओर अग्रसर हो रहे थे । नवयुवको का स्वतंत्रता संग्राम सफल हुआ । देश स्वतंत्र हुआ , एक प्रसन्नता की लहर जन मानस में उठी । कवि ने"दीन का दावा" चतुर्थ खण्ड :1951 में प्रकाशित : में प्रकृति के -

माध्यमसे प्रसन्नता की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है -

> मुरझी हुई आशायें मुकलित होने लगीं ।
>
> दीन बन्धु की कृपा ज्योति जागने लगी ।।
>
> माथुर सुकवि जन जन की भी दया दृष्टि ,
>
> बन अनुकूल अनुराग दागने लगी ।

: दीन का दाता चतुर्थ खण्ड :

यहाँ पर "मुरझी आशयें " प्रतीक हैं निराश हृदय की । "मुकलित होना" प्रतीक है प्रसन्नता का ।

कवि ने जहाँ भी प्रतीकों का प्रयोग किया है वहाँ प्रतीक परम्परित होते हुये भी नये अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं । माथुर जी ने युगानुकूल ही प्रकृति को भी प्रयुक्त किया है । वह युग स्वातंत्र्य संग्राम का युग था प्रत्येक देश वासी की कामना थी कि वह देश को स्वतंत्र कराये । कवि स्वातंत्र्य संग्राम के लिये नव युवकों को प्रेरित करता हुआ गीत गाता है जिसमें अनेक स्थान पर प्रकृति का प्रयोग प्रतीक रूप में किया है -

> मा ! तेरे चरणों में चित दे हंस हंस शीश चढ़ाना है ।
>
> सुख सम्पत्ति सर्वस त्याग कर तुझे स्वतंत्र बनाना है ।।
>
> त्रिगुण्ड त्रिरंगा झण्डा तिरंगा यत्र तत्र फहराना है ,
>
> लाल जवाहर जवाहरात से भरना देश खजाना है ,
>
> ऊषा सुन्दरी स्वतंत्रता से स्वर्णाकाश बनाना है ।
>
> मुरझाये प्यारे सुमनों के मुख सब सुखद खिलाना है ।

: ख्याल[1] :

यहाँ पर "ऊषा" , "स्वर्णाकाश" मुरझाये सुमन का प्रयोग लक्षणा शक्ति के अनुसार प्रतीकात्मक है ।

1:- कवीन्द्र माथुर रचित एक "ख्याल" से ।

6:- मानवी करण रूप :-

कवि जीवन में प्रकृति को चेतन सन्ता माना गया है । प्रकृति पर चेतना का आरोपण ही मानवीकरण है । प्रकृति का मानवीकरण आधुनिक हिन्दी कविता की एक विशिष्ट प्रवृत्ति है । मानवीकरण के लिये प्रकृति की चेतना सन्ता के रूप में कल्पना करनी पड़ती है । मानवीकरण का अर्थ है प्रकृति या उसके पदार्थों को चेतन मानव की तरह व्यवहार करते दिखाया जाय । कवि कभी - कभी तो केवल उसकी चेष्टाओं का वर्णन मात्र करके ही सन्तुष्ट हो जाता है किन्तु कभी - कभी पारस्परिक सम्भाषण आदि अन्य व्यवहारों की भी कल्पना करता है । मानवीकरण की परम्परा के रूप में काव्य जगत पर्याप्त समृद्ध है । प्राचीन काल से ही प्रकृति के विभिन्न तत्वों को मत रूप में स्वीकार करना एक प्रकार से मानवीकरण ही है । प्रकृति के मानवीकरण की परम्परा वैदिक साहित्य से ही आरम्भ हो गयी थी । मध्य युग के - कवियों ने भी कहीं कहीं प्रकृति का मानवीकरण किया है । परन्तु कवियों ने जिस मनोयोग से प्रकृति का चित्रण किया वह पहले के कवियों में कहां ! इस सम्बन्ध में डा० किरण कुमारी का कहना है -"हिन्दी काव्य में आधु - निक काल में ही प्रकृति के मानवीकरण के दर्शन होते हैं । अंग्रेजी में रोमैंटिक काव्य के प्रभाव स्वरूप छायावादी कविता में इस प्रकार के प्रयोग प्रचुर मात्रा में हैं । इस प्रकार छायावाद की अभिव्यञ्जना शैली का यह एक प्रमुख तत्व है । इसमें प्रकृति में मानवरूप , मानव गुण , मानव क्रिया और मानव भावना आदि का आरोप किया जाता है[1] । आधुनिक युग का ऐसा कोई भी कवि नहीं होगा जिसने प्रकृति को एक चेतन सन्ता के रूप में न देखा हो । जिस देश में वृक्षों , नदियों और पर्वतों की पूजा की जाती हो उस देश के काव्य में प्रकृति एक दिव्य चेतन सन्ता के रूप में सहज स्वीकृत हो जाती है ।

रवीन्द्र नाथ टैगोर ने भी अनेक स्थान पर प्रकृति का मानवीकरण में मे चित्रण किया है । कवि ने प्रकृति के विभिन्न अमूर्त उपादानों को मूर्त रूप प्रदान कर प्रकृति का सुन्दर मानवीकरण किया है । "ऋतु दर्पण " में टैगोर-

---

1:- हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण :डा० किरण कुमारी : - पृ० 5

जी ने विभिन्न ऋतुओं का चित्रण करते हुये समय , जो मानवोचित क्रियाओं का आरोप किया है , वह कवि की अद्भुत प्रतिभा का परिचायक है । प्रकृति का मानवीकरण करते समय माहौर जी परम्परा से हटकर ~~नवीनता~~ नवीनता की ओर उन्मुख हुये हैं । "वसन्त" का वर्णन करते समय कवि ने मानवीकरण शैली को अपनाया है लेकिन परम्परा से हटकर उसमें नवीनता का समावेश करते हुये कवि अपनी मौलिक उद्भावना शक्ति का परिचय देता है । वह "वसन्त" के माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति से भी जनता को अवगत करा देता है । अंग्रेजों की पराजय के पश्चात भारत स्वतंत्र हुआ । भारत वासियों ने अंग्रेजों को भारत से निकाल दिया और भारतीयों का आधिपत्य स्थापित हुआ , इस तथ्य को "वसन्त" का मानवीकरण करते हुये माहौर जी इस प्रकार उद्घाटित करते हैं -

आक्रमन हेर सीतराज के प्रवीर पत्र ,

मोरचान त्याग यत्र तत्र भागने लगे ।

दखल जमायो ऋतुराज ने सबल आन ,

सीत के अदल हो विकल भागने लगे ।

नाथूराम फल फूल पाने लगे मोद मूल ,

सुतक प्रजा जन के भाग जागने लगे ।

चटक गुलाबन के चटक सुनाय गानों ,

किसरी रसना को सलामी दागने लगे ।[1]

यहाँ रेखांकित शब्दों में कवि प्रकृति का बड़ा ही सुन्दर मानवीकरण किया है । मानवीकरण के साथ ही उपर्युक्त शब्द प्रतीकात्मक भी हैं । यह माहौर जी की मौलिकता का परिचायक है । माहौर जी ने जहाँ एक ओर ऋतुओं के चित्रण में मानवीकरण के साथ - साथ प्रतीक विधान की भी संयोजना की है वहाँ दूसरी ओर कवि ने "देशवा वन्तीसी" लिख कर बड़े ही स्वाभाविक-

---

1:- षड्ऋतु दर्पण :वसन्तवर्णन : कवीन्द्र माहौर - अप्रकाशित

रूप से प्रकृति का मानव के साथ तादात्म्य किया है । कवि के व्दारा "वेतवा" नदी का मानवीकरण अत्यन्त वास्तविक और मोहक बन पड़ा है । वेतव में पड़े हुये पुष्पों में वेतवा के श्रंगार की कल्पना एवं "जामिन" और "धसान" नदियों में "वेतवा" की "सहेली" की कल्पना करता हुआ कवि बड़े ही स्वाभाविक रूप से "वेतवा" का मानवीकरण कर उसे एक रूपगर्विता नायिका के रूप में चित्रित करता है, यही माहौर जी के प्रकृति चित्रण की विशिष्टता है । वेतवा में रूपगर्विता नायिका की कल्पना कितनी मनोहारी एवं अनुपम है -

वेत्रवती तुंगित तरंगनि सों,
तन तरुनाई को पसारें चली आवे है ।

सुंगारण्य भेंटत समेटत अरण्य पुष्प,
पुष्पन सिंगार को सम्हारे चली आवे है ।

माहुर सुकवि नव छवि की तरंग अंग,
अंग में उमंग निरधारे चली आवे है ।

"जामिन" "धसान" आदि संग में सहेली लिये,
रूपगर्विता सी गर्व धारें चली आवे है ।।[1]

रेखांकित पंक्तियों में प्रकृति का मानवीकरण दृष्टव्य है । इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण प्रकृति के मानवीकरण के लिये देखा जा सकता है - वेतवा की बहती धारा एवं कलकल की ध्वनि कवि को ऐसी प्रतीत हो रही है कि मानों वेतवा खोज खोज कर रोज पथिक को अपने पास बुलाती है -

धार बीच धारना धरे मग रोकवे की,
करन विराम निज ठौर ठहरावे है ।

हिम की उमंग भर तरल तरंगन में,
भाव भरी राग अनुराग को सुनावे है ।

1:- वेतवा वन्सीवी - कवीन्द्र माहौर - अप्रकाशित ग्रन्थ

माहुर सुकवि अंग संग करिबे की सदा ,

थल थल छाय छाय चाह दरसाते है ।

वेत्रवती चौज भरे कल कल बैनन सों ,

छोज छोज रोज पास पथिक बुलाते है[1] ।

इस प्रकार हम देखते है कि माहौर जी ने प्रकृति को मानवीकरण रूप का चित्रण भी बड़ी ही कुशलता के साथ किया स्वाभाविक रूप मे किया है । कहीं - कहीं लाक्षणिक शब्दों की योजना कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है ।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि माहौर जी ने प्रकृति चित्रण मे परम्परागत पद्धतियों को यथा स्थान अपनाया है और बड़ी ही सफलता के साथ प्रकृति के विविध रूपों को अभिव्यक्त किया है । माहौर जी परम्परा से बंधकर चले हों ऐसी बात नहीं है जहाँ कहीं उन्होने परम्परा से हटकर प्रकृति चित्रण किया वहाँ अपनी मौलिक मौलिक उद्भावना शक्ति का परिचय दिया है । निसन्देह माहौर जी प्रकृति चित्रण की कला मे सिद्ध हस्त हैं ।

1:- बेतवा बत्तीसी - रवीन्द्र माहौर - अप्रकाशित ग्रन्थ

(2) - विवेच्यभाव :-

(अ) माहौर जी की श्रृंगार भावना : नायिका भेद :

कवीन्द्र नाथूराम माहौर ने जिस समय काव्य के क्षेत्र में पदार्पण किया उस काल को द्विवेदी युग के नाम से अभिहित किया जाता है । जिस प्रकार वीरगाथा काल में वीर तथा श्रृंगार रस की कविता अधिक हुयी उसी प्रकार द्विवेदी युग में देश प्रेम , स्वदेशी भावना आदि की कवितायें हुयीं । वीर-गाथा काल में वीर का बाहुल्य तो था किन्तु उसी के समान प्रबल श्रृंगार की भावना भी उस काल में पायी जाती थी । ठीक उसी प्रकार द्विवेदी युग में स्वदेशी आदि राष्ट्रीय भावनाओं के साथ श्रृंगार की भावना भी प्रवाहित थी[1]। कहने का तात्पर्य यह है कि द्विवेदी युग में भी श्रृंगारी कविता की परम्परा चल रही थी । श्रृंगार की ही नहीं अपितु रीतिकालीन परिपाटी की श्रृंगारिक रचनाये भी , द्विवेदी युग में होती थी और पर्याप्त परिमाण में होती थी[2] । वास्तव में द्विवेदी युग में रीतिकालीन परिपाटी तथा नयी धारा दोनों का समान प्रचलन था । इस युग में तीन प्रकार के कवि पाये जाते है -

1:- प्राचीन परिपाटी के अनुयायी

2:- नव धारा वाले

3:- वे कवि जिन्होंने दोनों परिपाटियों का समन्वय करके दोनों का अनु - गमन किया ।

कवीन्द्र माहौर तृतीय कोटि के कवियों में आते थे जिन्होंने प्राचीन एवं नवीन दोनों विचार धाराओं का अनुगमन किया । कवीन्द्र नाथूराम माहौर की काव्य प्रतिभा ने एक ओर भक्ति कालोन्तर रीतिकाल की श्रृंगार प्रधान कविता का अलंकार , नायिका भेद आदि से सर्वांग पूर्ण रूप प्रदर्शित किया तो दूसरी ओर जन मानस को भारतीय स्वातन्त्र्यकी भावना से आपूरित कर स्वतंत्रता संग्राम के लिये प्रेरित किया । बुन्देलखण्ड की रियासतों में अभी भी पुरानी परिपाटी -

---

1:- रीतिकालीन और आधुनिक हिन्दी कविता-डा० रमेश कुमार शर्मा-पृ०-137

2:- "श्रृंगार काल की सीमा"- हिमालय , अंक 3 - पृ० - 23 अप्रैल 1946 - विश्व नाथ प्रसाद मिश्र

का रीतिकालीन काव्य युग चल रहा था जिसमें नायिका भेद वर्णन और अलंकारों के चमत्कार आदि का ही विशेष महत्त्व था । कविता प्राय: श्रृंगार रस की अलंकृत शैली और ब्रज भाषा में ही हुआ करती थी । भारतेन्दु जी इस प्राचीन रीतिकालीन काव्य परम्परा से अछूते न रह सके थे । रीतिकालीन काव्य में श्रृंगार भावना का बाहुल्य था । इस श्रृंगार भावना का पूर्ण अनुगमन भारतेन्दु युग के कवियों ने किया । यदि ये कहा जाय कि इस काल की श्रृंगार भावना अनेक अंशों में रीतिकाल के श्रृंगार का पिष्टपेषण मात्र थी तो कोई अत्युक्ति न होगी[1] । द्विवेदी युग में भी प्राचीन परिपाटी की तथा श्रृंगार की कविता अपने स्वरूप को बनाये हुये अपने मार्ग पर आरूढ़ थी[2] ।

रीतिकालीन श्रृंगार पद्धति में नायिका भेद का अपना एक विशिष्ट स्थान था । आदि कवि बाल्मीकि से लेकर अद्यतन कवियों ने सौन्दर्योपासना के लिये नारी को मधुर आलम्बन के रूप में प्राय: स्वीकार किया है । काव्य, नाटक और काम शास्त्र में अब तक नारी के विविध रूपों, अवस्थाओं तथा स्वभावों का उल्लेख किया गया है । नारी के इस विविध रूपों, आकृति विषयक चिन्तन को ही काव्य शास्त्रियों ने "नायिका भेद" से अभिहित किया[3] ।

हिन्दी के नायिका भेद का मूलाधार संस्कृत साहित्य का ही नायिका भेद है, जिसका प्रारम्भ काव्य शास्त्र की परम्परा के साथ ही होता है । नायिका भेद का वर्णन पहले नाट्य ग्रन्थों में तत्पश्चात काव्य ग्रन्थों में होना प्रारम्भ हुआ । भरत मुनि का "नाट्य शास्त्र" तथा धनंजय का "दशरूपक" नाट्य सम्बन्धी ग्रन्थ हैं जिसमें नायिका भेद का कथन प्रासंगिक रूप में प्राप्त होता है । नायिका भेद की परम्परा का मुख्य आदिम ग्रन्थ रुद्रभट्ट का "श्रृंगार-तिलक" माना जाता है । वस्तुत: इस ग्रन्थ में ही सर्वप्रथम श्रृंगार को मुख्य रस स्वीकार-

---

1:- आधुनिक हिन्दी साहित्य, कविता पुरानी धारा - डा० लक्ष्मी सागर-वार्ष्णेय - पृ० 178

2:- रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता - डा० रमेश कुमार शर्मा - पृष्ठ - 97

3:- बिहारी सतसई - आलोचना - देवेन्द्र शर्मा "इन्द्र" - पृ० - 125

करके अंग , उपांगों अर्थात संयोग विप्रलम्भ नायक नायिका काम दशा आदि का "पूर्ण विवेचन" किया गया है । इसके पश्चात अनेक विद्वानों ने अपने - अपने ग्रन्थों में इस विषय को लेकर विस्तृत व्याख्या की है जिनमें भोजकृत - "शृंगार प्रकाश" शारदा तनय का "भावप्रकाश " भानुदत्त की "रस तरंगिणी " और "रस मंजरी" आदि ग्रन्थ अत्यन्त महत्व पूर्ण और प्रसिद्ध हैं ।

हिन्दी के कवियों ने यद्यपि "नायिका भेद" वर्णन में भानुदत्त और विश्वनाथ दोनों के ही ग्रन्थों से सहायता प्राप्त की है किन्तु हिन्दी के नायिका भेद की परम्परा को निश्चित रूप देने के लिये भानुदत्त की रस मंजरी को ही आदर्श बनाया गया । डा० नगेन्द्र के मतानुसार भी "रस मंजरी" हिन्दी नायिका - भेद का मूलाधार ग्रन्थ है[1] । प्रभुदयाल मीतल के शब्दों में "रस - मंजरी में वर्णित नायिकाओं का क्रम ही ब्रज भाषा आचार्यों ने नहीं लिया वल्कि उसके रस कथन की प्रणाली भी उन्होंने स्वीकार कर ली । अत एव हिन्दी - नायिका भेद का आधार रस मंजरी ही है[2] । "

हिन्दी के नायिका भेद के प्राप्त ग्रन्थों में सबसे प्रथम प्राचीन रचना कृपाराम की "हित तरंगिणी" है । हित तरंगिणी में लक्षण युक्त उदाहरण लिखे गये हैं । यद्यपि इसमें नायिका भेद का पूर्ण विवरण है परन्तु सिद्धान्त निरूपण की दृष्टि से उस ग्रन्थ को साधारण बताया जाता है[3] । भक्त कवि नन्द दास कृत "रस मंजरी" भी नायिका भेद की आरम्भिक रचनाओं में एक प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण रचना है जो भानुदत्त द्वारा रचित रस मंजरी के आधार पर लिखी हुयी बतायी जाती है । भानुदत्त ने "रस मंजरी" में लक्षण उदाहरण सहित नायिका भेद का वर्णन किया है किन्तु नन्द दास ने अपनी रस मंजरी में नायिकाओं के केवल लक्षण ही लिखे हैं , उदाहरण नहीं । इस प्रकार हिन्दी साहित्य के आरम्भिक नायिका भेद वर्णन करने वाले ग्रन्थों में हित तरंगणी और रस मंजरी का ही उल्लेख किया जा सकता है क्यों कि इन ग्रन्थों के आधार पर ही -

---

1:- रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता -डा० नगेन्द्र- पृ०-139

2:- ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद -श्री प्रभुदयाल मीतल - पृ०- 86

3:- मिश्र बन्धु विनोद - भाग - 1 पृ०- 347

स्वतंत्र रूप से हिन्दी में नायिका भेद के वर्णन करने की प्रवृत्ति का सूत्रपात होता है ।

विभिन्न परिस्थितियों में , विभिन्न मनःस्थितियों को प्राप्त नायिकाओं के लक्षण रीतिकारों ने अपने ग्रन्थों में चित्रित किये हैं । कविगण उनके आधार पर नायिकाओं का वर्णन रीतिकाल में किया करते थे । नायिका भेद कभी अवस्था के आधार पर , कभी रुचि के आधार पर , कभी लज्जा के आधार पर तो कभी नायक से सम्बन्ध के आधार पर किये जाते हैं । धर्म , आयु, प्रकृति , जाति और अवस्था अर्थात परिस्थिति इन पाचोंकारकों से नायिका के अनेक भेद माने गये हैं[1] -

1:- धर्म भेद से - स्वकीया , परकीया और सामान्या ।
2:- आयु विचार से - मुग्धा , मध्या और प्रौढ़ा ।
3:- प्रकृति गुण से - उत्तमा , मध्यमा , और अधमा ।
4:- जाति भेद से - पद्मिनी , चित्रणी ,शंखिनी और हस्तिनी ।
5:- परिस्थिति के अनुसार - खण्डिता , कलहान्तरिता , विप्रलब्धा, उत्कण्ठिता , स्वाधीनपतिका , अभिसारिका , प्रवत्स्यत्पतिका , प्रोषित पतिका और आगत पतिका ।

आयु के विचार से स्वकीया के तीन भेद किये गये हैं - मुग्धा , मध्या और प्रौढ़ा । भानुदत्त ने मुग्धा के भेद करते समय अंकुरित यौवना , नवोढ़ा तथा विश्रब्ध नवोढ़ा नामक तीन भेद किये थे जिनको सूरदास ने अपनी साहित्य-लहरी में अज्ञात यौवना तथा ज्ञात यौवना नायिकाओं के रूप में विभक्त किया । रहीम ने आगेचलकर ज्ञात यौवना के दो भेद किये - 1:- नवोढ़ा -2 विश्रब्ध - नवोढ़ा । मध्या और प्रौढ़ा नायिकाओं को समस्त आचार्यों ने धीरा , धीरा-धीरा तथा अधीरा के रूप में विभक्त किया है । इनके अतिरिक्त हिन्दी रीति-ग्रन्थों में प्रौढ़ा के रति प्रीता और आनन्द सम्मोहिता दो भेद और किये गये हैं ।

अवस्था भेद के अतिरिक्त रस मंजरी कार ने दशाओं के आधार पर भी निम्नलिखित भेद किये हैं -

---

1:- रस - रत्नाकर - हरिशंकर शर्मा - पृ0- 106

1:- अन्य सम्भोग दु:खिता

2:- गर्विता

3:- मानवती

गर्विता के दो भेद - प्रेम गर्विता तथा रूप गर्विता के नाम से मिलते हैं ।
स्वकीयाके दो विशेष भेद - ज्येष्ठा और कनिष्ठा नायिका के रूप में किये
गये हैं ।

परकीया नायिका के दो भेद हैं -

1:- ऊढ़ा परकीया

2:- अनूढ़ा परकीया

परकीया के ही अवस्थानुसार निम्नलिखित भेद आचार्यों ने किये हैं -

1:- मुदिता

2:- विदग्धा

3:- लक्षिता

4:- कुलटा

5:- अनुशयाना

6:- गुप्ता

विदग्धा के दो भेद - वचनविदग्धा और क्रिया - विदग्धा के रूप में किये -
गये हैं ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर नायिकाओं के शताधिक भेदोपभेद किये
जा सकते हैं । रीति कालीन कवियों ने नायिकाओं के सामाजिक व्यवहार नायक
के साथ संयोग एवं वियोग , नायक के प्रति प्रेम स्वभाव , गुण आदि के आधार
पर कितने ही भेद प्रभेद किये हैं जिनके परिणाम स्वरूप नायिकाओं के तीन सौ
चौरासी तक भेद किये गये हैं । प्राय: स्वकीया , परकीया और सामान्या ये
तीन भेद ही पहले प्रचलित थे परन्तु फिर तो विभिन्न प्रकार से नायिकाओं का
वर्गीकरण होने लगा । नायिका भेद वर्णन की प्रवृत्ति प्रमुखतया रीति काल में -

---

1:- प्राचीन प्रतिनिधि कवि - डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना - पृ०- 330

पूर्णतया विकसित हुयी । नायिका भेद जैसे सरस विषय का सर्व प्रथम होना स्वाभाविक ही था अतएव नायिका भेद वर्णन की परम्परा में सभी कवियों और आचार्यों ने पूरा - पूरा सहयोग दिया । इस काल के कवियों का आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में " अलंकारों की अपेक्षा नायिका भेद की ओर कुछ अधिक झुकाव रहा । शृंगार रस का सारा वैभव कवियों ने नायिका भेद के भीतर दिखाया[1] है "

रीति काल की समाप्ति और आधुनिक काल का आरम्भ सन् 1850 के लगभग माना जाता है[2] अतएव आधुनिक काल के कवियों पर रीति कालीन शैली का प्रभाव किसी न किसी रूप में दिखलायी देता है । भारतेन्दु युग से लेकर आधुनिक छायावादी और इससे भी आगे के नये कवि भी नायिका भेद से अछूते नहीं रह सके । आधुनिक युग के प्राचीन परिपाटी के अनुयायी कवियों ने अपनी कविता में अनेक स्थानों पर नायिका भेद का आश्रय लिया था और उनकी इस प्रकार की कविता रीति कालीन परिपाटी से प्रभावित ही नहीं है अपितु रीतिकाल की अच्छी से अच्छी कविता की टक्कर की भी है[3] ।

कवीन्द्र नाथुराम माहौर आधुनिक काल के ब्रजभाषा के उन कवियों में से है जिन्होंने रीतिकालीन प्राचीन परम्परा से प्रभावित होकर काव्य रचना के लिये प्रेरणा प्राप्त की अतः स्वाभाविक रूप से उनके साहित्य में पिंगल शास्त्र के साथ नायिका भेद का वर्णन मिलता है । कवि का उद्देश्य लक्षण ग्रन्थ लिखना नहीं था कहीं भी नायिकाओं की परिभाषा एवं लक्षण माहौर जी ने नहीं दिये फिर भी उनकी काव्य रचना में शृंगार के वर्णन में नायिका का जो रूप अवस्था विशेष में आ गया है , उससे वे पीछा नहीं छुड़ा सके हैं । उनकी रचना में नायिका - का जो भेद स्वयमेव निरूपित हुआ उसे हम प्रयत्न साध्य नहीं कह सकते । यह कहना अत्युक्ति न होगी कि माहौर जी नायिका भेद के पण्डित थे जब नायिका भेद के सम्बन्ध में अन्य विद्वानों में विवाद होता था तो माहौर जी का ही -

---

1:- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ- 237

2:- आधुनिक हिन्दी साहित्य- डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

3:- रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता - डा० रमेश कुमार शर्मा -पृ०-182

निर्णय अन्तिम माना जाता था । माहोर जी ने क्रम बद्ध रुप से नायिकाओं का वर्णन नहीं किया । माहोर जी ने अपने काव्य में स्वकीया, परकीया एवं सामान्या तीनों ही प्रकार की नायिकाओं को स्थान दिया है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कवि का अभीष्ट ग्रन्थ लिखना नहीं था अपितु श्रृंगार वर्णन में ही कवि की वृत्ति अधिक रमी है । श्रृंगार वर्णन करते समय आलम्बन विभाव के अन्तर्गत नायिका के रुप सौन्दर्य तथा चेष्टाओं का वर्णन कवि ने किया है। अत: नायिका भेद के उदाहरण भी कवि ने दिये हैं । आचार्यों ने आयु के विचार से स्वकीया मुग्धा नायिका के दो भेद किये है -

1:- अज्ञात यौवना

2:- ज्ञात यौवना

ज्ञात यौवना के भी दो उपभेद हैं -

1:- नवोढा

2:- विश्रब्ध नवोढा

माहोर जी उपर्युक्त नायिका के भेदों एवं प्रभेदों के उदाहरण देकर स्वकीया को पूर्ण मान्यता प्रदान की है ।

स्वकीया वह प्रति प्राण नारी है, जिसने लज्जा को ही अपना आभूषण बना रखा है और जो विनय नम्रता, वाक्पटुता आदि गुणों से युक्त होकर घर गृहस्थ के कामों में लगी रहती है जिसे स्वप्न में भी पर पुरुष की इच्छा नहीं होती तथा पति के प्रति अविनय और अश्रद्धा के भाव जिसके हृदय में कभी उत्पन्न नहीं होते[1] । माहोर जी ने पति प्रेम में लिप्त गिरिबायत स्वकीया का चित्र निम्न प्रकार से खींचा है -

> अलक बलासी चारु चन्द्र की कलासी खासी,
>
> नवल प्रभासी भासी आज चपला सी है ।
>
> हलन खुशा सी सुंघु मदन विलासी वासी,
>
> नव छवि रासी देखि होत छवि दासी है ।

1:- रस-रत्नाकर - हरिशंकर शर्मा - पृ०- 106

नाथूराम कंज कलिका सी देखता सी भासी ,

अमा में अमा सी पति प्रेम में प्रकाशी है[1] ।

गिरजा मनाय धाय रोज गिरिजा लों जाय ,

पूज गिरिजा को ,पूज्य गिरिजा सी है ।

स्वकीया मुग्धा नायिकान्तर्गत अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना नायिका के बड़े ही सुन्दर चित्र माहोर जी ने खींचे हैं । कवि की कल्पना में यदि बल है तो वह हेय चित्र को भी अपनी कल्पना द्वारा सुन्दर पदों और भाव का हार पहनाकर जनता के सामने उपस्थित कर सकता है और यह चतुरता माहोर जी की लेखिनी में थी[2] । इसका उदाहरण माहोर जी की "अज्ञात यौवना" नायिका वर्णन की शैली में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है , जिसके वर्णन में अधिकांश कवि असफल ही हुये हैं । ऋतु धर्म से अनभिज्ञ अज्ञात यौवना नायिका का माहोर जी ने जो चित्र खींचा उसमें कितनी लज्जा की बात मर्यादा के साथ कह दी है -

अज्ञात यौवना मुग्धा

फागुन मास न लागो अरी रितु -

राज, ने नेक न साज सजोरी ।

कोऊ कहूं हमहूं न लखो, इत,

ओरी गुलाल लिये रंग रोरी ।

नन्द को लाल न आयो अबै सखि ,

हाल कहो तोहि सौंहि है मोरी ।

धांधरी पै रंग मेलिगो कौन धौं ,

होरी जरे बिन खेलिगो होरी[3] ।।

रीति कालीन कवियों ने राधा कृष्ण का आधार लेकर नायिका भेद का चित्रण किया था , माहोर जी ने भी इसी से प्रभावित होकर राधा कृष्ण को ही अपने

1:- अप्रकाशित - श्रृंगार वागीश ब०कवीन्द्र माहोर

2:- उदय और विकास - ले० रामचरण ह्यारण मित्र - प्रकाशक - बुन्देलखण्ड - शोध संस्थान झांसी - पृ०- 262

3:- श्रृंगार वागीश - कवीन्द्र माहोर :अप्रकाशित :

श्रृंगार का आधार बनाया है । यौवनागमन पर अपने सौन्दर्य तथा यौवनोभार से अभिगत ज्ञात यौवना मुग्धा नायिका कवियों को बड़ी प्रिय रही है । माहौर जी ने ऐसी ही ज्ञात यौवना मुग्धा नायिका का वर्णन किया है जो अपने अंगों के विकास को देखकर प्रसन्न होती है -

ज्ञात यौवना मुग्धा -

भारती रती की लख लागत रती सी रूप,
छिति पै अनूप छवि छवि छटान छूट ।
छूट रत्न जालन के भूषणांग बेल बूट,
फेल फैल फलत प्रभाकर प्रभान फूट ।
नाथूराम ज्ञात मग उमग उजास जासु ,
मदन विलास भरी ढरी रस कूट कूट ।
टूट टूट लाई है लुनाई तरुणाई अंग ,
उरज उतंग जात आँगी बन्द टूट टूट[1] ।

लज्जा अथवा भय के कारण जिसकी रति पराधीन हो ऐसी नवोढा का चित्रण किंचित कठिन होता है क्यों कि उसमें भाव चित्रण की कठिनाई रहती है फिर भी माहौर जी ने नवोढा :मुग्धा : का चित्र बड़ी ही कुशलता से खींचा है -

नवोढा :मुग्धा :

देखन बहार नव छवि सुकुमार नारि ,
साजि के सिंगार अंग सोभा सरसाइ है ।
लाही छन छन की छमण्डित छटान लागी ,
दादुर रटान जागी लगत सुहाई है ।
"नाथूराम" पावस प्रसंग में उमंग भरी ,
संग में परोसिन के विपिन सिधाई है ।
चैन सों प्रवेश कियो श्याम के निकेत बाल ,
चातक के बैन सुन लौट गइ आई है[2] ।

1:- श्रृंगार वागीश - अप्रकाशित - माहौर

2:- श्रृंगार वागीश - अप्रकाशित - माहौर

हास योजना के अन्तर्गत विश्रब्ध नवोढा नायिका का उदाहरण भी माथौर जी ने दिया है । नवोढा से विश्रब्ध नवोढा का विकास क्रम भी मनोवैज्ञानिक है । नव विवाहित पत्नी का संकोच जब धीरे - धीरे कम होता जाता है तो उसका अपने पति के प्रति प्रेम भाव और रति अनुराग बढ़ता जाता है -

विश्रब्ध - नवोढा : हास योजना :

सखियाँ सुगन्धन सों सारत अंग अंग ,
  ललक अनंग अंग अंगन उलीचै है ।
कंज नैन मनन सों लोहे मंजु मन मंत्र ,
  निशि दिन देन चैन बैन सुधा सींचै है ।
नाथूराम बाल छतियान को न छूने देत ,
  रस बतियान सुन आवत नगीचै है ।
लेत मुख फेर फेर बत बत टेर टेर ,
  हँस हँस हेर हेर फेर दृग मींचै है ।

मध्या - नायिका -

विश्रब्ध नवोढा के पश्चात नायिका में एक विशेष प्रकार का परिवर्तन दिखाई पड़ने लगता है । उसमें मुग्धावस्था की लज्जा और संकोच धीरे धीरे कम होने लगते हैं उसका यौवन पूर्णत: विकसित होता है । इसे मध्या नायिका कहते हैं । मध्या में लज्जा और कामोत्कण्ठा समभाव से विद्यमान रहती है । वह प्रतिक्षण नायक के सामीप्य सुख की अभिलाषा करती रहती है । उसके वचनों में भी एक विशेष प्रकार की प्रगल्भता आ जाती है । माथौर जी द्वारा चित्रित मध्या-नायिका उपर्युक्त लक्षणों से युक्त है -

अड़ अड़ जात, लाज गड़ गड़ जात नैन ,
  तन बढ़ जात जोति जोबन उमंग की ।
भृंग भड़जात जात छोड़त न संग ,
  अंग की सुगंध छवि हरन अनंग की ।
नाथू लाल बाल रूप रंग की तरंग देख ,
  संग की सहेली कथा पूछे रस रंग की ।
सुन सकुचात मुख मोर मुसकात जात ,

नेक न बतात बात रात के प्रसंग की[1]।

प्रौढा नायिका -

प्रौढा नायिका में काम वासना अपनी चरम सीमा पर होती है। लज्जा का भाव उसके मन से सर्वथा निकल जाता है। मध्या नायिका में जिस प्रगल्भता का किंचित प्रारम्भ होता है वह प्रौढा में अपनी चरम सीमा तक आ जाता है माहोर जी ने अपने प्रौढा नायिका का वर्णन बड़ी ही चमत्कृत एवं अलं-कृत शैली में किया है -

कोकनद नैनी पिक बैनी, गज गैनी बाल,
मंजु विधु वदन विशाल दरसायो है।
पूरन प्रभा के पुंज भूषन विभूषितांग,
माधुराम अंग में अनंग रंग छायो है।
केलि भौन आज कल कौक की कलान साज,
प्रान पति संग केलि कीन्हों मन भायो है।
छूटी लट, पलट परी है दिव्य आनन पै,
मानो चन्द्रमा पै राहु चाबुक चलायो है[2]।

माहोर जी ने उत्प्रेक्षा एवं उपमाओं की तो झड़ी ही लगा दी है। माहोर जी का प्रत्येक छन्द उपमानों से परिपूर्ण है। जहाँ एक ओर उनकी नायिका का भेद की सुन्दर कल्पना में पाठक आत्म विभोर हो जाता है वहीं साथ ही साथ माहोर जी की उपमान योजना उनके नायिका वर्णन में चार चाँद लगा देती है। उपर्युक्त प्रौढा नायिका के आनन में बिखरी लट में राहु की कल्पना माहोर जी की नवीन उद्भावना है।

रति - प्रीता -

जो नायिका रति में अत्यन्त विरत रहती है, उसे रति प्रीता कहते हैं। वह नायक के बाहुपाश से एक क्षण को भी अलग होना पसन्द नहीं

1:- श्रृंगार वागीश - माहोर

2:- श्रृंगार वागीश - माहोर

करती । रति प्रीता नायिका कुक्कुटों और चिड़ियों को बंद कर लेना चाहती है , कमल को खिलने नहीं देना चाहती ताकि ये सब प्रात: काल होने की सूचना न दे सकें -

कोकनद कलिका न मुकुलित होन देहौं ,
　　　गगन कोसनों उन तारन तरोटी के ।
दुखद प्रतच्छ लखा पच्छ अच्छ करों ,
　　　गच्छ कहँ भृंग कसे कुमतिकसोटी के ।
नाथूराम गौरव्य सिन्धु रावरी कुटुम्ब बन्धु,
　　　भौन मध्य मेंदू दै कपाट ब्रज कोटी के ।
छोटी मति वारे करे बात अति खोटी अब ,
　　　चोटी चोटी काटूँगी चरैत लाल चोटी के[1] ।

दशाभेद के अनुसार माहौर जी ने रूप गर्विता और मानवती नायिका का ही वर्णन किया है ।

रूप - गर्विता :-

जो नायिका अपने रूप का गर्व करती है उसे रूप गर्विता कहते हैं -

दिपत दिवारी-सी दिसान उजियारी देह,
　　　तरुन तमारी दुति विद्युत न लेखे हैं ।
कैंह मतवारी अंग अंग सुकुमारी मंजु ,
　　　मनसिज आरी पंच रेखा जब रेखे हैं ।
नाथूराम ललित ललाम लावण्य धाम ,
　　　चन्द से दुचन्द अभिरामता विसेखे हैं ।
दर्पण दिखावत ही ओट करे दर्पण की ,
　　　दर्पण सी जात - लाल दर्पण न देखे हैं[2] ।

1:- श्रृंगार वागीश - अप्रकाशित - कवीन्द्र माहौर

2:- श्रृंगार वागीश - अप्रकाशित - कवीन्द्र माहौर

मानवती नायिका :-

पति के अपराध से अप्रसन्न होकर मान करने वाली नायिका मानवती कहलाती है[1]। मानवती नायिका के अनेक उदाहरण माहौर जी के काव्य में मिलते हैं एक उदाहरण दृष्टव्य है -

उदित अपार द्युति निन्दित करन हार,
विद्युत सी आज द्युति मन्द दरसात है।
कंज पुंज हेर कंज पुंज सकुचात रहे,
नीच कंज, कंज हेर कंज तरसात है।
अमल अनेक रंग रंग में रंगीना रंग,
अंग-अंग रंग बदरंग दरसत है।
"नाथूराम" बाल ऐसी काल कौन कारन तें,
वसुधा सुधाकर सों विष बरसात है[2]।

परकीया नायिका के अवस्थानुसार 6 भेद किये गये हैं - जिनका वर्णन पीछे किया जा चुका है। माहौर जी ने केवलवचन विदग्धा और कुलटा नायिका का ही वर्णन किया है। माहौर जी के समय में समस्या पूर्ति का प्रचलन था और एक ही समस्या पर अनेक कवि : कभी कभी एक ही नायिका की : रचनायें करते थे। माहौर जी समस्या पूर्ति में सिद्धहस्त थे। माहौर कवि मण्डली के अनेक शिष्य समस्यापूर्ति हेतु माहौर जी के पास आते थे माहौर जी उन्हीं की समस्याओं की पूर्ति कवित्त के माध्यम से करते थे। ऐसी समस्यापूर्तियों में कभी कभी एक ही नायिका को लेकर एक ही समस्या पर अनेक कवित्त लिख देते थे। उदाहरण के लिये मऊरानीपुर की पार्टी से "घूँघट" पर किसी नायिका के वर्णन का कवित्त आ जाता जिसकी अन्तिम पंक्ति होती -"घूँघट के खोलने की लाल-लसा बनी रही" तो माहौर जी उसका उत्तर "घूँघट" के ही माध्यम से देते हुये वचन विदग्धा और प्रौढा आदि नायिकाओं का वर्णन करते। यह माहौर -

---

1:- रस-रत्नाकर- हरिशंकर शर्मा - पृ०- 135

2:- शृंगार - नागीश - कवीन्द्र माहौर

जी की नायिका भेद वर्णन की मौलिक उद्भावना थी । इसी सन्दर्भ में वचन विदग्धा नायिका का वाक् चातुर्य देखा जा सकता है -

वचन-विदग्धा नायिका :-

सास सतरात ससुरात बतरात बात,
बात में बनाय बात सो सुन सदा करौ ।
रैन दिन मैन के मरोरन अचैन चैन,
चैन चरचैन चित चैन में चदा करौं ।
"नाथूराम" लाल बिन कल कल मचाये कल ,
पल में बिकल कल कैसे लदा करौं ।
पनघट आय घट देत है उठाय घट ,
घट में बसौ ह घाल घूंघट कहा करौ[1] ।

कुल्टा नायिका :-

जो बहुत से नायकों से सुरत करके भी असन्तुष्ट रहती है वह कुल्टा कहलाती है । इसी को व्यभिचारिणी भी कहते हैं कुल्टा और सामान्या :गणिका : में भेद केवल इतना है कि कुल्टा का लक्ष्य अपनी कामवासना की तृप्ति पर होता है और गणिका का धन प्राप्ति पर[2] । माहौर जी ने कुल्टा एवं गणिका दोनों ही नायिकाओं का वर्णन "भ्रमर" के माध्यम से बड़ी ही अभि-व्यंजक शैली में किया है ।

कुल्टा नायिका :-

गुंजत रहे सो मंजु मालती निकुंजन में ,
कंजन में पाली श्री प्रनाली प्रीतिपन की ।
मसक गुलाबन की गन्ध निलोक चाह ,

1:- श्रृंगार सागर - अप्रकाशित - माहौर

2:- रस - रत्नाकर - हरिशंकर शर्मा - पृ०- 152

चटक उठे थे बसा त्याग तन तन की ,

"नाथूराम" जोड़ जोड़ जोर के जुही सों नेह ,

तोरत जुही सों कहा हामी है भ्रमन की ।

अमित भये हो सत्य भ्रमर बताओ अब ,

मन की लगी है आस कौन से सुमन की[1] ।।

गणिका नायिका :-

त्याग घर बाग और बाग बन बाग बाग ,

कर अनुराग प्रेम पाग फल चाहे हैं ।

मुख अरविन्द पे मलिन्दन के झुण्ड आन ,

कीना मकरन्द पान कई अभिलाषे हैं ।

नाथूराम विशद विशाल छवि जाल डाल ,

फासे बहु लाल हाल हरे मन भाये हैं ।

कर-कर चाल हाल बाल मन पींजरा में ,

कैसे घर हाल हाल लाल पाल राखे हैं[2] ।

उपर्युक्त दोनों नायिकाओं में अनुप्रास की सुन्दर छटा दृष्टव्य है ।

उपर्युक्त नायिका भेद वर्णन के अतिरिक्त माहौर जी ने परिस्थिति के अनुसार आचार्यों द्वारा किये गये आठ भेदों में से केवल पांच के ही उदाहरण दिये हैं -

1:- खण्डिता नायिका

2:- स्वाधीन पतिका

3:- प्रवत्स्यत्पतिका

4:- प्रोषित पतिका

5:- अभिसारिका

1:- शृंगार सागीत - बलीन्द्र माहौर

2:- वही ----------------

अब क्रमश: प्रत्येक के उदाहरण माडौर जी के काव्य देखेंगे -

1:- खण्डिता :-

जो नायिका अन्य नारी संभोग जनित रति चिह्नों युक्त पति को प्रात: समय घर आया देखकर उससे कुपित होती है , उसे खण्डिता कहते हैं । नाट्यशास्त्र कार खण्डिता वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर पति के आगमन की प्रतीक्षा में बैठी हो , परन्तु पति अन्य स्त्री पर आसक्त होने के कारण उसके पास न आवे , उस समय दु:खी होने वाली नायिका खण्डिता कहलाती है । माडौर जी ने खण्डिता नायिका का चित्रांकन करते समय अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है । बुन्देलखण्ड में मुस्लिम संस्कृति में "ताजिये सिराने" की प्रथा है । रात्रि भर जागरण कर प्रात: काल ताजिये सिराये जाते हैं माडौर जी ने इस प्रथा का चित्रण अपने काव्य में करते हुये "ताजिये" के माध्यम से खण्डिता नायिका का वर्णन किया है जो कि माडौर जी की मौलिक उद्भावना है ऐसा वर्णन अन्य किसी भी कवि ने नहीं किया । कवि वर्णन कर रहा है "ताजिये" की प्रथा का इसमें से ध्वनि निकल रही है "खण्डिता नायिका " की । कैसी सुन्दर सूझ बूझ है ।

1:- खण्डिता नायिका :-

कौन सी चुराक पै हुये हो मुश्ताक ताक ,
करत अलाक [illegible] फिरत फिराये से ।
ना हुरान कौन सी लकीर के फकीर हुये ,
मरसिया पो हो लाल कलसिया गिराये से ।
लुंज पुंज होके रंज अलम उठाये हाये ,
हसन हुसैन काम कत्ल कराये से ।
[illegible] कर अखाड़े गाड़ लाये कर मैन लाल ,
आये प्रात काल लाल ताजिया सिराये से ।

1:- श्रृंगार - वागीश - माडौर

2:- स्वाधीन पतिका :-

जिसके रति गुणों से वशीभूत होकर प्रियतम उसका साथ नहीं छोड़ता वह विचित्र विलास युक्त नायिका स्वाधीनपतिका कहलाती है -

कोमल विमल मन विमला सी सखी साथ ,
कमला ज्यों लीने हाथ कमल मनाल के ।
नूपुर की ध्वनि सुनि भौरे कल हंसन के ,
चौंक चौंक परे चाह चेटुआ मराल के ।
कुचन के भार ,कच भारन सकुच नार ,
लचक लचक जात कटि नन्दलाल के ।
हरे हरे बोलत विलोकत हंसत हरे ,
हरें हरे चलत हरे हरत मन लाल के[1] ।

3:- प्रवत्स्यत्पतिका :-

जो नायिका अपने प्रियतम के परदेश जाने का समाचार सुनकर व्याकुल हो उठती है उसे प्रवत्स्यत्पतिका कहते हैं । माहौर जी द्वारा चित्रित प्रवत्स्यत्पतिका नायिका अपने पिय के वियोग में व्यथित है उसकी मानसिक दशा का वर्णन इस प्रकार किया है -

छहरे सुगंधि मंजु बिहरे निकुंज कुंज ,
भौरन के पुंज कर कंज से निवारे है ।
"नाथूराम" चंदमुखी प्रेम में पगी है खुली ,
देख सखे मुखी लेख हृदय बिचारे हैं ।
अंजन वियोग मन रंजन करन हेतु ,
अंजन जैनन सौ अंजन निकारे है ।
लिखित विचित्र चित्र मित्र के बराबर में ,
सुन्दर बनाय भौन अन्दर पधारे है[2] ।

1:- श्रृंगार - वागीश - माहौर

2:- श्रृंगार - वागीश - माहौर

4:- प्रोषित पतिका :-

जो नायिका पति के परदेश चले जाने पर विरह व्यथित हो उठ प्रोषित पतिका कहलाती है माहौर जी का यह कवित्त प्रोषित पतिका का कितना उत्कृष्ट उदाहरण है -

> बिन घन घोर घन घटा घिर आई आज ,
>
> बिना दामिनी के दुति दामिनी सुहाई री ।
>
> बिन कलकण्ठी के कलरव सुनाई देत ,
>
> बिन जुगनुन की जमात दरसाई री ।
>
> इन्द्र के धनुष बिन उदित धनुष भयो ,
>
> बिन हरियाली हरियाली महुँआयी री ।
>
> "नाथूराम" हाल हौं कहौंगी मति धीर धीर ,
>
> बिन बरसा के रितु बरसा की आइ री ।

5:- अभिसारिका :-

अभिसारिका नायिका के वर्णनों से प्राचीन शृंगार साहित्य भरा पड़ा है । प्रेम के मार्ग की कठिनाइयों का चित्रण करने का जितना अवकाश इसके वर्णन में होता है , अन्य नायिका के वर्णन में उतना नहीं होता । जो स्त्री काम के वशीभूत होकर , लज्जा त्याग कर संकेत स्थान पर नायक को बुलाती है अथवा स्वयं वहां जाती है उसे अभिसारिका कहते हैं । कठिनाइयों को पार करने से प्रेम को जो उत्कर्ष मिलता है उसका वर्णन इस नायिका को और भी आकर्षक बना देता है -

> उबट नहाय शुचि सारी सरसाय अंग ,
>
> अंग समान द्युति क अमन्द है ।
>
> चन्द लेदु चन्द मुख चन्द मुख चन्द देख ,
>
> दृगन मलिन्द नव छवि मकरन्द है ।

1:- शृंगार - वागीश - माहौर

चिकुर सम्हार गुहि बेनी सुकुमारी बाल,

नाथूराम डाल दी कुलाई ब्रज चन्द है ।

दौरे चल जात गात जोति जगमगात मानो,

आधो चन्द जात, जात पाछे सों फनिन्द है । [1]

कवीन्द्र नाथूराम माहौर ने एक ओर नायिका भेद वर्णन करके प्राचीन रीति - कालीन परिपाटी को अक्षुण्ण बनाये रखा वहीं दूसरी ओर उनकी राष्ट्रीय भावना में न्यूनता नहीं आयी बल्कि कवि ने नायिका भेद के माध्यम से भी राष्ट्रीय गीत गाये । "वीर- वधू" एवं "वीर बाला" राष्ट्रीयता की ज्वलन्त उदाहरण है । वीर वधू में श्रृंगार के साथ वीर रस का समावेश कर माहौर जी ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया । । बुन्देलखण्ड की रियासतों में माहौर जी ने देखा कि रियासती नरेश निष्क्रिय होते जा रहे हैं वे अपनी कृपाण को, दुनाली को केवल सौन्दर्य विभूषित करने के लिये रखते थे ऐसे राजाओं के अन्दर शौर्य वृत्ति जगाने के लिए माहौर जी ने कृपाण को लक्ष्य बना कर नायिका के रूप में अलंकृत शैली में वर्णन करते हुये जो कवित्त लिखे वे माहौर जी की मौलिक उद्भावना को प्रदर्शित करते हैं । अमूर्त भावों में मूर्त की कल्पना कर माहौर जी ने कृपाण का वर्णन कुलटा, दूती, गणिका आदि नायिकाओं के रूप में किया जो निसन्देह हिन्दी साहित्य को माहौर जी की अप्रतिम देन है । ऐसी कल्पना अन्य किसी कवि ने नहीं की । नायिका भेद के माध्यम से राष्ट्रीयता की वृत्ति जाग्रत करने का श्रेय माहौर जी को है ।

कुलटा नायिका के रूप में कृपाण का वर्णन :-

म्यान से निकल कर आती धुपी जाती जब,

नाथूराम चपल दिखाती गति चाल की ।

रंग बरसाती, अंग सुषमा सुधारती दिव्य,

उपमा लजाती द्युति विद्युत के जाल की ।

1:- श्रृंगार - वागीश - माहौर

जंग जोड़ने की है तरंग प्रकटाती सदा,

प्रतिभा बढ़ाती रण-मण्डल विशाल की ।

कण्ठ प्रति कण्ठ से बिहार कर जाती वेग,

कुलटा समान तीव्र तेग छत्रसाल की ।

इसी प्रकार दूती और अभिसारिकाके रूप में वर्णन करने के पश्चात माहौर जी ने कृपाण के ही शब्दों में "स्वकीया" नायिका के रूप में उसे चित्रित किया -

राणा औ शिवाजी छत्रधारी छत्रसाल ने भी,

रण में नचाकर बना दी नृत्य कारिणी ।

"नाथूराम" नीति कुलटा की सिखला दी शुद्ध,

की भी शुद्ध मध्य हरकण्ठ की विहारिणी ।

सैन्य मुगलों को दिलवा दी मृत्यु नायिका से,

बतला दी क्षित्रिय दली धर्म धुरि धारिणी ।

वीर वंशजों ने सब भेद बद नामी अब,

रखी है बनाकर "स्वकीया" सुख सारिणी ।

इन कवित्तों में अक्षिय राजाओं के प्रति व्यंग स्पष्ट है ।

अन्त में हम कह सकते हैं कि माहौर जी ने परम्परागत नायिका भेद को लेकर भी अपने कवित्तों मे नायिकाओं के विविध रूपों को सजाया सँवारा है तथा इस कार्य में उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली है । नायिकाओं के स्वाभाविक सौन्दर्य, मुद्रा तथा क्रिया व्यापारों को जितनी सफलता के साथ माहौर जी ने चित्रित किया है उतना कोई कवि नहीं कर पाया । नायिकाओं के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करना, अस्त्र में मूर्ति की कल्पना और बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक चेतना का दिग्दर्शन नायिका के माध्यम से करना, माहौर जी की अपनी मौलिक उद्भावना है ।

---------------- ♦ ----------------

ङ:- [illegible]

(अ)- वीर-भावना -

वीरता एक लौकिक एवं शिव व्यापक भावना है जिसमें कर्म सौन्दर्य का आकर्षण निहित रहने के कारण वीरत्व का संचार होता है । अभाव में कर्म का जो उत्साह दिखाई देता है, उसके चमत्कार तथा कर्म सौन्दर्य का सहृदय पर पूर्ण प्रभाव पड़ता है और उसमें उत्साह के स्फुरण से वीर रस की सृष्टि होती है । जिन काव्यों में वीर रस की प्रधानता को अपनाकर देवता राजा या शूरवीर पूर्व पुरुषों के पराक्रम पूर्ण कर्म सौन्दर्य का वर्णन रहता है वे वीर काव्यों की कोटि में आते हैं । पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने वीर काव्य का सम्बन्ध व्यावहारिक जगत से बतलाया है[1] । वीर रस के परिपाक के लिये असाधारण कर्म का होना अपेक्षित है जिसमें वीर का उत्साह भी अभिव्यक्त होता है । वीर कर्म ही वीर रस की उत्पत्ति में प्रधान कारण होता है । वीर के वीर कर्मों का ओजपूर्ण शैली में वीर काव्यों में वर्णन किया जाता है ।

जब राजनीतिक परिस्थितिवश स्वदेश प्रेम की भावना प्रबल हो जाती है, उस समय राष्ट्रीय साहित्य का सर्वाधिक सृजन होता है, और कवि के अन्तस में वीरभावना जागृत होती है । वह अपने काव्य के माध्यम से अतीत का गौरवगान करता हुआ, देश के नवयुवकों में वीर भावना का संचार करता है । भारत के प्राचीन प्रथमश्रेष्ठ वीर भावना युक्त काव्यों की श्रेणी में महाभारत और रामायण को कहा जा सकता है जो आर्य संस्कृति और भारतीय गौरव के सजीव तथा प्राण स्फुरित करने वाले समन्वित अमर वीर रसात्मक महाकाव्य है । संस्कृत साहित्य में पराक्रमी वीर राजाओं को काव्य का विषय बनाकर अनेक कवियों ने वीर काव्यों का निर्माण किया । डा० हरिवंश कोछड़ लिखते हैं -

"संस्कृत साहित्य में यद्यपि अनेक काव्यों का प्रणयन रामायण

1- भूषण, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ० 32

महाभारत , पुराण आदि के किसी कथानक या उपाख्यान केआधार पर ही हुआ यद्यपि ऐसे भी अनेक काव्य हैं जिनमें कवि ने अपने आश्रय दाता की विजय और वीरता का वर्णन किया है[1] । राजा के शौर्य पराक्रम तथा विजय का वर्णन करने वाले काव्यों में विक्रमांक देव चरित , कुमार पाल चरित तथा पृथ्वी राज चरित विजय आदिप्रसिद्ध वीर काव्य हैं । प्राकृत और अपभ्रंश में भी वीर काव्य परम्परा का विकास हुआ । धर्म प्रवर्तक महापुरुषों के चरित्र परअनेक काव्यों के निर्माण के साथ साथ शृंगार और वीर की भी स्वतंत्र रचनायें की गयीं जिनमें उत्साह का जीता जागता चित्र देखने को मिलता है । अपभ्रंश काव्यों मेंयुद्ध और वीरता का वर्णन किया गया है । वीर के साथ शृंगार और शान्त का भी वर्णन है ।

अपभ्रंश के अन्तिम समय से ही हिन्दी का आदि काल का प्रारम्भ समझना चाहिये [2]हिन्दी साहित्यमें वीरकाव्यों की परम्परा का प्रचलन अपभ्रंश साहित्य से ही हुआ । हिन्दी कविताओं में वीर भावना का प्रारम्भिक स्वरूप वीरगाथा काल की कृतियाँ पृथ्वीराज रासो , हम्मीर रासो आदि में मिल जाता है।रासो का प्रबन्ध परम्परा के आधार पर ही शुक्ल जी ने आदिकाल को वीरगाथा काल का नाम प्रदान किया है [3]वस्तुतः हिन्दी वीरकाव्यों की परम्परा का उद्गम स्थल अपभ्रंश साहित्य ही है । डा० नामवर सिंह का कथन है कि चारण कवियों की वीर गाथायें पर वर्ती अपभ्रंश की परम्परानुसार ही थीं । इस तरह बहुत आसानी से यह कहा जा सकता है कि वीर गाथा की वह प्राण धारा है जिसका विकासअपभ्रंश से हिन्दी में हुआ[4] । स्पष्ट है जिस समय हमारे हिन्दी साहित्य का अभ्युदय होता है वह वीरता और गौरव का समय था ।इसीलिये चारणों ने -

---

1:- अपभ्रंश साहित्य - हरिवंश कोछड़ पृष्ठ 36

2:- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -पृ० 3

3:- ---------------वही-----------पृ० 4

4:- हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग: डा० नामवर सिंह - पृ० 263

अपने आश्रय दाताओं की वीरता और पराक्रम का ओज पूर्ण वाणी में वर्णन किया है । चारण कवियों की मूलप्रवृत्ति प्रशस्ति की ओर रही है इसी कारण तत्कालीन वीर काव्यों को चारण काव्य की संज्ञा भी दी जाती है । चारण कवि "जिसका खाना उसका गाना " के रंग में रंगे थे इस कारण इनकी भावना में संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता का अतिशय मेल हो गया था । इनकी वीर भावना युक्त कविता के सागर में श्रृंगार की तरंगों का संचार देखने को मिलता है । श्रृंगार का पुट "भोग विलास" के कारण आ गया था । चारण कवि वाणी के धनी होने के साथ - साथ तलवार के भी धनी थे उनका हृदय तत्कालीन वातावरण के अनुकूल वीर रस की अनुभूति से परिपूर्ण था इसीलिये इनके वीर काव्यों में वीरता के प्रत्यक्ष चित्र है । उत्कट वीर भावना की अभिव्यक्ति तथा श्रृंगारिकता तथा प्रेम भावना के चित्रण के कारण चारणों का कविता को डा० शम्भूनाथ सिंह ने सचमुच ही वीरगाथा कही जाने योग्य बतलाया है[2] ।

भक्ति काल के कवियों में पूर्ण कुशलता के साथ वीर भावना का निरूपण करने वाले गोस्वामी तुलसी दास थे । उनके काव्य के नायक शक्ति , शील और सौन्दर्य के अवतार थे , जो बल , पौरुष , वीरता , शौर्य तथा उत्साह के साक्षात रूप थे । तुलसी ने "निसिचर हीन करौं महि भुज उठाय-प्रन कीन्ह" कह कर रामायण में वीरता के स्वर को प्रथम और सप्तम सोपान की अवान्तर कथाओं तथा पूरे काव्य में बिखरे हुये स्तोत्रों , उपदेशों और कथाओं तथा - विवेचन को हटाकर देखा जाय तो मानस पूर्णतया वीर-रस का महाकाव्य प्रतीत होता है[3] । राम का सम्पूर्ण चरित्र धीरे - धीरे युद्ध काण्ड की ओर बढ़ता जा रहा है । डा० रामरतन भटनागर के अनु-सार -"यदि रामचरित मानस से भक्ति को हटा दिया जाय तो वह वीर-

---

1:- वीर रस का शास्त्रीय विवेचन- श्री कृष्ण - पृ- 191

2:- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास - डा० शम्भु नाथ सिंह-पृ०- 213

3:- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास- डा० शम्भूनाथ सिंह- पृ०-554

रस प्रधान महाकाव्य अथवा वीर काव्य की श्रेणी में आता है[1]। रीतिकाल में कवि भूषण ने अपना वीरता का स्वर अबाध रखा है । कहा जाता है कि रीतिकालीन कवियों का भाव क्षेत्र संकुचित था और उस काल में स्फूर्ति तथा उत्साह निःशेष हो चुका था[2]। इस काल में एक ओर तो रीति ग्रन्थों का निर्माण होता रहा और दूसरी ओर यह कवि अपने आश्रय दाताओं के युद्ध एवं वीरता पूर्ण कार्य कलापों का गुणगान करते रहे । इस काल में कुछ ऐसे कवि थे जो आदिकालीन चारण धारा के समान कोरी प्रशंसात्मक कविता ही किया करते थे पर कुछ ऐसे प्रतिभा सम्पन्न कवि थे जो अपने आश्रय दाताओं के वास्तविक गुणों का ही बखान करते थे[3]। उस काल में जितनी वीर रस की कवितायें होनी चाहिये थीं उतनी नहीं हुयीं उसका कारण था कवियों का राज्याश्रित होना और अधिकांश आश्रय दाताओं में स्थापित सत्ता विरोध करने के साहस का अभाव होना । फिर भी अनेक कवियों ने वीर - भावना से सम्पृक्त काव्य सृजन किया । कुछ ने तत्कालीन नायकों को अपनी कविता का विषय बनाया :भूषण , लाल, पद्माकर : और कुछ ने :चन्द्र - शेखर , छत्रसिंह कायस्थ : प्राचीन योद्धाओं को ।

आधुनिक काल नव जागरण का अरूणोदय है । पाश्चात्य प्रभाव के कारण नवीन चेतना प्राप्त हुयी । वास्तव में भारतेन्दु काल राष्ट्रीय गति शील धारा का युग है । भारतेन्दु के समय में एक विदेशी शासन के स्थापित होने से विरुद्ध राष्ट्रीय भावना की जागति से कला और साहित्य में फिर एक उन्मेष आया और राष्ट्रीय साहित्य का दूसरा उत्थान शुरू हुआ । उन्नीसवीं शती , जिसको राष्ट्र जागरण कहा गया , जिसे साहित्य में सदैव स्मरण किया जायेगा । डा० श्री कृष्णलाल का कहना है -" "भारत में आधुनिक युग जैसी राष्ट्र की भावना कभी भी थी नहीं -----

---

तुलसी साहित्य की भूमिका - डा० रामरतन भटनागर - पृ०- 98

2:- रीतिकाल की भूमिका तथा देव और उनकी कविता जीवन दर्शन - डा० नगेन्द्र - पृ०- 17

3:- हिन्दी वीर काव्य - डा० टीकम सिंह तोमर - पृ०- 9

हिन्दी में राष्ट्रीय कविताओं के जन्म दाता हरिश्चन्द्र हैं[1]। भारतेन्दु एक ओर तो समाज सुधार की भावना से प्रेरित थे तो दूसरी ओर विदेशी सत्ता के विरोधी थे।

द्विवेदी युग हमारे देश के इतिहास में गहरी सामाजिक एवं राजनैतिक उथल - पुथल का युग है[2]। इसी काल खण्ड में प्रथम यूरोपीय महासमर हुआ। भारतीय राष्ट्र स्वाधीनता की दौड़ में आगे की ओर अग्रसर हो रहा था। द्विवेदी युग की प्रमुख भावना देश - प्रेम की भावना है। श्रीधर पाठक, सत्यनारायण कवि रत्न एवं राष्ट्रकवि मैथिली शरण ने राष्ट्रीय रचनायें लिखकर वीर भाव जाग्रत किया। जिस राष्ट्रीय भावना का उत्थान "जग जाये तेरी नोक से सोये हुये हैं भाव जो" भारत भारती में हुआ उसका पोषण त्रिशूल, एक भारतीय आत्मा, श्याम नारायण पाण्डेय, बाल - कृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि की रचनाओं में हुआ। देश - प्रेम की भावना को जगाने के हेतु द्विवेदी - युग के कवियों ने प्राचीन वीरों की गाथाओं का उत्साह वर्द्धक चित्रण किया था। इस वीररस वर्णन की दो पद्धतियां थी। कहीं तो कवि देश वासियोंको धिक्कार तथा उपालम्भ के माध्यम सेकर्म की ओर प्रेरित करने का प्रयत्न करता था और कहीं सीधा उपदेश देकर या प्राचीन वीरों के वीर कर्मों की स्मृति दिलाकर उन्हें देश के प्रति अपने कर्त्तव्य को पहिचानने के लिये प्रेरित करता था। यह भावना भारतेन्दु युग में पहले पहल उभरी थी। द्विवेदी युग में गुप्त जी आदि कवियों ने इस भावना को उत्कट देश प्रेम में परिणत कर दिया। आगे चल कर "जयद्रथ वध" में गुप्त जी ने कर्त्तव्य - परायण अभिमन्यु के माध्यम से देश के युवकों को जगाने का जो प्रयत्न किया था वह भी इसी भावना का विकास था। देश की दयनीय दशा के चित्रण के माध्यम से वीररस को उभारने का प्रयत्न होने के कारण कभी तो इस क्षेत्र में देश की तथा देश - वासियों की पतित अवस्था का चित्रण किया जाता था और कभी उद्धार -

---

1:- आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास-डा० श्री कृष्णलाल - पृ०- 82

2:- इतिहास विशेषांक- अक्टूबर 1952 सम्पादक शिवदान सिंह चौहान

करने के लिये भगवान से प्रार्थना की जाती थी "काल चक्र के फेर से जिस नयी परिस्थिति के बीच हम पड़ जाते हैं, उसका सामना करने योग्य अपनी बुद्धि को बनाये बिना जैसे काम नहीं चल सकता वैसे ही उसकी ओर अपनी रागात्मिका वृत्ति को उन्मुख किये बिना हमारा जीवन फीका नीरस और अशक्त रहता है"[1] । काल चक्र के फेर से अंग्रेजों की गुलामी की जिस परिस्थिति में हम पड़ गये थे उससे छुटकारा पाने योग्य अपने आप को बनाना भारतीयों के सामने सबसे बड़ा काम था इसके लिये राष्ट्रीय एकता की भावना स्वातन्त्र्य - संघर्ष के लिये दृढ़ संकल्प तथा उसमें शौर्य तथा बलिदान की भावना आदि की ओर देश की रागात्मिका वृत्ति को उन्मुखकरना हमारे राष्ट्रीय साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति हो गयी थी । कवीन्द्र नाथूराम माहौर का साहित्य सर्जन दासता के युग में ही प्रारम्भ हुआथा । तत्कालीन क्रान्तिकारी परिस्थितियों के प्रभाव से माहौर जी भी अछूते नहीं रह सके । 1914 के विश्व युद्ध के समय जब भारतीय क्रान्ति के पुनः विस्फोट का समय आया और सेना के पुनः सशस्त्र क्रान्त्यात्मक विद्रोह के प्रयास भारतीय क्रान्ति - पथिकों ने किये, तो उस समय झाँसी का प्रतिनिधित्व करने वाले थे झाँसी के श्री युत परमानन्द "[2] । 1917 में परमानन्द जी को काले पानी की सजा हुयी । 1929 में माहौर जी के भान्जे श्री भगवान दास माहौर व उनके साथी श्री सदाशिव राव को भुसावल बम काण्ड में गिरफ्तार किया गया । श्री भगवान दास माहौर को आजन्म काले पानी की सजा हुयी । 1931 को इलाहाबाद में चन्द्र शेखर आजाद की शहादत से क्रान्ति की भावना और अधिक भड़क उठी । 1938 में सदाशिव राव और भगवान दास माहौर छूटकर आये तो झाँसी के नव युवक इनकी ओर मार्ग -प्रदर्शन के लिये देखने लगे क्योंकि ये लोग आजाद के विश्वास पात्र साथी थे । जब हमारे राष्ट्रीय -

---

1:- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ० - 584- छटा संस्करण

2:- माहौर अभि० ग्रन्थ - प्रथम खण्ड - "क्रान्ति कारी झाँसी " - श्री देवेन्द्र शिवानी - पृ०- 10

संघर्ष ने 1942 के "करो या मरो" का रूप धारण कर लिया और नेता जी सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज बनी तब हमारा स्वातंत्र्य संघर्ष अपने चरम विकास पर पहुंचा । इस वातावरण में हमारे साहित्यकार जन मानस को स्वातंत्र्य आन्दोलन की ओर उन्मुख करने के लिये प्रेरणा प्रद वीर - भावना युक्त गीत लिखने लगे । शहीदों के देश - प्रेम , त्याग और बलिदान के गीत गाने लगे । इसी समय 1857 और उसमें रानी लक्ष्मी बाई के नेतृत्व को प्रकाशित करने वाला स्वर्गीय डा० वृन्दावन लाल वर्मा का उपन्यास "झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई" प्रणीत और प्रकाशित हुआ । माहौर जी की वाणी भी इस समय वीर शहीदों का स्तवगान करती हुये देश के नव - युवकों के अन्दर वीर भाव भरने लगी । माहौर जी के काव्य में रीति कालीन एवं भक्ति कालीन वीर भावना का संगम है । वे राज्याश्रित नहीं थे परन्तु रजवाड़ों में यदा - कदा जाया करते थे उस समय वहां के राजाओं का शौर्य वृत्ति को जाग्रत करने का जो प्रयास छन्द बद्ध हुआ वह रीति कालीन वीर भावना का प्रतीक है । भक्ति काल में वीर भावना की कमी नहीं थी । माहौर जी ने भी भक्ति कालीन वीर भावना का चित्रण अपने रामलीला के लिये प्रणीत छन्दों में किया है । रीति कालीन कलेवर में "वीर वधू" का रचना कर श्रृंगार के माध्यम से वीर भावना की अभिव्यक्ति , माहौर जी की अपनी मौलिकता है । ऐसा प्रतीत होता है कि 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम की नेत्री रानी लक्ष्मी बाई को लक्षित कर इस ग्रन्थ की रचना कवि ने की । ग्रन्थ के माध्यम से प्रारम्भ में कवि ने कहा है -

"यौ बुन्देल खण्ड की अनुपम ,
वीर - वधू वाकी है ।
मूरति लखत वीर - रस की जनु ,
वाकी शुभ झाँकी है "[1] ।

माहौर जी के सम - सामयिक किसी भी साहित्यकार ने नारी के इस स्वरूप का चित्रण नहीं किया । राष्ट्र कवि श्री मैथिली शरण केवल "अबलाजीवन तेरी -

---

1:- वीर -वधू - कवीन्द्र माहौर

यही कहानी " आँचल में है दूध और आँखों में पानी " कह कर नारियों की दयनीय दशा का ही वर्णन करते रहे परन्तु उसी काल में अवतीर्ण होकर माहौर जी कह रहे थे -

"अंग अंग में झलक रही, रण रंग वीर रस रीती ।
वीर - वधू के सिर मढ़ ने जग वीर ज्योति ज्यों जीती[1] ।।

माहौर जी के काव्य में वीर - भावना का प्रस्फुटन द्विवेदी युगीन प्रवृत्यानुसार दो रूपों में हुआ - कहीं तो उन्होंने देशी रियासतों के राजाओं को उनकी कायर मनोवृत्ति के लिये धिक्कारा और उपालम्भ के माध्यम से - स्वातंत्र्य - संग्राम की ओर प्रेरित किया । कहीं उन्होंने प्राचीन वीरों के वीर कर्मों की स्मृति दिलाकर देश के प्रति उनकी कर्त्तव्य परायणता की ओर उन्मुख किया ।

राम बिहारी बोस को बाल्यावस्था में ही अँग्रेजों ने कोड़े लग - वाये थे । इस वृत्ति का प्रभाव भी माहौर जी पर पड़ा । उन्होंने लव - कुश तथा राम का संग्राम - वर्णन भक्ति कालीन कलेवर में करके बालकों के अद्भुत शौर्य तथा पराक्रम की झाँकी प्रस्तुत की । तत्कालीन परिस्थिति में लवकुश की वीरता के माध्यम से माहौर जी ने छोटे - छोटे बालकों के अन्दर भी शौर्य - वृत्ति जगाने का प्रयास किया -

"बालक न जान, जान बालक अजान जान,
पालक प्रमान सत्य वचन उचारो मैं ।
लाड़ में धरो है मातु बाल जीत तेरो नाम ,
सो तो आज भली भाँति मनन निहारो मैं ।
नाथूराम हाथ के निहार ले रण स्थल में ,
बालकन रण्यालन को खेल विस्तारों मैं ।
तो अकेले तेरो दल सकल संहारो शीघ्र ,
खेल के खिलौना सम तोर फोर डारो मैं[2] ।।

1:- वीर - वधू - कवीन्द्र माहौर

2:- लवकुश - राम संवाद - अप्रकाशित छन्द - कवीन्द्र माहौर

विशाल साम्राज्यवादी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जो जागरूकता धीमे धीमे जन जन की वाणी से उद्‌भूत होने लगी थी , और जिसका प्रधान मुक्तक काव्य की प्रणाली अपनाते हुये भी वियोगी हरि ने "वीर-सतसई " प्रस्तुत करके किया था उसी के अनुरूप माहौर जी ने "वीर-वधू" तथा "वीर-बाला" लिखकर नारी वर्ग में वीरत्व का भाव जगाकर किया[1]। आपने प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम की नेत्री प्रातः स्मरणीया झाँसी की महारानी लक्ष्मी बाई की वीरता का वर्णन करते हुये "वीरक बाला" में यह कामना प्रकट की -"वाच वीरबाला वीर बाला बन जायेगी"। इसमें "अहिंसा के उपद" [illegible] ही अँग्रेजी आधिपत्य के विरुद्ध रानी के स्वातंत्र्य संग्राम की आराधना हुयी है । कवि ने भूषण के ढंग से वीर - रस की विशेष उद्भावना करते हुये शत्रु की नारियों की दुर्दशा का वर्णन भी किया है । रानी की वीरता का बखान कवि ने इस प्रकार किया कि जिसे पढ़ कर देश के हजारों नवयुवकों ने स्वतंत्रता संग्राम में अपने को अर्पित कर दिया -

> भालन ते कठिन कराल करवालन सें ,
>
> काटे वे कपाल काल सम किलकारी दे ।
>
> रोप प्रण प्रबल प्रबेरा रण ओप ओप ,
>
> तोप तोप तोपन की चोट फटकारी दे ।
>
> "नाथूराम" बाई साथ वीरता प्रचारी जब ,
>
> मारी बेशुमार मार देश की गुहारी दे ।
>
> अंग अंगरेजन के नैनन ने डारे भेद ,
>
> भेदे काढ़ [illegible] कोजन कटारी दे[2]।"

:वीर बाला छन्द 7 :

कवि की [illegible] दुकूल - पचीसी भी वीर - मनोवृत्ति की परिचायक है । इस खण्ड काव्य में करुणा की भूमिका में वीर रस की मार्मिक अभिव्यंजना की गई है -

---

1:- मा० अभि० ग्रन्थ - त्रिविक्रम - प्रो० सुरेन्द्र नाथ वर्मा - पृ०- 4

2:- वीर - बाला - छन्द 7 - कवीन्द्र माहौर

"उमन दुसासन कौं द्रुपद सुता के केस ,

काल ते कराल व्याल छोना वर वीर है ।

भीष्म द्रोण कर्ण शल्य पै द्रुत से महारथी ,

वैरिन विनाश कारी आंसू चित नीर है ।

दुष्ट दुर्योधन से योधन निधन काज ,

दून लाज-ध्यान के निवासी समझोर है ।

चमकीले, चीर के दु एक एक धागे मानो,

कुरुवंश बींधवे को गाण्डीव के तीर है"[1] ।

:द्रौपदी- दुकूल-पचीसी :

भारतीय स्वातन्त्र्य समर की दीर्घा अवधि के अन्तराल कवि की लेखिनी से जनमानस को देश के प्रति उन्मुख करने के लिये वीरता के गीत निसृत होते रहे । कभी "राष्ट्रीय लहर" के रूप में तो कभी "प्रस्ताव गुणावली" के रूप में कवि की सशक्त वीर - रस पूर्ण वाणी जन - हृदय में राष्ट्र के प्रति प्रेम भावना जाग्रत करती रही । जहाँ एक ओर कवि "राष्ट्रीय लहर" के माध्यम से राम राज्य की कल्पना को साकार करना चाहता है ;

गाना सत्य शान्ति का है तरल तराना सदा ,

भारत की वीरता का दृश्य दिखलाना है ,

थाना द्वेष फूट का उठाना है सदा के लिये,

दासता पिशाचिनी को दफन कराना है ।

शिवा प्रताप महाराणा का निभाना ध्येय ,

मसजिद जाना मन्दिर का बनाना है ।

फूले हुये फूलों को चढ़ाना बलि वेदी पर ,

घर घर लाना राम-राज्य का जमाना है[2] ।

: राष्ट्रीय लहर :

तो दूसरी ओर कवि का अन्तस अँग्रेजों को देश से निकालने के लिये व्यग्र है ।

1:- द्रौपदी दुकूल पचीसी - कवीन्द्र माहौर

2:- राष्ट्रीय - लहर - नाथूराम माहौर

वह देश के नव युवकों को शिवाजी एवं छत्रसाल के समान वीर भाव से सम्पृक्त देखना चाहता है । नवयुवक शिवाजी एवं छत्रसाल बन कर गोरो को अल्पावधि में ही देश से निकाल देंगे , ऐसे वीर - भाव युक्त कवि की वाणी कह उठती है -

बाजी जीत लेवेंगे स्वराजी ते शिवाजी बन ,
छत्रसाल होके शत्रुओं के उर सालेंगे ।
गुरु गोविन्द बल ग्रहण करें गे जान ,
प्रबल प्रतापी हो प्रताप प्रण पालेंगे ।
"नाथूराम" बाह साज लक्ष्मी के लक्ष पर ,
बन रण दक्ष जो तलक लक्ष डालेंगे ।
गोरे हिन्द वालों को झुकाते हिन्द वाले अब ,
पाके हिन्द वाले हिन्द हद्द से निकालेंगे[1] ।

: स्फुट - छन्द :

इसी प्रकार "वीर छत्रसाल गुणावली" लिख कर छत्रसाल की वीरता का वर्णन माहौरजी ने ओज पूर्ण शैली में किया । भूषण के समान छत्रसाल को युद्धवीर एवं दान वीर दोनों ही रूपों एक साथ चित्रित किया -
युद्ध वीर छत्रसाल -

म्यान ते कृपान भर रन दरम्यान आन,
दीप्तिवान वैरिन के केहन कढ़ी फिरे ।
उड़ी फिर अंबल विशाल भाल पै ,
काल सी कराल ज्योति जाल उगली फिरे ।
नाथूराम छत्रसाल कीर्ति करवाल कूल ,
वीरता बहुत्व महि मण्डल मढ़ी फिरे ।
जड़ी फिर रत्न समर रत्न गरभ के अंक ,

1:- स्फुट - नाथूराम माहौर

अजहुँ अवांक सेल सीस पे चढ़ी फिरे[1] ।।

: वीर छत्रसाल गुणावली :

दानवीर छत्रसाल का वर्णन माहोर जी ने इस प्रकार किया है -

घाली चमू चतुरंगनी क्लेश की ,

देश की दैन्य दशा द्रुत घाली ।

ढाली सनेह के यंत्र स्वतन्त्र ,

लौ परतन्त्रता होत दिवाली ।

साली हिये दल दारिद के ,

भर गोली दया कर माहि सम्हाली ।

खाली परी नहीं खाली भई ,

जब खाली छता निज दान दुनाली[2] ।

वीर- पूर्वजों के वीरता - पूर्ण कर्मों की स्मृति दिलाकर कवि ने जन -हृदय को वीर - भावना से भर कर राष्ट्रीय भावना से परित किया । उन्हें प्रेरणा दी कि जिस प्रकार हमारे पूर्वज वीर क्षत्रियों ने वीरता दिखला कर विजय प्राप्त की उसी प्रकार भारतीयों के लिये भी वीरता श्रेय है ।

1930 - 31 के आन्दोलन के युग में अमर शहीद सरदार भगतसिंह और चन्द्र शेखर आजाद आदि सशस्त्र क्रान्ति कारी वीरों का भी स्तवगान कवि ने मुक्त कण्ठ से किया । भारत के सपूत और क्रान्ति के सन्देश प्रचारक सरदार भगत सिंह को 1931 में जब ब्रिटिश सरकार ने फांसी के तख्ते पर लटका दिया तब माहोर जी की लेखिनी दुखित होकर इस वीर का वर्णन इस प्रकार करने लगी -

भारत के भाग में था दाग परतन्त्रता का ,

फांसी यह वीर पुन अपने से धो गया

आन,बान, वाला मतवाला था स्वतंत्रता का,

1:- वीर छत्रसाल गुणावली- कवीन्द्र माहोर -अप्रकाशित

2:- ,, वही - ,, ,,

रत्न गर्भा का था अमूल्य रत्न खो गया

"नाथूराम" खो गया अखण्ड स्वाभिमान बीज ,

मातृभूमि गोद में सदा के लिये सो गया ।

सच्चा सिंहनी का सच्चा देशभक्त भगत सिंह ,

क्रान्ति का दिवाकर सा हाय अस्त हो गया ।

: स्फुट :

जहाँ एक ओर माहौर जी वीरों के कर्मों की स्मृति दिलाकर नवयुवकों के अन्दर पौरुषत्व का भाव जागृत करना चाहते थे वहीं दूसरी ओर देशी रियासतों के राजाओं की शौर्य - वृत्ति को उन्होंने विभिन्न उपालम्भों के माध्यम से जागृत करने का प्रयास किया । इन राजाओं के अन्दर वीर भावना जाग्रत कर स्वातंत्र्य संघर्ष की ओर इन्हें प्रेरित किया । दतियाछाना नरेश श्री छत्र सिंह के हृदय में देश प्रेम एवं वीर भाव जाग्रत करने का श्रेय माहौर जी को ही था । इसी प्रकार पन्ना नरेश के समक्ष "कृपाण" समस्या पर माहौर जी ने जो छन्द सुनाया उसे सुनकर राजा साहब बड़े प्रभावित हुये और पुरस्कार स्वरूप उन्हें छत्रसाल ग्रन्थ और स्वर्ण पदक प्रदान किया । छन्द को सुनकर राजा का दर्प जाग्रत हुआ और उन्होंने कायरता की वृत्ति का परित्याग कर अपने वीर भाव का प्रस्फुटन करते हुये शत्रुओं को देश से निकालने के लिये प्रणबद्ध हुये ।

माहौर जी के द्वारा वर्णित वीर भावना में वैशिष्ट्य यह है कि उन्होंने श्रृंगार के अन्दर वीरता के भाव का समावेश किया जिसका अनुपम उदाहरण उनकी "वीर-वधू" है । "वीर-वधू" का अंग - प्रत्यंग श्रृंगार से सुसज्जित होते हुये भी वीरत्व से परिवेष्ठित है । इसी प्रकार माहौर जी ने कुल्टा , दूती , गणिका आदि नायिका भेदों के रूपों में छत्रसाल की कृपाण का जो वर्णन किया वह वीर भावना से पूर्ण है । उन दिनों समस्या पूर्तियों के माध्यम से भी कवि जन - मानस के अन्दर वीर - भावना का समावेश कर रहे थे । ऐसे ही एक राज दरबार में "तसवीर" समस्या की पूर्ति करते हुये प्राचीन वीर पूर्वजों की तसवीरों के पास खूंटी पर टंगी तलवार को लक्ष्य कर जो कवित्त माहौर जी ने सुनाया वह राजा के अन्दर की सोयी -

हुयी शौर्य वृत्ति को जगाने के लिये पर्याप्त था । इस कवित्त को सुनकर राजा देश को स्वतंत्र कराने के लिये कटिबद्ध हो गये, युवकों के हृदय में वीर भावना का संचार हुआ -

"जिनके करों में रण खेल खेलती थी सदा ,
काट काट मेलती थी वार वार वाके वीर ।
खेलती थी वार कर वार ठेलती थी शत्रु ,
सुयश सकेलती थी छाँट छाँट रण धीर ।
पड़ी हुयी म्यान बीच सिसक रही है आज ,
देखता न कोई कर वार को हृदय पीर ।
सिरस तसवीरों की रही है तसवीर देख ,
टगी हुयी खूंटी पर बनी हुयी तसवीर[1] ।।

इस प्रकार कवीन्द्र माधोर ने समय समय पर वीर भावना को जाग्रत करने वाले अनेक मुक्तक एवं लघु काव्य - ग्रन्थ लिखे जिनसे देश के नवयुवकों को काफी प्रोत्साहन मिला । उनकी वीर भावना के अन्दर विशिष्टता यह है कि कहीं वीर का समावेश शृंगार में है । तो कहीं करुण में । साहित्य में शृंगार आदि कोमल रसों में वीर के समावेश का औचित्य नहीं है लेकिन माधोर जी ने "वीर - वधू" में शृंगार के अन्दर वीर एवं "द्रौपदी टुकार पचीसी" में करुण वीर भाव का समावेश कर अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया ।

(ख) भक्ति - भावना :-

भारतीय धर्म साधना में परमानन्द की उपलब्धि के लिये ज्ञान , कर्म और भक्ति इन तीनों मार्गों का निर्देश किया गया है , यद्यपि ज्ञान मार्ग का स्थान भी उच्च माना गया है क्यों कि वह मोक्ष की प्राप्ति तक पहुंचा देता है तथापि वह अत्यन्त क्लिष्ट कष्ट एवं दुर्गम है[2] । कर्म मार्ग भी सुकर नहीं रहा-

---

1:- स्फुट - कवीन्द्र माधोर

2:- ज्ञान पंथ कृपान की धारा । परत खगेस होइ नहि बारा - तुलसी

जा सकता क्यों कि प्रथम तो निष्काम कर्म अति कठिन है , दूसरे सकाम कर्म बन्धन के कारण होते हैं । अतः सरलता तथा सर्व सुलभता की दृष्टि से भक्ति मार्ग ही सर्वोच्च एवं सर्व श्रेष्ठ है ।

भक्ति शब्द "भज" सेवायाम धातु से "स्त्रियां क्तिन " इस पाणिनीय सूत्र के अनुसार प्रत्यय लगाने पर बना है । इसका वास्तविक अर्थ है सेवा करना । चित्त का द्रवीभूत होकर गोविन्दाकार बन जाना ही भक्ति कहा गया है । भक्ति के स्वरूप का वर्णन करते हुये महामुनि शाण्डिल्य कहते हैं - "सा परानुरक्तिरीश्वरे" ईश्वर के प्रति अनन्य अनुराग ही भक्ति है[1] । देवर्षि नारद ने भी अपने भक्ति सूत्र में भक्ति की व्याख्या करते हुये कहा है - "सात्वस्मिन परम प्रेम रूपा" । अमृत स्वरूपा च ;[2] । भगवान के प्रति एक निष्ठ प्रेम को ही भक्ति कहते हैं । नारद भक्ति सूत्र में ईश्वरीय प्रेम की अत्यन्त महत्ता मानी गयी है ।

भक्ति और ज्ञान के विषय में विवेचन करते हुये आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं - "भक्ति का आरम्भ ज्ञान पूर्वक ही होता है । जब हम उपास्य के स्वरूप को , उसके गुणों को थोड़ा बहुत जान लेते हैं तब उसके प्रति श्रद्धा और प्रेम का स्फुरण होता है । प्रेमी प्रिय के उतने में मग्न होकर भी उसको और जानने के लिये उत्कण्ठित होता है पूर्ण दर्शन की यह उत्कण्ठा श्रेष्ठ भक्त का लक्षण है[3] । भक्ति रस की उत्पत्ति शुक्ल जी मनुष्य की दो स्वाभाविक वृत्तियों के आधार पर बतलाते हैं जिनमें प्रथम है कल्पना या भावना जिससे विज्ञान का भीतरी साक्षात्कार होता है और दूसरी है भाव या रागात्मिका वृत्ति जिससे आनन्दानुभूति होती है[4] । श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति के प्रभाव की चर्चा करते हुये कहा है कि भक्ति सब प्रकार के -

---

1:- शाण्डिल्य-भक्ति - सूत्र - गीता प्रेस गोरखपुर

2:- नारद भक्ति सूत्र संख्या - 2,3

3:- सूरदास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ०- 30

4:- " - वही " - पृ०- 32 - 33

दुखों का नाश करने वाली कल्याण कारी मोक्ष को हेय समझने वाली अत्यन्त दुर्लभ घनीभूत आनन्द प्रदायनी तथा कृष्ण को आकर्षित करने वाली है ।[1]

वस्तुतः मानव जीवन को सबसे अधिक प्रभावित करने वाली भक्ति ही है क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध मनुष्य के भाव जगत से है जो मानव के अस्तित्व एवं चैतन्य का केन्द्र बिन्दु कहा जा सकता है । भक्ति एक ऐसा व्यापक धर्म है जिसका पालन मनुष्य मात्र के लिये सम्भव है । आनन्दावस्था तक पहुँचने के लिये भक्ति का मार्ग सर्व प्रथम सुगम सुलभ एवं सरल कहा जाता है भक्ति को सर्वोपरि प्रधान रस मानते हुये सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने कहा है - " साहित्यकारों द्वारा शृंगार आदि रसों को तो ब्रह्मा का सहोदर मात्र ही माना गया है किन्तु भक्ति रस और ब्रह्मानन्द को तो संज्ञा :शब्द: : नाम : मात्र भी है - वस्तुतः एक ही है ।[2] श्री मद भागवत में अनेक प्रसंगों में भक्ति रसास्वाद को ब्रह्मानन्द से भी बढ़कर बताया गया है[3] । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भक्ति के द्वारा मानव लोक और परलोक को ही सुलभ नहीं बनाता अपितु व्यवहारिक एवं प्रत्यक्ष जीवन में भी भक्ति मनुष्य के कंटकाकीर्ण मार्ग को प्रशस्त सरस एवं सरलतम बना देती है । भक्ति भावना के आधार पर मानव जीवन आनन्दमय बन जाता है । मानव के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में आत्म सुख एवं आनन्द पूर्ण स्थिति को उत्पन्न करने वाली सन्तोष, शान्ति, उदारता, धैर्य, अहंकार शून्यता आदि गुणों का सन्निवेश भक्तिरस के द्वारा ही सम्भव हो सकता है । जब इस प्रकार के गुण मानव में उत्पन्न होने लगते हैं तब उसकी बुद्धि सतोगुणी हो जाती है और परमार्थ की ओर उन्मुख होने लगती है । फलतः ईर्ष्या एवं द्वन्द्व की प्रवृत्ति शान्त होने लगती है । भक्ति के प्रबल मनोवेग

1:- कल्याण : भक्ति अंक : वर्ष 32 पृ. 261

2:- संस्कृत साहित्य का इतिहास : द्वितीयभाग: सेठ कन्हैयालाल पोद्दार पृ. [illegible]3

3:- श्री मद् भागवत 4 / 9 / 1[illegible]

से आप्लावित होकर ही अनेक महापुरुष समय समय पर अधिक से अधिक मानव समाज को आनन्दित एवं प्रभावित करते रहे हैं । महात्मा कबीर, सूर, तुलसी आदि भक्त इस तथ्य के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं । माहोर जी की भक्ति भावना भी भक्ति कालीन परम्परा पर आधारित है इनकी भक्ति में कबीर , सूर, तुलसी आदि संत और भक्त कवियों के विचार तत्व मिले हुये हैं । इनमें यदि एक ओर कबीर के समान प्रेमाकुलता है तो दूसरी ओर तुलसी और सूर की अनन्यता तन्मयता और सगुणोपासना के प्रति निष्ठा है । इनकी भक्ति भावना उनके द्वारा लिखित विभिन्न धार्मिक पुस्तकों , में परिलक्षित होती है । शान्ति सागर , सूर - सुधानिधि , उद्धव - गोपी संवाद , द्रोपदी दुकूल एवं अनुमान आदि माहोर जी की भक्ति परक रचनायें हैं । माहोर जी परम वैष्णव भक्त थे । वैष्णव भावना और उसके संस्कारों की पृष्ठ भूमि में विकसित उनकी आराधनात्मक प्रकृति नवयुग की आधुनिकता से संपृक्त है और जड़ अथवा रूढ़ि - बद्ध न होकर उदार बुद्धि से समन्वित है । माहोर जी एकान्त न होकर सद्भावमय एवं लोक - हित - साधक व्यक्तित्व से परिपूर्ण थे । संसार में जो कुछ होता है उसे ईश्वर की ही लीला मानते हुये अपने जीवन के उतार - चढ़ाव और संघर्ष मय युग की घटनाओं के बीच उन्होंने कभी भी अपनी आस्था नहीं खोई । उनकी यह आस्था , आस्तिकता और उदारता की अभिव्यक्ति उनकी कृतियों में स्थल - स्थल पर हुयी है ।

1:- माहोरजी की भक्ति विषयक विशेषतायें :-

कवीन्द्र नाथूराम माहोर जी के पिता श्री रामलाल माहोर परम[1] वैष्णव भक्त थे । नित्य प्रति मंदिर जाना एवं रामायण आदि धार्मिक पुस्तकों का पाठ उनके नैत्यिक कर्म थे । माहोर जी के जीवन पर उनके पिता के धार्मिक कृत्यों की छाप पड़ी जिसके परिणाम स्वरूप वे वैष्णव भक्ति की ओर अग्रसर हुये । उनकी भक्ति में वे सभी विशेषतायें पायी जाती हैं जो एक वैष्णव -

---

1:- नाथूराम माहोर के पिता नित्य श्री रघुनाथ जी के मंदिर दर्शन को - जाया करते थे ।

भक्त में होती है -

1:- समन्वयवाद :-

वैष्णव होकर भी वे शैव के विरोधी नहीं और राम- भक्त होकर कृष्ण की भी आराधना की । यही नहीं उन्होंने तो राम और कृष्ण में कोई भेद ही नहीं माना उनका कहना है कि दोनों ही ब्रह्म के अवतार हैं । कभी वे राम के रूप में अवतार लेकर जग - हित करते हैं तो कभी कृष्ण के रूप में मनोहारी लीलाओं का प्रदर्शन करते हैं । ओरछा में राम जी के द्वार पर कृष्ण को पुकारना इस बात का प्रतीक है कि माधौर जी ने राम और कृष्ण में विभेद नहीं किया -

> द्वार द्वार जाओ नहीं, राखो एक द्वार ।
>
> दया द्वार का द्वारके, दीजिये खोल किवार ।।

इस प्रकार माधौर जी को विश्वास है कि हिन्दुओं को प्रेरणा द्वारा शक्ति देने वाले अवतार राम और कृष्ण दोनों ही हैं । तुलसी दास जी कहते हैं कि "तुलसी मस्तक तब नवै धनुष बाण लेहु हाथ" किन्तु माधौर जी तुलसी के समान हठी नहीं हैं कृष्णावतार के प्रति उनकी श्रद्धा है यही कारण है कि जहां एक ओर वे राम में तल्लीन हो जाते हैं तो वहीं दूसरी ओर कृष्ण को भी नहीं भूलते हैं । राम कृष्ण दोनों ही सारे पापों को नाश करने वाले हैं । सांसारिक क्लेश को नष्ट कर मन में राम की वन्दना करते हुये माधौर जी कहते हैं -

> कठिन कराल कोटि काटन कलेश-जाल,
>
> तरुण-सुतेज सिय तिमिर तमाम है ।
>
> पतित पुनीत पंगु-पाद प्रिय पाल-पाल
>
> नैन कुंज - भाल भूषित ललाम है ।
>
> माथुर सुकवि जग जीवन को जीवन है ,
>
> पीवन पियूष-सम रस अभिराम है ।
>
> करहु प्रणाम नाम नामन में दिव्य नाम ,

नामन मे नामी नाम राम- नाम है[1]।

श्री राम की भक्ति करने से -

कटि जात कोटिन अकृति के अकाट्य पुंज,
उटि जात लक्ष तौ कुलक्ष-लक्ष लट-जात ।।
घट जात तरल त्रिताप के समस्त पाप,
पाप-चोर चोरि कै सकुच मोर हट जात ।।
सटजात सर्वदा सकाम कामना के काम,
"नाथूराम" धाम धाम आनंद सों पट जात ।।
मिट जात भव मोद-राशि उटि जात,
रसना रसीली जो पै सीताराम रट जात[2] ।।

राम महात्म्य के समान ही कृष्ण महिमा का बखान भी कवीन्द्र माहोर ने अपने काव्य में किया है । कृष्ण की भक्ति करने से मुक्ति स्वमेव पास आ जाती है -

"भरो कृष्ण को प्रेम-उर धरो कृष्ण को ध्यान ।
परो कृष्ण के पद-कमल करो कृष्ण-गुन गान ।।
गुन गान करो, जग-वन्दन के, रहे चित्त तेरे गुन गायन में,
कंसि के चित्त-वासना जायना में, हंसी को धनी लोग लुगायन में,
कवि नाथूर ने निरखो परखो, ये प्रमान पुरान रमायन में,
परि हो यदि जो जो प्रभु पायन में, परी मुक्ति रहे तुव पायन में[3] ।

माहोर जी की धारणा है कि भगवान समय समय पर अवतार लेते हैं कभी कृष्ण के रूप में तो कभी राम के रूप में । प्रत्येक युग में दुष्टों का विनाश एवं धर्म की स्थापना हेतु ही भगवान जन्म लेते हैं - गीता में भी कृष्णावतार का यही कारण बतलाया गया है -

---

1:- शक्ति सागर - पृ० - 5
कवीन्द्र माहोर
2:- शक्ति सागर - पृ० - 5
3:- सूर - सुधा-निधि - पृ० - 32-33

परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम,

धर्म संस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे ।।

माहौर जी के भगवान भी यही कहते हैं -

विधि विधान के नियम युत, करता हूं व्यौहार ।

भूमि-भार के शमन हित, लेता हूं अवतार ।

भक्ति भावनाओं में ही रमता सदैव रहूं ,

शत्रु मित्र पिता पुत्र स्वामि सखा भ्राता में ।।

मानता न और कुछ नैतिक आधार बात ,

मानता पुनीत एक प्रेम ही का नाता में ।

\+ + + +

नाथूराम नामों को सुसाधक बनाने हेतु ,

समयानुकूल अवतार धर आता मैं [1] ।।

2:- भक्ति मोक्ष का साधन :-

भक्ति - भावना का उदय तो माहौर जी के अन्दर बचपन से ही हो गया था उसका विकास युवा अवस्था से बृद्धा अवस्था तक उत्तरोत्तर होता गया प्रारम्भ में माहौर जी रामलीला में स्वयं अभिनय किया करते थे कभी शंकर की समाधि को विचलित करने का प्रयत्न करते हुये कामदेव, सीता के स्वयंवर में रावण से विवाद करते हुये बाणासुर, दशरथ, जनक आदि का पार्ट आप सफलता से करते थे [2] । इसका परिणाम यह हुआ कि भक्ति भावना उनके जीवन में कूट - कूट कर भर गयी । भारतीय संत कवियों की भांति माहौर जी ने भी भक्ति को जीवन काल में सर्वोच्च स्थान दिया । गोस्वामी जी ने जिस तरह भगवद् - भक्ति को संसार के सम्पूर्ण कष्टों को दूर करने वाली , समस्त अनुपम सुखों की मूल तथा संसृति की मूल समस्त अविद्या एवं माया का नाश करने वाली बतलाया है -

---

1:- दीन का दावा :तीसरा-भाग : पृ0- 29-30 - माहौर

2:- मा0 अभि0 ग्रन्थ - पृ0 - 19

भगति करत बिनु जतन प्रयासा ।

संसृति मूल अविद्या नासा ।।[1]

सूर ने भगवत भक्ति को माया और मोह का विनाश करने वाली तथा सभी प्रकार के भ्रमों को दूर करने वाली कहा है -

हरि माया सब जग संतावै ।

ताको माया मोह न व्यापै[2]।

मैथिली शरण गुप्त ने भक्ति को भवसागर से पार करने वाली स्वीकार करते हुये कहा है -

मैं तो निज-भव-सिन्धु कभी का तर चुका ।

रामचरण में आत्म - समर्पण कर चुका[3] ।।

शंकर जी ने भी अन्य भक्त कवियों के समान भक्ति को भवसागर मे पार उतारने वाली , संसार बन्धनों से मुक्ति दिलाने वाली बताया है । जो व्यक्ति भगवान की भक्ति में लीन रहते हैं वे सांसारिक कर्म के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं -

भूलो है भ्रमो है मोह माया कृत बन्धन में ,

छूट इन बन्धन में न हाथ कछू आवेगो ।

धरम सम्हार श्रुति सार को विचार देख ,

नाहिं तो अनेक जन्म धरा-धूरि धावेगो ।

"नाथूराम" बार बार वारि क्यों मथे है मूढ

वारि के मथे से घृत रंचहू न पावेगो ।

जावेगो अवार भव-सागर के पार जो पै ,

परम पुनीत सीताराम- गुन गावेगो[4] ।।

1:- रामचरित मानस - उत्तर काण्ड - 119

2:- सूर सागर - 13/3

3:- साकेत - सर्ग - 5 पृ0- 14

4:- शान्ति सागर - पृ0- 34 - कवीन्द्र नाथूराम शंकर

2:- ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता :-

गोस्वामी तुलसी दास ने भक्ति को ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठ बतलाते हुये कैवल्य पद की प्राप्ति का साधन भक्ति को कहा है । ज्ञान का मार्ग कृपाण की धार के समान अगम्य है, उसकी साधना कठिन है, जब कि भक्ति का मार्ग सरल है , इसके द्वारा भक्त को कैवल्य पद सरलता से प्राप्त हो जाता है --

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद ।
संत पुरान निगम आगम बद ।।
राम भजन सोइ मुकुति गुसाई ।
अनिच्छित आवइ बरिआई[1] ।।

मैथली शरण गुप्त ने ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की महत्ता स्थापित करते हुये कहा है --

भावुक जन से ही महत् कार्य होते हैं ।
ज्ञानी संसार असार मान रोते हैं[2] ।।

माधौर जी ने भी उद्धव - गोपी संवाद में गोपियों के माध्यम से ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध की है -

ध्यान में समानों घनश्याम को सगुन रूप ,
गुन हीन निर्गुन को लावें कैसे ध्यान में ।
खाली नहीं ठौर यहाँ जोग धारि धरैंगी कहाँ ,
लेके जाय ऊधो बहु ऊधो सुनसान में ।
माधुर सुकवि यह नीरस तुम्हारो ज्ञान ,
आवै ना रसीले मेरे मन के मिलान में ।

1:- उत्तर काण्ड - 119 - राम चरित मानस

2:- साकेत - सर्ग- 8 पृ0- 260- मैथिली शरण गुप्त

जानत जहान अब आप हूँ विचार देखो ,

कैसे तरवारें दो समेगी एक म्यान में[1] ।।

4:- इष्टदेव के महत्व का गुणगान :-

वैष्णव भक्ति में अपने इष्ट देव की लीलाओं एवं उनके महत्व पूर्ण कार्यों के वर्णन करने का अत्यधिक महत्व माना गया है । प्राय: सभी सगुणोपासक भक्त अपने अपने भगवान की लीलाओं का श्रवण बड़े मनोयोग के साथ करते हैं । अपने इष्टदेव की भक्त वत्सलता, असीम शक्ति सम्पन्नता, [illegible] , शरणागत की रक्षा , अकारण ही भक्तों का हित करने का स्वभाव आदि का वर्णन बड़ी ही श्रद्धा - भक्ति के साथ किया करते हैं । श्रद्धा की अखण्डता के साथ अनन्य प्रेम का जब समवायिक सम्बन्ध हो जाता है , तब भक्ति अपने पूर्ण तेज के साथ उदित होती है[2] । भक्ति का उदय होने पर पहले मन इष्ट की रूपाकृति से आकृष्ट होता है और तब वह उसकी अपरिमेय शक्ति का दर्शन करता है । बाह्य सौन्दर्य से आकृष्ट मन भगवान के आन्तरिक सौन्दर्य के भी दर्शन करने लगता है । भगवान का बाह्य सौन्दर्य यदि भक्तों को आकृष्ट करता है तो उनका आन्तरिक सौन्दर्य उन्हें आश्चर्य चकित कर देता है । इस अपरिमित शक्ति और अनन्त सौन्दर्य के साथ ही भक्त को अपने भगवान की उस विराट भक्त - वत्सलता के भी दर्शन होते हैं , जो पूर्णत: द्रवीभूत कर लेती है[3] । फल स्वरूप भक्त के हृदय में दैन्य उत्पन्न होता है । इस दैन्य भाव का मूल प्रयोजन उस अवस्था का निर्माण करना होता है जिसे देख स्वामी स्वयमेव द्रवीभूत हो जाय । अत एव भक्त बार बार - अपने को महान पापी और दीन हीन सिद्ध करता हुआ अपने उद्धार की प्रार्थना करता है । वह प्रभु के सम्मुख स्पष्ट रूप से अपने सभी दोषों को खोल कर रख देता है और निश्छल भाव से फिर उनसे अनुग्रह करने की याचना -

---

1:- उद्धव - गोपी - संवाद - नाथूराम माहौर

2:- रत्नाकर की साहित्य साधना - दान बहादुर पाठक - पृ०- 193

3:- रत्नाकर - उनकी प्रतिभा और कला- डा० विश्वम्भर नाथभट्ट-पृ०-139

करता है । महात्मा सूरदास ने इसी कारण अपने इष्ट देव का गुणगान करते हुये उनकी अनन्त करुणा , भक्त वत्सलता , दीनों पर प्रेम आदि का वर्णन किया है -

प्रभु को देखो एक सुभाई ।

अति-गम्भीर-उदार-हरि,जान सिरोमनि राई ।

\+ + +

भक्त विरह कातर करुनामय,डोलत पाछे लागे ।

सूरदास ऐसे स्वामी को देहि पीठ सो अभागे[1] ।।

भक्त अपने को विषय वासनाओं में लिप्त , महापापी बतलाता हुआ दैन्य भाव से अपने उद्धार की प्रार्थना करता हुआ कहता है -

मो सम कौन कुटिलखल कामी ।

\+ + +

पापी परम अधम, अपराधी, सब पतितन में नामी ।

सूरदास प्रभु अधम उधारन सुनिये श्री पति स्वामी[2] ।।

तुलसी ने भी भगवान के महत्व का उल्लेख करते हुये उनकी भक्त वत्सलता , तथा सभी प्रकार की आपदाओं को हरने वाला पतित पावन, पापियों के उद्धारक आदि कहा है -

रघुपति विपति दवन ।

परम कृपालु प्रनत प्रतिपालक पतित पावन ,

कूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन ।

सुमिरत नाम राम पठए सब अपने भवन[3] ।।

माधोर जी ने भी इसी तरह "क्रिश्चियन शरणागति" के माध्यम से भक्त को विषय वासनाओं में लिप्त, महापापी एवं अनाथ बतलाते हुये दैन्य भाव से-

---

1:- सूर - सागर

सूर - सागर

3:- विनय पत्रिका - 213 पद

अपने को श्री राम को समर्पित करते हुये बतलाया है -

जानो विषय वासना में जनम सिरानों सबै ,
कर कर पातिक न आज लौं सिरानों हौं ।
ठानों हौं अधर्म शुभ कर्म कौन जानों मर्म ,
आनों नहीं शर्म जग-भरम में भुलानों हौं ।।
"नाथूराम" पातकी पै आनिये कृपा की कोर ।
मानिये जु आपनों न मानिये बिरानों हौं ।
नाथ मो अनाथ मांथ राखिये कृपा को हाथ ,
अब रघुनाथ हाथ आपके बिकानों हौं[1] ।

3:- नाम स्मरण की महिमा :-

वैष्णव भक्ति में भगवान से भी बढ़ कर भगवान का नाम माना जाता है क्योंकि भगवान तो अवतार लेकर थोड़े ही पापियों काउद्धार करते हैं लेकिन उनका नाम अनेक पापियों का उद्धारक है । इसी कारण वैष्णव भक्त अपने इष्टदेव की अपेक्षा उसके नाम को अधिक महान मानता है । भक्त को पूर्ण विश्वास है कि नाम के स्मरण से जप, तप, तीर्थ आदि का फल अनायास ही मिल जाता है इससे समस्त विघ्नों का विनाश हो जाता है । सूर एवं तुलसी दोनों ने ही नाम-स्मरण को महत्व दिया है । सूरदास कहते हैं कि गोपाल का नाम लेने मात्र से वह सुख प्राप्त होता है जो कि जप, तप, एवं तीर्थ करने पर भी नहीं प्राप्त होता है और मानव को फिर लौटकर इस संसार में नहीं आना पड़ता है -

जो सुख होत गोपाल हिं गाये ।
सो सुख होत न जप तप कीन्हे कोटिक तीरथ न्हाये ।
+ + + +
सूरदास हरि को सुमिरन करि बहुरि न भव जल आवे[2] ।

1:- शान्ति सागर - पृ0 27-28 - कवीन्द्र माथोर

2:- सूरसागर - 2/6

गोस्वामी तुलसी दास ने तो नाम स्मरण को इतना अधिक महत्व दिया कि वे कलियुग में केवल नाम - स्मरण को ही सर्वस्व समझते हैं -

राम नाम जपु जिय सदा सानुराग, रे ।
कलि न विराग जोग जाग तप त्याग रे ।[1]

सूर एवं तुलसी की ही भांति कवीन्द्र माहौर ने भी भगवान के नाम स्मरण को सर्वाधिक महत्व दिया है । ईश्वर का नाम लेने से मानव का संसार सागर से उद्धार हो जाता है । समस्त जीवन का लाभ नाम स्मरण से ही है । यह कलियुग के पापों के हरण करने में सक्षम है । व्यक्ति के सुयश रूपी पताका को संसार में फहराता है -

राम गुन-गन गाय मानव ।
सिन्धु भव तरजाय मानव ।।

पद्म-पद-सेवा किये जा-लाभ जीवन का लिये जा ।
भक्ति भावामृत पिये जा-अमर बन युग युग जिये जा ।
पुण्य-प्रद प्रतिभा पसारे-परम प्रिय पद पाय मानव ।
।। राम गुन गन गाय मानव ।
शान्ति-रस शुचि पान कर ले, भाव सद्धिव बीच भरले ।
कलुष कलि के सकल हर ले-धारना यह अटल धरले ।
सुकवि"माहूर" विश्व-विजयी सुयश-ध्वज फहराय मानव
राम गुन गन गाय मानव ।।[2]

6:- सर्वस्व अर्पण का भाव :-

वैष्णव भक्ति में अपने भगवान के प्रति सर्वस्व अर्पण करने का बड़ा महत्व माना गया है । इसीलिये भक्त भगवान की शरण में जाकर अपना - सर्वस्व उनके चरणों में समर्पित कर देता है और कभी अपने प्रभु से विमुख हो-

---

1:- विनय पत्रिका - गोस्वामी तुलसी दास - पद - 67

2:- शान्ति सागर - कवीन्द्र माहौर - पृ०- 3-4

कर जीवन व्यतीत नहीं करता । सर्वस्व अर्पण के उपरान्त भक्त केवल भगवान चर्चा सुनना ही पसन्द करता, उसके नेत्र भगवान की रूप - माधुरी में ही लिप्त रहना चाहते हैं, मन अन्यत्र न जाकर भगवान के चरणारविन्दों में ही लीन हो जाता है । इस सर्वस्व अर्पण की भावना को प्रायः सभी वैष्णव कवियों ने अधिक महत्व शाली बताया है । इसीलिये सूरदास कहते हैं -

सरन आए की प्रभु लाज धरियो

+ + +

सूर अवगुन भर्यो आह द्वारे पर्यो तकै गोपाल अब सरन तेरी[1] ।

इसी प्रकार महात्मा तुलसी दास अपने जानकी जीवन पर अपना सर्वस्व न्यौछावर किये - राम राम-शिव के चरणों में ही पड़ा रहना अच्छा समझते हैं -

जानकी जीवन की बलि जैहौं ।

चित कहै, राम-सीय-पद परिहरि अब नकहुँ चलि जैहौ[2] ।

कवीन्द्र नाथोर की भक्ति में भी सर्वस्व अर्पण का भाव दृष्टिगोचर होता है । "विभीषण - शरणागति" में नाथोर जी ने विभीषण के माध्यम से एक भक्त की कामना प्रदर्शित की है । भक्त राम को सर्वस्व अर्पित कर चुका है वह अपने पापों को दूर करने की प्रार्थना करता हुआ राम से कहता है कि आप मुझे अपना लें मेरा जीवन आपको समर्पित है -

प्रबल सुजस सुन आयं हूँ, प्रभु भजन भव भीर ।
त्राहि त्राहि आरति हरन शरण सुखद रघुबीर ।
जानौं ना मरम भक्ति भावना उपासना को ।
करम कुवासना तुलान सुलानौं हौ ।
मुनि के सुजस बाद पदुम समुहानौं नाथ ।
देन नजरानौं लायौं पाप को खजानौं हौं ।
नाथूराम स्वीकृत को दीजिये प्रमाण पत्र ,
पतित पुरानन में पतित प्रमानौं हौं ।।

1:- सूर - विनय के पद

2:- विनय पत्रिका - 104 पद

हाथ गहि लीजिये पसार के कृपा को हाथ,

अब रघुनाथ हाथ आपके बिकानो हौं[1] ।।

7:- उदारता का भाव :-

वैष्णव भक्त का उदार हृदय उनकी विशेष उपलब्धि है । यहाँ सभी समान हैं ऊँच नीच की भावना को तनिक भी महत्व नहीं दिया जाता है उनके लिये तो "हरि का भजै सो हरि का होई" सिद्धान्त मान्य है । इसी कारण रैदास, नाभादास, नामदेव , कबीर, रसखान आदि उच्च - कोटि के भक्तों में गिने जाते हैं । शूद्रों के प्रति प्रेम की भावना का होना वैष्णव भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता है । सूर, तुलसी एवं मैथिली शरण गुप्त सभी ने इस भावना निरूपण किया है । "साकेत" में गुप्त जी ने इस तथ्य को इंगित करते हुये बतलाया कि भक्त शिरोमणि गुहराज के मिलने पर भगवान राम उसे नीच एवं शूद्र जानते हुये भी अपने अंक में भर लेते हैं -

> फिर गुह ने हंस उनके बैठा कर नत किया ।
>
> प्रभु ने तत्क्षण उसे अंक में भर लिया[2] ।।

साकेत और रामचरित मानस में कितने ही स्थलों पर गुप्त जी एवं तुलसी दास ने नीच एवं शूद्रों के प्रति भी प्रेम भाव व्यक्त किया है ।

माहौर जी के अन्तस में प्रारम्भ से ही शूद्र एवं हरिजनों के प्रति अगाध प्रेम था उनकी दुकान पर अनेक हरिजन काव्याभ्यासी भी आते थे और काव्य - पाठ करते थे । इसका परिणाम यह हुआ कि माहौर जी न भक्ति के माध्यम से भी शूद्रों एवं दलित वर्ग के प्रति प्रेम प्रकट किया है । शबरी के प्रति राम का प्रेम देखिये -

> मुनि मण्डली मों मिलिके गवने ,
>
> सबरी के कुआ धम में प्रभु आये ।
>
> अवलोके प्रभु - पद पद्म ~~को~~ गहे

1:- शान्ति सागर - "विभीषण-शरणागति"-पृ0- 26- नाथूराम माहौर

2:- साकेत - सर्ग 5 पृ0 - 138 - मैथिली शरण गुप्त

तन-मन, त्रितापित नैन जुड़ाये ।

हिय भाव पयोनिधि सों उमड़े,

अनुराग के बूंद अनंद सुहाये ।

प्रभुपूजन हेतु प्रसून मनो ,

दृग प्रेम की वाटिका सों चुन लाये[1] ।

इसी प्रकार निषाद, व्याधि, भालु कपि, गीध आदि सभी के प्रति भगवान की उदार भावना है -

"विश्व में सुदामा सम दीन ही सनेही मेरी ,
देरी बिन विषाद कृपा की कोर पाते हैं ।
शबरी निषाद व्याधि भालु कपि गीध आदि ,
ऐसे प्रेमी पातकी पवित्र बन जाते हैं ।
पतित प्रवीण दिव्य दीनों का गुणानुवाद ,
औचित आनन्द काल तुर संत गाते हैं[2] ।

8:- भक्ति और मुक्ति का समन्वय :-

वैष्णव भक्ति में यह नियम नहीं है कि व्यक्ति घर - गृहस्थी का परित्याग कर वनों में जाकर भगवान की भक्ति करे । यहां तो गृहस्थ धर्म का पालन करते हुये ही भक्ति करने की सलाह दी है । इसी लिये महात्मा कबीर ने उन जंगल में निवास करने वाले वैरागी गृहस्थियों की निन्दा करते हुये उन व्यक्तियों को ही सच्चा भक्त बतलाया है जो गृहस्थ में रहते हुये भी भगवान की भक्ति में लीन रहते हैं । इस तरह वैष्णव भक्ति में भोग और भक्ति का पूर्ण समन्वय किया गया है । साकेत में लक्ष्मण ने भी गुहराज निषाद को यही समझाया है कि राम के लिये तुम्हें श्रृंगवेर पुर के राज्य को छोड़ने की आवश्यकता नहीं है वे तो तुम्हारी प्रीति मात्र से ही तृप्त हैं ... इस भगवत्प्रेम से परिपूर्ण भक्ति का मुक्ति से समन्वय करते हुये अपना गृहस्थ-

---

1:- अनुराग - कवीन्द्र माहोर- 1943 में प्रकाशित - पृ० - 18

2:- दीन का दावा - कवीन्द्र माहोर - पृ० - 8 :चौथा भाग :

जीवन व्यतीत करो ।

"संगवेरपुर राज्य करो तुम नीति से,
आर्य तृप्त है मात्र तुम्हारी प्रीति से ।।
+ + + +
सखे, समन्वय करो भक्ति का मुक्ति से ।[1]

लक्ष्मण के इस कथन में कवि स्वयं अपने हृदय की बात करता हुआ दिखाई देता है अतएव कवि का भी यही मत है कि गृहस्थ धर्म का पालन करते हुये जो व्यक्ति भक्ति पूरण जीवन व्यतीत करते हैं वे ही सच्चे भक्त हैं ।

कवीन्द्र माहौर ने भी इसी तथ्य का उद्घाटन किया है कि ईश्वर भक्ति से व्यक्ति को मुक्ति स्वतः मिल सकती है । मुक्ति पाने के लिये जप, तप, नियम, संयम, तीर्थ आदि वाह्याडम्बर व्यर्थ हैं । भक्त संसार में रह-कर समस्त सुखों का उपभोग करताहुआ भी भक्ति कर सकता है । मुक्ति एवं भक्ति विरोधी नहीं हैं । व्यक्ति यदि संसार त्याग कर जप, तप आदि विभिन्न साधनाओं द्वारा मुक्ति पावे , तो दुर्गम है लेकिन राम - भजन द्वारा वही मुक्ति रूप से बिना प्रयास के प्राप्त हो जाती है गोस्वामी तुलसी दास ने भी रामचरित मानस मेंइसी तथ्य का प्रतिपादन करते हुये कहा है -

राम-भजन सोइ मुकुति गोसाईं ।
अनइच्छित आवइ बरिआईं ।।[2]

माहौर जी तो राम के नाम को मुक्ति और भक्ति दोनों से सर्वोपरि बत -लाते हुये कहते हैं -

दिव्य भुक्ति-मुक्ति-अधिकार जात वार वार ,
एक बार सीताराम नामको उचार जात ।।[3]

1:- साकेत - सर्ग 5 पृ०- 141-42

2:- रामचरित मानस - उत्तर काण्ड

3:- शान्ति सागर - पृ०- 7/4

भक्ति के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति एक भक्त को कैसे हो सकती इसका सुन्दर उदाहरण माहौर जी ने एक नायिका , नायिका का रूपक देते हुये बड़े ही सजीव ढ़ंग से दिया है -

नायक यदि चाहत अमल नवल नायिका मुक्ति ।
प्रेम पत्रिका के सहित भेज दूतिका भक्ति ।।
संयम नियम तप, तीर्थ व्रत योग यज्ञ ।
कर कलिकाल माहि ताप तन ताओगे ।।
ये हैं पुरुष रूप काज कैसे है करोगे सिद्ध ।
श्रम में परोगे श्रम-शूल उपजाओगे ।।
"नाथूराम" नारी विधि नारी के मिलायबे की ,
नारी जानती है ये तो मुक्ति चित लाओगे ।।
प्रेम उपहार भिजवाओ भक्ति दूती हाथ ।।
मुक्ति नायिका को सुधा-स्वाद तब पाओगे[1] ।।

जो व्यक्ति केवल राम का नाम ही लेता रहे वह भुक्ति एवं मुक्ति दोनों का पात्र हो सकता है । सांसारिक उपभोग करते हुये भी मुक्ति उसके लिये सहज है --

निशिदिन रसना सों रटे, सीता पति कौ नाम ।
भुक्ति सकल करतल रहे, मुक्ति पलोटे पाम[2] ।।

कवीन्द्र माहौर आधुनिक काल के जन प्रतिनिधि कवि थे अत: युगीन परि-स्थितियों से अछूते रह सकना उनके लिये असम्भव था । जिस समय माहौर जी काव्य - सृजन कर रहे थे , उस समय भारत को विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा था । पराधीन भारत को परतन्त्रता की बेड़ी से मुक्त कराने के अथक प्रयास देश वासियों द्वारा , किये जा रहे थे । देश के वीर सपूत स्वतंत्र भारत के स्वप्न को साकार करने के लिये कृत -

---

1:- शान्ति सागर - पृ० - 38/5

2:- शान्ति सागर - पृ० - 39/8

संकल्प थे । जहाँ एक ओर चन्द्र शेखर आजाद , भगत सिंह आदि वीर क्रान्ति में संलग्न थे तो दूसरी ओर कवि मानस वीरों को प्रोत्साहित करने हेतु वीर एवं राष्ट्रीय काव्य सर्जन में रत था । स्वयं माहौर जी इसके अपवाद न थे । माहौर जी के भान्जे डा० भगवान दास माहौर स्वयं क्रान्तिकारी थे आजाद एवं भगतसिंह के साथ स्वातन्त्र्य संघर्ष की ओर अग्रसर थे । अतः माहौर जी स्वतः क्रान्तिकारी प्रवृत्ति की ओर उन्मुख हुये । जहाँ एक ओर उनके काव्य में भक्ति कालीन भक्ति भावना एवं रीतिकालीन शिल्प का समन्वय पाया जाता है वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय विचारों से उनका अन्तस ओत प्रोत था । परिस्थितियों ने भक्त माहौर जी को क्रान्ति - कारी बना दिया । उनकी लेखिनी अब भक्ति के माध्यम से राष्ट्रीय गीतों का सृजन करने लगी । माहौर जी की भक्ति - भावना की मौलिकता यही है कि उसमें जहाँ एक ओर भक्त हृदय की मोक्ष के लिये पुकार है वहीं दूसरी ओर कवि व्यक्ति गत मोक्ष की कामना के स्थान पर सारे देश के मोक्ष की कामना करने लगता है । भक्त ईश्वर को गीता के वचन की स्मृति दिलाता हुआ कहता है कि प्रभु का अवतार दुष्टों के दमन एवं संतों की रक्षार्थ हुआ है । पृथ्वी के दुःख का हरण करने को ईश्वर का अवतार हुआ । अब समय आ गया है ईश्वर को गीता का वचन निभाना है । अवतार लेकर दुष्टों का विनाश कर भारत की दीनता एवं पराधीनता को हटाना है -

"भारत में आना अब चाहिये अवश्य तुम्हें ,
परम पुनीत वाक्य गीता के निभाना है ।
नाथूराम दीनों का अधीनों का चुकाना कर्ज ,
दीनता सहित पराधीनता हटाना है ।
परम उदारता दयालुता दिखाना फेर ,
विश्व वन्दनीय यहाँ की रति जमाना है ।
सोये हुये शताब्दियाँ बीत हुयीं ,
नाथ उठ जागो, जागने का ये जमाना है ।।[1]

1:- दीन का दावा- प्रथम भाग - पृ0- 29- नाथूराम माहौर

इस प्रकार हम देखते हैं कि माहौर जी की भक्ति की सबसे बड़ी मौलिक विशेषता यही है कि उनकी भक्ति की धारा राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख होती गयी है ।

3 - विशिष्टतायें —

अ:- माहौर जी का देश - प्रेम :-

जन चेतना और जनवादी विचार धारा आधुनिक युग की सबसे बड़ी देन है , जिसका विकास और विस्तार हमारे देश में अंग्रेजी शासन काल में हुआ । इससे जनता व्यापक रूप से जाग्रत हुयी और सामाजिक , सांस्कृतिक एवं राजनीतिक गतिविधियों में उसकी सक्रिय भूमिका उत्तरोत्तर बढ़ती गयी । जनता की रुचि एवं दृष्टिकोण साहित्य के प्रति भी परिवर्तित हो चली । साहित्य जनता के अधिक निकट आया और सामान्य जनता का जीवन उसकी विषय - वस्तु बनने लगा । साहित्य का स्वर भी "कोउ नृप होय हमें का - हानी" की तटस्थ नीति को त्याग कर "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं " के उद्घोष में परिवर्तित हो गया[1] ।

आधुनिक काल के साहित्य में अपनी प्राचीन परम्परा से हटकर जनता के जीवन की विविध स्थितियों के यथार्थ चित्रण का प्रयोजन वादी दृष्टि कोण ग्रहण कर लिया । आधुनिक साहित्य का विकास देश के राष्ट्रीय जागरण और मुक्ति संघर्ष की नवोन्मेषकारी चेतना के साथ - साथ ही हुआ । भारतेन्दु ने प्रथम बार हिन्दी साहित्य को सामाजिक चेतना की ऐतिहासिक अनिवार्य अनुरूपता प्रदान की । साहित्य के आनन्दवादी दृष्टि कोण को सामाजिक उपयोगिता का धरातल प्रदान किया । वीर , भक्ति और श्रृंगार के क्षेत्र में सीमित कविता को जीवन का विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया । वीर रस के आलम्बनों एवं उद्देश्यों में सामाजिक चेतना की अनुरूपता में -

---

1:- साहित्य की समस्या - शिवदान सिंह चौहान - पृ0- ।

व्यापकता आयी । भक्ति काव्य की व्यक्तिगत मोक्ष की कामना के स्थान पर सारे देश के मोक्ष की कामना व्यापक सामाजिक चेतना का जन्म हुआ । तत्कालीन साहित्य में राष्ट्रीय गौरव की पुनः स्थापना , मातृ - भाषा प्रेम देश - प्रेम आदि राष्ट्रीय जागरण की भावनाओं का तीव्र स्वर मुखरित हुआ ।[1]

भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रीय का मूलाधार है देश - प्रेम की भावना । राष्ट्रीय साहित्य का सर्वाधिक सृजन उस समय होता है जब राजनीतिक परिस्थितियाँ स्वदेश - प्रेम की भावना प्रबल हो जाती है । जब दो देश अथवा राष्ट्र या दो जातियों का आपस में संघर्ष होता है तब समय कवि अतीत के गौरव का गान , उत्साह , वीरता , त्याग , क्षमा के साथ - साथ देश की महिमा का अंकन करता है । डा० श्री कृष्ण लाल का कहना है कि "भारत में आधुनिक युग जैसी राष्ट्र की भावना की कमी नहीं थी । .... हिन्दी में राष्ट्रीय कविताओं के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं ।[2] " भारतेन्दु एवं उनके सहयोगी इस भावना से ओत - प्रोत थे । कवियों ने देश की प्राकृतिक सुषमा का सुन्दर एवं कलापूर्ण चित्रण किया है । भारतेन्दु के जीवन के सभी पक्ष , सभी भाव देश भक्ति के रंग में रंगे थे । इसी कारण उन्होंने अपनी व्यक्तिगत ईश्वर भक्ति को भी देश व्यापी रूप प्रदान किया । भक्ति भाव पूर्ण कविताओं में व्यक्तिगत मोक्ष की अपेक्षा अपने देश के उद्धार की कामना प्रमुख दृष्टिगत होती है । आध्यात्मिकता तथा देश - प्रेम का समन्वय अभूतपूर्व है । भारतेन्दु जी की यह पंक्ति - "डूबत भारत नाथ वेगि जागो अब जागो" इसका सुन्दर उदाहरण है । अतीत गौरव की अनुभूति तथा वर्तमान स्थिति के प्रति क्षोभ , देश - भक्ति के विकसित रूप हैं , जिन्होंने राष्ट्रीयता का पोषण किया । इस प्रकार अपने व्यक्ति गत हित को देशहित में अंतर्भुक्त कर देना इस युग की प्रमुख - विशेषता रही है ।

1:- पं० रामनरेश त्रिपाठी काकाव्य-कृष्णदत्तपालीवाल - पृ०- 109

2:- आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास - पृ०-82-ले० डा० श्रीकृष्ण लाल

भारतेन्दु युग की अपेक्षा द्विवेदी युग में देश - भक्ति की अधिक सुपुष्ट अभिव्यक्ति मिलती है । अधिक आत्म विश्वास और अनन्य अनुराग के साथ देश की वन्दना , स्तुति, आराधना , पूजन एवं भक्ति भाव का समर्पण किया गया । द्विवेदी युग हमारे देश के इतिहास में गहरी सामाजिक एवं राजनैतिक उथल - पुथल का युग है[1]। इसी समय प्रथम यूरोपीय महायुद्ध हुआ था । कांग्रेस की नींव पड़ चुकी थी । भारत राष्ट्र स्वाधीनता की ओर दौड़ में आगे बढ़ रहा था । द्विवेदी युग की प्रमुख भावना देश - प्रेम की भावना है । इस समय कविता का उद्देश्य केवल मनोरंजन न रहा उसमें मानव जीवन की भावना का समावेश भी होने लगा । मातृ भूमि प्रेम और स्वदेश गौरव तो इस युग की कविता का प्राण है । इस समय श्री श्रीधरपाठक सत्यनारायण कविरत्न एवं राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण रचनायें लिख रहे थे जो देश - भक्ति की झांकी प्रस्तुत करती है । जिस राष्ट्रीय भावना का उत्थान "भारत दुर्दशा" से "जग जाय तेरी नोक-से सोये हुये हैं भाव जो" भारत - भारती में हुआ , उसका पोषण श्याम-नारायण पाण्डेय , बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि की रचनाओं में हुआ ।

देश के प्रति भक्ति में उसकी प्राकृतिक सुषमा ; देश के अतीत - गौरव अर्थात सांस्कृतिक पक्ष एवं उसके पर्वतों , नदियों , पशु-पक्षियों , ऋतुओं सभी को एक विशेष गौरव की दृष्टि से देखा जाता है[2]। वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है -"जिनके हृदय में मातृ - भूमि के प्रति भक्ति नहीं उनके लिये पृथ्वी मिट्टी का ढेला है "[3]। देश - भक्ति के उन्मेष में देश की प्राकृतिक विभूति अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व विकसित कर देश की महा-नता का प्रतीक हो जाती है । प्रदेश में मनायें जाने वाले विविध त्योहारों-

---

1:- इतिहास विशेषांक-अक्टूबर 1952- ~~सम्पादकशिव~~ सम्पादक शिव भाव सिंह चौहान

2:- भारतीय राष्ट्र वाद का विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति- डा० सुषमा नारायण - पृ० - 199

3:- वासुदेव शरण अग्रवाल- मातृभूमि - पृ०- 18

के प्रति प्रेम भी देश - प्रेम के अन्तर्गत आता है । जिसको अपने देश से प्रेम है , उसको देश के राग रंग एवं उत्सवों के प्रति विशेष आसक्ति होना स्वाभा - विक ही है । हमारे प्राचीन साहित्य में भी देशभक्ति की उत्कट भावना दृष्टिगोचर होती है , जहाँ हम देखते हैं कि उस समय के कवियों की आ- स्था तत्कालीन त्योहारों के प्रति अधिक पायी जाती है । नागपंचमी , रामलीला , विजयादशमी आदि हिन्दू त्योहारों के प्रति आस्था भारतेन्दु युगीन एवं द्विवेदी युगीन साहित्य में , देश - भक्ति का प्रमुख अंग थी[1] । प्रेम घन ने वर्षा ऋतु वर्णन में मेघ की गर्जना के साथ ढोल पर गाये जाते आल्हा द्वारा देश वासियों को वीरता की लहरों से आप्लावित सागर में डुबो देना चाहा था[2] । भारतेन्दु जी ने भी देश की ऋतुओं का मनोहारी वर्णन किया था[3] ।

द्विवेदी युग में देश भक्ति काव्य की अजस्र धारा प्रवाहित करते हुये भी श्रीधर पाठक ने इस युग में भी देश के प्राकृतिक सौन्दर्य की महत्ता और भौगोलिक एकता प्रदान करने वाले तत्वों का उल्लेख किया है । पाठक जी ने भारत भूमि को त्रैलोक्य वन्दनीय माना है । उनकी देश भक्ति में - "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" की भावना मिलती है उनका प्रेम केवल देश वासियों पर ही नहीं , देश की नदियों, पर्वतों, पेड़ पत्तियों पर भी है । भारत की प्राकृतिक शोभा , उसके हिमश्रृंग, सुरसरि गंगा, साधुसमाज का जय जयकार करते हुये पाठक जी का देश प्रेम पराकाष्ठा पर पहुंच कर मातृ भूमि को तीनों लोकों का स्तम्भ रूप मानता है[4] । मैथिली - शरण गुप्त ने भी देश प्रेम से सम्बन्धित कविताओं की रचना कर देश के प्रति भक्ति भावना प्रदर्शित की है । "भारत वर्ष" कविता में भारत भूमि के उज्ज्व- ल भाग्य सम उन्नतमस्तक हिमालय सरयूतट, ब्रजवीथिका आदि का उल्ले -

---

1:- प्रेमघन सर्वस्व :- पृ०- 153

2:- प्रेमघन सर्वस्व - पृ०- 27

3:- भारतेन्दु ग्रन्थावली - दूसरा भाग-पृ०- 669

4:- श्रीधर पाठक - भारत गीत - पृ०- 20

मिलता है । "मेरा देश" "मातृभूमि" कविताओं में भी भारत – भूमि की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा आध्यात्मिक शक्ति का वर्णन मिलता है । माखन लाल चतुर्वेदी, जय शंकर प्रसाद, सूर्य कान्त त्रिपाठी – निराला, रामधारी सिंह दिनकर , सोहन लाल द्विवेदी प्रभृति कवियों ने भारत की भौगोलिक एकता के सुन्दर एवं भावात्मक चित्र खींचे हैं , जिनमें देश का मानवीकरण भी किया गया है ।

कवीन्द्र नाथूराम माहौर युग प्रवर्तक कवि के रूप में हमारे सामने आये । माहौर जी के समय में क्रान्ति की ज्वाला धधक रही थी । भारत को स्वतन्त्र कराने के अथक प्रयास उत्साही युवकों द्वारा किये जा रहे थे । चन्द्र शेखर आजाद , भगतसिंह आदि क्रान्तिकारी वीर स्वतंत्रता संग्राम में शहीद हुये । स्वयं माहौर जी के भान्जे डा० भगवान दास माहौर एक कट्टर क्रान्तिकारी थे जो कि चन्द्र शेखर आजाद के साथी थे । माहौर जी के घर पर समस्त क्रान्तिकारी एकत्र होते और देश की स्वतन्त्रता के लिये योजनायें बनाते । ऐसे वातावरण में कवि का अन्तस देश – प्रेम की भावना से कैसे अछूता रहता, परिणाम स्वरूप कवीन्द्र के हृदय में स्वदेश प्रेम की भावना से आपूरित हो गया ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध स्वातन्त्र्य संग्राम काल में कवि ने देश – प्रेम पूर्ण साहित्य सृजन कर देश के नवयुवकों को युद्ध के लिये प्रोत्साहित किया । माहौर जी ने उस समय देश – प्रेम की भावना से प्रेरित होकर सशक्त राष्ट्रीय साहित्य का सृजन किया । आपकी "दीन के आंसू" जो कि सशक्त राष्ट्रीय विचारों से युक्त पुस्तक थी, तत्कालीन सरकार द्वारा जब्त कर ली गयी थी । इससे माहौर जी के राष्ट्रीय साहित्य की सराहना सर्वत्र हुयी । देश के प्रति असीम प्रेम की भावना प्रदर्शित करता हुआ कवि हृदय देश को स्वतंत्र कराने , एवं राष्ट्रीय तिरंगा झंडा फहराने की कामना करता हुआ कहता है –

माँ ! तेरे चरणों में चित दे हंस हंस शीश चढ़ाना है ।
सुख सम्पति सर्वस्व त्याग कर तुझे स्वतंत्र बनाना है ।

+ + + + +

त्रिगुण त्रिवेणी सदृश तिरंगा यत्र तत्र फहराना है ।

लाल जवाहर जवाहरात से भरना देश खजाना है ।

\+ + + +

राम राज्य सा भारत भू में लाना फेर जमाना है[1] ।

माहौर जी का काल राष्ट्रीय चेतना का काल था । ब्रिटिश साम्राज्य से उत्पन्न असन्तोष सभी ओर फैला हुआ था । देश के जागरूक कार्यकर्त्ता इस असन्तोष को मिटाने में तत्पर थे । माहौर जी के काव्य - गुरु श्री मदन मोहन द्विवेदी "मदनेश जी" भी ब्रिटिश शासन व्यवस्था विरुद्ध थे । वे स्वातन्त्र्य संघर्ष में स्त्रियों को आगे बढ़कर देश - सेवा के लिये आह्वान करते हैं -

माता-सुता भगिनी जो सुजन सिखावन में,
करके प्रयत्न अब ऐसा जोड़ दो ।
निजकर कात सूत पहरो वसन अंग,
क दैशा जित देश के विदेशी वस्तु छोड़ दो ।
मदनेश अबला जो प्रबला अगाड़ी बढ़ो,
कपटी फिरंगन को मंड सब फोड़ दो ।
चाहती स्वराज जो पै, कांग्रेस काज करो,
ये ही है बलाय या को लाज सब तोड़ दो ।

माहौर जी अपने काव्य- गुरु मदनेश जी की काव्य - धारा से अत्यधिक प्रभावित थे । परिणाम स्वरूप देश भक्ति की भावना उनके हृदय में बलवती होती गयी । मदनेश जी की भांति माहौर जी ने भी विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करते हुये गर्जना की -

"पवन से पलित उड़ायेंगे विदेशी वस्त्र ,
पहलव नवीन के स्वदेशी पहरायेंगे" ।

\+ + + + +

"वीर - बाला" के माध्यम से कवीन्द्र माहौर ने झांसी की रानी लक्ष्मी बाई के शौर्य को प्रस्तुत करके नारियों के हृदय में भी देश - प्रेम की भावना प्रदर्शित की है -

---

1:- अभिलाषा - श्याम- कवीन्द्र माहौर : अप्रकाशित :

क्रुद्ध कर धाव थी प्रसिद्ध पर युद्ध काज,
साजी चतुरंगिनी थी रण विकराल की ।
प्रबल प्रचण्ड वर बंड भुज दण्डन से,
खंड खंड गोरन के मुण्डन की मालकी ।
नाथूराम पूर्ण देश-प्रेम में सनी थी रण,
रंग में ठनी थी औ बनी थी काल बाल की ।
धन्य धन्य धरती में वरनी न जात ऐसी,
करनी दिखाई बाई साब करवाल की[1] ।

माहौर की कविताओं में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति घोर असन्तोष व्याप्त दिखाई देता है । वे देश से अंग्रेजों को निकाल कर देश की गिरी हुयी स्थिति को सुधारने के लिये कटिबद्ध थे । उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा जनता में राष्ट्रीय चेतना के प्रसार का प्रयत्नकिया । माहौर जी अपने युग के साथ इतने घुल मिल गये कि उनका आधुनिक राष्ट्रीय स्वर प्राचीन रीति कालीन एवं भक्ति कालीन स्वर से अधिक तीव्र और व्यापक हो गया । अब उनकी कविता का उद्देश्य ही देशोद्धार हो गया । भारत वासियों के अदम्य साहस एवं शौर्य का स्मरण कर माहौर जी देश - द्रोहियों को चेतावनी देते हैं -

"भारतीय काले रंग वालों को न छेड़ कभी,
एक मुख वाले दस मुख को नसाते हैं ।
चूर कर डालतेघमण्ड देश द्रोहियों का,
दो बाहुओं से सहस्रबाहु को छकाते हैं ।
माहुर सुकवि कवि कोविद पुराण आदि,
प्रबल प्रताप का महान गान गाते हैं ।
तेरी क्या मजाल यदि आँख भी दिखाये कहीं,
काल विकराल को भी गाल में दबाते हैं "[2] ।

राष्ट्रीय आन्दोलनों में आरम्भ से ही माहौर जी का त्याग तो महान -

---

1:- वीर बाला - माहौर - पृ०- छन्द ।।

2:- स्फुट छन्द - कवीन्द्र माहौर

रहा ही है, आपकी सहस्त्रों मातृभूमि = प्रेम प्रेरित, ओज भरी, वीर रस मय राष्ट्रीय सुरचनाओं ने भी अनेक वीर युवको को राष्ट्रहित में स्वबलितोत्सर्ग करने केलिये प्रेरित किया है और राष्ट्र कार्यों में झांसी की अग्रगण्यता का श्रेय बहुत कुछ आपकी सबल लेखिनी को है[1]। आपने देश - प्रेम और स्वातन्त्र्य युद्ध के लिये नव युवकों को प्रोत्साहित करने के लिये अन्योक्तियों और समासोक्तियों का सहारा लिया। "फूल की कामना" के माध्यम से "देश - भक्ति" की भावना प्रदर्शित करते हुये माहौर जी कहते हैं -

गजरा गुन गूंथ के कामिनी के,
कल कण्ठ न भूल सजाना मुझे।
धन के धन के हा प्रलोभन में,
कर कायरों के न गहाना मुझे।
अड़ने मत देना कभी रन में,
सब को यह याद दिलाना मुझे।
वर वीर स्वदेश हितैषियों के,
चित दे चरणों में चढ़ाना मुझे[2]।

कवि को "दीन के आंसू" प. राष्ट्रीय कृति है जो देश - प्रेम की भावना को प्रबल करती हुयी युवकों को स्वतन्त्र्य संघर्ष के लिये प्रेरित करती है -

"सुख संयुत साज समाज महा सब भांति सजायेंगे दीन के आंसू।
रस वीर प्रवाह अवीरन के हिय में प्रगटायेंगे दीन के आंसू
नव जीवन ज्योति जवाहर की जगमग्य जगायेंगे दीन के आंसू।
तब जायेंगे से परतन्त्रता से वे सुनगे सुनायेंगे दीन के आंसू[3]।

माहौर जी को देश - प्रेमियों पर बड़ी श्रद्धा थी। वे उनके गुणों का बढ़ा चढ़ा कर वर्णन करते और उन्हें अनेक प्रकार से प्रोत्साहित करते थे। जब किसी देश - प्रेमी का स्वर्गवास हो जाता तब उनका हृदय व्यथित हो उठता-

---

1:- बुन्देलखण्ड की राठ महासभा द्वारा प्रदत्त अभिनन्दन पत्र से उद्धृत
2:- "फूल की कामना"- नाथूराम माहौर
3:- दीन के आंसू - माहौर : छन्द संख्या - 6:

और उन्हें इतना दुख होता जैसे कि वह उनके परिवार का एक सदस्य रहा हो । 1931 में भारत के सपूत क्रान्तिकारी सरदार भगतसिंह को ब्रिटिश सरकार द्वारा फांसी दिये जाने पर कवि का व्यथित हृदय उस वीर का वर्णन करते हुये कह उठता है -

दीन दुख दासता दरिद्रता कृशासता का,

तम तोम हारी तेज तरुण तमारी था ।

क्रान्ति का पुजारी निन्द अचिर विहारी, वीर,

"माथुराम" आत्म बलधारी सदाचारी था ।

सत्याग्रही साहसी, सपूत समराङ्गण में,

परम स्वतंत्रता के खेल का खिलारी था ।

भगत सिंह काल बिना काल का शिकार हुआ ।

हाय जो हमेशा खूनी वंश का शिकारी था[1] ।

माहोर जी को अपने देश पर गर्व था । देश की प्रत्येक वस्तु के प्रति उन्हें स्वाभिमान था । भारत को सभी देशों में शिरोमणि मानते हुये माहोर जी "राष्ट्रीय लहर" में भारत की महिमा का बखान इस प्रकार करते हैं -

जय भारत देश के शक्ति तेरी ,

कर भक्ति गुणावली गाते रहे ।

करबद्ध समक्ष में आते तेरे ,

पद धूल को शीश चढ़ाते रहे ।

नल नेह भरी बलि जाते रहे,

जयकार पुकार सुनाते रहे ।

मुहताज रहे सब ताज ,

चरणाम्बुज में झुक जाते रहे[2] ।

1:- स्फुट - भगवान दास माहोर

2:- राष्ट्रीय लहर - कवीन्द्र माहोर : अप्रकाशित :

भारत के ऐश्वर्य को देखकर देवता भी लज्जित हो जाते हैं । भगवान विष्णु भारत में अवतार लेकर अपने को धन्य समझते हैं -

> नव देश नक्षत्र थे चन्द्र था तू ,
>
> अरविन्द वहाँ मुस्काते रहे ।
>
> चरणाश्रित जो रहते थे तेरे,
>
> कुमुदों से खिले सुख पाते रहे ।
>
> जगदीश भी तो लाख तेरे यहाँ ,
>
> धरने अवतार को आते रहे ।
>
> प्रभुता-पद लोक त्रिलोक सदा ,
>
> सुरलोक से लोक लजाते रहे[1] ।

मैथिली शरण गुप्त भी "रंग में भंग" में जन्म - भूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ बतलाते हुये कहते हैं -

> स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्म भूमि कही गई ,
>
> सेवनीय है सभी की वह महामहिमामयी[2] ।।

श्री धर पाठक की देश के भक्ति में भी यही भाव मिलते हैं ।

> "प्रिय भारत देश हमारा है । सबसे स्वर्ग से प्यारा"[3] ।

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है कि देश भक्ति के अन्तर्गत उसकी प्राकृतिक सुषमा के साथ , प्रदेश में मनाये जाने वाले विविध त्योहार इत्यादि भी आ जाते हैं । द्विवेदीयुगीन देश भक्ति की भावना इस प्रवृत्ति से पूर्णतया आलेखित है । माहौर जी ने भी देश के प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण के साथ ही , तत्कालीन मनाये जाने वाले विविध उत्सवों का भी वर्णन अपने काव्य में किया है । अपने प्रदेश बुन्देलखण्ड के प्रति उनके प्रेम एवं आत्म-सम्मान को देखिये --

---

1:- राष्ट्रीय लहर - कवीन्द्र माहौर : अप्रकाशित :

2:- "रंग में भंग" - मैथिली शरण गुप्त - पृ0- 24

3:- श्रीधर पाठक - भारत गीत - पृ0- 123

नीनो खण्ड बुन्देलखण्ड हमारो, नौड खण्ड को प्यारो,

वाल्मीकि तुलसी केसव भए, जई मैं सुकवि हजारो ।

\+ \+ \+ \+ \+

माहुर सुकवि कहाँ लौ कहियत जो है जग उजियारो ।

सियाराम हूँ ने दुर्दिन मैं जई को लओ सहारो[1] ।।

हमारे देश में होली का त्योहार बड़ी धूम - धाम से मनाया जाता है इसकी अभिव्यक्ति माहौर जी कुछ इस प्रकार करते हैं -

ब्रज सुखदानी फाग खेलें ब्रजरानी संग,
प्रेम रस सानी रंग पिचकी सरसानी है ।
मण्डित गुलाल की धरासी छहरानी दिव्य,
विद्युत अबीर की छटा सी दरसानी है ।
नाथूराम हेर लो छिपानो आसमान भानु,
दसहू दिसान फाग भीर महरानी है ।
प्रबल प्रधुम धुंध अधर धरा ते धूम,
घूँघट उड़ानी जामें राधिका बिरानी है[2] ।

भारत वर्ष तीर्थों का स्थल है । प्रत्येक भारत वासी को यहां के तीर्थों, नदियों, मंदिरों में अभूतपूर्व आसक्ति है । भारत वर्ष का प्रत्येक नागरिक भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध निष्ठा रखता है जिसे भारतीय संस्कृति से लगाव नहीं वह सच्चा देश प्रेमी नहीं है । देश भक्त का जीवन यहां की संस्कृति से ओत - प्रोत रहता है । माहौर जी की भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था आजीवन रही । भारतीय संस्कृति में तीर्थ स्थानों का अत्यधिक महत्व है । भारत के रमणीक तीर्थ जन जीवन में पवित्रता, सहिष्णुता, - आध्यात्मिकता, धार्मिकता आदि का संचार तो करते ही हैं, परन्तु इससे भी अधिक वे शारीरिक एवं मानसिक क्लेशों का निवारण करते हैं । प्रभु जिस भूमि पर अवतार लेता है उसे भगवद् भूमि कहा जाता है और उसके -

---

1:- आकाशवाणी से प्रकाशित "बुन्देलखण्ड महिमा" - माहौर जी

2:- होरी गीत - कवीन्द्र माहौर

प्रति भक्तों में अटूट श्रद्धा महती अभिलाषा एवं तीव्र आकांक्षा रहती है। वह भूमि तीर्थ स्थान के रूप में महान गौरव एवं गर्व की वस्तु बन जाती है। हमारा भारत वर्ष इसीलिये भगवद् भूमि कहलाता है क्यों कि यहां पर प्रभु ने कइ बार अवतार ग्रहण कर अपनी लीलायें की हैं। इसी कारण मैथिली शरण गुप्त इस भूमि का साधुवाद करते हुये कह उठते हैं -

"धन्य भगवद् भूमि भारत वर्ष है"[1]

इस अनुपम आस्था एवं महती श्रद्धा का ही यह परिणाम है कि भारत वर्ष में स्थान स्थान पर तीर्थ स्थान दृष्टिगोचर होते हैं। यहां के हिमालय, विन्ध्य, चित्रकूट आदि पर्वत, गंगा, यमुना, वेतवा, सरयू आदि नदियां ऐसे स्थल है जिन पर अनेक तीर्थ स्थान है[2]। यहां के प्रत्येक कवि ने किसी न किसी रूप में इन तीर्थ स्थानों का वर्णन अपने काव्य में किया है। हिन्दी कवियों ने हिमालय और गंगा, यमुना नदियों का विशेष रूप से वर्णन किया है। गंगा, यमुना, सरस्वती, वेतवा आदि देश की पवित्रतम नदियां हैं। हिन्दी प्रदेश में प्रवाहित होने वाली इन नदियों ने हिन्दी कवियों की देश - भक्ति को अभिव्यक्ति में विशेष योग दिया है। कवीन्द्र माधोर को भी अपने यहां के तीर्थ एवं नदियों से अगाध प्रेम था। उन्होंने "वेतवा-बत्तीसी" के माध्यम से वेतवा के महात्म्य पर प्रकाश डाला है। वेतवा समस्त पापों का शमन करती हुयी जीवन में आनन्द भरने वाली है। तीनों तापों :दैहिक, दैविक, भौतिक: से छुटकारा दिलाकर व्यक्ति को परमानन्द की अनुभूति कराने में सक्षम वेतवा का महत्व बतलाते हुये माधोर जी कहते हैं-

छो जात छमें छुछ धमल धरा पै धाम
वेत्रवती पातकीन बीन बीन तारे जात,
तारे जात तरल त्रितापन के तापन से,
पापिन को पकर कर पार पर डारें जात।

1:- साकेत - प्रथम सर्ग - पृ०- 19

2:- साकेत में काव्य-संस्कृति और दर्शन - पृ०-193-डा० द्वारिका प्रसाद

टारें जात पवर्ग अपवर्ग कों हिये में घार ,

यत्र तत्र राज कलिराज का बिगारे जात ।

गारे जात गरब गुमान जम दूतन का ,

जीवन ता जीवन को जीवन सुधारे जात[1] ।।

गंगा नदी भारत की पवित्रतम नदी है । कवियों ने गंगा के प्रति अपनी निष्ठा रखते हुये उसका वर्णन साहित्य में किया है । मैथिलीशरण गुप्त ने "साकेत" महाकाव्य में गंगा के प्रति अनन्य भक्ति भावना समर्पित की है । यह भक्ति धार्मिकता और राष्ट्रीयता का मिश्रित रूप है -

जय गंगे आनन्द तरंगे कलरवे,

अमल अंचले पुण्य जले दिवसम्भवे ।

सरस रहे यह भरत-भूमि तुमसे सदा,

हम सबकी तुम एक चला चल सम्पदा[2] ।

माहौर जी ने भारत के तिरंगे झंडे में गंगा, यमुना और सरस्वती की जो कल्पना की है वह उनकी उत्कट देश - भक्ति की भावना की परिचायक है -

गंगा यमुना सरसुती मिली सप्रेम अभंग,

सुखद त्रिवेणी कीर्ति की फहरी ध्वजा तिरंग[3] ।

भारत के प्रसिद्ध तीर्थराज श्रीहरि द्वार की महिमा का वर्णन माहौर जी ने अपनी पुस्तक "शान्ति सागर" में करते हुये बतलाया है कि हरिद्वार के दर्शन से व्यक्ति को सदगति शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है । कलियुग के समस्त विकारों को समूल नष्ट करने के लिये हरिद्वार एक महान पवित्र तीर्थ स्थान है -

दरस-किये तें हिय-हरष अपार होत,

परस किये तें होत पारस प्रकार के ।

1:- बेतवा-बत्तीसी- अप्रकाशित छन्द सं० 9 - कवीन्द्र माहौर

2:- साकेत - पृ०- 145- मैथिली शरण गुप्त

3:- ओंग्य - विनोद- पृ०- 3 - कवीन्द्र माहौर

"माहुर" सुकवि होत माहुर सुधा सुमेरु-

होत छार छार पुंज कलि के विकार के ।

जीवन में जीवन को सार भर देत सदा,

पार कर देत भव-सागर अपार के ।

एक बार आवत सप्रेम हरि द्वार तासि-

खोलत किवार हरिद्वार हरि- द्वार के[1] ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि माहौर जी को अपने देश की प्रत्येक वस्तु के प्रति अनुराग था उनका हृदय भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित था । अपनी किसी भी कृति में उन्होंने भारतीय संस्कृति को विस्मृत नहीं किया । ये उनकी देश - भक्ति का प्रमाण है कि अपनी अनेक कृतियों में मंगलाचरण में अन्य देवताओं की स्तुति के साथ मातृभूमि का भी स्तवन करना नहीं भूले । सुर सुधानिधि में मातृभूमि - स्तवन करता हुआ कवि शस्य श्यामला भारत भूमि को समस्त शोकों को हरण करने वाली बतलाता है तथा भारत को भगवान की स्थली बतलाता हुआ समस्त पाप का पुंज एवं अन्धकार का विनाश करने वाला बतलाता है -

नमामि मां वसुन्धरा । महान ज्ञान गौरवा ।।

प्रशस्त शस्य श्यामला । कला-निधान निर्मला ।।

+ + +

समस्त विश्व-पालिका । अगम्य है दयालुता ।

मुनीन्द्र इन्द्र-वन्दिता । स्व-छन्दिनी अमन्दता ।।

त्रिदेव पाद सेविका । नैमत संत देवता ।

वंदति वेद- मालिका । प्रदीप्त ज्योति जालिका ।

+ + + +

त्रिलोक शोक-नाशिनी । प्रकाश-राशि-संग्रहा ।

सुशक्ति भक्त वत्सला । मनोज्ञ मूर्ति मंजुला ।

दया सुदृष्टि-धारनी । अनंत जीव तारिणी ।

1:- शान्ति सागर - पृ0- 12-कवीन्द्र नाथूराम माहौर

रमा रमेश की धनी । अमाधि है गुणावली ।
दया क्षमा-निधान सु । विनोदन महान सु ।
कवीन्द्र-भव्य भारती । उतारती सु आरती[1]।

माहोर जी को अपनी मातृ भाषा हिन्दी से प्रेम था क्यों कि उनका कहना था कि राष्ट्रीयता के प्रचार लिये अपनी प्रौढ़ - भाषा का होना आवश्यक है । हिन्दी के प्रचार के बिना देश की उन्नति सम्भव नहीं है । मातृ - भूमि के साथ हिन्दी की वन्दना करते हुये माहोर जी कहत हैं -

मातृ भूमि जय अति सुखद, जय हिन्दी जय हिन्द ।
जय स्वतंत्रता के मधुप, प्रनवहु पद अरविन्द[2]।

नागरी वन्दना माहोर जी ने निम्न लिखित छन्द में करते हुये देश प्रेम की भावना का परिचय दिया है -

तुलसी कवि केशव , सूर के कं० ,
सुकाव्य कला निरधारनी के ।
पद्माकर , देव, बिहारी, हिये,
कविता प्रभा पु ज प्रसारनी के ।
गुण आगरी के पद वन्दों सदा,
जय नागरी हिन्द बिहारनी के[3]।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि माहोर जी की सम्पूर्ण देश - प्रेम विषयक कवितायें लोक भावना से परिपूर्ण हैं । उनमें एक सच्चे देश - भक्त की पुकार है । उनकी इन कविताओं से जनता में स्फूर्ति स्वाभिमान , एवं राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ । ये कवितायें माहोर जी के सशक्त आत्म-बल एवं स्पष्टवादिता की प्रतीक हैं ।

1:- सुर-सुधा- निधि - पृ0- 2 - कवीन्द्र माहोर
2:- व्यंग्य-विनोद - मंगलचरण - कवीन्द्र माहोर
3:- काव्य - वाटिका - मंगलाचरण - प्रकाशक हीरा सिंह मैत्री कवीन्द्र माहोर कवि मण्डल

(ख) माहौर जी का हास्य - व्यंग्य :-

व्यंग्य साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन तथा सुधार दोनों होता है । "जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में जो भद्दी, अरुचिकर तथा अहितकर बातें होती हैं, उन पर व्यंग्य कार लोगों का ध्यान आकृष्ट करने के लिये उंगली उठाता है[1]" । व्यंग्य द्वारा वह प्रकारान्तर से कुप्रथाओं पर प्रहार करता है । इसमें पाठकों का मनोरंजन तो होता ही है साथ ही उसका नैतिक सुधार भी होता है समाज सुधार के लिये हास्य - व्यंग्य एक सशक्त विधा है । साहित्य के लिये यह एक संजीवनी है । साहित्य में केवल हास्य का कोई महत्व नहीं होता है । हास्य में सामाजिकता का होना अनिवार्य है । फ्रेन्च दार्शनिक बर्गसाँ लिखते हैं -

"हास्य कुछ इस प्रकार का होना चाहिये जिससे सामाजिकता की झलक हो[2] ।" सामाजिकता से युक्त हास्य पाठकों को निर्माण की ओर प्रेरित करता है जब कि कोरा हास्य पाठकों को थोड़ समय के लिये कल्पना आकाश में विहार कराता हुआ पुनः यथार्थ भूमि पर खड़ा कर देता है । हास्य अपनी रंजनात्मक शक्ति द्वारा पाठकों का मन सत्वर गति से अपनी ओर आकृष्ट करता है इस-लिये यदि इसमें जीवन निर्माण के तत्व हुये तो मानव मात्र का बड़ा कल्याण होता है । इसके साथ ही कवि या लेखक अपनी कटु से कटु बात हास्य के माध्यम से बड़ी निर्भीकता और स्पष्टता के साथ कह जाता है और पाठक भी उसकी बात पर हंस लेते हैं परन्तु इसका प्रभाव पाठक के अन्तराल पर गहरा पड़ता है । कवि अपनी व्यक्तिगत बात भी हास्य व्यंग्य के माध्यम से बड़ी स्पष्टता के साथ कहने में सक्षम होता है । हास्य युक्त वैयक्तिक भावना में भी सामाजिकता होती है कवि समाज के हित का ध्यान रखता हुआ वैयक्तिक मत हास्य व्यंग्य के माध्यम से पाठकों समक्ष रखता है । व्यंग्य द्वारा कवि अपनी बात को प्रभावोत्पादक ढंग से कह जाता है और उसमें किसी को तर्क - वितर्क करने की भी गुंजाइश नहीं रह जाती । बंगला तथा उर्दू में प्रचुर व्यंग्य साहित्य वर्तमान है ।

साहित्यिक निबन्ध - साहित्य की महत्ता और उसका स्वरूप - उदय नारायण सिंह

2:- लॉफ्टर (Laughter) हेनरी बर्गसाँ - पृष्ठ- 20

हिन्दी में हास्य - व्यंग्य की परम्परा अति प्राचीन है । रीति - काल से पूर्व हास्य - व्यंग्य का वर्णन कम मिलता है । उस समय का हास्य शुद्ध मनोरंजनात्मक हुआ करता था । चारण काल में कवि अपने आश्रय दाताओं की चाटुकारिता में लिप्त थे अतः वहाँ हास्य में सामाजिकता का अभाव है । कवि का उद्देश्य केवल अपने राजा के गुणों का यशोगान था तथा केवल मनोरंजन - मात्र के लिये था । भक्ति काल में आकर व्यंग्य सकारात्मक हुआ । जीवन में विविधता आयी । वह लोक कल्याण की ओर उन्मुख हुआ। कवि ने भी व्यक्ति को नीतिपरक उपदेशों द्वारा लोक कल्याण की ओर आकृष्ट किया । भक्ति - काल में हास्य - व्यंग्य अपेक्षाकृत कम ही देखने को मिलता है । रीतिकाल में हास्य - व्यंग्य विनोद काव्य धारा अविरल रूप से प्रवाहित होती दिखायी देती है जो इस बात की द्योतक है कि इस युग का साहित्य भी जीवन के विविध पक्षों के स्पर्श द्वारा प्रस्फुटित होने वाला साहित्य था । भक्ति - कालीन आध्यात्मिक साधना का वातावरण होते हुये भी जीवन के भौतिक पक्ष के प्रति उदासीनता न थी । इस युग के साहित्य में हास्य - व्यंग्य की धारा कम नहीं है । पर्याप्त सूक्तियाँ तो नीतिकारों के मुक्तकों में मिलती हैं , इसके अतिरिक्त सूम की प्रशंसा , खोटों की पहचान , भ्रम की निन्दा , खटमल , आदि से सम्बन्धित कवितायें जिनमें हास्य - व्यंग्य के तीखे छींटे मिलेंगे , काफी संख्या में देखने को मिलती हैं । अली मुहिब खाँ प्रीतम ने "खटमल बाइसी" नामक एक हास्य प्रधान ग्रन्थ लिखा जिसमें खटमलों के प्रभाव और आतंक का बड़ा विनोद पूर्ण एवं रोचक वर्णन किया गया है । इसी प्रकार के हास्य - व्यंग्य सम्बन्धी अनेक छन्द रीति युगीन काव्य में मिलते हैं जो प्रायः शुद्ध हास्य तथा परिहास-पूर्ण हैं इस काव्य प्रवृत्ति का अपना महत्व है । इस युग की प्रमुख चेतना शृंगारिकता थी हास्य विनोद के प्रसंग में भी उसका प्रभाव काफी अंश में देखने को मिलता है । इस प्रसंग में "पद्माकर" के होली वर्णन सम्बन्धी हास्य विनोद की अपनी विशेषता है । इसी युग में कुछ ऐसे भी कवि हुये हैं जो मूलतः नीतिकार हैं । घाघ , भड्डरी , बैताल आदि इस प्रकार के कवि हैं । इन कवियों ने जीवन को दिशा - निर्देश करने वाली सुन्दर मुक्तक तथा कुनीति और दुराचरण पर - प्रहार करने वाले हास्य - व्यंग्य काव्य लिखे हैं । यह नीति और हास्य - व्यंग्य काव्य इस युग के सामाजिक निर्माण और प्रगति में सहायक काव्य है ।

व्यंग्य कार ऐसे कवि इसी युग में हुये जिन्होंने अनुदारता , आडम्बर आदि पर व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं।[1] इन कवियों की रचनाओं में जीवन के कटु - मधुर अनुभवों का वर्णन तो है ही , साथ ही साथ समाज में किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये , यह भी उनकी रचनाओं में प्राप्त होता है । कई लोगों ने हास्य पूर्ण अन्योक्तियों द्वारा सुन्दर और मार्मिक नीतिकाव्य प्रस्तुत किया है ।

भारतेन्दु युग तो हिन्दी साहित्य की विनोदशीलता का युग कहा जा सकता है । इस युग के लगभग सारे ही कवि तथा लेखक मनमौजी और विनोद शील स्वभाव के थे । ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग के लेखकों ने अपने युग की जन - मन - व्याप्त पीड़ा के अन्धकार को विदीर्ण करने के लिये अपने हास्य - सूर्य के प्रकाश को साहित्याकाश में विकीर्ण किया । राजनैतिक परिवर्तन से उत्पन्न विषम परिस्थिति का चित्रण इस युग के लेखकों का प्रधान कार्य रहा । उन्होंने निरन्तर "कर" : "अकाल" और "महामारी" जैसी आपदाओं का वर्णन किया । राजनैतिक और सामाजिक सुधार के लिये उक्तियों के व्यंग्य और हास्य का आश्रय लिया गया । वास्तव में हास्य - व्यंग्य उस युग की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस युग के लेखकों की हास्य प्रवृत्ति के सम्बन्ध में लिखा है -- "हास्य विनोद की प्रवृत्ति इस युग में प्रायः सब लेखकों में थी । प्राचीन और नवीन के संघर्ष के कारण उनमें हास्य के आलम्बन दोनों पक्षों में मिलते थे । जिस प्रकार बात बात में धर्म की दुहाई देने वाले , धर्म के आडम्बर की आड़ में दुराचार छिपाने वाले पुराने खूसट उनके विनोद के लक्ष्य थे , उसी प्रकार पश्चिमी चाल - ढाल की ओर मुंह के बल गिरने वाले फैशन के गुलाम भी ।" भारतेन्दु युग में सोद्देश्य साहित्य : "अन्धेर नगरी" तथा "भारत - दुर्दशा" में भारतेन्दु द्वारा प्रयुक्त हास्य : अर्थात् व्यंग्य की रचना की जाने लगी थी । इस युग में हास्य के माध्यम से किसी विशेष विचार में सुधार वादी व्यंग्य किये जाने लगे थे ।[2] भारतेन्दु , प्रेमघन , प्रताप नारायण मिश्र आदि अनेक -

---

1:- रीति काव्य नवनीत - सम्पादक - डा० भगीरथ मिश्र : हिन्दी रीति काव्य पुनः मूल्यांकन : - पृ० - 41

2:- रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता- डा० रमेश कुमार - पृ०- 64

साहित्यकारों ने इस युग में हास्य - व्यंग्य सम्बन्धी काव्य - रचना कर अपनी विनोद शीलता का परिचय दिया । इन कवियों ने बाल - विवाह आदि के अवसरों पर गायी जाने वाली गालियां तक लिखी जो हास्य से भरपूर हैं । प्रताप नारायण मिश्र तो मानो हास्य - व्यंग्य के अवतार थे । वे गम्भीर से गम्भीर विषयों में भी हास्य के माध्यम से सरस और प्रभाव पूर्ण हो जाते थे । मिश्र जी का हास्य और व्यंग्य पूर्ण सामाजिक है , उसमें समाज की किसी न किसी कुरीति की ओर संकेत किया गया है । मिश्र जी हास्य के ही माध्यम से समाज की कड़ी से कड़ी भर्त्सना कर जाते हैं । "ब्राह्मण" का चन्दा न मिलने पर जब वे ग्राहकों को अनुनय - विनय किया करते थे फिर भी कोई ग्राहक ध्यान न देते थे इस पर, एक बार वे बड़े ही मनोरंजक ढंग से लिखते हैं -

आठ मास बीते जजमान ।

अब तो करो दक्षिणा दान ।। हरि गंगा ।।

आजु काल्हि जो रुपया देव ।

मानो कोटि यज्ञ करि लेव ।। हरि० ।।

मिश्र जी का अधिकांश हास्य , व्यंग्यात्मक ही है और उनके व्यंग्य का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से न होकर पूरे समाज या देश से है । भारतेन्दु युग एवं द्विवेदी युग के लेखकों , कवियों ने हास्य - व्यंग्य के माध्यम से जनता की भावना विकसित करने का पुनीत कार्य किया । इन कवियों ने व्यंग्य को साहित्य के एक अत्यन्त सशक्त और प्रभावशाली माध्यम के रूप में ग्रहण किया है । इन व्यंग्यों का लक्ष्य राजनीति , समाज , [illegible] , जर्जर तथा सड़ी गली रूढ़ियां हैं ।

कवीन्द्र नाथूराम माहौर के "व्यंग्य - विनोद" में उनका व्यंग्य और परिहास अपनी आकर्षक मौलिकता के साथ विद्यमान है । 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात कवि को पूर्ण विश्वास था कि अब इस स्वतंत्रता के प्रकाश से जनता का दैन्य रूपी अन्धकार विलीन हो जायेगा और देश की जनता सुखी एवं समृद्ध होगी लेकिन जब उन्होंने देखा कि अधिकार के मद में डूबे -

---

1:- राष्ट्र भाषा सन्देश - 15 नवम्बर 1980 - डा० राम कुमार वर्मा के भाषण से उद्धृत ।

शासक प्रजा का शोषण करने लगे हैं तब उसने जन मानस की तीव्र कुण्ठा का प्रदर्शन हास्य - व्यंग्य के माध्यम से "व्यंग्य - विनोद " नामक खण्ड काव्य लिख कर बड़े ही प्रभावोत्पादक ढंग से किया । "व्यंग्य - विनोद" का प्रणयन सन 1949 में हुआ । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात अंग्रेजों के अत्याचार का तो दमन हुआ लेकिन भारतीय रक्षक स्वयं भक्षक बन गये , अपने स्वार्थपूर्ति में लिप्त शासक गरीब जनता का शोषण करने लगे , तब इसे कवीन्द्र माहौर ने "राम राज्य की लूट" कह कर शासन के ऊपर तीव्र व्यंग्य किया -

> राम राज की लूट है, लूटत बने सु लूट ।
> फिर पाछे पछितायगे, प्रान जायगे छूट ।।
> प्रान जायगे छूट, लूट खावें जिन खाना ।
> भर लो आज अटूट, लूट के मिले खजानों ।।
> चिन्ता करो न मित्र, सीख जमराज - भाव की ।
> मौका का यह लेख, लूट है राम राज की ।।[1]

कितना तीखा व्यंग्य है "राम राज्य" पर । माहौर जी का ओज और परिहास एक साथ इनके "व्यंग्य - विनोद" में मुखरित हुआ है , जहाँ उन्होंने वर्तमान शासन और सामाजिक अनीति पर मार्मिक चोटें किये हैं । इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने कांग्रेस प्रशासन से क्षुब्ध और निराश होकर निर्भीकता से खरी -खरी आलोचना की है । उनका कवि हृदय प्रारम्भ से ही अन्यायों के प्रति विद्रोही रहा है । जहाँ एक ओर कवि ने स्वातन्त्र्य आन्दोलन के समय बर्बर हत्यारे निःशस्त्र सैनिकों का आह्वान किया तो वहीं दूसरी ओर स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त "आँधी के आम" बटोरने वालों को भी अपने अचूक तीक्ष्ण व्यंग्य बाणों का निशाना बनाया । "व्यंग्य - विनोद" ऐसे ही तीखे तीरों का तरकश है । कुछ उद्धत हाकिमों के व्यवहार से क्षुब्ध होकर "कांग्रेस" को लक्ष्य करके माहौर जी ने वर्तमान प्रशासन पर तीव्र व्यंग्य किया । आज का शासक जनता को लूटने में व्यस्त है । जनता इन भ्रष्टाचारी शासक के राज्य में दुःखी है । आज के शासक "गंगा घाट के पण्डा" के समान हैं जो जनता पर मनमाने -

---

1:- व्यंग्य- विनोद - कवीन्द्र माहौर - पृ० - 2

"राजत भारत को वर छत्र, दरिद्रता को सरताज विराजत
मार के भूखन भूसित अंग, अंग अधीनता वस्त्रन साजत
देखत दूसरी देह दशा, उपमा मजनू के शरीर को लाजत ।
देखो "स्वराज्य" में राजा किसान के, पेट में भूख की नौबत ।

माहौर जी आज के वर्तमान स्वराज्य से सन्तुष्ट नहीं हैं वह कवि जिसने असहयोग आन्दोलन में खुल कर राष्ट्रीय गीत गाये, जिसकी पुस्तकें अंग्रेजों ने जब्त की थी, आज यह देख कर खिन्न है कि उस अंवा के जिसे गाँधी जैसे कुशल कुम्भकार ने - पकाया था, खोले जाने पर सब वर्तन फूटे निकले -

वर्तन सारे अंवा के, गये सप्रेम पकाय ।
उपयोगी जिय -जानके, खोलो अंवा-सुहाय ।

+ + + +

माहुर कवि का कहें, भयो ऐसा परिवर्तन ।
चार पाँच को छोड़, कढे सब टूटे वर्तन ।।[1]

माहौर जी ने एक ओर जहाँ हास्य - व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक सुधार के कार्य किया वहीं दूसरी ओर व्यंग्य साहित्य द्वारा स्वतंत्रता की भावना को विकसित करने का पुनीत कार्य किया । ब्रिटिश गुलामी में पले क्षत्रिय राजाओं को स्वतंत्रता संग्राम की ओर अग्रसर करने हेतु माहौर जी ने "तलवार" के ऊपर व्यंग्य करते हुये जो छन्द - लिखे उनमें क्षत्रिय राजाओं की अकर्मण्यता पर स्पष्ट व्यंग्य है -

त्याग कर बैठी, हर कण्ठ का विहार अब,
दूती धर्म कर्म के न जाती कभी पास हूँ ।
नाथूराम रन में न नाचती रणांगन में,
म्यान रनवास में ही करती निवास हूँ ।।
जाके कभी सन्मुख न देखती दिखाती मुख,
मुख रख जाके बनी दिव्य गुण ग्राम हूँ ।
पूर्व के समान उपहास के न योग्य अब,
भावी वीर वंश की बकौया चन्द्रहास हूँ ।।[2]

1:- व्यंग्य - विनोद -"कुम्हार का अंवा"- कवीन्द्र माहौर - पृ०- 5
2:- अप्रकाशित - कवीन्द्र माहौर

जब अंग्रेजों के अत्याचार हो रहे थे तो उस समय परतन्त्र भारत में व्यवस्था के विरुद्ध अन्य विधाओं में कुछ भी लिखना दुष्कर कार्य था । अंग्रेजों ने स्वतन्त्रता की भावना और कामना को नष्ट करने का सुनियोजित उपक्रम किया तब साहित्यकारों के समक्ष इस बात की चुनौती थी कि कैसे देश - प्रेम की बात कहें लोगों को स्वाधीनता संघर्ष के प्रति आकर्षित करें। इस चुनौती का मुकाबला हास्य - व्यंग्य के माध्यम से किया गया । सन 1931 में माहौर मंडल की - बैठक में सुझाव दिया गया कि जो राष्ट्रीय साहित्य लिखा जाय , वह "अन्योक्ति " में लिखा जाय । इसी आधार पर माहौर जी ने "अन्योक्ति - में "गोरी बीबी " पुस्तक लिखी , जिसमें बड़ा ही क्लिष्ट हास्य है । "गोरी-बीबी " के माध्यम से कवि भारत से अंग्रेजों को शीघ्र हटाने के लिये कटिबद्ध - है --

> ब्याह के आई रही जब तें, तब देखने में थी स्वभाव की भोरी ।
> प्रीतम को बस में करके, करने लगी हाय महा बर जोरी ।।
> चोरी करी है स्वतन्त्रता की, अरी ओरी प्रतीत गई उठ तोरी ।
> ज्यादा कुचाल चली जो कहूँ तो निकार के माय में भेज है-
> गोरी ।।
>
> \+ + + + +
>
> हारे गयो सुख सागरे को, फल आसरे को सो फले नहिं ओरी ।
> चाहे जितेक उपाय करो, अब बालमें दाल गले नहिं गोरी ।।

इस प्रकार माहौर जी ने हास्य - व्यंग्य द्वारा समाज सुधार , मनोरंजन एवं नवयुवकों को स्वातन्त्र्य संग्राम की ओर अग्रसर करने का पवित्र कार्य किया ।

------------- + -------------

1:- गोरी बीबी - कवीन्द्र माहौर

(स) माहौर जी का फड़ साहित्य

परमेश्वर ने मानव को मानसिक और शारीरिक दो प्रकार की शक्तियां प्रदान की हैं । इन दोनों शक्तियों के विकास के लिये प्रतिस्पर्धा या प्रतियोगिता की वृत्ति बड़ी प्रेरक सिद्ध हुयी है । यथा, विजय और पुरस्कारों के प्रलोभनों द्वारा इस प्रतियोगिता की वृत्ति ने "ज्यों ज्यों सुरसा वदन - बढ़ावा" की भांति जितना अपना रूप बढ़ाया उतना ही विद्याओं और कलाओं में उत्तरोत्तर विकास होता गया । कविता के क्षेत्र में इस प्रतियोगिता की वृत्ति का प्रवेश एक विषय की रचनाओं तथा समस्या पूर्तियों के साथ हुआ तथा संगीत में गीत - वाद्यों में प्रदर्शित कौशल द्वारा । विक्रम, भोज, अशोक, आदि अनेक राजा महाराजाओं ने प्रतियोगिता का प्रश्रय लेकर विद्वानों और कलाकारों को प्रोत्साहित किया । आगे चलकर यही वृत्ति साधारण जनता में "फड़ बाजी" के रूप में प्रचलित हुयी ।[1] फड़ साहित्य में लोक साहित्य एवं जनसाहित्य दोनों का समावेश है । लोक साहित्य जनता के लिये जनता द्वारा रचा हुआ साहित्य है और जन साहित्य जनता के लिये व्यक्ति द्वारा रचा हुआ साहित्य है ।[2]

बुन्देलखण्ड फड़ों, कवि दंगलों और कवि सम्मेलनों का केन्द्र रहा है । यहाँ के प्रत्येक अंचल में गांवों से लेकर कस्बे तक में इस इस प्रकार के साहित्य का प्रभाव है । यह साहित्य यहाँ की साधारण जनता से लेकर विद्वानों तक का मनोरंजन तथा ज्ञान वर्द्धन करता है । फड़ साहित्य के भेदों का कुछ प्रचार तथा प्रसार बुन्देलखण्ड के बाहर भी है । जैसे फाग, ख्याल और कीर्तन के फड़ों का प्रचलन आगरा , बनारस , फर्रुखाबाद , अलीगढ़ , ग्वालियर, कानपुर आदि में है । परन्तु फड़ साहित्य के सैर , मंज , लड़ाका , बोलना और दिवारी गीतों के फड़ बुन्देलखण्ड में ही लगते हैं । फड़ साहित्य का प्रमुख प्रभाव झांसी, मऊरानीपुर छतरपुर , गुरसराय, दतिया, राठ, बरुआसागर, कालपी और महोबा

1:- मुंशी दामोदर दास खरे स्मृति ग्रन्थ - "बुन्देली फड़ साहित्य"-डा० गनेशी लाल बुधोलिया - पृ० 120 - प्रकाशक - श्रीमती सन्तोष खन्ना- मुद्रक - स्वाधीन प्रेस - जवाहर चौक झांसी

2:- ------- वही ----------

आदि स्थानों में है । फड़ साहित्य की कुछ शैलियाँ - फागें, ख्याल, लावनी , कवित्त , शेर, कीर्तन आदि जनता में अधिक प्रचलित है । फड़ साहित्य की लोकप्रियता में वाद्य , संगीत तथा नृत्य के समन्वय से चार चाँद लग गये हैं । जब इस साहित्य के प्रति प्रतिद्वन्द्वी फड़ लगते हैं तो उच्च कोटि के काव्यानन्द की अनुभूति होती है । कभी लेखिनी और कृपाण पर कभी नायिका भेद पर कभी ऋतु विशेष पर या अवसर विशेष या व्यक्ति विशेष पर जब इन दलों में साहित्यिक प्रतियोगिता होती है तो रसिक जनों को बड़ा ही आनन्द आता है[1] । फड़ - साहित्य में ओज, प्रसाद तथा माधुर्य गुण की प्रचुरता पायी जाती है । लोकोक्तियों एवं मुहावरों से सम्पन्न भाषा के प्रयुक्त होने से फड़ साहित्य में अधिक सरसता का समावेश हो जाता है ।

बुन्देलखण्ड में फड़ों की जो परम्परा रही है उनमें उस समय राष्ट्रीय कविताओं का विशेष उत्साह दिखाई देता था । ऐसे फड़ों एवं कवि गोष्ठियों में जिन पर सरकार की कोई विशेष नजर नहीं होती थी , प्रायः वीर रस की राष्ट्रीय कविताएँ हुआ करती थी । बुन्देलखण्ड के प्रमुख नगर झाँसी एवं मऊ - रानीपुर ऐसे फड़ों के विशेष केन्द्र रहे हैं । मऊरानीपुर और झाँसी में ऐसे अनेक फड़ मऊ के कविवर स्व० ख्यालीराम व्यास और स्व० घनश्याम दास पाण्डेय तथा झाँसी के स्व० कवीन्द्र नाथूराम माहौर की कवि मंडलियों के बीच होते रहते थे । न जाने कितने कवित्त , सवैये , शेर आदि इन कवियों और इनके मित्र और शिष्य मण्डली के अन्य कवियों द्वारा देश भक्तों की कीर्तिगान में पढ़े जाते थे । हजारों की संख्या में श्रोतागण रात रात भर दिन दिन भर इन्हें सुनते रहते थे । यह फड़ साहित्य प्रायः प्रकाशित होने के लिये नहीं होता था । फड़ों - में दंगली आघात , प्रत्याघात के लिये छन्द एक प्रकार से गुप्त ही रखे जाते थे और फड़ों में ही प्रतिपक्षियों और श्रोताओं को चमत्कृत करने के लिये ये छन्द पढ़े जाते थे । इन फड़ों एवं कवि सम्मेलनों की कविताओं का ढंग रत्नाकरीय आलंकारिक और चमत्कार पूर्ण होता था । इस सम्बन्ध में स्व० ख्यालीराम व्यास का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है । एक प्रकार से इन फड़ों को राष्ट्रीय -

---

1:- दैनिक जागरण- 8 अक्तूबर 1972 - "बुन्देलखण्डी फड़ साहित्य के प्रेरणा - स्रोत" - लेखक डा० गनेशीलाल बुधौलिया

काव्य की ओर मोड़ने का श्रेय प्रधानतः व्यास जी को ही है[1]।

झाँसी बुन्देलखण्डी फड़ साहित्य का प्रमुख केन्द्र रहा है । यहां पर अनेक लोक कलाकार एवं लोक साहित्यकार हुये हैं । झाँसी के वयोवृद्ध कवि स्व० कवीन्द्र नाथूराम माहौर फड़ साहित्यके आचार्य थे । वे लोक काव्य तथा शिष्ट काव्य दोनों ही सफलता पूर्वक लिखते थे । "माहौर कवि मण्डल" के नाम से उनके पास साहित्यकारों का एक दल था जिनके कुछ प्रमुख सदस्य - श्री रामचरण ह्यारण मित्र , श्री सेवकेन्द्र त्रिपाठी , श्री द्वारिकेश मिश्र आदि आज भी झाँसी में अपनी अजस्र काव्यधारा प्रवाहित कर रहे हैं । माहौर जी प्राचीन परिपाटी के मर्मी साहित्यकार थे । आप मदनेश जी के शिष्य थे । मदनेश जी ने बुन्देलखण्डी फड़ साहित्य की परम्परा में माहौर जी को तैयार किया एवं उन्हें अपने आप से स्पर्द्धा करने के लिये प्रेरित किया । मदनेश जी एवं माहौर जी की कवि मंडलियों के बीच मोहन लाल जी के मन्दिर एवं मुरली मनोहर के मन्दिर आदि स्थानों में कवित्तों की बैठकों को झाँसी के वय प्राप्त लोग आज तक बड़ी ही रसमयता से याद करते हैं ।

रामलीला समाज के समाप्त हो जाने के बाद माहौर जी को अपनी काव्य प्रतिभा की अभिव्यक्ति के लिये क्षेत्र कवि दंगलों या फड़ों में मिला । माहौर जी की कपड़े की दुकान थी । रात्रि में प्रायः आठ नौ बजे बाजार की दुकानें बंद हो जाने के बाद माहौर जी अपने शिष्य एवं मित्र मण्डली को लेकर दुकानों के चबूतरों पर एकत्र हो जाते और प्राचीन एवं नवीन कवियों की कविता का रसास्वादन करते । काव्यानुरागियों के इस आत्मीयता और सद्भावनापूर्ण वातावरण से सिंचित होकर माहौर जी का काव्य पल्लवित पुष्पित और फलित हुआ । विशेष त्यौहारों और पर्वों पर ऐसी कवि गोष्ठियां प्रायः होती रहती थीं । माहौर जी की कीर्ति धीरे धीरे झाँसी से बाहर भी फैली और बुन्देलखण्ड के दतिया , चरखारी , टीकमगढ़ , मऊरानीपुर आदि के जन कवि माहौर जी से सम्पर्क में आने लगे और कवि गोष्ठियाँ होती रहीं । इन कवि गोष्ठियों ने कवि दंगलों या "फड़ों" का रूप धारण कर लिया । फिर तो ये कवि दंगल या "फड़" चेलेन्ज के रूप में भी होने लगे । इस सम्बन्ध में झाँसी और मऊरानीपुर - की जनता मऊरानी पुर के स्व० घासी राम व्यास और स्व० घनश्याम दास पाण्डेय की कवि मण्डलियों के साथ हुये झाँसी के माहौर जी की कवि मण्डली -

के फड़ों को आज भी स्मरण करती है । झाँसी और मऊरानीपुर में सैरोंओर कवित्त सवैयों के कितने ही फड़ समय समय पर होतेरहेहैं।

फड़ साहित्य में आशु कविता का भी प्रयोग होता था । इसके लिये प्रत्येक दल में एक न एक आशु कवि होता था । इसके बिना काम भी नहीं चलता क्योंकि प्रश्न का उत्तर फड़ में अपेक्षित होता है उत्तर के अभाव में दल की हार हो जाती है । यह बात फागों , ख्यालों और कीर्तन आदि सभी प्रकार के फड़ों के लिये लागू होती है । इन फड़ों या कवि दंगलों में मोर्चा बन्दी होती थी । जिसने ख्याल लिखा है इस बात की जानकारी के लिये उभय पक्ष के कवि जासूस भी अपना काम करते हैं ताकि उसके जवाब पहले से ही तैयार कर लिये जाये और फड़ में जवाब पर जवाब दिये जा सके । इन जवाबी सैरों , कवित्त सवैयों से जनता का बड़ा ही मनोरंजन होता था । एक पक्ष कवित्त और सवैयों में ही दूसरे पक्ष के लिये समस्यायें प्रस्तुत करता तो दूसरा पक्ष तत्काल आशु कविता द्वारा उन समस्याओं की पूर्ति गाता हुआ करता उदाहरण के लिये मऊरानीपुर के व्यास जी की पार्टी से "घूंघट" पर मुग्धा या मध्या नायिका के वर्णन का कोई कवित्त गाया गया जिसकी अन्तिम पंक्ति थी -

" ....घूंघट के खोलबे की लालसा बन रही ।"

तो माहौर जी की पार्टी से तुरन्त उसका जवाब उसी प्रकार की नायिका के वर्णन का कवित्त गाकर दिया जाता -

सीख को अनीख सीख अब ना सिखाओ सीख ,
सीख लीनो सीख सोई सीख में लहा करौं ।
मन ते कान नहिं करोगी कुल कान कान,
कान में लगायें कान कान सों रहा करौं ।
नाथूराम मांचौं अनुरागो अब पागो प्रेम,
प्रेमी कुल प्रेम के प्रवाह में बहा करौं ।
घूंघट आय हट देत है उठाय पट ,
हट में बसी है छवि घूंघट कहा करौं[2] ।

1:- माहौर अभिनन्दन ग्रन्थ- माहौर जी और उनकी काव्य साधना - डा० भगवान दास माहौर - पृ० - 20

2:- श्रृंगार वागीश - कवीन्द्र माहौर :अप्रकाशित :

ऐसे कवित्तों को सुनकर लोग रस विभोर हो जाते थे। यमक एवं अनुप्रास की छटा युक्त प्रस्तुत कवित्त में माधुर्य एवं प्रसाद गुण का आनन्द मन में सरसता उत्पन्न कर देता है। इसी प्रकार यदि मऊ वालों की ओर से खंडिता नायिका को सामने लाते हुये उसके कोप सूचनार्थ यह उक्ति प्रस्तुत की जाती -

"आगे धरे लालन के पीकवा सुलालन के"।

तो माथोर जी की पार्टी की ओर से लाल "चिड़िया" का उपयोग करते हुये कुलटा नायिका प्रस्तुत की जाती -

"त्यागि घर बाग और बाग बन बाग बाग,
　　करि अनुराग प्रेम पागि फल चाहे हैं।
मुख अरविन्द पै मलिन्दन के वृन्द आन,
　　कीनों मकरन्द पान कैध अभिलाखे हैं।
नाथूराम विषद विशाल, छवि जाल डाल,
　　फाँसि यह लाल ताल हेरि मन माहे हैं,
करि करि चाल टाल बाल मन पींजरा मैं,
　　कैसे छर छालि छालि लाल पाल राखे हैं।"[1]

इसी प्रकार सेरों के फड़ों में स्व० घनश्यामदास पाण्डे जी को पार्टी से लड़कियों के चपेटा खेलने का वर्णन करते हुये पांच चपेटाओं को लेकर सेर गाये गये तो माथोर जी ने नौ चपेटाओं से खेलने का वर्णन किया और उपमा उत्प्रेक्षा एवं सन्देह अलं-कारों की झड़ी लगा दी -

नवल बाल सुकुमार तन, सुषमा सकल सकेल।
नव दुर्गा सी दिव्य नव, रहीं चपेटा खेल।।
　　नव निधि के प्रतिरूप सिद्ध सुभग तन
　　नवखण्ड की विभूति के विहरैं अखण्ड कन
　　कधौं है ओज के अनूप दिव्य नव रतन
　　राधे के संग खेलें नव बाल चपेटन

1:- श्रृंगार वागीश - कवीन्द्र माथोर - :अप्रकाशित :

किधौं रंगे भये हैं नव ग्रह के रंगन
नव अंक रचे मनमथ ने किधौं कर जतन
नव भक्ति भावना के किधौं रूप सिरोमन
राधे के संग खेलें नव बाल चपेटन

नव दुर्गा नवरात्रि सरिस दिखै दस दिसन
जोवन की नव नायिका समान प्रान धन
मण्डित मनोज्ञ नव गुन के लखे गुनी जन
राधे के संग खेलें नव बाल चपेटन

कवि "माहुर" नव रच सदा छन्द प्रबंधन
नव नव के कहौ सेर आज फड़ में कवीजन
नव रस का किधौं नित उतारती हैं नत करन
राधे के संग खेलें नव बाल चपेटन[1]।

इन फड़ों में विनोदी जन कभी कभी व्यंजना, संकेतों, समासोक्तियों और अन्योक्तियों से एक दूसरे के प्रति व्यक्तिगत आक्षेप भी करने लगते थे। ये व्यक्तिगत आलोचनायें रसाभास का दृश्य उपस्थित कर देती थी उदाहरणार्थ ऋतु पर माहोर जी के दल की ओर से जो कवित्त पढ़ा गया उसकी अन्तिम पंक्ति इस प्रकार थी -

"खण्ड हो गये घमण्ड घनश्याम के"

पाण्डेय जी "घनश्याम" का श्लिष्ट अर्थ ग्रहण कर व्यक्तिगत आक्षेप समझ कर आवेश में आ जाते हैं और उनकी लेखिनी गतिमान हो उठती है -

"माहुर की भगिनी भई चेरी घनश्याम की।"

माहुर :विष: की बहिन लक्ष्मी का घनश्याम :विष्णु: की चेरी हो जाना तो सत्य है परन्तु प्रत्युत्तर के रूप में कवित्त का मुख्यार्थ गाली हो जाने के कारण झगड़ा हो जाने की स्थिति तक आ जाती थी तब "व्यास" जी को शान्ति पाठ पढ़ना पड़ता था। इसी प्रकार यदि फड़ में घनश्याम दास पाण्डेय की ओर से कथा वर्णन की आड़ में स्वपक्ष की जीत का दावा संकेत से करते हुये कवित्त के -

---

1:- अप्रकाशित स्फुट छन्द - कवीन्द्र माहोर

अन्तिम चरणार्द्ध में गर्वोक्ति की जाती थी कि -

"........... औसत गनीम को पछाड़ा घनश्याम ने ।"

तो माहौर जी के पक्ष से उस जीत के दावे और गर्वोक्ति का उत्तर शरद वर्णन के मिस इस प्रकार दिया जाता -

"दल हू बिमान ते वे गरब गुमान भरे ।
नाम हू निशान घनश्याम के चले गये ।"

पंक्तियों की ऐसी काट छाँट और दाव पेंचों में ही कवि दंगलों और फड़ों का आनन्द दायक समा बंधता है ।[1] कवीन्द्र माहौर एवं पाण्डेय जी के उत्तर - प्रत्युत्तर में हुये ऐसे अनेक कवित्त आज भी उनके शिष्यों को कण्ठाग्र हैं । कभी - कभी फड़ों में व्यक्तिगत आक्षेप काफी निम्न स्तर तक पहुँच जाते लेकिन फिर भी उभय पक्ष में कोई अनुचित , अशिष्ट कटुता या वैमनस्यता नहीं आने पाती । यदि घनश्याम दास पाण्डेय की ओर से माहौर जी के पराजित होने का संकेत मीरा के विषपान करने के वर्णन के शेरों में"....... मीरा माहुर - अब गये" ऐसी पंक्ति में किया जाता तो माहौर जी की ओर से उसका प्रतिकार शेरों में ही ऐसी पंक्तियों से किया जाता -

"मीरा को मिले मोहन माहुर की कृपा से "

यहाँ "माहुर" का अर्थ है विष । यदि घनश्याम जी की ओर से घनश्याम को फर्श पर रस वर्षा करते हुये बताया जाता जिससे माहुर :महावर : का फर्श पर रंग फीका पड़ते दिखाया जाता तो माहुर जी की ओर से कुछ कम उत्पात की बात नहीं कही जाती । वे घनश्याम की "चाम" को भी मढ़ाने को तैयार हो जाते । माहौर जी के दल वाले चंग वाद्य यंत्र बजाकर बड़े ही मजे से गाते-

"मन भावन को सावन में दरसन पैहौं,
पावस संगीत प्रीति रीति रुचिर रचैहौं ।
कल कुण्डल कल कण्ठन को गान गैहौं ,
घनश्याम की मुदाम दाम चाम मढ़ैहौं ।।"

1:- अप्रकाशित - कवीन्द्र माहौर

इतना होते हुये भी फड़ों के बाद मासोर जी एवं पाण्डेय जी बड़े ही सद्भाव एवं प्रेम से एक दूसरे से गले मिलते ।

बुन्देलखण्ड में कवित्त , सवैया , शैली में शिष्ट साहित्य के भी फड़ों का सुन्दर प्रचलन था और आज भी कुछ स्थानों में इसकी परम्परा चल रही है । झाँसी , मऊरानीपुर , छतरपुर तो इसके गढ़ हैं वैसे जालौन , कौंच , कालपी में भी इसका रिवाज रहा है । फड़ के कवित्त साहित्य के आचार्यों में स्व० नाथूराम माहौर :झाँसी : स्व० घासीराम व्यास , स्व० घनश्याम दास पाण्डे, स्व० नरोत्तम पाण्डेय , :मऊ रानीपुर : गंगाधर व्यास , हरिदेव गुप्त - :छतरपुर : चतुर्भुज पाराशर :कुलपहाड़ : आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । इन आचार्यों ने एक - एक विषय पर उच्चकोटि के उत्तम कवित्त लिखे । साहि - त्यिक मूल्य के सैकड़ों की संख्या में कवित्त इनमें से अनेक कवियों ने लिखे । कवीन्द्र नाथूराम माहौर ने अपने फड़ साहित्य को कभी लिपिबद्ध नहीं किया । वे कवितायें मुखाग्र ही रचते रहे और अपने शिष्यों को याद कराने के लिये सिखाते रहते थे एक भी प्रतिलिपि अपने पास सुरक्षित नहीं रखते थे अतएव माहौर जी की इस असावधानी से और शिष्यों की लापरवाही से माहौर जी का बहुत सा साहित्य नष्ट हो गया ।

--------------- + ---------------

पंचम अध्याय

माहौर जी की काव्य कृतियों में रसपरिपाक :-

प्राचीन आचार्यों ने काव्य में रस की महत्ता को स्वीकार करते हुये, इसको काव्य की आत्मा माना है । रस वह चमत्कार पूर्ण आनन्द है जो व्यक्ति के हृदय को तन्मय कर लेता है । दूसरे शब्दों में काव्य के पढ़ने से सहृदय को जो आनन्दानुभूति होती है वही रस है । रस से युक्त वाक्य ही काव्य कहलाने योग्य है[1] । रस का मूल है भाव । भावों के वैविध्य के साथ रस में वैविध्य की स्थिति आती रहती है । भावों का सम्बन्ध रसों से है, जो काव्य की चरम परिणति हैं । भावों की संख्या के आधार पर ही रसों की संख्या का निर्धारण होता है । भाव और रस के सम्बन्ध में बाबू गुलाब राय का मत दृष्टव्य है - "विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से मिलकर वासना रूप :संस्कार रूप : स्थायी भाव जब अपनी व्यक्त और पूर्ण परिपक्वावस्था को पहुंचता है, तब वह आत्मा की सहज सात्विकता के कारण रस का आनन्दमय रूप धारण कर लेता है"[2] ।

रस के लिये चार वस्तुयें अपेक्षित हैं - स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव । स्थायी भाव से तात्पर्य है स्थिर एवं सबल मनोवृत्ति । रस स्थायी भाव की परिपक्वावस्था है । स्थायी भाव उस स्थिर अवस्था को कहते हैं जो अन्य सभी परिवर्तन शील अवस्थाओं में व्याप्त सी रहती हुई उन अवस्थाओं में दब नहीं जाती वरन उनसे पुष्ट होती रहती है । अन्य शब्दों में मुख्य भाव को स्थायी भाव कहते हैं । अन्य भाव इन भावों के सहायक एवं उद्दीपक होते हैं[3] । ये स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों द्वारा व्यक्त होकर रस बन जाते हैं[4] । "जो व्यक्ति, पदार्थ, वाह्यपरिस्थि-

---

1:- वाक्यं रसात्मकं काव्यम - साहित्यदर्पण - विश्वनाथ

2:- सिद्धान्त और अध्ययन-:द्वितीय संस्करण : बाबू गुलाब राय-पृ-115

3:- नव रस, बाबू गुलाब राय द्वितीय संस्करण : पृ0- 29

4:- नव रस बाबू गुलाब राय :द्वितीय संस्करण : पृ0- 32

विकार, मानसिक भावों को उत्पन्न करते हैं उनको विभाव कहते हैं। विभाव के दो भेद होते हैं - 1:- आलम्बन विभाव, 2:- उद्दीपन विभाव। जिसका अवलम्बन ग्रहण कर भाव जाग्रत होते हैं वही आलम्बन होता है, जिन बातों से जाग्रत भाव उत्तेजित होता है, उन्हें उद्दीपन कहते हैं। आलम्बन के प्रति किसी भाव के उत्पन्न होने पर आश्रय के शरीर में कुछ विशेष चेष्टायें दिखलायी पड़ने लगती हैं। उसके मुख से वचन भी कुछ विशेष ढंग से निकलने लगते हैं इन्हीं चेष्टाओं और वचनों के द्वारा हम आश्रय के हृदयस्थ भावों की सूचना पाते हैं। इन्हीं :चेष्टाओं और वचनों: को अनुभाव कहते हैं[1]।

अनुभाव भावानुभूति के अनुभव हैं अर्थात उसके व्यक्त प्रभाव हैं जैसे- भ्रूक्षेप, निगाहि, कटाक्ष इत्यादि[2]। संचारी अथवा व्यभिचारी वे अस्थायी भाव हैं जो क्षण क्षण में उठ गिर कर स्थायी भाव की पुष्टि करते हैं। स्थायी भावों को हम जल कह सकते हैं जो नदी या सरोवर में स्थायी रूप से रहता है और इन क्षणकालीन संचारी भावों को जल में उठने वाली लहरें कह सकते हैं जिनका अस्तित्व क्षणिक होता है। ये अवसर पाकर उठते हैं और फिर उसी स्थायीभाव में विलीन हो जाते हैं[3]। संचारीभावों की संख्या तैंतीस मानी गयी है।

रस का सामान्य विवेचन करने के उपरान्त हम मालवेन्द्र जी के काव्य में विभिन्न रसों की स्थिति का विवेचन करेंगे।

1:- श्रृंगार रस :-

श्रृंगार रस को सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख रस मानते हुये प्राय: सभी आचार्यों ने रस राज की संज्ञा प्रदान की है। बाबू गुलाब राय श्रृंगार को रसराज मानते हुये लिखते हैं -" इस रस की तीव्रता, विस्तार शक्ति और प्रभाव -

---

1:- काव्य प्रदीप- रामबहोरी शुक्ल :तेरहवां संस्करण : पृ0- 53

2:- रीतिकाव्य भूमिका- डा0 नगेन्द्र :द्वितीय संस्करण : पृ0- 36

3:- काव्य प्रदीप - रामबहोरी शुक्ल :तेरहवां संस्करण : पृ0- 56

शालिता अन्याय सभी रसों से बढ़ी चढ़ी है[1] । " यह रस अपनी व्यापकता गम्भीरता एवं उन्नतता के कारण सर्व श्रेष्ठ कहलाता है । शास्त्रीय आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक सभी दृष्टिकोणों से श्रृंगार की महत्ता स्वीकार की गयी है । "श्रृंगार शब्द" , "श्रृंग" और "आर" दो शब्दों के द्वारा निर्मित हुआ है । "श्रृंग" का अर्थ है "काम" और "आर" का अर्थ है "प्राप्ति" अर्थात जिसके द्वारा काम भावना की उत्पत्ति हो वही श्रृंगार रस है । हृदय में काम भावना का विकास जिस आधार पर होता है वही श्रृंगार कहा जाता है[2] । आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने कहा है कि श्रृंगार का इतना अधिक विस्तार हिन्दी साहित्य में हुआ कि इसके एक एक अंग को लेकर स्वतन्त्र ग्रन्थ रचे गये[3] । पण्डित रामदहन मिश्र ने श्रृंगार के रस राजत्व के कारणों का उल्लेख करते हुये लिखा है - "श्रृंगार की व्यापकता इतनी है कि इसकी सीमा का बोध निर्धारित नहीं कर सकता । पाठकों और दर्शकों को जितनी अनुभूति श्रृंगार में होती है उतनी और किसी रस में नहीं होती "[4] । श्रृंगार रस के दो भेद किये गये हैं -

1:- संयोग श्रृंगार

2:-वियोग श्रृंगार या विप्रलम्भ श्रृंगार

संयोग श्रृंगार :-

जिस स्थल पर विशेष रतिरूपी - स्थायी भाव प्रिय के संयोग से परिपुष्ट होकर विविध अनुभावों तथा संचारियों द्वारा प्रकट होता है वहां संयोग की स्थिति होती है[5] । संयोग के वर्णन के अन्तर्गत आलम्बन और आश्रय के पारस्परिक हास - परिहास , आलिंगन , चुम्बन, संयोग आदि के सभी व्यापार आ जाते हैं जिनसे उनका मानसिक और शारीरिक नैकट्य प्रकट होता है । श्रृंगार-

---

1:- नवरस :द्वितीय संस्करण : पृ०- 133 - 36

2:- काव्यकल्पद्रुम :प्रथम भाग : रस मंजरी-सेठ कन्हैयालाल पोद्दार-पृष्ठ- 179

3:- हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - पृ०- 237

4:- काव्य दर्पण - पृ०- 170 - पं० रामदहन मिश्र

5:- काव्य शास्त्र - डा० भगीरथ मिश्र - पृ०- 253

रस का स्थायी भाव रति या प्रेम है ।

आलम्बन :विभाव : के अन्तर्गत उत्तम प्रकृति अर्थात श्रेष्ठ गुणों , रूप , चिर साहचर्य से युक्त नायक या नायिका आते हैं ।

ख:- उद्दीपन :विभाव : नायक या नायिका की वेश भूषा विविध चेष्टायें आदि आलम्बन उद्दीपन हैं और चन्द्र चांदनी चन्दन वसन्त आदि ऋतु , सुरभित पवन एकान्त स्थल , पक्षियों का कलरव, वाटिका , भ्रमर गुंजार आदि वाह्य उद्दीपन हैं ये वर्हिगत उद्दीपन संयोग दशा में आनन्द कराते हैं और वियोग में दुःख को बढ़ाने वाले होते हैं ।

ग:- अनुभाव :-

आश्रय का अनुरागपूर्ण आलाप, अवलोकन , स्पर्श , आलिंगन , चुम्बन, भृकुटि-भंग, कटाक्ष , अश्रु , वैवर्ण्य आदि ।

घ :- संचारी भाव -

संचारी भावों की संख्या तंतीस मानी गयी है । श्रृंगार के सुखात्मक और दुखात्मक दो पक्ष होते हैं । इससे जो आलस्य , उग्रता, जुगुप्सा, मरण संचारी संयोग श्रृंगार में नहीं आते वे भी वियोग में आ जाते हैं । अतएव इसमें सब प्रकार के संचारी भाव आ सकते हैं ~~इसमें सब प्रकार के संचारी भाव आ सकते~~ हैं अन्य किसी रस में सब संचारी नहीं आ सकते । इस रस का शासन सभी संचारियों पर होता है इसी से इसे रसराज कहते हैं[1] ।

माहौर जी के काव्य में श्रृंगार के विविध वर्णमय बहुरंगे शब्द चित्रों की सुन्दर योजना है । संयोग की अपेक्षा वियोग श्रृंगार के चित्र कम हैं । माहौर जी द्वारा रचित "श्रृंगार-वागीश" श्रृंगार रस का उत्कृष्ट उदाहरण हैं । श्रृंगार रस से परिपूर्ण इस अप्रकाशित ग्रन्थ में श्रृंगार का पूर्ण परिपाक इसमें देखा जा सकता है नायिकाओं के हाव- भाव, अनुभाव आदि का चित्रण तो बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ माहौर जी ने किया है । श्रृंगार परक रचनाओं में वीर वधू , गोपी उद्धव संवाद, षड्ऋतु दर्पण वेतवा बत्तीसी, रम्भा शुक संवाद आदि प्रमुख हैं । माहौर

1:- काव्य प्रदीप - रामबहोरी शुक्ल - पृ0- 66

जी के विभिन्न ग्रन्थों में श्रृंगार की अभिव्यंजना निम्नलिखित कतिपय उदाहरणों द्वारा परिपुष्ट की जा सकती है ।

रीति परिपाटी के अन्तर्गत विभिन्न ऋतुओं का जो उद्दीपन के लिये प्रयोग किया जाता है उसमें प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों को सुखदायी अथवा दुख - दायी रूप में नायक अथवा नायिका को प्रभावित करते हुये चित्रित किया जाता है । गाबोर जी ने भी रीति परिपाटी का अनुगमन करते हुये ऋतुओं का उद्दीपन स्वरूप चित्रित किया है विभिन्न ऋतुओं से नायक अथवा नायिका को प्रभावित दिखलाते हुये श्रृंगार रस की बड़ी ही सुन्दर व्यंजना की है । वर्षा ऋतु में नायिका के हृद्गत भावों की कैसी सुन्दर व्यंजना निम्न छन्द में की गयी है -

> सावन में साबो सुख देन घन श्याम संग ,
>
> रंग घन श्याम अंग अंग उहरत है ।
>
> हेरत हरत हीय भरत अनन्द मूर ,
>
> उहर उहर छवि भूतल परत है ।
>
> नाथूराम सुषमा समेट ले समग्र अंग
>
> नीलमणि उग्र प्रभा पुंज निदरत है ।
>
> चित्रित विचित्र अरविन्द पै तिलाको वीर
>
> नूतक मलिन्द नृत्य नाद सो करत है[1] ।

यहाँ स्थायी भाव रति है । आलम्बन विभाव - नायक । आश्रय - नायिका । उद्दीपन के अन्तर्गत घनश्याम एवं "मलिन्द" को लिया गया है । अनुभाव - कायिक अनुभाव - अवलोकन :हेरत : सात्विक अनुभाव यहाँ "अंग का उलसना" है । संचारी भाव - हर्ष । समस्त उपकरण उपस्थित होने के कारण पूर्ण संयोग श्रृंगार है । गाबोर जी के नायिका भेद वर्णन में श्रृंगार रस की छटा चरम उत्कर्ष पर दिख - लायी देती है । नायिका के हाव - भाव के वर्णन में गाबोर जी सिद्ध हस्त हैं । उदाहरण के लिये गाबोर जी द्वारा चित्रित मध्या नायिका का एक चित्र देखा जा सकता है जिसमें नायिका की बड़ी ही विषम स्थिति है उसके हृदय में लज्जा और कामेच्छा दोनों समान रूप से हैं । एक ओर प्रेम का प्रभाव उसे -

---

1:- षड्ऋतु दर्पण - वर्षा वर्णन - गाबोर - :अप्रकाशित :

पति के पास से हटने नहीं देता तो दूसरी ओर लज्जा का भाव स्पष्ट रूप से हृदयगत भावों को प्रकट नहीं होने देता -

अड़ अड़ जात, लाज गड़ गड़ जात,

नैन तन कढ़ जात जोति जोबन उमंग की ।

भृंग मंडरात ज छोड़त न अंग संग ,

अंग की सुरुचि छवि हरन अनंग की ।

नत्थूलाल बाल रूप रंग की तरंग देख ,

संग की सहेली कथा पूछे रस रंग की ।

सुन सकुचात मुख मोर मुसकात जात ,

नैकन बतात बात रात के प्रसंग की[1] ।

उपर्युक्त चित्र में लाज और रतिराज दोनों का कामिनी पर समान प्रभाव है । यहाँ नायिका आलम्बन है - नायक - आश्रय है । नायिका के "अड़ अड़ जात" "लाज गड़ गड़ जात नैन" क्रमशः सात्विक अनुभाव विशेष दृष्टव्य हैं । हर्ष व्रीडा एवं अवहित्थ संचारियों से पुष्ट संयोग श्रृंगार है । यहाँ अवहित्था संचारी विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

सम्पूर्ण रसांगों से पुष्ट श्रृंगार का एक और उदाहरण षड्ऋतु दर्पण में देखा जा सकता है -

देखन बहार नव छवि सुकुमारि नारि,

लाज के सिंगार अंग सोभा सरसायो है ।

ताही छन छन की घुमण्डित घटान लागी ,

दादुर रटान लागी लगन सहाई है ।

नाथूराम पावस प्रसंग में उमंग भरी ,

संग में परोसिन के पिपिन सिधाई है ।

बैन सों प्रवेश कियो ध्याय के त्रिनैन बाल ,

चातक के बैन सुन लौट गई आई है[2] ।

1:- श्रृंगार वागीश - माहौर

2:- षड्ऋतु दर्पण - माहौर अप्रकाशित

1:- स्थायी भाव - रति

2:- आलम्बन भाव - नायक

3:- आश्रय - नायिका

4:- उद्दीपन विभाव - घटाओं का घुमड़ना, दादुर का बोलना, सावन के रैन - सुहावना मौसम ।

4:- अनुभाव - नायिका का विपिन प्रस्थान एवं गृह लौट आना आदि ।

5:- संचारी - हर्ष , स्मरण ।

प्रस्तुत उद्धरण में माधोर जी ने नवोढा नायिका का वर्णन करते हुये पावस को उद्दीपन में रूप चित्रित किया है । उद्दीपन रूप में माधोर जी का पावस वर्णन विशेष रूप से दर्शनीय है । इसमें प्रकृति का स्वाभाविक एवं चित्रोपम वर्णन भी देखा उसके साथ साथ उसके उद्दीपन स्वरूप का संकेत भी । सप्रयोजन प्रकृति वर्णन :उद्दीपन के लिये , का एक नूतन प्रयोग माधोर जी ने उपर्युक्त छन्द में किया है ।

माधोर जी की "वीर वधू" शृंगार रस की अनुपम कृति है । इसमें कवि ने शृंगार के साथ वीर रसका अद्भुत समन्वय किया है । एक ही स्थान पर शृंगार और वीर के आलम्बन उद्दीपन आदि को एक साथ प्रदर्शित करना दुष्कर कवि कर्म है परन्तु माधोर जी को वीर वधू में इस क्षेत्र में सफलता मिली है उन्होंने बड़ी ही कुशलता के साथ यदि प्रथम पंक्ति में शृंगार का आलम्बन दिखाकर रति भाव को जाग्रत किया तो उसी स्थान पर द्वितीय पंक्ति वीर रस के आलम्बन का द्योतक करते हुये "उत्साह" नामक स्थायी भाव को उद्भूत करती है जो कि माधोर जी की मौलिक उद्भावना की परिचायक है ऐसे वर्णन साहित्य में कहीं भी देखने को नहीं मिलते हैं । "वीर वधू" में नायिका की नाक" का वर्णन कवि इस प्रकार करता है -

"लाजे निसिदिन सुक समाज लखि सुघर नासिका साजे ।
तुल्य कालिका अग्नि ज्वालिका, जनु खिन्नासिका राजे ।
दिगदिगन्त भारत प्रताप की नाक नाक राखी है ।
बढ़े नाक के किये नाक बिनु, नाक लोक साखी है[1] ।

1:- वीर वधू - कवीन्द्र माधोर - नासिका वरनन

यहाँ नायिका की नाक का वर्णन प्रथम पंक्ति में कवि ने परम्परागत किया है आलम्बन नायिका की नाक की सुन्दरता को देखकर "रति" स्थायीभाव जाग्रत होता है शुक का लज्जित होने का भाव नासिका के सौन्दर्य को द्विगुणित करता हुआ उद्दीपन का कार्य करता है । इस प्रकार प्रथम पंक्ति शृंगार भाव का दिग्दर्शन करती है । द्वितीय पंक्ति में कवि ने "नासिका" के सौन्दर्य को "दुनाली" में परिवर्तित कर "उत्साह" स्थायी भाव जाग्रत कर वीर रस की अवतारणा की है । यहाँ पर - माहौर जी ने अप्रत्यक्ष रूप से आश्रय माना है भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम की देवी महारानी लक्ष्मी बाई को । लक्ष्मी बाई ने दशों दिशाओं में भारत की प्रतिष्ठा स्थापित करते हुये बड़े बड़े "नक्क" को "नाक विहीन" कर दिया । आलम्बन - बड़े नाक वाले : नक्क : , शत्रु उद्दीपन - द्विनालिका :बन्दूक : इस प्रकार हम देखते हैं कि "वीर-वधू" के उपर्युक्त छन्द में शृंगार और वीर दोनों का समावेश एक साथ करने में माहौर जी सक्षम रहे हैं ये कवि की विशिष्टता का द्योतक है ।

शृंगार के माध्यम से जन मानस के देश के प्रति कर्त्तव्य की भावना से आपूरित करना, कवि की नूतन उद्भावना है , मार्मिक है , समयानुरूप है । इसमें रीति कालीन परिपाटी का नूतन उपयोग कर कविने मौलिक उद्भावना शक्ति का परिचय दिया है -

सुथरे कपोलन प बिथुरे सुदेस केस ,
मानो ससिमण्डल में राहु से निराले हैं ।
बाल के मयंक मुख [illegible] पै मयंक मनो,
काढ़ के कलंक कर तार तार डाले हैं ।
चौके चित चोर चारु चंचलान चकृत पै ,
फल फल मेढ़ मानो मदत उबाले हैं ।।
"नाथूराम" जीतन अनंग जंग वाले वीर ,
मानो कर तोप बढ़े गोरों पर काले हैं [1] ।

1:- शृंगार वागीश - माहौर

नायिका के कपालों पर बिखरे हुये केशों के माध्यम से कवि ने राष्ट्रीयता की कितनी मनोहारी , स्वाभाविक अभिव्यंजना की है । मूल रस है श्रृंगार जिसमें तिरोहित है वीरता पूर्ण राष्ट्रीयता का भाव । नायिका के गोरवर्ण कपोलों में "गोरों" :अंग्रेजों : की और बिखरे केशों में "कालों" : भारतीयों : की कल्पना कवि की विशिष्ट प्रतिभा का परिचायक है । रीतिकालीन परिपाटी का अनुपालन किया गया है , साथ ही वर्तमान परिस्थिति सापेक्ष भी है । समयानुकूल जन मानस में राष्ट्रीय भाव जाग्रत करना कवि धर्म था कवि ने अपने धर्म का पालन करते हुये , कवि कर्म का भी पूर्ण निर्वाह किया है ।

विप्रलम्भ श्रृंगार :-

श्रृंगार रस के वर्णन में वियोग का पक्ष अधिक व्यापक होता है । वियोग पक्ष को कवियों और आचार्यो ने वियोग या विप्रलम्भ श्रृंगार कहा है[1] । वियोग श्रृंगार के अधिक व्यापक होने के मूल के दुख की व्यापक भावना निहित है । संयोग प्रेम का स्थूल पक्ष है तो वियोग उसका सूक्ष्म पक्ष । संयोग अन्त: करण का संकोचक है और वियोग उसका विस्तारक ।

संस्कृत साहित्य शास्त्रियो ने विप्रलम्भ के वर्गीकरण में चार अथवा पाँच भेद किये हैं । मम्मट ने इसके पाँच भेद माने हैं - अभिलाषा , विरह, ईर्ष्या , प्रवास और शाप । साहित्य दर्पण कार ने इनकी संख्या पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण करके चार ही मानी है बाद के अन्य आचार्यों ने विप्रलम्भ के चार भेदों को ही स्वीकार किया ।

पूर्वराग प्रेमी और प्रेम पात्र के प्राक् संयोग की स्थिति है । मिलन से पूर्व प्रत्यक्ष श्रवण , चित्र या स्वप्न दर्शन से उत्पन्न अनुराग को पूर्वानुराग कहते हैं[2] । विप्रलम्भ श्रृंगार की दूसरी स्थिति "मान" की होती है । प्रियतम के प्रेम का कोई अन्य केन्द्र समझ जब नायिका प्रणय मिश्रित कोप करती है तब ऐसी स्थिति-

---

1:- काव्य दर्पण- रामदहन मिश्र - पृ0- 234

2:- काव्यशास्त्र - डा0 भगीरथ मिश्र - पृ0- 256

मान की स्थिति कहलाती है । प्रिय के विदेश जाते समय वियोगिनी की स्थिति प्रवास विरह कहलाती है । इसके तीन भेद होते हैं - भूत प्रवास , वर्तमान प्रवास और भविष्य प्रवास । जब वियोग पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है तब उसे करु - णात्मक कहा जाता है । पूर्वराग और प्रवास दोनों ही करुणात्मक हो सकते हैं । करुण विरहावस्था और करुण रस में अन्तर यह है कि "जब नायक नायिका की मृत्यु का मिलन की असंभवता पर रति की प्रतीति होती है तब करुण विप्रलम्भ होता है और करुण रस में ऐसी बात नहीं होती[1] । जहाँ इस वियोगावस्था में रति भाव का एकान्त अभाव होता है , वहाँ करुण श्रृंगार न रह कर शुद्ध करुण रस बन जाता है[2] ।

कवीन्द्र माहौर के काव्य में श्रृंगार के वियोगपक्ष को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । उनके काव्य में संयोग के जितने चित्र हैं अपेक्षाकृत वियोग के उतने नहीं हैं । माहौर जी ने विरह के जो भी चित्र खींचे हैं वे अत्यन्त मार्मिक और हृदय हारी हैं । विप्रलम्भ के उपर्युक्त भेदों पूर्वानुराग , मान, प्रवास और करुण का माहौर जी ने अपने काव्य में वर्णन किया है । पूर्वानुराग के प्रत्यक्ष दर्शन के अन्तर्गत माहौर जी ने नायिका की व्याकुलता का कैसा स्वाभाविक चित्रण किया है -

चलत न फेर पैर, फेर में परो है मन,

फेर फेर चौंक, एक फेर के निहारेनौं ।

करत अंजन खन मन, भरे मन ऐन ,

रैन दिन लागी रहे न्यारे मतवारे सों ।

लाज है कलक मन लोक निहारे लिनु ,

पलक लगे ना पल पलक किनारे सों ।

अटक परी है चित्त चटक परी है अब ,

अटक रह्यो है मन मोर मुकुट वारे सों[3] ।।

1:- काव्य दर्पण - रामदहन मिश्र - पृ0- 176

2:- रस रत्नाकर - हरिशंकर शर्मा - पृ0- 487

3:- श्रृंगार वागीश - माहौर

एक बार दर्शन मात्र से नायिका का मन मोर मुकुट धारी में अटका हुआ है कैसी विषम स्थिति है बिना नायक के नायिका का मन व्यथित है , एक बार के दर्शन से बार बार मन वहीं जाता है अब तो मन नायक के दर्शन की ललक के लिये लालायित है । यहाँ मोर मुकुट वाले कृष्ण आलम्बन नायिका आश्रय मन का अधीन होना , पलक न लगना अनुभाव , तन्मयता विषाद आदि संचारी से परिपुष्ट होकर रति रूपी स्थायी भाव वियोग शृंगार की रस दशा को पहुँचता है ।

मान :-

मिलन के बीच में जो मिलन का अभाव रहता है उसे मान कहते हैं[1] । मान में प्रियतम के प्रेम का कोई अन्य केन्द्र समझ कर नायिका प्रणय मिश्रित कोप करती है । माहौर जी द्वारा चित्रित मानवती नायिका का विरह "मान" के अन्तर्गत देखा जा सकता है -

उदित अपार द्युति निन्दित करन हार,
विद्युता भी आज द्युति मन्द दरसत है ।
कंज पुंज हेर कंज पुंज सकुचात रहे ,
सोक कंज कंज हेर कंज करसत है ।
अमल अनंग रंग रंग में रहो न रंग ,
अंग अंग अंग बदरंग दरसत है ।
नाथूराम हाल कहो हाल कौन कारन ते ,
मुखड़ा सुधाकर सों विष बरसत है[2] ।

प्रवास :-

किसी कारण वश नायक के परदेश चले जाने को प्रवास कहते हैं । इसके तीन भेद होते हैं - भूत प्रवास , वर्तमान प्रवास और भविष्य प्रवास ।

1:- सिद्धान्त और अध्ययन - गुलाबराय - पृ0- 132-33

2:- स्फुट - कवीन्द्र माहौर

भूत प्रवास का सम्बन्ध भूत काल से होता है । माहौर जी ने ऐसे अनेक चित्र अपने काव्य में खींचे है । गोपी उद्धव संवाद में कृष्ण के वियोग में गोपियों की दशा का अत्यन्त मार्मिक एवं मधुर चित्र कवि ने खींचा है । योग पालन की असमर्थता में गोपियों ने उद्धव से जो कहा वह अत्यधिक मार्मिक है गोपियाँ निरन्तर अश्रु की माला लिये कृष्ण का नाम जपती रहती हैं वे कृष्ण चन्द्र चकोरिनी हैं तो योग साधना कैसे करें -

बन वासिनी कैसे बनेगी कहो,
पु निवासिनी या ब्रजधाम की है ।
तुम ऊधौ न घास की बातें करो ,
हम चातकी तो घनस्याम की हैं ।
तन काम की भस्म रमाये रहें ,
यहाँ राम न योग के काम को है ।
अंखियाँ रवि के अनुमान की माल ,
जपै घनस्याम के नाम को है[1] ।

भूत प्रवास के सम्बन्ध में माहौर जी की निम्न पंक्तियाँ वियोग का सजीव चित्र उपस्थित कर देती हैं -

प्रेम को भोग जो भोगती ना,
यह जानती योग कथा नहिं जोती ।
जीवन जोति बुझाती यहाँ ,
हिय में जगती जो न प्रीति की जोती ।
आह न आनन मों कढ़ती ,
चित मांहि जो होती न धाव निसोती ।
नैनन में घनस्याम जो ,
रहि होते न तो बरसात न होती[2] ।

1:- अनुराग - रवीन्द्र माहौर - पृ0- 28

2:- अनुराग - रवीन्द्र माहौर

वर्तमान प्रवास के अन्तर्गत नायिका का प्रियतम परदेश में है , पावस की उमड़ती घटायें और शीतल समीर से उसका शरीर थरथराने लगता है । विरह को उद्दीप्त करती हुयी पावस ऋतु की बूंदे नायिका को भयभीत कर देती हैं -

तरतरात बुन्दन के बन्द महि झर झरात,
झरझरात पौन भौन भीतर लौ भरभरात ।
भरभरात आली जीय प्यारे बिन थर थरात ,
थरथरात बात गात लागे गैन जर जरात ,
जरजरात जोबन उमंगन सौं करकरात
करकरात चातक के प्रेम जीय बरबरात ।
बरबरात बादल घुमड़ घुम घहरात ,
घहरात घन नभ मण्डल में तरतरात[1] ।

प्रस्तुत विरह वर्णन बहुत ही स्वाभाविक है । शब्द योजना चित्रमयता लिये हुये है । ऐसा लगता है कि एक एक शब्द मानों पावस की भयंकरता के चित्रांकन में सक्षम है । थरथराना, जरजराना, करकराना, बरबराना आदि सात्विक अनुभाव वियोग शृंगार की पुष्टि में विशेष सहायक हुये हैं ।

भविष्य प्रवास के अन्तर्गत भावी होने वाले विरह की आशंका से उत्पन्न होने वाले दुःख का चित्रण होता है । नायक विदेश जाने वाला है यह जान कर नायिका दुखी है वह खाना पीना त्याग कर योग की अग्नि में जलने को आतुर है विभिन्न उपायों से अपने प्राण दान को तत्पर है । माहौर जी ने भविष्य में प्रवास की कल्पना करते हुये वियोग को चरम पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया है ऐसी कल्पना करुण में ही सम्भव है । प्रवास और पूर्वराग दोनों ही करुणात्मक हो सकते हैं । माहौर जी ने प्रवास की स्थिति को करुण वियोग तक पहुंचाकर प्रवास एवं करुण विप्रलम्भ के भेद को समाप्त कर दिया है । इसीलिये उन्होंने करुण - वियोग का वर्णन नहीं किया है । भविष्य प्रवास की कल्पना से उद्विग्न नायिका की मनोदशा देखिये -

---

1:- ऋतुवसु दर्पण - माहौर

प्रीतम सुजान जो पयान करो पावस में ,

तो मैं प्रान दान देन रीति अनुसरिहौं ।

नाथूराम काहू को न सीख को करोंगो कान ,

खान पान त्याग जाय जोगानल जरिहौं ।

छेदिहौं परवान उर तीछे खरसान बान ,

भेदिहौं कृपान कंठ पान विष करिहौं ।

पै हौं गिरधारी और टारी न टरैगी बात

गिरिहौं अटारी सों कटारी मारि मरि हौं[1] ।

विप्रलम्भ श्रृंगार में पूर्वराग , मान, प्रवास और करुण के अतिरिक्त दस काम दशाओं का भी वर्णन किया जाता है ये दस इस प्रकार हैं - अभिलाषा , चिन्ता , स्मृति, गुणकथन , उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि , जड़ता और मरण माथौर जी काव्य में वर्णित कुछ दशायें निम्नलिखित हैं -

अभिलाषा :-

जिस स्थिति विशेष में नायिका अपने प्रियतम से मिलने के लिये व्याकुल होती है ऐसी स्थिति को अभिलाषा कहते हैं ,

ग्रीषम नरेश को निदेश दुराचार देख ,

धाराधर धाये धूम धवल धुकार के ।

ओजमय आतप को प्रबल प्रताप ताप ,

दीनों है निकार कान कुन्दन प्रकार के ।

"नाथूराम" पावस की शासन प्रनाली देख ,

कैसी कहा कारी आली अब मन मारि के ।

अंग अंग फूलो किय फूला घनस्याम हेरि ,

झूलौं घनस्याम संग कंठ भुज डारि के[2] ।

1:- षड्ऋतु दर्पण - माथौर

2:- षड्ऋतु दर्पण - माथौर

उद्वेग :-

वियोगावस्था में विरह की तीव्रता के कारण हितकारी वस्तुयें अहित-कर लगने लगती हैं वहाँ उद्वेग की स्थिति होती है ।

पवन झकोर घोर घन की हिलोर छोर ,
मोरन को सोर सुन सुन मन सलोगी ।
फूले अरविन्द मकरन्द मद झूले भूले ,
फिरत मलिन्द वृन्द फूले नहिं फूलोगी ।
दादुर डरावे कल कोकिला कलापें दापें ,
"नाथूराम" चातक अ पे किम भूलोगी ।
रभन के छाभन पे छाभन करावो वीर ,
अम्बन कदम्बन पे झूलन न झूलोगी[1]।

स्मरण :-

श्याम छटा घनश्याम की देख ,
मदामन मोर नचावत मीरा ।
भक्ति की जोति में जोति मिलाय के ,
जीवन जोति जगावत मीरा ।
लाड़ लड़ावत है गुन गावत ,
अश्रु के बुन्दे बहावत मीरा ।
प्रेम की खान के हीरा मनो ,
मन मोहन पे सु लुटावत मीरा[2]।

मरण :-

विरह की अन्तिम अवस्था मरण होती है । विरहाकुल प्राणी वियोग के दुःखपूर्ण जीवन से मुक्ति प्राप्त कर लेता है ऐसी अवस्था में वह मृत्यु की कामना-

---

1:- षड्ऋतु दर्पण - माहोर

2:- अनुमाल - मीरा के आँसू - माहोर

करता है । माधौर जी ने ऐसी ही विरह विदग्धा गोपी का वर्णन किया है जो कृष्ण के वियोग में मरण के वरण को तत्पर है -

> ऊधो तुमे कपटी ने कपटी बनाये यासों,
>
> लाये वसे योग ताहि बांधेगी कटारी सों ।
>
> अति धरसान बान छेदें उर माहिं किधो ,
>
> मार हैं कृपान कण्ठ काटि हैं कुठारी सों ।
>
> नाथूराम धाम तजि वे हैं नहीं और धाम ,
>
> छेदें निज चोल खोल खोल के पिटारी सों ।
>
> ये ही चितधारी गिरधारी के वियोग माहिं ,
>
> मारेंगी कटारी किधो गिरेंगी अटारी सों[1] ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शृंगार के दोनों पक्षों - संयोग और वियोग रस का समावेश माधौर जी के काव्य में बड़ी ही सूक्ष्मता एवं सरसता के साथ हुआ है ।

वीर रस :-

वीर रस का स्थायी भाव "उत्साह" है । कार्य के करने में आदि से अन्त तक उत्तरोत्तर स्थिरता अर्थात दृढ़ता और प्रसन्नता का जो भाव रहता है उसे उत्साह कहते हैं । सेठ कन्हैया लाल पोद्दार ने इस सम्बन्ध में लिखा है - "वीर रस का अत्यन्त उत्साह से प्रादुर्भाव होता है[2]। स्थूल रूप से वीर और क्रोध समान लगते हैं किन्तु उनमें सूक्ष्म अन्तर है । बाबू गुलाब राय उनका अन्तर स्पष्ट करते हुये लिखते हैं - "क्रोध में उदारता का अभाव रहता है और भरपेट बदला चुकाने का उत्कट या उत्तेजित इच्छा की प्रधानता रहती है किन्तु वीर में उदारता की पूरी मात्रा रहती है । क्रोध वर्तमान दशा से सम्बन्ध रखता है , पर भावी से । -------- वीर रस में क्रिया का आधिक्य है[3] " । वीर रस का- आलम्बन - शत्रु, पैगम्बर, साहसिक कार्य, यश आदि हैं । उद्दीपन - चेष्टा ,

---

1:- उद्धव गोपी संवाद - माधौर

2:- काव्य कल्पद्रुम:प्रथम भाग : पंचम संस्कर-पृ0-215-सेठ कन्हैलाल पोद्दार

3:- नवरस :द्वितीय संस्करण : - बाबू गुलाब राय - पृ0- 466

प्रदर्शन , ललकार आदि । अनुभाव - आँखों का लाल हो जाना भुजाओं का संचालन सैन्य को प्रेरित करना । संचारी - गर्व, उग्रता, धैर्य , तर्क , असूया आदि ।

आलम्बन , उद्दीपन के भेद से उत्साह के चार भेद होते हैं और इसी आधार पर वीर रस के चार भेद किये गये हैं - युद्धवीर , दानवीर, दयावीर तथा धर्म वीर ।

कवीन्द्र नाथूराम माहौर ब्रजभाषा के आधुनिक काल के कवि थे । वीर-रस के क्षेत्र में रीतिकालीन कवि भूषण का प्रभाव माहौर जी पर पड़ा । उनके काव्य में युद्धवीर और दयावीर के उदाहरण मिलते हैं ।

अ:- युद्धवीर:-

जिसमें बल, विद्या , प्रताप आदि जनित उत्साह की पुष्टि हो उसे युद्धवीर कहते हैं ।

1:- शत्रु का प्रताप,पौरुष , ऐश्वर्य आदि वीर रस के आलम्बन हैं ।

2:- सेना का कोलाहल, युद्ध वाद्य आदि इसके उद्दीपन हैं ।

3:- अंग, स्फुरण, रोमांच आदि अनुभाव हैं ।

4:- गर्व, उग्रता आदि संचारी भाव हैं ।

द्विवेदी युग के कवियों ने देश प्रेम की भावना को जगाने हेतु प्राचीन वीरों की गाथाओं का उत्साह वर्द्धक चित्रण किया था । इन वीरत्व वर्णन की दो पद्धतियां थीं । कहीं तो कवि देश वासियों को धिक्कार तथा उपालम्भ के माध्यम से कर्म की ओर प्रेरित करने का प्रयत्न करता था और कहीं सीधा उपदेश देकर या प्राचीन वीरों के वीर कर्मों की स्मृति दिलाकर उन्हें देश के प्रति अपने कर्त्तव्य को पहिचानने के लिये प्रेरित करता था । वीर रस के क्षेत्र में माहौर जी ने भी इसी शैली का अनुगमन करते हुये महारानी लक्ष्मी बाई , छत्रसाल आदि प्राचीन वीरों के गुणों का यशोगान करते हुये देश वासियों के अन्दर वीरत्व का भाव जाग्रत कर देश प्रेम की ओर उन्मुख किया । माहौर जी ने वीर छत्रसाल की प्रशंसा करते समय महाकवि भूषण की शैली का अनुगमन किया है । महाकवि भूषण ने महाराजा छत्रसाल की "करवाल" का वर्णन कैसी ओज पूर्ण शैली-

ने किया है-निकसत म्यान तें मयूखें प्रलै भानु कैसी,

फारै तम तोम से गयन्दन के जाल को ।

लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,

कहा लौं बखान करौं तेरी करवाल को ।

प्रति भट कटक कटीले केते काटि काटि ,

कालिका सी किलकि कलेऊ देत काल को ।

: भूषण :

भूषण की ही शैली पर कवीन्द्र माहौर द्वारा वर्णित छत्रसाल की "करवाल" देखिये -

म्यान से उड़ान भर रन दरम्यान आन,

दीप्ति बैरिन के कंठन कढ़ी फिरै ।

कढ़ी फिरै अचल विशाल भाल-भालन पै ,

काल सी सबल जोति जाल उमड़ी फिरै ।

"नाथूराम" छत्रसाल कीर्ति करवाल कृत ,

वीरता बढ़ाई मति मंडल मढ़ी फिरै ।

चढ़ी फिरै रत्न समरत्न- गरभा के अंक ,

अजहू अंसक सेस सीस प चढ़ी फिरै[1] ।

यहाँ आलम्बन - बैरिन के कंठ । आश्रय - छत्रसाल की तलवार । उद्दीपन - शत्रु की दीप्ति , भाल आदि गर्व , उग्रता, हर्ष आदि संचारियों से पुष्ट होता हुआ वीर रस का पूर्ण परिपाक हुआ है ।

महारानी लक्ष्मी बाई की "कृपान" की करामात दिखलाते हुये माहौर जी ने सुष्ठु वीर भाव का बड़ा ही सशक्त चित्रण किया है -

प्रखर महान देश भक्ति सक्ति सान धरी ,

रन दरम्यान जब म्यान तें खिंचत है ।

जचत न शत्रु लख लख के समक्ष होत ,

भक्ष चित दक्ष काल बाल सी जचत है ।

1:- वीर छत्रसाल गुणावली - माहौर

वृष्टि सी रचत पचपच के अनेक डर ,

अमित प्रताप तन तेज सी तचत है ।

लचत धनेश वा वा मचत मही में मचा,

रानी की कृपानी जब जंग में नचत है[1]।

आलम्बन - शत्रु । आश्रय - रानी की कृपान । अनुभाव - रानी की कृपान द्वारा शत्रु पक्ष का नाश करना । गर्व , उग्रता आदि संचारी भाव ।

माहौर जी ने युद्धवीर के अनेक उदाहरण अपने काव्य में प्रस्तुत किये हैं । "वीरबाला" में लक्ष्मी बाई का यशोगान करता हुआ कवि देश वासियों के हृदय में देश भक्ति की भावना जाग्रत करता है । सम्पूर्ण "वीर बाला" में वीर रस का पूर्ण परिपाक हुआ है । युद्धवीर का एक उदाहरण "वीरबाला" से दृष्टव्य है -

बल में भयान दल प्रबल फिरंगिन के,

आये थे उमंग से अभंग जंग छेरने ।

विक्रम विलोक तव मंजु कर कंजन को,

लागे थे अधीर होय हाय हाय टेरने ।

"नाथूराम" चौंक चित्त फेरने लगे थे मुख ,

फेरने लगे थे औ लगे थे शत्रु गेरने ।

बाई साब देश के थे द्रोही जे दिलेर शेर ,

ढेर कर दीने थे सु तेरी शमशेर ने[2] ।

आलम्बन - फिरंगियों के दल ।

आश्रय - रानी लक्ष्मी बाई ।

उद्दीपन - फिरंगियों की उमंग भावना अधीर होकर हाय हाय चिल्लाना, चौंक कर मुख फेरना ,

अनुभाव-रानी का पराक्रम ।

1:- झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई शीर्षक से स्फुट छन्द - कवीन्द्र माहौर

2:- वीर बाला - माहौर - छन्द संख्या -9

संचारी - हर्ष , गर्व, उग्रता आदि ।

ब:- दयावीर :-

चित्त की आद्रता वर्णित उत्साह की पुष्टि जिसमें हो उस दयावीर कहते हैं ।

1:- दीन दुखी याचक आदि इसके आलम्बन है ।

2:- दुख वर्णन, हृदय द्रावक विनय, दैन्य आदि उद्दीपन हैं ।

3:- मधुर भाषण, दुख दूर करने की चेष्टा अनुभाव है ।

4:- धृति, चंचलता आदि संचारी होते हैं ।

अपने आराध्य देवों के विशिष्ट कर्मो के विज्ञापन के सन्दर्भ में यत्र तत्र माधौर जी के काव्य में दयावीर की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है -

1:- राम का वीरत्व:-

ताड़का निपाति कै भंजन सुबाहु आदि,

रंजन मुनीन मन सुजन समाज के ।

पाहन अहिल्या सम तारे जड़ पामरन ,

तोरन धनु भव भन्जन कुसाज के ।

अहंकार रावण विमर्द मोह कुम्भकर्ण ,

जीवन विभीषण को देन हैं सुराज के ।

नाथूराम कीने ऐसे काम अभिराम राम ,

देख सब काम करें नाम रघुराज के[1] ।

2:- हनुमान का वीरत्व :-

नीको है विकट भट मर्कट अनूप रूप ,

संकट समन मन मेल मंजु नीको है ।

नीको है उदार वीर रुद्र अवतार का,

1:- रामनाम माहात्म- स्फुट - माधौर

विक्रम अपार भूमि भार मंज नीको है ।

नीको है विशाल नाम करन निहाल बाल ,

नाथूराम देन मुद मोद पंच नीको है ।

नीको है कृपाल रक्षपाल काल हू को काल ,

लाल अलबेली एडदार अंजनी को है[1] ।

"दीन का दाता" में भक्त भगवान के दयावीर सम्बन्धी कार्यों का स्मरण दिलाता हुआ अपने उद्धार की प्रार्थना करता है । ऐसे कितने ही मार्मिक प्रसंग माहौर जी की लेखिनी से नि:सृत हुये हैं -

दोहा:-

दूर दीनता कीजिये मित्र सुदामा भाँति ।

क्यों न अब प्रभु दयानिधि राखी केसे दास ।।

घनाक्षरी :-

राखी पति भारत में हाँक रथ पारथ को ,

राखी पति गंगसुत -प्रण-प्रण-भंग की ।

दुखिया सुदामा की सुराखी पति संपति दे ,

राखी पति पंचपति-पतिनी के अंग की ।

पुन्डो हू सकार पति राखी नरसी को नाथ ,

नाथूराम राखी पति मीरा के उमंग की ।

राखत सदासेपति आये हो जू राधापति ,

राखो पति मोसे पीन पतित पतंग की[2] ।

यहाँ आलम्बन - भक्त । आश्रय - भगवान ।

उद्दीपन :- अन्य भक्तजनों का उद्धार अपने दुख दूर करने की प्रार्थना ।

अनुभाव:- कृष्ण के द्वारा अर्जुन का रथ हाँकना, सुदामा को सम्पत्ति देकर रक्षा-

---

1:- रामलीला के लिये प्रणीत छन्द - माहौर

2:- दीन का दाता- प्रथम भाग - कवीन्द्र माहौर -पृ०- 27

करना आदि ।

संचारी :- पुलक, उत्कण्ठा आदि । इस उदाहरण में क्रियावानुभाव एवं संचारी भावों से संयोग करता हुआ "उत्साह" स्थायी भाव और रस को परिपक्वावस्था तक पहुंचाने में सक्षम है ।

8:- हास्य रस :-

कौतुकार्थ की गई वाणी स्वरूप आदि की विकृतावस्था देखकर उत्पन्न होने वाले हर्ष युक्त मनो विकार को अथवा विचित्र वाणी और विचित्र वेश के कारण मन में उत्पन्न प्रसन्नता को हास कहते हैं । यही "हास" नामक स्थायी-भाव जब क्रियावानुभाव एवं संचारियों से पुष्ट होकर परिपक्वावस्था को पहुंचता है तो हास्य रस की निष्पत्ति होती है । हास्य के आश्रय की दृष्टि से उसमें एक प्रकार की श्रेष्ठता का भाव रहता है । हास्य की सीमा वहीं तक रहती है जहां तक विकृति से कोई अनिष्ट न हो , अनिष्ट होने पर वह करुण रस हो जावेगा[1] । हास्य रस का शास्त्रीय विवेचन -

स्थायी भाव - हास

आलम्बन - विकृत आकार प्रकार और विचित्र वेशभूषा वाला व्यक्ति ।

उद्दीपन - आलम्बन की चेष्टायें एवं अनुपयुक्त कथन ।

अनुभाव - नेत्रों का मुकुलित होना, मुख का विकसित होना, मुस्कराना आदि ।

संचारी - स्वप्न, ग्लानि, अवहित्था, चपलता, शोक, हर्ष , आलस्य आदि ।

हास्य दो प्रकार का होता है - आत्मस्थ और परस्थ । विकृतादि के दर्शन से दृष्टा में स्वयं प्रकट होने वाला हास्य आत्मस्थ और दूसरों को हंसता देखकर उत्पन्न हुआ हास्य "परस्थ" कोटि में आता है । हास्य में आश्रय की स्पष्ट प्रतीति न होने से या तो किसी दर्शक विशेष का विधान करना पड़ता है या श्रोता को ही आश्रय मान लेते हैं । साधारणतया हास्य और अद्भुत रसों में केवल आलम्बन की चेष्टाओं , वेश , स्वरूप आदि के चित्रण से भी काम चल -

---

1:- शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त-प्रथम भाग-गोविन्द त्रिगुणायत -पृ०-250

जाता है आश्रय के निबन्ध की अनिवार्यता उसमें नहीं होती ।

हास्य की पूर्ण निष्पत्ति के लिये बहुत ही प्रभावशाली भाषा और विकसित अभिव्यक्ति की आवश्यकता पड़ती है , तथा यह भी आवश्यक होता है कि कवि का उस पर पूर्ण अधिकार हो । खड़ी बोली के कवियों में ये विशेषतायें नहीं थीं माहौर जी के काव्य में ये विशेषता देखी जा सकती है उनका भाषा पर पूर्ण अधिकार था । उनकी भाषा तो भावानुगामिनी है । माहौर जी मूलतया हास्य के कवि नहीं थे किन्तु एक सफल व्यंग्यकार अवश्य थे । उनकी हास्य रसात्मक कवितायें सोद्देश्य हास्य के अन्तर्गत आती हैं । कवि के व्यंग्य में जहां तीखापन है वहां हास्य भी वर्तमान है । माहौर जी का "व्यंग्य विनोद" हास्य व्यंग्य का श्रेष्ठ उदाहरण है । वर्तमान शासन से युक्त होकर भ्रष्ट खद्दर धारी कांग्रेसी नेताओं पर जो व्यंग्य माहौर जी ने किया है वह आलम्बन स्मित हास्य के अन्तर्गत आता है । कांग्रेसियों को गंगा के पण्डा कह कर कवि ने उन्हें हास्यास्पद बना दिया है -

> गंगा तेरे घाट के पण्डा रहे मटाय ।
> मनमानी नित दच्छिना मांगे मुंह फैलाय ।
> मांगे मुंह फैलाय घाट पे जो कोउ आवे ।
> बिना दिये अस्नान, नेकहूं न करन पावे ।
> माहुर कवि का कहें, अकृति के चरित घनेरे ।
> करें चोट पर चोट , ओट में गंगा तेरे[1] ।

आलम्बन - गंगा के पण्डा : व्यंग्यार्थ में कांग्रेसी :
उद्दीपन - पण्डा का मोटा होना ।
अनुभाव - दच्छिना मांगना आदि ।
संचारी - गर्व, आलस्य ।

कवि ने उन कांग्रेसियों का चित्रण किया है जो ऊपर से कुछ हैं और अन्दर से कुछ । कवि उनका उपहासास्पद चित्र पाठक के सम्मुख उपस्थित करता हुआ शिष्ट हास्य -

---

1:- व्यंग्य विनोद - माहौर - पृ0- 2 - "गंगा के पण्डा "

की सर्जना करता है ।

इस स्वाधीन भारत में कांग्रेसियों के राज्य में सर्वत्र झूठ का ही बोल बाला है । इस राम राज्य में "झूठ हीसत्य"है " इस कथ्य की पुष्टि माहौर जी ने हास्य के माध्यम से इस प्रकार की है -

छूट खिलैया ले गये, कह दे यो श्रीमान ।
झूठ सरासर जानि के, हाँ हाँ कहो बरवान ।
हाँ हाँ कहो कहान सबे ना ना नहिं बोलो ।
यदि ना ना जो कहो जेल को फाटक खोलो ।
सत्य कहन को समय, रह्यो नहिं अब है भैया ।
कहो यही तुम सदा, ले गये छूट खिलैया[1]।

स्वराज्य में "राजा किसान' की खुशहाली के गीतों को सुनकर माहौर जी क्षुब्ध हृदय से कहते हैं -

राजत भारत को घर घर, दरिद्रता को सरताज विराजत ।
मार के भूखन भूसित अंग, अंग अधीनता बाजन बाजत ।
देखत दुबरी देह दसा, उपमा मजनू के सरीर की लाजत ।
देखो "स्वराज्य"में राजा किसान के पेट में भूख को नौबत बाजत ।।

यहां बड़ा ही शिष्ट हास्य व्यंग्य है । इसमें -
आलम्बन - किसान
उद्दीपन - किसान का कृशगात
संचारी - दैन्य, दन्य आदि

माहौर जी ने रामलीला के लिये कुछ छन्द लिखे थे जिनमें "राम-लवकुश" संवाद के अन्तर्गत हसित हास्य रस की स्वाभाविक एवं सुन्दर अभि - व्यक्ति हुयी है । यहां व्यंग्य न होकर शुद्ध हास्य रस है । लव कुश द्वारा राम के प्रति कहे गये वचन -

---

1:- व्यंग्य -विनोद - माहौर - पृ०- 21

रुण्ड बिन मुण्ड तन सेत सेत खण्ड कें ,

लेकर अखण्ड दण्ड जब दौर जाऊ मैं ।

धरनि गिराऊ भट कटक नसाऊ चट,

कटक चलाऊं चोट लपट दिखाऊं मैं ।

सकल नसाऊं दल देख रण मण्डल में,

नाथूराम खास खेल खेलन दिखाऊं मैं ।

तपसी कहाऊं मेरा कथन सुनाऊं आज ,

तपसी बनाय तोय घाट घाट जाउ मैं[1]।

आलम्बन - लव कुश की वाणी ।

उद्दीपन - लवकुश के सम्वाद , तपसी कहा कर घालना आदि ।

संचारी - उत्सुकता, हठ आदि ।

4:- करुण रस :-

शोक की परिपुष्टता का नाम करुण रस है । करुण का स्थायी भाव शोक है । यह शोक, क्लेश , विनिपात , इष्टजन-वियोग , विभवनाश , वध, बन्धन, उपद्रव उपघात आदि विभावों से उत्पन्न होता है[2] । धनंजय ने कहा है कि करुण रस या तो इष्टनाश से होता है अथवा अनिष्ट की प्राप्ति से । अनिष्ट की प्राप्ति का अर्थ यह नहीं कि इष्ट वस्तु या व्यक्ति का सर्वथा नाश हो जाये अथवा केवल इष्ट वस्तु या व्यक्ति का ही अनिष्ट हो, अपितु उस वस्तु या व्यक्ति की हानि होने से भी करुण रस की प्राप्ति हो सकती है और उसके सम्बन्धी के स्वयं अनिष्ट ग्रस्त होने से भी । तात्पर्य यह है कि मोटे रूप में इष्ट नाश और अनिष्ट प्राप्ति ही करुण का लक्षण है ।

करुण रस में -

1:- आलम्बन :- प्रिय बन्धु, समाज या नष्ट वैभव आदि ।

2:- उद्दीपन:- विभाव के अन्तर्गत प्रियजन की हानि का स्मरण , शव - दर्शन -

---

1:- लव कुश सम्वाद - माहौर

2:- रस-सिद्धान्त- स्वरूप- विश्लेषण - डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित - पृ0-352

मृतक का गुण श्रवण , कष्ट की कल्पना , दुखित दशा आदि आते हैं ।

3:- अनुभाव - अश्रुपतन पृथ्वी पर गिरना, वैवर्ण्य, नि:श्वास , प्रलाप आदि हैं ।

4:- संचारी - वैराग्य, ग्लानि, चिन्ता , औत्सुक्य, आवेग, मोह, मरण, स्तम्भ,

कम्प, अश्रु, आलस्य आदि होते हैं ।

भानुदत्त आदि ने करुण के स्वनिष्ठ तथा परनिष्ठ नामक दो उपभेद किये हैं । अपने शाप, बन्धन , क्लेश आदि जनित होने पर करुण स्वनिष्ठ तथा दूसरे के नाशादि होने पर परनिष्ठ माना जाता है[1]। स्वनिष्ठ में आश्रय स्वयं अपने कष्ट का बखान करता पाया जाता है , दूसरे व्यक्ति उस में अपने प्रति करुण उत्पन्न करेगा, किन्तु स्वयं करुण जनित न होगा । इसके विपरीत परनिष्ठ शोक किसी व्यक्ति या वस्तु की दुर्दशा आदि के कारण आश्रय के मन में उत्पन्न शोक या करुणा से ही उद्भूत होगा।

करुण रस के चित्रण में माहोर जी ने बड़ी ही सावधानी एवं कुशलता के साथ उन परिस्थितियों का निर्माण किया है जो शोक उद्दीप्त करने में सहायक हो सकती है । माहोर जी की "अश्रुमाल" करुण रस आप्लावित करती हुयी आंसुओं की एक माला है जिसमें विभिन्न रामायणे भक्तों के आंसुओं से कवि ने पाठक को सराबोर कर दिया है । अश्रुओं की आर्द्रता से आच्छादित जन मानस करुण रस में डूब जाता है । अश्रुमाल में करुण रस का अजस्र धारा प्रवाहित करने में कवि सक्षम रहा है । "अश्रुमाल" में "हनुमान के आंसू" का वर्णन करता हुआ कवि हनुमान के व्दारा राम के समक्ष सीता की विरह व्यथा को सुनाते हुये करुण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति इस प्रकार करता है -

> बिरहाकुली सीय की दीन दशा,
>
> नहिं जात कही मुख सों दुख भीनी ।
>
> हनुमंत की ग्रीवा झुकी महि ओर ,
>
> रुकी वर कण्ठ की वानी प्रवानी ।
>
> अखियान के पात्र में शोकमयी ,
>
> अंसुआन की स्याही तबै भरि लीनी ।

1:- रस- तरंगिणी - भानुदत्त - पृ0- 149

वरुनी कृत लेखनी सों मसि पत्र पै ,

सीय व्यथा की कथा लख दीनी[1]।

कितनी मार्मिकता है , सीता की व्यथा कथा में । कहने में वाणी अवरुद्ध है , वरुनी रुपी लेखिनी द्वारा अश्रु रुपी मसि से मसि पत्र पर लिखी विरह कथा , विभिन्न सात्विक अनुभावों से करुण रस की सृष्टि करती है ।

यहाँ आलम्बन सीता है ।

उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत विरहाकुल सीता की दशा आती है ।

हनुमान की मूक प्रक्रिया, कण्ठ अवरुद्ध होना , अश्रुपतन आदि सात्विक अनुभाव है ।

संचारी भाव- चिन्ता, आवेग, जड़ता, निर्वेद आदि है ।

उपर्युक्त छन्द में विभाव अनुभाव एवं संचारी भावों से पुष्ट होता हुआ शोक नामक स्थायी भाव ने करुण रस को परिपक्वावस्था तक ले जाने में पूर्ण सक्षम रहा है ।

"गोपियों के आँसू" शीर्षक से गोपियों की करुण दशा का दिग्दर्शन माधोर जी ने निम्न छन्द में बड़ी ही कुशलता के साथ किया है -

जब तें कुबरी संग नेह कियो ,

तब तें सब देह भई दुबरी ।

सुख रीत गयो अरु जीवन को ,

चित चीतल है पल पल छरी ।

हरिश्याम वियोग दशा में छरी ,

अँसुआन की लोल लरी लहरी ।

ब्रज गोपिन के जनु नैनन में ,

विरहा ने धरोहर आन धरी[2]।

आलम्बन - घनश्याम ।

आश्रय - गोपी ।

1:- अश्रुमाल - हनुमान के आँसू- माधोर - पृ०- 21

2:- अश्रुमाल - माधोर - पृ०- 25

उद्दीपन विभाव – कुब्जा के प्रति कृष्ण का स्नेह

अनुभाव – गोपियों का शरीर दुबला होना, अश्रुपतन

संचारी – चिन्ता , निर्वेद, जड़ता आदि ।

5:- अद्भुत रस :-

विभावादि संयोग से विस्मय नामक स्थायी भाव ही अद्भुत रस के रूप में व्यक्त होता है । लोकोत्तर वस्तु अथवा घटना इसका प्रधान विभाव है । विचित्र वस्तु अलौकिक चरित्र, व्यापार तथा दृश्य इसके आलम्बन विभाव है । आश्चर्य में डाल देने वाले कार्यों या वस्तुओं का देखना , अलौकिक गुणों या बातों का सुनना , वांछित वस्तु की अचानक प्राप्ति , अत्यन्त प्रतिष्ठा पाना आदि अद्भत रस के उद् दीपक हैं । नेत्र विकास निर्निमेष दृष्टि , रोमांच , अश्रु , स्वेद, स्वर भंग आदि अनुभाव हैं । अद्भुत रस के संचारी भावों के अन्तर्गत वितर्क , आवेग, भ्रान्ति , हर्ष , कम्पन , उत्सुकता , त्रास आदि आते हैं । अद्भुत रस में प्राय: आलम्बन का ही वर्णन पर्याप्त होता है । आश्रय के अनुभाव आदि की आवश्यकता नहीं होती ।

माथोर जी ने हास्य रस की ही भांति अद्भुत का प्रयोग अपने काव्य में अल्प मात्रा में किया है । "द्रौपदी दुकूल पचीसी" में द्रौपदी के बढ़ते हुये – अम्बर की जो विस्मय कारी कल्पना कवीन्द्र ने की है उनमें पूर्ण अद्भुत रस की अभिव्यक्ति हुयी है –

काल कुरु नन्दन को गंग के समान जान ,

  द्रौपदी-दुकूल भया शिव के जटान सों ।

पैंचो गयो जेतो चीर तेतो ही बढ़न लाग्यो ,

  रक्त बीज रावण के सिरन भुजान सों ।

माथुर सुकवि दृष्टिगोचर भयो है जा ,

  कौतुक भयो है पट नट के उठान सौं ।

अम्बर भयो है अंग-अम्बर का संगी मनों,

  संगी बहुरंगी बन्यो सघन घटाय सौं[1] ।

1:- द्रौपदी-दुकूल पचीसी – कवीन्द्र माथोर – छन्द सं. 7

यहाँ आलम्बन - द्रौपदी का वस्त्र है ।

उद्दीपन - द्रौपदी दुकूल का शिव की जटा के समान हो जाना , रावण के सिर और भुजाओं की भाँति कटना , अम्बर की छटाओं के समान होना आदि ।

यहाँ आलम्बन को ही देख कर कवि के मन में आश्चर्य का भाव जाग्रत हो रहा है । आलम्बन और उद्दीपन का यह वर्णन क्षणि मात्र अद्भुत रस का संचार करने में समर्थ हुआ है ।

"षड्ऋतु दर्पण " में फाग - राग में लिप्त प्रेम मार्ग के पथिक राधा - कृष्ण की योजना साक्षात अद्भुत रस की परिचायक है । फाग खेलते हुये पथिक हृदय का चित्रण माधौर जी कुछ इस प्रकार करते हैं -

> ब्रज सुखदानी फाग खेलैं ब्रजरानी संग ,
>
> प्रेम रस सानी रंग फिरी बरसानी है ।
>
> मण्डित गलाल की छटा सी छहरानी दिव्य ,
>
> विद्युत अबीर की छटा सी दरसानी है ।
>
> नाथूराम घेर लो छिपायो आसमान भानु ,
>
> दसहूँ दिशान फाग भीर महरानी है ।
>
> प्रबल प्रधूम धुंध अधर धराते धूम ,
>
> धुंधर उड़ानी जामें राधिका हिरानी है[1] ।

कवि की दृष्टि में आराध्य कृष्ण का फाग खेलना स्वयमेव अद्भुत एवं अदृष्ट पूर्ण है । कृष्ण आलम्बन है । उनके कार्य व्यापार उनकी चेष्टायें आलम्बन गत उद्दीपन हैं , भानु का आसमान में छिप जाना , प्रबल प्रधूम धुंध आदि बाह्य उद्दीपन हैं । आलम्बन स्वयमेव अद्भुत रस का सृष्टा है । आलम्ब एवं उद्दीपन के वर्णन से अद् - भुत रस का स्वाभाविक संचार स्वयमेव हो जाता ।

6:- <u>वीभत्स रस</u> :-

वीभत्स का स्थायीभाव जुगुप्सा है जो किसी अनभिमत , गर्हणीय -

1:- षड्ऋतु दर्पण - होरी वर्णन - माधौर

अथवा उत्तेजक वस्तु को देख कर या सुनकर अथवा गन्ध , रस तथा स्पर्श -दोष के कारण उत्पन्न होती है । यह जुगुप्सा क्रियावादि से परिपुष्ट होकर वीभत्स रस के रूप में व्यक्त होती है[1] । घृणास्पद व्यक्ति, सड़ी गली और दुर्गन्धित वस्तुयें , मांस , रुधिर , चर्बी आदि वीभत्स के आलम्बन है । इन वस्तुओं की दुर्गन्ध घृणास्पद व्यक्तियों की चेष्टायें , घिनौनी वस्तुओं की चर्चा सुनना , आदि उद्दीपन है । थूंकना , मुंह फेर लेना नाक सिकोड़ना , आंख मूंदना , कम्प, रोमांच आदि वीभत्स रस के अनुभाव है । मूर्छा , मोह , आवेग आदि संचारी हैं । इस रस में भी केवल आलम्बन का वर्णन यथेष्ट हुआ करता है । आश्रय के अनुभावों का या संचारियों का वर्णन आवश्यक नहीं होता । माहौर जी ने वीभत्स रस का वर्णन केवल "वीर - बाला" में किया है जहां वे रानी के शौर्य का यशोगान करते हुये रानी की कृपाण की करामात दिखाते है -

कुद्ध कर धाई आई साज वर युद्ध काज ,

साज के समाज भाज रण विकराल को ।

लूम लूम वैरिन के शीशन पे झूम झूम ,

घूम घूम दीनो हाथ कर करवाल को ।

\+ \+ \+ \+

किल किलाय काली सी कपाली सी कूद कूद ,

काट के कलेवर कलेवा देत काल को[2] ।।

:वीर बाला/6 :

भालन तें कठिन कराल करवालन तें,

काटे थे कपाल काल सम किलकारी दे ।

रोष पूर्ण प्रबल प्रकोप रण ओप ओप ,

तोप तोप तोपन की चोट चटकारी द ।

नाथूराम बाध लाव वीरता प्रचारी जब ,

मारी बेशुमार मार देश की गुहारी है ।

1:- रस सिद्धान्त-स्वरूप -विश्लेषण - डा0आनन्दप्रकाश दीक्षित-पृ0- 372

2:- वीर बाला - माहौर - छन्द संख्या 6

अग अंगरेजन के भेजन ते डारे भेद ,

भेजे काढ़ लीने ऐ करेजन कटारी है[1]।

यहाँ आलम्बन वैरी अंग्रेज हैं । रानी द्वारा अंग्रेजों के शरीर का भेदन वर्णन ही वीभत्स रस की पुष्टि के लिये पर्याप्त है । अन्य भाव तो अंगी रूप में सहायक होकर आ गये हैं । उद्दीपन - घाव करना, कलेवर काट के कलेवा देना , कपाल काटना, अंग्रेजों का भेजा निकाल लेना आदि । अनुभाव - रानी की गुहार । संचारी भाव - व्याधि , मरण आदि ।

7:- भयानक रस :-

भय परिपुष्ट सर्वेन्द्रिय विक्षोभ को भयानक कहते हैं । इसके विभाव जड़ से लेकर चेतन तक फैले हैं । व्यक्ति अथवा प्राणी विशेष के साथ साथ वस्तु विशेष भी भयानक विभाव के रूप में उपस्थित की जासकती है । भयानक दृश्य , भयंकर शब्द , निर्जन वन आदि स्थान इसके आलम्बन है । भयोत्पादक शब्द - सुनना , भयंकर दृश्य या प्राणियों को देखना , निर्जन वन आदि उद्दीपन हैं भयानक की अवस्थिति में कर चरणादि का कम्प नेत्र विस्फार, वैवर्ण्य, स्वर-भेद, स्तम्भ , रोमांच , मरण , त्रास , गदगद् स्वरादि अनुभाव तथा शंका , मोह, दैन्य , आवेग , चपलता , मरणादि व्यभिचारी भाव उत्पन्न होते हैं । भयानक रस का वर्णन मालोर जी के काव्य में केवल प्रकृति चित्रण में ही मिलता है अन्यत्र नहीं । पावस की भयंकरता का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया कि भयानक रस की पूर्ण पुष्टि हुयी है । शब्दों की चित्रोपमता ने तो भय को और भी उद्दीप्त कर दिया है -

तरतरात बुन्दनके बुन्द मढ़ि सरसरात ,

सरसरात पौन भौन भीतर लौं भरभरात ।

भरभरात आली जीय प्यारे बिन थरथरात,

थरथरात बात गात लागे मैन जरजरात ।

1:- वीरबाला - मालोर - छन्द संख्या -78

बरबरात जोबन उमंगनि सों करकरात ,

करकरात चातक के वेन जोय बरबरात ।

बरबरात बादल घुमेंके घूम घरघरात ,

घरघरात घन- नभ मण्डल में थरथरात ।

यहाँ स्थायी भाव - भय ।

आलम्बन - पावस ऋतु ।

उद्दीपन - तरतराना, भीतराना, भरभराना , चातक के वेन , बादल घर -

घराना आदि ।

अनुभाव - जीय थरथराना, :कम : जोबन का करकराना आदि ।

संचारी - त्रास, शंका, चिन्ता आदि ।

8:- रौद्र रस :-

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है । जहाँ प्रबल एवं उद्दीप्त क्रोध की परिपुष्टि होती है वहाँ रौद्र रस होता है । अनिष्ट , अपमान अथवा विरोध करने वाले व्यक्ति अथवा वस्तु सभी रौद्र के आलम्बन होने योग्य हैं । उनकी चेष्टायें , उक्तियाँ तथा अनिष्ट कारी स्वरूप उद्दीपन होंगे । आरक्त नेत्र , भृकुटि भंग , दाँत अथवा ओठ चबाना, ललकारना, प्रहार करना , छेदना आदि इसमें अनुभावों में गिने जाते हैं । उन्माद , मद, गर्व , ईर्ष्या , अमर्ष , श्रम , अतिशय , मोह , आवेग , उग्रता आदि व्यभिचारी के रूप में प्रकट होते हैं ।

माहौर जी रानी लक्ष्मी बाई द्वारा शत्रु के प्रति क्रोध की भावना प्रदर्शित कर रौद्र रस की अभिव्यंजना इस प्रकार करते हैं -

बाध बाध दौरी त्यों क्रोध देख शोणित पे ,

जैसे गज शोणित पे दौरे मृग राजनी ।

1:- वस्तु दर्पण - माहौर

बाज ज्यों झपटी थी सिपाहन के पट्ठन पे ,

जैसे नभ पच्छिन पै झपटत है बाजनी ।

छैल करिबे को औ बौछ पै मिलेच्छन के ,

गाज के गिरी थी ज्यों गिरे है व्योम बाजनी ।

वीर साज साजनी निवाजनी गरीबन की ,

वीर सरताजन की वीर सर ताजनी[1] ।

यहाँ विपक्षी शत्रु आलम्बन है , रानी लक्ष्मी बाई हैं आश्रय । रानी का क्रोधित होकर विपक्षियों की ओर दौड़ना - उद्दीपन ।

अनुभाव - रानी की चेष्टायें जो देश द्रोहियों को नाश करने वाली हैं ।

संचारी - गर्व , उग्रता, आवेग , क्रूरता आदि ।

9:- शान्त रस :-

शान्त रस का स्थायी भाव है निर्वेद । निर्वेद को "शम" से भी अभिहित किया गया है । शम या निर्वेद से तात्पर्य है - वैराग्य दशा में आत्म रति से होने वाला आनन्द[2]। अपने आपको तुच्छ समझना या विषयों से वैराग्य ही निर्वेद है और इसी लिये वह सांसारिक जीवों के लिये तो अमंगल रूपी है[3]। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार शान्त रस का स्थायी भाव शम, आश्रय ,उत्तम पात्र, संसार की असारता और अनित्यता का ज्ञान अथवा परमात्मा का स्वरूप बोध इस रस के आलम्बन हैं । सद्गुरु प्राप्ति सत्संग पवित्र आश्रम, तीर्थ , रमणीय एकान्त वन आदि उद्दीपन हैं । रोमांच , आनन्दाश्रु गद्गद कण्ठ इत्यादि शान्त रस के अनुभाव हैं । निर्वेद , हर्ष, स्मरण , प्राणियों पर दया आदि इसके संचारी हैं । इस दृष्टि से करुणा पूर्ण भक्ति विषयक पद शान्त रस की कोटि में न आकर भाव की ही श्रेणी में परिगणित होंगे । परन्तु अभिनव गुप्त ने इस प्रकार की-रति को शान्त रस के ही अन्तर्गत माना है । शान्त का परम लक्ष्य मोक्ष है -

---

1:- वीर बाला - माधोर - छन्द सं० 8

2:- साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 3/180

3:- काव्य प्रकाश - मम्मट - 4/47

और ज्ञान तथा कर्म की भाँति भक्ति भी मोक्ष का साधन है[1]। इस प्रकार भक्ति को शान्त रसका अंग भूत माना गया है ।

माहोर जी के भक्ति परक ग्रन्थों में शान्त रस की सुन्दर व्यंजना हुयी है । "शान्ति सागर" में ~~अभिव्यक्ति~~ माहोर जी पतितपावन सीतापति श्री राम से पतितोद्धार कर भव बन्धन से मुक्ति की प्रार्थना करते हुये शान्त रस की मार्मिक अभिव्यक्ति करते हैं -

राखी है पुनीत प्रद पति मिथिला को पति,
भारी भव-चाप-गुरुता की गति भंग की ।
राखी पति दिव्य कपि-पति को विपत्ति-मेट ,
मुनि पत्निनी की पति-राखी पति संग की ।
टेरैं सुन राखी पति गज की न कीनी देर,
मेरी वेर नाथ देर कीजे न कुढंग की ।
राखत सदा से पति आये हो जु सीतापति,
राखो पति मोसे पीन पातकी पतंग की[2]।

इस पद में सब शक्तिमान सीतापति श्री राम हैं आलम्बन, कवि स्वयं आश्रय हैं । राम के अद्भुत कार्य ,कपि-पति , अहिल्या आदि के कष्टों का निवारण - उद्दीपन विभाव है । कवि द्वारा भगवान राम के गुणगान करना, अपने कष्टो के निवारण की प्रार्थना अनुभाव है । दर्प , गर्व आदि संचारियों से पुष्ट होता हुआ "निर्वेद" स्थायी भाव शान्त रस की पूर्ण अभिव्यक्ति करने में सक्षम है ।

"सूर स्रुधा निधि" तो भक्ति का सागर है जिसमें अवगाहन कर जनमत परम पद को प्राप्त करता है । इसमें माहोर जी ने विल्वमंगल सूर के चरित्र का वर्णन किया है जो सांसारिक विषय वासना में लिप्त होते हुये भी कृष्ण - भक्त हो जाते हैं और मोक्ष पद को प्राप्ति करते हैं चिन्तामणि नामक वेश्या को

1:- रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना- डा० बच्चन सिंह -पृ०- 4।

2:- शान्ति सागर - माहोर - पृ०- 29

भी अपने संसर्ग से भगवद् भक्ति की ओर उन्मुख करते हैं -

।। दोहा ।।

संसृति जनित त्रिताप के, समन किये त्र्यसूल ।

मति की रति हरि में भई, मन की गति मुद-मूल ।।

: सवैया :

मन की गति मंगल मूल भई,

सुधि भूल गई सिगरी तन की ।

कनिक कनकी वर वासिनी जो ,

जग जोति जगावति जीवन की ।

नित चाह चिरन्तन की चित में ,

नहिं चाह रही धरनी,धन की ,

मन मोहन जौहरी हाथन में ,

बिकी चिन्तामनी बिदामन की ।।

विष वासना को विष त्यागि सबै ,

सुकनी हरिनाम पियूष की प्यासी ।

प्रभु प्रेम की पुण्य प्रभा चहुँपा ,

फबी फैली सदैव मयंक प्रभा सी ।

कवि "माथुर" भाषी न जात है नेकु,

सुकीर्ति-कला कल काय कला सी ।

घनश्याम की दासी रही जो सदा ,

सुख रासी बनी घनश्याम की दासी ।।

उपर्युक्त पद में शान्ति रस की पूर्ण अभिव्यक्ति विभाव अनुभाव संचारी भावों द्वारा हुयी है । यहाँ आलम्बन - संसृति जनित त्रिताप एवं संसार की असारता है । उद्दीपन - हरि में अनुरक्ति , विरक्ति की इच्छा , विषय वासना का -

---

1:- सूर सुधा निधि - कवीन्द्र माथुर - पृ0- 91-92

त्याग आदि । अनुभाव के अन्तर्गत - प्रलय , मन की प्रसन्नता आदि आते हैं ।
संचारी भाव - हर्ष, मति , गर्व आदि ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि माहौर जी के काव्य में विभिन्न रसों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुयी है । यों तो उनके काव्य में प्राय: सभी रसों की अभिव्यक्ति पायी जाती है किन्तु शृंगार और वीर रस का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक हुआ है । माहौर जी को शृंगार भावना रीति काल से से विरासत में मिली थी और शृंगारिक रीति परिपाटि का अनुगमन करने वाला कवि देश की सामयिक परिस्थितियों से असंपृक्त कैसे रह सकता था अत: स्वाधीनता आन्दोलन से प्रभावित होता हुआ कवि राष्ट्रीय वीर भावना की ओर अग्रसर हुआ और वीर भावना का समावेश कवीन्द्र के काव्य में हुआ । इस प्रकार शृंगार और वीर का चित्रण कवि ने अपने काव्य में अधिकाधिक मात्रा में किया । दोनों ही रसों के चित्रण में कवि को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुयी । "वीर वधू" में शृंगार में वीर भाव का समावेश कर कवि ने अपनी मौलिक चिन्तन प्रतिभा का परिचय दिया , ऐसी प्रतिभा अन्य किसी कवि में नहीं देखने को मिलती है । माहौर जी काव्य में रस के विभिन्न अवयवों - विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का जो वैशिष्ट्य दृष्टिगत होता है उसका अध्ययन भी अपेक्षित है ।

1:- विभाव वर्णन :-

विभाव के अन्तर्गत सर्व प्रथम हम माहौर जी के वर्ण्य विषय पर विचार करेंगे । आपका वर्ण्य विषय बहुमुखी है अथवा ये कहा जा सकता है कि माहौर जी ने अपने काव्य में बहु विध विषय चुने हैं । विभाव के सम्बन्ध में सर्व प्रथम ये आवश्यक है कि वे भावानुरूप होने चाहिये । माहौर जी ने भावों के अनुरूप ही विविध विषयों का चित्रण किया है जिस भाव को कवि जाग्रत करना चाहता है उसी के अनुरूप वस्तु वर्णन और भावों के आलम्बन कवि ने ग्रहण किये हैं । पीछे स्पष्ट किया जा चुका है माहौर जी के भाव जगत में विभिन्न भावों का वर्णन हुआ है जैसे रति, : आध्यात्मिक रति , लौकिक रति : , उत्साह , राष्ट्र - प्रेम , हास्य व्यंग्य । आपने तदनुरूप विभाव वर्णन भी किया है । विभाव वर्णन की दृष्टि से शृंगार भावना की पुष्टि के लिये यदि नायक ,नायिका का चित्रण -

न हो , करुण भावना जाग्रत करने के लिये आलम्बन के दुख , मृत्यु अथवा व्यथा का चित्रण न हो , वीर भावना प्रदर्शित करने में शत्रु पक्ष का अभाव हो तो भावानुरूप विभाव नहीं माने जायेंगे । माहोर जी ने विविध आलम्बनों को विविध भावों के अनुसार ही अपनाया है । मात्र आलम्बन के रूप विन्यास से रस की कोटि का भावोद्रेक सम्भव नहीं है उसके लिये परिस्थिति का अंकन भी अपेक्षित है । इस विषय में विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने उचित ही कहा है कि "परिस्थिति के बीच में आलम्बन का जो चित्र अंकित किया जाता है वह पूर्ण हुआ करता है और पाठक तथा दर्शक ऐसे ही आलम्बन से तादात्म्य का अनुभव करने में समर्थ हो सकते हैं[1]"। माहोर जी आलम्बन और परिस्थिति के संश्लिष्ट चित्रण द्वारा बिम्ब ग्रहण कराने में सफल रहे हैं यद्यपि सर्वत्र ऐसा नहीं हो पाया है फिर भी अनेक स्थल परिस्थिति सापेक्ष्य होने के कारण बड़े ही सरस बन पड़े हैं यथा श्रृंगार वर्णन में माहोर जी ने नायक और नायिका को आलम्बन के रूप में ग्रहण किया है । होली खेलने के दृश्य में गोपी और कृष्ण दोनों ही आलम्बन रूप में ग्रहण किये हैं ।

ब्रज वनितान संग खेलैं ब्रज राज फाग,

अति अनुराग दुहू ओर सरसायो है ।

झोरिन अबीर भरि मेलती किशोरन पै ;

फैंट कटि छोरन में अति छवि छायो है ।

मंजु मुख रोरी मली अति बरजोरी कर ,

कर घनश्याम को उरोजन पै आयो है ।

नाथूराम देखौ काम देव ने विजय हेतु ,

नीलाम्बुज मानो बाम देव पै चढ़ायो है[2]।

यहाँ संयोग श्रृंगार वर्णन में आलम्बन कृष्ण और गोपी दोनों ही की चेष्टायें भावानुकूल हैं , परिस्थिति सापेक्ष्य हैं , रसोद्रेक की पूर्ण क्षमता रखती हैं ।

माहोर जी का अश्रुमाल करुण रस का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है । करुण रस की पुष्टि के लिये इसमें सर्वत्र अश्रुओं का ही भावपूर्ण चित्रण किया गया है । अनेक -

---

1:- वाङ्मय विमर्श - विश्वनाथ प्रसाद - पृ०- 139

2:- षड्ऋतु दर्पण - माहोर

भक्तों के अश्रुओं के माध्यम से भक्तों की दैन्य एवं विकल स्थिति का चित्रण किया गया है उदाहरण के लिये भरत के आंसू देखिये जिसमें कवि ने राम के वन गमन के वियोग में भरत की जिस मानसिक और शारीरिक दशा का चित्रण किया वह अत्यन्त सरस एवं मार्मिक है -

राम वियोग में केकइ नंद के ,

अंग को रंगत हुये गई बाँवरी ।

पूजत पावन प्रेम प्रमोद सों ,

दिव्य प्रभू पद्द पदुम की पाँवरी ।

राखी बसाय के नैनन में ,

मृदु, मंजुल, माधुरी मूरति साँवरी ।

ढेरे रहे अवनी अंसुआँन की ,

भामरी सी जनु देत है भाँवरी[1]।

यहाँ कवि ने आलम्बन राम के वियोग में आश्रय भरत की विविध मनोदशाओं का मार्मिक चित्रण किया है भरत राम के अभाव में अत्यधिक दुखित हैं , उनके अंग अंग का रंग फीका पड़ गया है राम की मूर्ति को नेत्रों में बसाये हुये पृथ्वी को अश्रु - सलिल कर देते हैं । कवि ने भरत की आन्तरिक व्यथा का चित्रण किया है , क्रियाओं का वर्णन भावानुकूल है । ऐसे उद्दीपन क्रियाओं का चयन कवि ने किया है जो भरत की आन्तरिक सम्वेदना को प्रकट करने में पूर्ण समर्थ हैं ।

वीर रस के अन्तर्गत कवि ने आलम्बन मुख्यत: अत्याचारी शासन , आततायी, राष्ट्र द्रोही शोषक , देश के लिये स्वयं को बलिदान करने वाले एवं देश प्रेम आदि हैं । "वीरबाला" में माहौर जी ने लक्ष्मी बाई की वीरता का वर्णन करते हुये शत्रु अंग्रेजों को आलम्बन बनाया है । आश्रय एवं आलम्बन क्रियाओं - का चित्र परिस्थिति सापेक्ष होते हुये भावानुकूल है हम देखते हैं कि वीरता का वर्णन करते समय माहौर जी के क्रिया भावानुरूप रहे हैं -

---

1:- अश्रुमाल - माहौर - पृ०- 16

क्रुद्ध कर आयें थीं प्रसिद्ध वर युद्ध काज ,

साजी चतुरंगिनी थी रण विकराल की ।

प्रबल प्रचंड वर चंड भुज दंडन ते ,

खंड खंड गोरन के मुन्डन की माल की ।

नाथूराम पूर्ण देश प्रेम में सनी थी रण ,

रंग में रंगी थी औ, बनी थी काल काल की ।

धन्य धन्य धरनी में बरनी न जात जैसी ,

करनी दिखाय बाई साब करवाल की[1]।

देश प्रेम से सम्बन्धित कवि की कविताओं में राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करने की अपूर्व शक्ति है । ऐसे वर्णन भी वीर भाव के उपयुक्त आलम्बनों से युक्त हैं देश के लिये प्राण न्योछावर वाले वीरों को स्तवगान करता हुआ कवि जन मानस के अन्दर देश प्रेम की भावना जाग्रत करता हुआ अभिलाषा करता है -

मा ! तेरे चरणों में चित दे हंस हंस शीश चढ़ाना है ।

सुख सम्पति सर्वस्व त्याग कर तुझे स्वतन्त्र बनाना है ।।

सत्य शान्ति का उच्च स्वर से गाना तरल तराना है ।

छत्रसाल राणा प्रताप का बाना वीर निभाना है ।

जननी के मधु पय पीने का प्रबल प्रताप दिखाना है ।

जाना है स्वातंत्र्य समर में विजय लक्ष्मी पाना है[2]।

यहाँ वीररस के आलम्बन , छत्रसाल , राणा प्रताप आदि को ही उपयुक्त हैं ।

प्रकृति का चित्रण भी माहौर जी ने आलम्बन रूप में किया है । प्रकृति के कठोर एवं सौम्य दोनों ही रूपों का चित्रण कवि ने किया है । प्रकृति के सौम्य एवं कोमल रूप का चित्रण बेतवा वन्तीती" की निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है -

जामुनि इमली आदि संग में सहेली लिये,

विन्ध्यवन गली गली विचरण लगी जात है ।

1:- वीरबाला - माहौर - छन्द संख्या - 11

2:- माहौर जी द्वारा लिखित "अभिलाषा" शीर्षक कविता से उद्धृत ।

माथुर सुकवि नव छवि छवि छली छली ,

फूलन सिंगार करैं फूली फली जात है ।

करत विनोद कहूँ काहू सों न छली जात ,

भानुसुता गोद की प्रमोद पली जात है ।

तन तरुनाई की सुतरल तरंगनि में ,

तुंग गिरि अंगन छिपायें चली जात है[1] ।।

इस प्रकार कवि ने प्रकृति को आलम्बन बना कर अनेक मनोहारी चित्र उपस्थित किये हैं ।

उद्दीपन वैशिष्ट्य :-

प्रत्येक रस का पृथक उद्दीपन होता है । यह स्थायी भावों की आस्वाद योग्यता में वृद्धि करते हैं[2] । उद्दीपन दो प्रकार के होते हैं -

1:- आलम्बनगत अर्थात पात्रस्थ ।

2:- आलम्बन से बाह्य ।

पात्रस्थ उद्दीपन के अन्तर्गत बाह्य की बातें तथा चेष्टायें आती हैं। आलम्बनगत चेष्टायें सभी रसों में हुआ करती हैं परन्तु बाह्य परिस्थितियों का उद्दीपन के रूप में शृंगार में ही विधान दिखाई देता है । अन्य रसों में ये परिस्थितियां थोड़ी बहुत पाई जा सकती हैं पर काव्यों में इनका उल्लेख बहुत कम पाया जाता है[3] ।

माथुर जी ने दोनों प्रकार के उद्दीपन का चित्रण अपने काव्य में किया है । आलम्बनगत चेष्टाओं के वर्णन का एक उदाहरण "शृंगार वागीश" में देखिये-

सविधि सुगंधन सों सरसत अंग अंग ,

ललक अनंग रंग रंगन उलीच है ।

1:- "कैलवा बत्तीसी" - माथुर - अप्रकाशित

2:- काव्य दर्पण : पं० रामदहिन मिश्र : द्वितीय संस्करण : पृ०- 55

3:- वाङ्मय विमर्श : तृतीय संस्करण : -विश्वनाथ प्रसाद - पृ०- 124

कंज नैन सैनन सों सौंहे मंजु मैन मंत्र ,

निस दिन दैन चैन बैन सुधा सींचे हैं ।

"नाथूराम" बाल छतियान कों न छून देत ,

रस बतियान सुनि आवत नगीचे हैं ।

लेत मुख फेरि कब टेरि टेरि ,

हँसि हँसि हेरि हेरि फेरि दृग मीचे हैं[1]।

यहाँ नायिका का विभिन्न चेष्टाओं का वर्णन है जो कि पात्रगत उद्दीपन है ।

आलम्बन बाह्य उद्दीपन वास्तव में प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत आते हैं यद्यपि प्रकृति आलम्बन के रूप में भी ग्राह्य होती है किन्तु उसका अधिक उपयोग काव्य में उद्दीपन के रूप में होता है ।संयोग तथा वियोग शृंगार में तो प्रकृति प्रायः उद्दीपन का कार्य करती है । माहौर जी द्वारा चित्रित उद्दीपन रूप में पावस का वर्णन देखिये -

घोरें देत घुमड़ी झकोर घन घोरें घोरें ,

मोरें देत सकल दिसान दिसि छोरें देत ।

छोरें देत लाज को पिया के हिय जोरें देत,

सरिता हिलोरें देत मदन मरोरें देत ।

तोरें देत विरही विरहीन तन तोरें देत ,

मानों मेघ चंचला सों आज गाँठ जोरें देत ।

बोरें देत बदरा बुलन्द बड़ बुन्दन सों ,

बरस बरस मेह आज मही बोरें देत[2]।

यहाँ वर्षा ऋतु नायिका के विरह को उद्दीप्त कर रही है । इस प्रकार हम देखते हैं कि माहौर जी के शृंगार वर्णन के अन्तर्गत आलम्बन और उद्दीपन गत क्रियाओं का कथन और उनका भावानुकूल वर्णन हुआ है ।

1:- शृंगार वागीश - माहौर

2:- षड्ऋतु वर्णन - माहौर

अनुभाव विधान :-

जो भावों के कार्य हैं या जिनके द्वारा रति आदि भावों का अनुभव होता है उन्हे अनुभाव कहते हैं[1]। अनुभावों के द्वारा रस परिव्यक्त होता है अनुभाव की सत्ता अपने लिये नही होती , उसके अस्तित्व की सार्थकता मनोभाव विशेष अभिव्यंजन में ही प्रतिफलित होती है । रस के रूप में विपरिणत होने वाले स्थायी भाव की प्रतीति सहृदयों को अनुभाव के द्वारा ही होती है । नायिका के हृदयस्थ स्थायी भाव के सूचक अनुभाव नायक के रति भाव को जाग्रत करने के कारण उद्दीपन हो जाते हैं साहित्य दर्पण कार ने नायिकाओं के शारीरिक सात्त्विक विकास से लेकर छोटी मोटी सभी चेष्टाओं को अनुभाव की सीमा में परिगणित कर दिया है[2]।

जो कवि अनुभावों की योजना में जितना अधिक दक्ष होगा वह भाव व्यंजना में उतना ही अधिक सफल होगा क्यों कि विभाव और अनुभाव ही भाव व्यंजना के साधन हैं और साधन की सफलता साध्य की उत्तमता का प्रमाण होती है । अनुभाव चार प्रकार के माने गये हैं - कायिक , मानसिक , आहार्य तथा सात्त्विक । इसमें प्रमुखता सात्त्विक अनुभावों को दी गयी है ।

1:- कायिक अनुभाव :-

शारीरिक कृत्रिम चेष्टायें , कटाक्षपात, भृकुटि भंग आदि आंगिक चेष्टायें कायिक अनुभाव के अन्तर्गत आती हैं बाहोर जी ने कायिक अनुभावों का चित्रण अनेक स्थलों पर किया है यथा -

> सविधि सुगन्धन सों सरसत अंग अंग ,
>
> झलक अनंग रंग रंगन उलीचे हैं ।
>
> कुंज भैन सघन सों सीखे मंजु मैन मंत्र ,
>
> नित दिन देन चैन बैन सुधा सीचे हैं ।

1:- काव्य दर्पण - मिश्र - पृ०- 58

2:- साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - 3/142

लेत मुख फेरि फेरि बल बल टेरि टेरि ,

हँसि हँसि हेरि हेरि फेरि दृग मीचे है[1]।

2:- मानसिक अनुभाव :-

अन्त: करण की भावना के अनुरूप मन में हर्ष विषाद आदि को हल चल को मानसिक अनुभाव कहते हैं यथा -

पूछत राम सप्रेम कपीसहिं, तात कहो सिय की ~~सिय~~ कुसलाई ।
सोच को सोम औ रोम कलाय, ललाय रहे तन की दुबराई ।
रंग बिहाय के नैनन को, तस अंग को रंगत हूँ दरसाई ।
गाथा वियोग विथा की कथा, करी सुचित नैनन नीर बहाई[2]।।

3:- आहार्य अनुभाव :-

प्रियतम के पास सज्जित होकर जाना नायिका की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है । जब नायिका प्रिय के समीप जाने के उद्देश्य से जो शृंगार करती है तब उसकी सज्जा आहार्य के अन्तर्गत कही जाती है । अभिसारिका नायिका की विशिष्ट साज सज्जा में इस अनुभाव को देखा जा सकता है -

उबटि नहाय शुचि सारी सरसाय अंग ,
अंगन सजाय दपुरित अलक अमंद है ।
चन्द से दुचन्द सुख कन्द मुख मन्द देह ,
दृगन मलिन्द मत छवि मकरन्द है ।
चिकुर सम्हारि गुथि वेणी सुकुमारि बाल ,
नाथूराम हाल ही बुलाइ ब्रज चन्द है ।

1:- शृंगार-आगीश - माहौर

2:- अनुमाल - माहौर - पृ० - 21

दौरे चल जात गात जोति जगमगात मानो ,

आगे चन्द जात, जात पाछे सों फनिन्द है[1] ।

4:- सात्विक अनुभाव :-

आत्मा के अन्तर्भूत रस को प्रकाशित करने वाला , अन्तःकरण का धर्म विशेष "सत्व" कहलाता है । इस सत्व गुण से उत्पन्न शरीर के स्वाभाविक अंग विकार को सात्विक अनुभाव कहते हैं । काव्य प्रकाश और साहित्य दर्पण में सात्विक भावों की गणना अनुभावों के अन्तर्गत ही की गयी है । देव इन्हें संचारी भावों में मानते हैं । सात्विक अनुभाव आठ प्रकार के माने गये हैं-स्तम्भ , स्वेद , रोमांच , स्वर भंग , कम्प , वैवर्ण्य , अश्रु और प्रलय ।

अश्रु तथा स्वर भंग :-

"अनुमाल" में माहौर जी ने हनुमान के आंस में अश्रु और स्वर भंग दो अनुभावों को एक साथ दिखाया है -

विरहा दुःख सीय की दीन दशा ,

नहि जात कही मुख सों दुःख भीनी ।

हनुमंत की ग्रीवा झुकी महि ओर ,

रुकी उर कंठ की वानी प्रवीनी ।

अखियान के पात्र में सोक भयो ,

अँसुआन की स्यामली तक भरि लीनी ।

बरुनी कृत लेखिनी सों , महिपत्र पै ,

सीय व्यथा की कथा लिख दीनी ।

1:- शृंगार वागीश - माहौर

2:- अनुमाल - माहौर - पृ0- 21

प्रलय :-

मन की गति मंगल मूल भई ,

सुधि भूल गई सिगरी तन की[1]।

कम्प :-

तरतरात कुन्दन के कुन्द मढ़ि जरजरात ,

जरजरात पौन भौन भीतर लौं भरभरात ।

भरभरात आली जीय प्यारे बिन थरथरात -

थरथरात बात गात लाग मैन जरजरात ।

जरजात जोबन उमंगन सौं करकरात ,

करकरात चातक के बैन जीय बरकरात[2] ।

वैवर्ण्य :-

1:- अमल अनंग रंग रंग में रह्यो न रंग ,

अंग अंग रंग बदरंग दरसत है[3]।

2:- राम वियोग में कैकयी नन्द के अंग की रंगत हो गई भावरी[4]।

स्तम्भ :-

जुगल किशोर आये नगर निहारन को ,

धारन जु कीन्हें कर पंकज धनुह्या हैं ।

1:- सुर-सुधा-निधि - माहौर - पृ0- 9।

2:- षट् ऋतु दर्पण - पावस वर्णन - माहौर

3:- श्रृंगार - बागीश 5 माहौर

4:- अनुमान - माहौर

सुनि सुधि दौर दौर आये वर बाल वृन्द ,

देखि छबि कहै ऐसी सुनी न सुनैया है ।

नाथूराम हेरैं एक सैन दै लुटेरे नेरे ,

पलक न फेरैं भयो बानिक सुनैया है ।

जैसे हनुमान पै लड़त अनेक लाल ,

लालन पै देखी आज लड़त मुनैया है[1]।

स्वेद :-

भाल वदन तें सेत कन ढरत कुचन स्वच्छन्द ।

चन्द्र पृष्ठ पै चन्द्रमा प्रकट सुधा के बुन्द ।

अति कमनीय रमनीय अविराम भास ,

करत प्रकास चली जात है प्रदेश पै ।

तपन विलोकै नाहिं नेह की लगी है चोट ,

दिव्य पट ओट करै तपत दिनेस पै ।

श्रम जल सीतल सुदेसौ दिव्य आनन तें ,

प्रकट सरोजन की ओजता सुदेस पै ।

नाथूराम मानो मन अति ही आनन्द मान ,

अमृत के बुन्द चन्द चुवत महेस पै[2]।

व्यभिचारी अथवा संचारी भाव :-

उत्पन्न हुये स्थायी भाव को जो अधिक पुष्ट करते हैं , उन सहकारियों को व्यभिचारी भाव कहते हैं आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में व्यभिचारी भाव उन को कहा है जो रसों में नाना प्रकार से विचरण करते हैं तथा रसों को पुष्ट कर आस्वाद योग्य बनाते हैं । जब कोई भाव किसी प्रधान भाव के कारण उत्पन्न -

---

1:- रामलीला के लिये प्रणीत छन्द - माहौर

2:- षड्ऋतु दर्पण - ग्रीष्म वर्णन - माहौर

होगा तभी वह संचारी कहा जायेगा। यदि कोई भाव स्वतंत्र रूप से उत्पन्न होता है, किसी प्रधान भाव के शासन में नहीं रहता तो वह केवल भाव रहेगा, संचारी नहीं होगा। संचारी भावों की संख्या तैंतीस मानी गयी है।

माहौर जी के काव्य में अनेक स्थलों पर संचारी अथवा व्यभिचारी भावों की मनोरम अभिव्यक्ति हुई है। कवि के द्वारा वर्णित विविध संचारी भावों की योजना दृष्टव्य है -

हर्ष :-

इष्ट की प्राप्ति अथवा उत्सवादि के कारण मन में जो प्रसन्नता होती है, उसमें हर्ष संचारी भाव की बड़ी ही सुन्दर अभिव्यंजना होती है -

आलिया चली हैं फाग खेलन उतालिया,
गाती गालियाँ लिये गुलाल की कुचालियाँ।
उदित उजालिया छिपावें छवि जालिया,
सुनावें गान गालियाँ बजावें कर तालियाँ।
भूलि सम्हालियाँ सुअंग रंग ढालियाँ तु,
नाथूराम पालियाँ सनेह की प्रणालियाँ।
लाल लखलय मतवालियाँ विशाल लाल,
गहब गुलाल भरी घोले मुख लालियाँ।

क्रीड़ा :-

गुरुजनों की मान मर्यादा, अथवा कामादि से हृदय के संकोच को क्रीड़ा कहते हैं।

उदित उजास जासु जगत छिपौवे जोहे,
गोरे रंग सोहे दिव्य सारी रंग फालसा।

+ + + + +

1:- श्रृंगार - वागीश - माहौर

2:- श्रृंगार - वागीश - माहौर

नाथूराम बाल दग आड़े रति लाज भरे ,

धरे रसाल रूप राजत विशाल सा ।

औत्सुक्य :-

इष्ट प्राप्ति में विलम्ब सहन न करना उत्सुकता कहलाती है । यथा -

उदित उजास जासु जगत विमोहे जोवै ,

\+ + +

आधे पट घूँघट की ओट में सुआनन की ,

आधी छवि देखी, आधी देखवे की लालसा[1] ।

असूया :-

जब ते कुबरी संग नेह कियो ,

तब तें सब देह भई दुबरी ।

सुख रीत गयो अब जीवन को ,

दिन बीतत है पल एक घरी ।

\+ + + +

ब्रज गोपिन के जनु नैनन में ,

विरहा ने दरारहर आन धरी[2] ।

अवहित्था :-

भय , लज्जा , गौरव आदि के कारण हर्ष आदि मनोभावों की चतु-राई से छिपाने का नाम अवहित्था है । माथौर जी ने निम्न छन्द में व्रीड़ा एवं अवहित्था दोनों भाव एक साथ बड़ी ही कुशलता के साथ दिखाये हैं -

---

1:- श्रृंगार - वा० - माथौर

2:- अश्रुमाल - गोपी के आँसू - माथौर

अड़ अड़ जात लाज गड़ गड़ जात नैन तन चढ़ जात जोति जोवन उमंग की ।

\+ \+ \+ \+ \+

नत्थु लाल बाल रूप रंग की तरंग देख संग की सहेली कहा पूछे रस रंग की ।
सुन सकुचात , मुख मोर मुसकात, नेक न बतात बात रात के प्रसंग की[1]।

यहाँ व्रीड़ा, अवहित्था , हर्ष आदि अनेक संचारी का संयोग एक साथ देखा जा सकता है ।

रस प्रक्रिया के सम्बन्ध में विचार करते समय भावोदय , भावशान्ति , भाव शबलता एवं भाव सन्धि भी विचारणीय हैं ।

भावोदय एवं भाव शान्ति :-

जहाँ किसी भाव की शान्ति के बाद दूसरा चमत्कृत भाव उदय हो वहाँ भावोदय होता है और जहाँ शान्त होने वाला भाव अधिक चमत्कृत होगा वह भाव शान्ति कहलाती है माहौर जी के काव्य में भावोदय का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है -

प्रौढ़ी पर्यंक पै निशंक प्रान प्यारे साथ ,
कूजत विनोद मोद दोऊ काम जोटी के ।
हेरत हँसत केलि करत उछाह भरी ,
बोलत अमोल बोल बाने नेह चोटी के ।
माहुर सुकवि सुनी बाल ने अवाज काहू ,
सिमत समानो उत मानो नाग पोटी के ।
सिमट बधूटी प्रिय वदन चपेटी अब ,
करे अति छोटी ये पर्यंक बाल चोटी के[2]।

भाव सन्धि :-

जहाँ समान रूप से चमत्कृत दो भाव एक ही साथ उपस्थित हों, वहाँ -

---

1:- शृंगार - भा० - माहौर

2:- शृंगार - वागीश - माहौर

भाव सन्धि नहीं कही जा सकती क्योंकि एक ही स्थान में एकाधिक संचारी तो प्राय: हुआ ही करते हैं । भाव सन्धि में विरोधी भावों का समवेत वर्णन होता है पर उनकी आस्वाद्य मान्यता में प्रथम प्रथक अनुभूति होती होती है । दो भावों की स्थिति एक ही विभाव के प्रति रह सकती है और एकाधिक विभावों के प्रति भी । श्रृंगार - वागीश में हर्ष और विषाद भावों को एक साथ दिखाकर कवि ने भावसन्धि का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है -

> साँझ हू ते त्यौंरी कर बाल पिय सारी की सु -
>
> सारी जरतारी को समारी तन गोरे में ।
>
> छेदी अमोल भाल लालक कपोल पै ,
>
> अंजन लगाय नैन खंजन सकोरे में ।
>
> हिय हुलसाय धाय कहत अटान पर ,
>
> तकत लटान सुख होत मन मोरे में ।
>
> कारन सु कौन देख नारि मुरझानी तन-
>
> दूध छर पलटो ज्यों कंचन कटोरे में ।

यहाँ नायिका के अन्तर्मन के हर्ष और विषाद दोनों भावों के एक साथ उत्कर्ष का चित्रण किया है ।

भाव शबलता :-

जहाँ दो या दो से अधिक भावों के एक साथ उदय होने का वर्णन किया गया हो वहाँ भाव शबलता होती है माधोर जी के "श्रृंगार - वागीश' में भाव - शबलता की अभिव्यक्ति बड़ी ही स्वाभाविक है -

> अड़ अड़ जात लाज, गड़ गड़ जात मन, तन चढ़ जात जोति जोबन उमंग की ।
>
> भृंग भड़ जात जात, छोड़त न अंग संग अंग को सुरुचि हरन अनंग की ।
>
> नत्थू लाल बाल रूप रंग की तरंग देख संग की सहेली कहा पूछे रस रंग की ।

1:- श्रृंगार - वागीश - माधोर

मुन मकुचात, मुख मोर मुस्कात जात, नैक न बतात बात रात के प्रसंग की ।।

यहाँ हर्ष , व्रीड़ा , अवहित्था और स्तम्भ आदि अनेक भाव एक साथ प्रकट होने के कारण यहाँ भाव शबलता है ।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि माहौर जी के काव्य में विविध रसों एवं भावों का निरूपण हुआ है । कवि की रचनाओं में आलम्बन गत वैविध्य , उद्दीपन गत वैविध्य और अनुभाव योजना पर भी सम्यक रूपेण दृष्टिपात किया गया है । कवि का काव्य क्षेत्र अत्यन्त विशद , विशाल एवं व्यापक है । शृंगार , वीर और शान्त रस कवि को अपेक्षाकृत प्रिय रहे हैं । माहौर जी रीति परम्परा से प्रभावित थे अतः रीति कालीन शृंगार भावना का समावेश कवि की रचनाओं में स्वाभाविक ही था साथ ही देश प्रेम की भावना से आप्लावित होने के कारण माहौर जी के काव्य में वीर भावना का परिलक्षण विशद रूप से हुआ । भाव - क्षेत्र में शृंगार के साथ वीर रस का समावेश कवि का वैशिष्ट्य एवं मौलिकता का परिचायक है । समग्र रूप से कवि के भाव क्षेत्र का अपरिमित विस्तार पाठक को विमुग्ध करने वाला एवं उसकी प्रतिभा के व्यापकत्व का परिचायक है । मार्मिक प्रसंगों को भी पहिचानने की कवि में अद्भुत क्षमता विद्यमान है । माहौर जी के भावों का हृदयग्राही वर्णन मनोहारी एवं स्वाभाविक है ।

--------------- o ---------------

षष्ठम् अध्याय

- माहौर जी का कलापक्ष -

1:- माहौर जी के काव्य की भाषा तथा शब्द विधान :-

काव्य में अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा होती है । सामान्य बोल चाल में व्यक्ति के अभिप्राय को दूसरों के समक्ष प्रकट करने वाले किसी भी साधन को "भाषा" कह दिया जाता है[1]। किन्तु साहित्य में मुखोद्गीर्ण ध्वनि-संकेतों के उस सामूहिक प्रयोग को ही यह संज्ञा दी जाती है जो वक्ता के मानसिक चिन्तन, उसकी अनुभूति अथवा उसके विचार को उसके सजातीयों के समक्ष व्यक्त कर सके[2]। माहौर जी की भाषा ब्रज भाषा है जिसमें बुन्देली या बुन्देलखण्डी की विशेषतायें दृष्टिगत होती हैं । वस्तुत: कवि को जो भाषा परम्परा से मिली थी वह अत्यन्त समृद्ध थी यदि भक्ति काल के सूर ने उसे शक्तिमती तथा व्यापक बनाया था तो नन्द दास ने उसकी पद-योजना में संस्कृत की शब्द मणियाँ जड़ी थी । रीतिकाल में भिखारी ने यदि उसे परिमार्जित किया तथा उसके समास गुण को विकसित किया था तो मतिराम ने उसे स्वच्छ तथा परिष्कृत किया था । माहौर जी ने इन सभी रूपों का आधार ग्रहण करते हुये कवि ने अपनी भाषा में संस्कृत, तद्भव, देशज , विदेशी आदि शब्दों का प्रयोग किया है ।

माहौर जी का भाषा विषयक दृष्टिकोण व्यापक था । वे भाषा को एक सीमा में बाँधना श्रेयस्कर नहीं समझते थे । बुन्देलखण्ड के कवियों की भाषा के सम्बन्ध में कवीन्द्र नाथूराम माहौर ने अपने एक अध्यक्षीय वक्तव्य में कहा था - "भाषा के सम्बन्ध में बुन्देलखण्ड के कवियों का बड़ा ही उदार दृष्टिकोण रहा है किसी बोली गत संकुचित मनोवृत्ति का परिचय उन्होंने कभी नहीं दिया । काव्य की परम्परा से विकसित सर्वमान्य भाषा को ही बिना किसी अन्य विशेषण -

---

1:- भाषा विज्ञान- डॉ० भोलानाथ तिवारी - पृ०- 1-2

2:- --- वही ------------------ - पृ०- 143-44

के केवल "भाषा मात्र कहा जाता था , उन्होंने अपनाया । भाषा और बोली सम्बन्धी उनकी इस उदार वृत्ति को ही उनकी सफलता का बहुत हद तक श्रेय है । यह उदार वृत्ति हम बुन्देलखण्डी साहित्य - प्रेमियों की विशेषता रही है और अपनी इस व्यापक उदार वृत्ति की रक्षा करने में ही हमारा कल्याण है[1]।

बुन्देलखण्ड की काव्य भाषा के सम्बन्ध एक बात विशेषरूप से ध्यातव्य है कि बुन्देलखण्ड के कवि प्राय: उस भाषा में ही कविता करते हैं जिसे आज ब्रजभाषा कहा जाता है । रीतिकाल के सभी कवियों ने अपने काव्य की रचना ब्रज भाषा में की है । आरम्भ में इसे पिंगल कहा जाता था और 17वीं शताब्दी के अन्तर्गत यह मात्र "भाषा" अथवा "भाखा" ही कही जाती थी । हां अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक इसे स्पष्ट रूप से "ब्रजभाषा" कहा जाने लगा था । भाषा के क्षेत्र में माहौर जी संकीर्ण विचार धारा से बहुत दूर रहे वे बुन्देलखण्डी थे परन्तु उन्होंने बुन्देली में भी सबसे कम काव्य रचना की है क्यों कि वे बोली सीमाओं के विरोधी रहे हैं[2]। ब्रज भाषा से उन्हें स्वाभाविक प्रेम था । यही कारण है कि उनकी मुख्य काव्य ब्रज भाषा ही रही है । इस तथ्य को स्वीकारते हुये उन्होंने स्वयं कहा है - " सामान्यतया मुझे ब्रज भाषा का ही एक जन कवि समझा जाता है --- ------ स्नेहियों ने मुझे ब्रज भाषा के कवि के रूप में अपने स्नेह से अनुगृहीत किया है , तथा ब्रज साहित्य मण्डल ने मेरी रचनाओं को पुरस्कृत और सम्मानित भी किया है । बुन्देलखण्डियों का अभिजातसाहित्य अवश्य ही अभिजात साहित्यिक भाषा में रहा है , जिसे संक्षेप में ब्रज भाषा कहा गया है यद्यपि वह उतने ही परिमाण में बुन्देली-भाषा भी रही है[3]। इसी कारण माहौर जी ने इस जनपद की भाषा को ब्रज भाषा बुन्देली भाषा कहा । उन्होंने अपनी काव्य रचना यद्यपि मुख्य रूप से ब्रज भाषा में ही की तथापि परहेज उन्हें खण्डी बोली से भी न था । कवियों की रचनाओं-

---

1:- बुन्देली: काव्य भाषा और बोली-कवीन्द्र नाथूराम माहौर द्वारा 20 वर्ष पूर्व दिया गया अध्यक्षीय वक्तव्य जो कि वेत्रवाणी बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय के शोध प्रकाशन त्रैमासिकी के अगस्त 1973 के अंक में पृ0-23पर प्रकाशित है ।

2:- मा0अभि0 ग्रन्थ - रामनारायण अग्रवाल - पृ0- 12

3:- वेत्रवा-वाणी-बुन्देली, काव्य भाषा और बोली-माहौर-पृ0- 27 - 28

से प्रभावित होकर उन्होंने खड़ी बोली में भी बहुत साहित्य लिखा है परन्तु सम्भ-वत: खड़ी बोली में काव्य प्रणयन उन्हें इसलिये अधिक आकर्षित नहीं कर पाया कि खड़ी बोली काव्य क्षेत्र में वादों के प्रति जो आग्रह था दुराग्रह विकसित हो गया है वे उनमें से किसी के साथ अपने को जोड़ने में असमर्थ पाते रहे हैं[1]। यही कारण था कि माहौर जी की भावना के अनुरूप उन्हें ब्रज भाषा ही अधिक रुचिकर लगी फिर भी उन्होंने खड़ी बोली का भी त्याग नहीं किया । बाबू गुलाब राय ने हिन्दी साहित्य के सुबोध इतिहास में माहौर जी की गणना ब्रज भाषा के केवल कवियों में की है[2]। आपकी रचनाओं में सरलता एवं कल्पित कल्पना के अतिरिक्त बुन्देलखण्डी भाषा के माधुर्य का मिश्रण है[3]। माहौर जी का बुन्देलखण्डी, ब्रज एवं खड़ी बोली, हिन्दी का इन तीनों बोलियों पर पूरा अधिकार था । उन्होंने अपनी रचनाओं में अरबी, फारसी, अंग्रेजी सभी भाषाओं के शब्द ग्रहण कर अपने भाषा विषयक व्यापक दृष्टि कोण का परिचय दिया । समष्टि रूप से माहौर जी ने तीन प्रकार की भाषा का प्रयोग किया -

1:- विरल बुन्देली युक्त ब्रज भाषा

2:- तत्समशब्द मयी ब्रज भाषा

3:- विरल विदेशी शब्दमयी ब्रज भाषा

तीनों के उदाहरण क्रमश: प्रस्तुत हैं -

1:- <u>विरल बुन्देली युक्त ब्रजभाषा</u> :-

> नोनों खण्ड बुन्देल हमारो, नौक खण्ड को प्यारो ।
> बाल्मीकि, सु मी, केशव भए,जहं में सुकवि हमारो ।

+ + + +

1:- माहौर अभिनन्दन ग्रन्थ- बहु मुखी प्रतिभा कविवर माहौर - रामनारायण अग्रवाल - पृ०- 12

2:- हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास- बाबू गुलाब राय- पृ०- 211 - प्रकाशक - लक्ष्मी नारायण अग्रवाल छब्बीसवां संस्करण :1980 :

3:- बुन्देलखण्ड वागीश - रामपालसिंह चन्देल- पृ०- 15

माहुर सुकवि कहा लौ कहियत जो है जग उजियारो[1]।

यहाँ "नीनों," "हमारो", "नोड", "जई" आदि में बुन्देली भाषा की विशेषतायें दृष्टव्य हैं माहोर जी आजीवन बुन्देलखण्ड में रहे अतः बुन्देलखण्ड की जन बोली का उनके ऊपर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था जिसके फल स्वरूप उनके कुछ गीतों में शुद्ध बुन्देली भाषा देखी जा सकती है -

साँसी कउतवं धरन धरन में सबहिं तरा को सुख छा रओ ।

राष्ट्र पिताके गुन गारओ ।

\+ + + + +

दीहैं ताल तलैंआ भर दये, नदिआ भरया उमगारओ ।

राष्ट्र पिता के गुन गारओ[2]।।

इसमें बुन्देली शब्दों की अधिकता दृष्टव्य है ।

तत्सम शब्दमयी ब्रजभाषा :-

सत है सुधा को बसुधा को है अपार सुख ,

पार करबे को भव नौका अनुहार है ।

संतन मरालन को शोभित है मुक्ता पुंज ,

प्रेमी चातकान स्वाति बुन्द अपार है ।

फुल्लित करन मन कंज मंजु भक्तन के ,

दिव्य देस - देस में दिनेस सो प्रभार है ।

चाह चिन्त चायन में शोभा सरसायन में ,

राम गुन गायन में रामायन सार है[3]।

उक्त उदाहरण में तत्समों का बाहुल्य देखा जा सकता है ।

1:- स्फुट - माहौर

2:- स्फुट - माहौर

3:- स्फुट छन्द - रामायण माहात्म्य - माहौर

3:- विदेशी शब्दों से युक्त ब्रजभाषा :-

"नाथूराम" बाई साब वीरता प्रचारी जब ,

मारी बेशुमार मार देश की गुहारी है ।

अंग अंग्रेजन के नेजन ते डारे भेद ,

भेजे काट लीने ते करेजन कटारी है[1]।

यहा रेखांकित शब्द फारसी हैं ।

2:- शब्द विधान :-

भाषा की सदा से ही विकासोन्मुख प्रवृत्ति रहती है और जितने ही व्यापक रूप से किसी काल की भाषा अपने समाज में प्रचलित शब्दों को आत्मसात करके चलती है वह भाषा उतनी ही दीर्घ जीवी होती है । इस दृष्टि से भाषा के शब्द समूहों का अपना विशिष्ट महत्व होता है । किसी काल की भाषा चार रूपों में शब्दों को अपनाती है । तत्सम , तद्भव, देशज और विदेशी । तत्सम शब्द वे होते हैं जिन्हें किसी काल की भाषा अपने पूर्ववर्ती साहित्य में प्रयुक्त शुद्ध रूपों को ज्यों का त्यों अपना लेती है । इसके साथ ही कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो काला-न्तर में जनता द्वारा प्रयुक्त होते होते अपना रूप परिवर्तित कर लेते हैं और अपने इस परिवर्तित रूप में तत्कालीन साहित्य में प्रयुक्त होने लगते हैं ऐसे शब्द तद्भव कहलाते हैं । तीसरे प्रकार के शब्दों में देशज आते हैं जिनका विकास जनता के बीच उनकी बोलियों से होता है । चौथे प्रकार के शब्द विदेशी होते हैं जिनका अपना एक विशिष्ट महत्व प्रत्येक काल की भाषा में होता है । माहौर जी ने अपने काव्य में सभी प्रकार शब्दों को अपनाया है । श्रृंगार, वीर, भक्ति एवं प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं में सभी प्रकार के शब्दों का अपना अपना महत्व है जहां जैसे भाव होते हैं उन्हीं के अनुरूप माहौर जी शब्द चयन करते हैं । उनका शब्द भाषा-नुकूल है । अब हम माहौर जी की रचनाओं में प्रयुक्त शब्द वैविध्य पर दृष्टिपात-

---

1:- वीर बाला - माहौर - छन्द संख्या - 7

करेंगे -

अ:- संस्कृत ग्रहीत तत्सम शब्द :-

ब्रज भाषा को संस्कृत का तत्सम शब्द समूह यद्यपि विरासत रूप में युगों से प्राप्त रहा तथापि इसके ग्रहण और सही प्रयोग में ब्रज भाषा कवियों के संस्कारों और उनकी शिक्षा का सर्वाधिक योग कहा जा सकता है । संस्कारों से भारतीय होने के कारण ये अपने विचारों और भावों को साधारणत: भारतीय छेत्र से बाहर न ले जा सके जिसके परिणाम स्वरूप इनकी अभिव्यंजक शब्दावली भी परम्परा से प्रच-लित भारतीय अर्थात संस्कृत ही रही है । माधौर जी के काव्य में विषय वैवि-ध्यानुसार शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

1:- शृंगार सम्बन्धी रचनाओं में प्रयुक्त तत्सम शब्दावली दो प्रकार के व्यावहारिक एवं पारिभाषिक तत्सम् शब्दों का प्रयोग किया है । इसमें व्यावहारिक साधारणत: नायक - नायिकाओं की वेशभूषा , उनके रूप , व्यापारों और परिस्थितियों के अतिरिक्त उनके अनुभावों एवं संयोग और वियोग की दशाओं सम्बन्धी प्रसंगों में प्रचुर परिमाण में देखे जा सकते हैं जब कि पारिभाषिक शब्द यत्र तत्र वहीं पर देखने को मिलते हैं जहाँ माधौर जी ने कोइ नवीन अप्रस्तुत विधान का चित्रण किया या फिर विशिष्ट परिस्थिति से सम्बद्ध किसी प्रसंग की योजना करने का प्रयत्न किया ।

व्यावहारिक तत्सम शब्दों का प्रयोग :-

1:- नव [illegible] पैनी मग मैनी पिक बैनी बाल,
पूर्ण सुख देनी गज गैनी गुण गोर्ह है ।
सौभाग्य श्रेणी कच श्रेणी गुह वेणी [illegible] ,
काम की नसैनी सी सुगन्धन [illegible] है ।
नाथूराम [illegible] कुच पै [illegible] ,
उपमा अनूप सरसकी [illegible] जोह है ।
मानो कलधौत के उतंग अग अंग पर,
केलि कर पन्नगी पसार पूछ सोई है ।

1:- शृंगार आगीश - माधौर

2:- जाग्यो अनेलो खिन आनियो अदेसो कहु ,

श्याम के संदेसे कों हिये को कर हार लो ।

छोरो योग जोग तै किशोरो प्रेम भोग रोग ,

भोग में वियोग दुख होत है विचार लो ।

माथुर सुकवि मन मोरो मन मोहन ते ,

तोरो नेह की जंजीर जीवन सुधार लो ।

त्यागो दुःख दायिनी कसायिनी सगुन प्रीति,

गोपी अब ज्ञान की रसायन कों पान लो[1] ।

उपयुक्त श्रृंगार परक संयोग और वियोग के दोनों उद्धरणो में सुकवि, मग, पिक, पूर्ण, सुख, गात्र, गुन, श्रेणी, कच, वेणी, सुगन्धन :सुगन्ध : , कुच, त्रिवेणी, छवि, कलधौत, केलि, श्याम, प्रेम, भोग, दुख, मन आदि व्यावहारिक तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है । पारिभाषिक तत्सम शब्दों का प्रयोग निम्न छन्द में देखा जा सकता है -

1:- सुषमा प्रकासन की उपमा नसावत है ,

अम्बर अरुण धार बढ़े दान देन हैं ।

\+ \+ \+ \+

विरह अपार अवदात अनुपात बाल,

नाथूराम दिव्य दरसात छिद्र नैन हैं ।

सकल संयोग भोग पिय के वियोग माहि,

सुख संकल्प करत नीके दुख नैन है[2]।

यहा "उपमा", "अनुपात", संयोग वियोग और "संकल्प" आदि पारिभाषिक तत्सम शब्द है ।

1:- उद्धव-गोपी - संवाद माथुर

2:- श्रृंगार वागीश - माथुर

2:- वीर सम्बन्धी रचनाओं मे तत्सम शब्द :-

क्रुद्ध कर आई थी प्रसिद्ध वर युद्ध काज ,
साजी चतुरंगिनी थी रण विकराल की ।
प्रबल प्रचण्ड वर दंड भुज दंडन ते ,
खंड खंड गोरन के मुंडन की माल की,
नाथूराम पूर्ण देश प्रेम सनी थी रण ,
रंग मे ठनी थी औ बनी थी काल काल की ।
धन्य धन्य धरती मे बरनी न जात जैसी ,
करनी दिखाई बाई लाल करवाल की[1]।

इसमें क्रुद्ध , प्रसिद्ध, विकराल, प्रबल, दंड, खंड, धन्य आदि व्यावहारिक शब्द तथा चतुरंगिनी, युद्ध, आदि परिभाषिक तत्सम शब्द इस प्रकार घुल मिल गये हैं कि अलग से प्रयुक्त नहीं जान पड़ते ।

3:- भक्ति-विषयक रचनाओं में तत्सम शब्दों का प्रयोग :-

माहौर जी की भक्ति परक रचनाओं मे पारिभाषिक शब्दो का अभाव रहा है । जहाँ कवि का उद्देश्य इष्टदेव के गुणों का बखान कर मात्र उसकी स्तुति करना रहा है वहाँ शब्दावली इतनी क्लिष्ट एवं अव्यावहारिक होगयी है कि रचना एक दम संस्कृत के निकट जाती हुयी दृष्टिगत होती है और जहाँ कवि ने इष्ट के रूप और शील का वर्णन कर अपने उद्धार की याचना की वहाँ शब्दावली सरल एवं सामान्यत: व्यावहारिक हो गयी है ।

जयति कुण्डलित शुण्ड गण्ड मण्डल छवि छाजे ।
जय अखण्ड रवि, चन्द्र मण्डलाकार विराजे ।
जय त्रिशूल निर्मूल-पाणि-पाशांकुश-साजे ।
विघ्न हंत छवि वंत दंत विद्युत द्युति लाजे ।

1:- वीर बाला - माहौर छन्द संख्या ।।

चन्द्र भाल पै भाल चन्द्र के सुवन सुहाये ।

मोद-प्रदायक मधुर मंजु मोदक मन भाये ।।

विश्व वंद्य, अंध वृन्द स्वछन्द छल-छन्द निवारन ।

विस्तारन बानी-विलास भव-विभव-विदारन[1] ।।

इस उद्धरण में दो चार शब्दों को छोड़ कर सभी तत्सम शब्द हैं । इन शब्दों के द्वारा कवि अपने इष्टदेव के विभिन्न गुणों का उल्लेख कर उसकी स्तुति कर रहा है । शब्द संस्कृत निष्ठ हैं समास युक्त पदावली में शब्दों का गुम्फन बड़ा ही स्वाभाविक है । इसी प्रकार की क्लिष्ट, संस्कृत गर्भित एवं तत्सम शब्दावली युक्त भाषा का अन्य उदाहरण देखिये -

वारिज वारन -वदन विघन घन वृन्द विदारन ।
विस्तारन वाणी-विलास विभु विभव विहारन ।।
विद्या विशद विशुद्ध विमल बहु बुद्धि प्रदायक ।
वदत वेद बुध विबुध विविध विध विपति विनायक ।
भव वारिधि बोहित पदकंज, वन्दहु विश्व विधान के ।
वर वरधा-वाहन-नारि ले वर दे नित कल्यान के[2] ।।

उपर्युक्त उद्धरणों में शब्दों का चयन कुछ इस प्रकार का हुआ है कि उनकी ध्वनियाँ सहज ही एक अलौकिक वातावरण उपस्थित कर देती हैं ।

सरल व्यावहारिक तत्सम शब्दों से युक्त वन्दना देखिये जिसमें अपने उद्धार की प्रार्थना की गयी है -

पावन करन नित पतित अपावन को ,
जब तें सुनो है जस सकल सुभागी हौं ।
सकल विसार सोच सबको अधार-धार,
आन परौं द्वार,द्वार दूसरो न जानो हौं ।।

1:- सूर सुधा निधि - माहौर - मंगलाचरण
2:- द्रौपदी दुकूल पचीसी - माहौर - मंगलाचरण

"नाथूराम" अधम आधीन गुन हीन छीन

पाप रस लीन पीन पातकी पुरानों हों ।

की जिये सनाथ शीश राखि कृपा को हाथ,

अब रघुनाथ हाथ आपके बिकानों हों[1]।

रेखांकित शब्द तत्सम हैं ये सरल तत्सम शब्दावली एक प्रपन्न भक्त की दयनीयता की व्यंजना करते हैं ।

4:- प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं में तत्सम शब्दावली :-

प्रकृति विषयक रचनाओं में भी माहौर जी ने तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया है किन्तु इसमें व्यावहारिक शब्दों का बाहुल्य है पारिभाषिक शब्द केवल वहाँ पर प्रयुक्त हुये हैं जहाँ पर किसी प्रकार का रूपक बाँधने का प्रयास किया गया है । प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं मेंकतिपय पारिभाषिक शब्दों को छोड़कर स भी ऐसे शब्द प्रयुक्त हुये हैं जो विषय एवं भाषा के अनुकूल कहे जा सकते हैं । उदाहरणार्थ "षड्ऋतु दर्पण" के निम्न छन्द में पावस ऋतु का रूपक जादूगर से बाँधा गया है अत: व्यावहारिक एवं पारिभाषिक तत्सम शब्दों का एक साथ प्रयोग देखा जा सकता है -

चादर सी ताने आन बादर तमासे करें ,

वारि भिर भरें सर सरिता हिलोरी है ।

प्रगटत वृक्ष स्वच्छ पल्लव प्रसून लच्छ ,

लच्छ कर बन्द लेत बिन्दु चित चोरी है ।

नाथूराम नये नये रंग बदलाय दृग,

काम कृत पौन गोन डारे झकझोरी है ।

करत ठगोरी फिरे देखो यह छोरी छोरी,

पावस न होय गोरी जादूगर छोरी है[2]।

यहाँ बादर :बादल : वारि, सर, सरिता, वृक्ष :तरु :, स्वच्छ, पल्लव, प्रसून,

---

1:- शान्ति सागर - माहौर

2:- षड्ऋतु दर्पण - माहौर - वर्षा वर्णन

पौन ;पवन :, पावक इत्यादि शब्द तत्सम हैं ।

उपर्युक्त तत्समों के अतिरिक्त माधोर जी के काव्य में समग्र काव्य में निम्न लिखित विविध तत्सम शब्द भी देखने को मिलते हैं :-

गणपति, जुगल :युगल :, सिंधु, तिमिर, दीप, अंक, मयंक, वदन - द्युति : , सुखमा :सुषमा :, द्वितीया, चन्द :चन्द्र :, कंज, पिक, भूतल, सोभा :शोभा:, पीन, मीन, कैप, सुमन, पर्यंक, वचन, लोचन, रति, कच, वारि, कनक, कलानिधि, कोक, कला, कलानिधि, त्रिवेणी, चित्त, मेघ, हृदय, घन, दिवस, कंचन, पट, सुधा, प्रकाश, उपदेश, श्याम, विषय, निशि, कुठार, त्रिताप, सरिता, कपाट, आदि ।

2:- अर्द्ध-तत्सम और तद्भव शब्द :-

अर्द्ध - तत्सम शब्दों से हमाराअभिप्राय ऐसे शब्दों से है जो मूलत: संस्कृत से गृहीत हैं किन्तु मुख - सुख जैसे ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी कारणों से उन कतिपय ध्वनियों में परिवर्तन हो गया है । ये ध्वनियां हैं - ण य श व ष ऋ ए ओ और क्ष जो क्रमश: न ज स ब स रि :ए : अ :ओ : और च्छ के रूप में दष्टिगत होती हैं । इनके अतिरिक्त जिन शब्दों के संयुक्ताक्षरों के भीतर किसी स्वर का आगम हो गया है अथवा कहीं दीर्घ स्वरों का ह्रस्व अथवा लोप हो गया है उन्हें भी इसी वर्ग के भीतर रखा जा सकता है । ब्रज भाषा साहित्य में इस प्रकार के शब्दों की संख्या कम नहीं है । इसका मुख्य कारण यहरहा है कि प्रत्येक कवि ने इस भाषा की प्रकृति और सुविधा के अनुसार संस्कृत के कठिन से कठिन तत्सम शब्दों को ऐसे परिवर्तनों द्वारा नया रूप देकर ग्रहण कर लिया है ।

हिन्दी के तद्भव शब्द संस्कृत के तत्सम अथवा मूल शब्दों के ध्वनि मूल शब्दों से ध्वनि सम्बन्धी विकार के परिणाम हैं इस आधार पर अर्द्ध तत्सम शब्द भी एक प्रकार से तद्भव कहे जा सकते हैं । रीति कवियों ने अपनी रचनाओं के भीतर तद्भव शब्दों का पर्याप्त परिमाण में प्रयोग किया था । माधोर जी रीति-परम्परा से प्रभावित थे अत: उनकी सभी रचनाओं में अर्द्ध तत्सम और तद्भव शब्दों का बाहुल्य है । इनकी ये विशेषता रही है कि भाषा के अनुकूल होकर ये स्वतः उस में ऐसे खप गये हैं कि प्रत्येक विषय सम्बन्धी रचनाओं में विभिन्न प्रकार के बिम्बों -

की अधिक शब्दावली से पृथक प्रतीतनहीं होते । ये शब्द तत्सम जैसे ही सरल स्वाभाविक एवं अर्थ वैशिष्ट्य पूर्ण हैं । उदाहरण के लिये माहौर जी की विभिन्न रचनाओं में अर्द्ध तत्सम और तद्भव शब्दों को निम्न रूप में देख सकते हैं -

1४÷ श्रृंगार विषयक रचनायें :-

अ:- परम सुदेस केस साजे सुचि राजे स्याम,
　　　　लाजैंगी समाजे हेरि सघन घटान की ।
दिव्य दुति देख दामिनी की हू दराजे हारि,
　　　　सुन के अवाजैं हो पराजै कोकिलान की ।
नाथूराम आनन विलोकि केंद्र पूजन को ,
　　　　दब दब ज्यों घट कला सोउस कलान को ।
ताने पंचवान कैसी भृकुटी कमानें पेखि ,
　　　　आली टूट जावैंगो कमाने मघवान की[1]।

ब:- ननद नदान कछु जाने नहि प्रीति रीति,
　　　　देख मन मानें ताने सौ सुन रहा करो ।
सास को सुभाव भयो भाग से कुभाव अब ,
　　　　प्रेम को भरो है भाग सासो में वहा करो ।
नाथूराम लाल प्रेम जाल में फस्यो है मन,
　　　　नेह में नस्यो है तन अतन दहा करो ।
पनघट आय घट देत है उठाय घट ,
　　　　घट में बस्यों है जाय पनघट कहा करो[2]।

: इनमें सुदेस, केस, सुचि, स्याम, दुति, पराजै, सोउस, पंचवान, भृकुटी, पेखि, ननद, नदान, सुन, सास , सुभाव, फस्यो, बस्यो आदि अर्द्धतत्सम एवं तद्भव शब्द हैं :

1:- श्रृंगार वागीश - माहौर - अप्रकाशित

2:- श्रृंगार वागीश - माहौर अप्रकाशित

वीर रस की रचनाओं में -

प्रखर महान देस भक्ति सक्ति सान धरी ,
    रन दरम्यान जब म्यान तें खिंचत है ।
बचत न शत्रु लख लख के समक्ष होत,
    मत्त चित दक्ष काल बाल सी नचत है ।
सृष्टि सी रचत एक एक के अनेक कर,
    धधकित प्रताप तन तेज सी तचत है ।
लखत परेश हा हा मचत मही में महा,
    रानी की कृपानी जब जंग में नचत है[1]।

देस, सक्ति, सान, रन, बाल :व्याल:, तचत, कृपानी, नचत आदि शब्दों में अर्द्धतत्सम एवं तद्भव दोनों ही प्रकार के शब्दों का योग है ।

भक्ति परक रचनाओं में तत्सम शब्द -

दरस किये तें हिय हरष अपार होत,
    परस किये तें होत पारस प्रकार के ।
"माहुर" सुकवि होत माहुर सुधा सुमंजु,
    होत छार छार पुंज कलि के विकार के ।
जीवन में जीवन को सार देत सदा,
    पार कर देत भव-सागर अपार के ।
एक बार आवत सप्रेम हरि-द्वार ताहि,
    खोलत किवार हरिद्वार हरि-द्वार के[2]।

:यहाँ दरस, हिय, हरष, परस, किवार आदि शब्द अर्द्धतत्सम एवं तद्भव हैं :

प्रकृति विषयक रचनायें -

1:- झाँसी की रानी विषयक छन्द स्फुट - माहौर

2:- शान्ति सागर - माहौर - पृ०- 12

बोर देत पुहुमी झकोरे घन छोरे सोरे ,

सा   सोरे देत सकल दिसान छिति छोरे देत ।

छोरे देत लाज को पिया के चित चोरे देत ,

सरिता हिलोरे देत मदन मरोरे देत ।

रोरे देत विरही, विरहीन तन तोरे देत ,

मानो मेघ चंचला सों आज गाठ जोरे देत ।

जोरे देत बदरा कुलन्द बहु कुन्दन सों ,

बरस बरस मेघ आज मही बोरे देत[1]।।

यहाँ पुहुमी, दिसान, छिति, पिया, गाँठ, बदरा, आदि अर्द्धतत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है । इनके अतिरिक्त माहौर जी के काव्य में प्रयुक्त अर्द्धतत्सम एवं तद्भव शब्दों की विविधता इस प्रकार देखी जा सकती है -

स्याम, सुखमा, सीस, बाल, चिन्तामनि मह मिस, रवि, दरस, सनान, गुन, तिकर छवि , जस ग्यान, तपत ग्रीष्म, कुछ, बसन, बन बन, बेनी, जोग, विरह, पिय, भौन भोरे मुंदरी, सिंगार, सेत, सोत, हिय, काम, दीठ, बिन्दु, नाह, नेह, जोबन, कान्ह, तिरीछे, घन, चित, पोन, गोन, अकास, मेज, उछाह, काजर आदि ।

2:- देशज शब्द :-

प्राचीन भाषाओं तथा हिन्दी की क्षेत्रीय बोलियों के शब्द समूह के अतिरिक्त ब्रज भाषा के अपने शब्द भी हैं जो समय , संस्कृति और विभिन्न परिस्थितियों के परिवर्तन एवं विकास के परिणाम स्वरूप आवश्यकतानुसार गढ़े गये हैं । "देशज" शब्दों से हमारा तात्पर्य ऐसे ही शब्दों से है इन शब्दों की यह विशेषता है कि वे कवियों की भाषा में इतने घुल - मिल गये हैं कि सहज ही पृथक करके नहीं बताये जा सकते । माहौर जी अपनी रचनाओं में कुछ देशज शब्दों का भी प्रयोग किया है -

---

1:- षड्ऋतु दर्पण - माहौर - वर्षा वर्णन

1:- मनमोहन मोहनी डोहुन के,

ब्रज वीथिन प्रेम के नाके परे ।

जब से चमके उनके सजनी,

कुल कान के नेम फाके परे ।

कवि को बरनै यह प्रीति प्रथा ,

मन में दुहुं ओर सनाके परे ।

उन पै दृग बान के छाके परे,

इन पै मुसकान के डाके परे[1] ।

2:- पावक सहायक से दहि दु:ख दायक थे -

ग्राहक थे प्राण प्रण सुषमा अतोली के ।

लाये थे विधाय दुराचार कुल पट्टी किधों,

करन सपट्टा रह चट्टा एक टोली के ।

+ + + + +

सत्य गुण रह साज कैसे पावन टोली के[2] ।

यथा नाके, फाके, सनाके, छाके, डाके, अतोली, पट्टी, सपट्टा, टोली आदि देशज शब्द हैं । अन्य देशज शब्द जो माधोर जी की विविध रचनाओं में मिलते हैं इस प्रकार हैं -

कानि, पैंर, ठिग, दुर, छोरनि, टेकि, अटक्यो, नाहीं, घूंघट, घूमे क करोट :करवट : निपट, कंकर, लोल, अटा, ओला, ऐंहर, पौलि, छाजा, खब्बा आदि ।

4:- स्थानीय बोली-बुन्देली के शब्दों का प्रयोग -

माधोर जी बुन्देलखण्ड के निवासी थे अत: उनकी भाषा में यहां की -

---

1:- स्फुट छन्द - माधोर

2:- षड्ऋतु वर्णन - माधोर

जन-बोली बुन्देली के शब्दों का आना स्वाभाविक ही था । उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि "मैं अपने आपको क्या भाषा क्या भाव सभी बातों में सदा बुन्देलखण्डी ही समझता रहा हूँ ----- मेरा रोम रोम बुन्देलखण्डी ही है तो मेरी रचनाओं की भाषा बुन्देलखण्डी के अतिरिक्त और हो ही क्या सकती है[1]। डा० भगवान दास माहौर ने कवीन्द्र माहौर की भाषा के सम्बन्ध में लिखा है - "माहौर जी के काव्य में कहीं कहीं ठेठ आदर्श बुन्देली है इसमें कहीं कहीं खड़ी बोली के भी जो प्रयोग आये हैं वे उसी रूप में आये हैं जैसे बुन्देलखण्डी लोग सामान्यतया बोल चाल में प्रयोग करते हैं[2]। माहौर जी का अधिकांश साहित्य बुन्देली मिश्रित ब्रजभाषा में है । विशुद्ध बुन्देली के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

नोनो खण्ड बुन्देल हमारो नौखण्ड खण्ड को प्यारो ।

+ + + +

बाई लक्ष्मी रानी जई में, धारो नगन दुधारो ।

दानी सूर सिरोमनि जई में, भए अनगिनत लिखारो ।

माहुर जहाँ लो कवियन जो है जग उजियारो ।

सियाराम नेहू दुर्दिन में जग को सबो सहारो ।

राष्ट्रपिता के गुणों का बखान बुन्देली के माध्यम से निम्न उदाहरण में- देखिये-

साँसी कउतहि छरन हरन में सबहिं तुरा को सुख डारओ ।

राष्ट्र पिता के गुन गाइओ ।।

पाग अहिंसा सत्य शान्ति की , भारत के सिर बंधवा रओ ।

हार हर्ष के हर हियरे में, घेरा रओ मुख मुस्का रओ ।।

राष्ट्र पिता के गुन गारओ ।।

जागन लागन गाउन गाउन मेल के मेला भरवारओ ।

रीति ताल तलैया भर दये, नदिया नरवा उमगारओ ।।

राष्ट्र पिता के गुन[3] ----

1:- बेतवा वाणी- बुन्देली काव्य भाषा और बोली - माहौर

2:- मदनेश कृत लक्ष्मी बाई रासो-सम्पादक-डा० भगवान दास माहौर - भूमिका

3:- स्फुट राष्ट्रीय गीत - माहौर - अप्रकाशित

उपर्युक्त उद्धरणों में नीनो, हमारो, मोउड, प्यारो, बढ़, लओ, लासी, कढ़तढ़ि, तरा, छारओ, गारओ, बखवा रओ, पेरा रओ, मुसकारओ, बागन, तागन, गाढ़न, भरवारओ, रीति तलैयाँ, नदिया उमगारओ आदि विशुद्ध बुन्देली शब्द हैं ।

कहीं कहीं माहौर जी ने बुन्देली के साथ खड़ी बोली के शब्दों का भी प्रयोग किया है -

> दिन मिले हमें सुख साधन के ।
> जान दिनन के लानें रोवऊं हार गये दिन गिन गिन के ।
> तेई दिन अब नोने नीके आय गये जन जन मन के[1] ।

5:- विदेशी शब्दों का प्रयोग -

भारतीय प्राचीन भाषाओं और उनसे विकसित उपभाषाओं तथा बोलियों के शब्दों के साथ विदेशी भाषाओं के शब्द भी इस भाषा के अन्तर्गत पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलते हैं इनमें अरबी , फारसी का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है माहौर जी ने अरबी, फारसी और अंग्रेजी आदि से प्रभावित शब्दों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है -

दोहा- दफा चार में है लिखी, सत्य सत्य फरियाद ।
न्याय नियम अनुकूल यह, दावा अन्दर म्याद ।।

: घनाक्षरी :

> जो कुछ लिखा है मजमून इस दावा बीच,
> "नाथूराम सही सही पूरे ऐतकाद पर ।
> दावा करने की बात पैदा हुई भारत में ,
> कायदा से वायदा-खिलाफी बुनियाद पर ।।
> आपको अदालत में काबिल समायत है ,
> गौर कर लीजे न्याय-कीजे फरयाद पर ।।

---

[1] स्फुट राष्ट्रीय गीत - माहौर - अप्रकाशित

ठीक ठीक कानून अन्दर मियाद दावा ,
दायर किया है नाथ आखरी मियाद पर[1]।।

:यहाँ दफा, दायर, कायदा, वायदा, खिलाफी, काबिल, कानून, पेतकाद, समायत, आदि शब्दा अरबी के हैं तथा म्याद, फरयाद, मुनयाद शब्द फारसी हैं :

अरबी एवं फारसी के अन्य शब्द जो कवि व्दारा प्रयुक्त किये गये हैं इस प्रकार हैं -

गुलाब, गुलदावदी, जमात, दराजें, महक, गुहर :गुहर :, कमान, रंग-रेजा, माफक, नग, बेशुमार, मेजन, कोजन, रंगरेजे, गरीब, खुश बोय :खुशबू : , तनकी, आखरी, अदालत, गर्ज :गरज :, अर्ज, अरजी, मजमू :मजमून :, बदनाम आदि अरबी एवं फारसी के शब्द हैं ।

माहौर जी के काव्य में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग अत्यल्प मात्रा में यदा कदा ही देखने को मिलता है -

1:- दीन दुखियों का ऋण चुका न पाते आप,
दीन बन्धु क्यों न लालमैन्ट बन जाते हो[2]।

2:- दावा-दरख्वास्त मुद हरजा खरचा समेत ,
हकदार मुद्दई है डिगरी के पाने का[3]।

3:- तकसीम के नोटिस पाना मुझे,
उसमें जो लिखा तकसीम नहीं[4]।।

4:- बीर बाल बरनी के मानहु दृग रिजाल्वर नीके[5]।।

1:- दीन का दावा - माहौर -पृ०- 14 भाग दूसरा

2:- दीन का दावा - माहौर - प्रथम भाग - पृ०- 14

3:- दीन का दावा - माहौर - दूसरा भाग - पृ०- 15

4:- दीन का दावा - माहौर - दूसरा भाग - पृ०- 16

5:- बीर वधू - माहौर - पृ०- 34

5:- रिश्वत चोरी चेक को, गरमा गरम बजार[1]।

यहाँ सालमेन्ट, डिगरी, नोटिस, रिवाल्वर एवं चेक शब्द अंग्रेजी से गृहीत विदेशी शब्द हैं ।

6:- शब्द ध्वनि अथवा अनुरणात्मक शब्द -

ध्वन्यार्थ व्यंजना के लिये कवि ने शब्द ध्वनियों को काव्य में प्रयुक्त किया है -

1:- तरतरात कुन्दन के कुन्द मढ़ि हरहरात, रात

सरसरात पौन भौन भीतर लौं भरभरात ।

\+ + + +

करकरात बादल घुमंडि घूम घरघरात,

घरघरात घन नभ मण्डल में तरतरात[2]।

2:- गगन गराज घन गहन समाज साज,

दादुर दराज सी अवाजन सोहाये हैं ।

: मधुऋतु दर्पण :

3:- झिल्लीगण झीने झनझनाते थे कमीने बैन[3]।

4:- घूम जात भूमि लूम लग लागी लता,

हेरो नभ मण्डल में मेहन को घूम जात ।

झूम जात देखौ धुरवान को धुंकारे तैन,

एक बरसोत एक बरस गन घूम जात ।

\+ + + +

झूम जात झुक जात लपक नशीले नैन[4]।

1:- व्यंग विनोद - माहौर - पृ0- 13

2:- मधुऋतु दर्पण - माहौर

3:- स्फुट छन्द - माहौर

4:- शृंगार वागीश - माहौर

5:- नाथूराम चित्ती चमकारन सितारम की

दादुर टकोरन झुँझरित ट्वावोगी[1]।

उपर्युक्त अनुरणात्मक शब्दों का प्रयोग माहौर जी के काव्य में बड़ी ही कुशलता के साथ किया गया है ।

7:- मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ -

मुहावरे एवं कहावतें प्रत्येक जीवित भाषा की अपनी विशेषता हुआ करती है यद्यपि इनके मूल में "लक्षणाशक्ति" काम करती है तथापि इनके प्रयोगों से उत्पन्न भाषागत सौन्दर्य कुछ और ही होता है[2]। लोकोक्तियों और मुहावरों द्वारा भाषा की व्यंजना शक्ति बढ़ जाती है , साथ ही सजीवता और प्रभावोत्पादकता भी आ जाती है[3]। रीति कवियों ने अपनी रचनाओं मुहावरों एवं लोकोक्तियों का खुलकर प्रयोग किया था । माहौर जी ने भी रीति परम्परा से प्रभावित होकर अपने काव्य में मुहावरे एवं लोकोक्तियों का अधिक प्रयोग किया है । कवि का मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग विषयानुसार अधिक हुआ है । श्रृंगार, एवं भक्ति सम्बन्धी रचनाओं में मुहावरे अधिक हैं तो हास्य व्यंग में कहावतों का प्रयोग अधिकाधिक हुआ है । उदाहरण के लिये माहौर जी के कुछ छन्द दृष्टव्य हैं -

अ:- मुहावरे-

1:- वीरता अदृश्य होत छाती धरकत है ।

+ + +

मछरी को पूछ देख मूंह फरकत है[4]।

1:- श्रृंगार वागीश - माहौर

2:- रीतिकालीन रीति कवियों का काव्य शिल्प- डा० महेन्द्र - पृ०- 480

3:- सूर और उनका साहित्य- हरवंशलाल शर्मा - पृ०- 308

4:- द्रोपदी स्वयंवर में पार्थ शीर्षक से अप्रकाशित छन्द - माहौर

2:- सार तन धार पर हाय सार हीन रहे,

धोबी केसे कुकर न घाट के न घर के[1]।

3:- नेकु न जानत हम रही ऊधो जग इतिहास ।

ऊंची दिव्य दुकान को, फीको होत मिठास[2]।

4:- दूर के ढोल सुहावने, देख लेव दग खोल[3]।

5:- सहें प्यास की पीर ,नीर पावे नहि सेरो ।

कहि कहावत भई द्वीप तरें अंधेरो[4]।

6:- राम-राज की लूट है, लूटत बने सु लूट ,

फिर पाछे पछितावगे, प्राण जायगे छूट[5]।

7:- देख गज के दांत हम, सकल भांति कर गौर ।

खाते के कछु और हैं, हे दिखात के और[6]।

8:- उपजाऊ नहिं होत है, भूमि ऊसरा जान[7]।

9:- जानत जहान अब आप हू विचार देखो ।

कैसे तरवारें दो बनेगी एक म्यान में[8]।

उपर्युक्त उद्धरणों में लोकोक्तियों का प्रयोग विषयानुकूल है । लोक प्रचलित उपमाओं, मुहावरों एवं लोकोक्तियों का आश्रय लेकर माहौर जी ने अपनी भाषा को अभीष्ट - भावों की अभिव्यक्ति के लिये बहुत ही उपयुक्त बना दिया है ।

1:- शान्ति सागर - माहौर - पृ०- 43

2:- व्यंग विनोद - माहौर - पृ०- 8

3:- व्यंग-विनोद - माहौर - पृ०- 10

4:- व्यंग-विनोद - माहौर - पृ०- 16

5:- व्यंग-विनोद - माहौर - पृ०- 2

6:- व्यंग -विनोद - माहौर - पृ०-10

7:- व्यंग - विनोद - माहौर - पृ०- 18

8:- उद्धव गोपी संवाद - अप्रकाशित

माहौर जी के काव्य में शब्द शक्तियाँ-

शब्द एवं अर्थ के सम्बन्ध में विचार करने वाले तत्व को शब्द शक्ति कहते हैं । शब्द तथा वाक्य की सार्थकता उनके अर्थ में है । जिस शक्ति या व्यापार द्वारा अर्थ का बोध होता है उसे शक्ति कहते हैं -"शब्दार्थसम्बन्ध: शक्ति: " अर्थ भेद के अनुसार शब्द की शक्तियों के तीन भेद किये गये हैं - अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। कवि की रचना में शब्द-शक्ति जितनी अधिक सबल होगी उसकी रचना में उतनी ही अधिक प्रभाव शक्ति होगी ।

1:- अभिधा -

शब्द की जिस शक्ति के कारण किसी शब्द का साधारण तथा प्रचलित या मुख्य सांकेतिक अर्थ गृहीत होता है उसे अभिधा कहते हैं । "साक्षात सांकेतिक अर्थ को बतलाने वाली शब्द की प्रथम शक्ति को अभिधा कहते हैं , वह शब्द वाचक कहलाता है[1] । पं० जगन्नाथ "शब्द एवं अर्थ के परस्पर सम्बन्ध को अभिधा कहते हैं[2]। हिन्दी रीति कवि देव ने तो अभिधा काव्य को ही उत्तम स्वीकार कर इस वृत्ति को शीर्ष पर प्रतिष्ठित किया -

> अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन ।
> अधम व्यंजना रस कुटिल, उलटी कहत नवीन[3]।।

संस्कृत के रस सम्प्रदाय के अन्तर्गत कुछ प्रमुख रसाचार्यों ने रस की स्थिति में अभिधा शक्ति को प्रमुखता दी है । इन आचार्यों के मत में रस की अनुभूति अभिधा शक्ति के द्वारा ही होती है । राम चन्द्र शुक्ल जी ने भी अभिधा या वाच्यार्थ को ही अधिक महत्व दिया है । लक्षणा और व्यंजना दोनों ही शक्तियों के कार्य व्यापार के मूल में अभिधा की वाचक शक्ति ही निहित होती है इस कारण इसका अपना एक विशिष्ट महत्व है । शब्द की यह शक्ति भाषा का आधार होती है । इसके

1:- काव्य प्रकाश - मम्मट - पृ०- 216

2:- रस गंगाधर - पं० जगन्नाथ - द्वितीय आनन

3:- शब्द रसायन - देव - पृ०- 62

बिना अर्थ और तद्गत बिम्ब तक पहुँचना असम्भव हुआ करता है । रचनाओं में अभिधा के अन्तर्गत मुख्यार्थ का चमत्कार रहता है ये पहले ही कहा जा चुका है । माहोर जी की रचना समष्टि में अनेक स्थानों पर अभिधा का प्रकाशन है ऐसे वर्णनों में कवि ने अपने कथ्य की अभिव्यंजना हेतु निश्चित अर्थ देने वाले शब्दों का चयन बड़ी ही खूबसूरती के साथ किया है , फिर भी अर्थ में कल्पना का चमत्कार देखा जा सकता है । माहोर जी के द्वारा चित्रित होली का एक दृश्य देखिये - कैसी सुरम्य कल्पना है , अधिकांश वाचक शब्द अपने विशिष्ट अभिधेयार्थ द्वारा बिम्ब की स्वच्छ प्रतीति कराने के साथ अद्वितीय सौन्दर्य की सृष्टि करने में भी समर्थ हुये हैं -

ब्रज सुखदानी फाग खेलें ब्रज रानी संग,

प्रेम रस सानी संग फिरी मरदानी है ।

मण्डित गुलाल की धरा सी लहरानी दिव्य ,

विद्युत अबीर की छटा-सी बरसानी है ।

नाथूराम हेर लो छिपानो आसमान भानु,

दसहू दिसान फाग भीर महरानी है ।

प्रबल प्रधूम धुंध अधर धरातें धूम ,

धूंधर उड़ानी जामें राधिका दिरानी है[1]।

2:- बन्दहु प्रथम शिव नंद चरणारविन्द ,

अतही स्वच्छन्द चंद भाल पे ललाम है ।

करन निकन्द स्वच्छन्द कंद अघ विहत वृन्द ,

पूरक अनन्द कंद दायक अराम है ।

नाथूराम लाज आज कविन समाज मांहि,

राखे गणराज सुद्धि बुद्धि को जो धाम है ।

गुरु को प्रणाम, इष्टदेव को प्रणाम, देव,

देव देव को प्रणाम आप सबको प्रणाम है[2]।

1:- षट्ऋतु दर्पण - माहोर

2:- स्फुट छन्द - वन्दनात्मक - माहोर

उपर्युक्त उध्दरणों में अभिधाशक्ति का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया गया है । माथोर जी दोनों ही उध्दरणों में सुन्दर भाषा अनुप्रास के सहारे अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर विशिष्ट बिम्बों की प्रतीति कराने में सक्षम रहे हैं ।

2:- लक्षणा शक्ति -

शब्द की दूसरी शक्ति लक्षणा है । जिस स्थल पर मुख्यार्थ में बाधा उपस्थित होती है तथा सीधे रूप से उसका अर्थ ग्रहण नहीं हो पाता वहाँ शब्द का रूढ़ि या प्रसंग के सहारे अर्थ निकाल लिया जाता है । ऐसी दशा में शब्द का अर्थ व्यापार जिस शक्ति के ध्दारा ज्ञात किया जाता है उसे ही शब्द की लक्षणा कहते हैं । साहित्य दर्पण कार ने इसकी परिभाषा देते हुये कहा -"मुख्यार्थ की बाधा या व्याघात होने पर रूढ़ि या प्रयोजन को लेकर जिस शक्ति के ध्दारा मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित हो, उसे लक्षणा कहते हैं[1]। इससे स्पष्टत: यही अर्थ निकलता है कि मुख्यार्थ की बाधा रहने पर रूढ़ि या प्रयोजन के सहारे जहाँ पर अन्य अर्थ लक्षित होता है वहाँ लक्षणा शक्ति कार्य करती है । लक्षणा के व्यापार के लिये तीन तत्व आवश्यक हैं -

1:- मुख्यार्थ का बाधित होना

2:- मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ का योग

3:- रूढ़ि या प्रयोजन

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि लक्षणा में मुख्यार्थ की बाधा होना , मुख्यार्थ का परस्पर योग एवं रूढ़ि या प्रयोजन में से किसी एक का होना भी आवश्यक है । माथोर जी ने अपने काव्य में भाषा को वैदग्ध्यमयी एवं समृध्दशालिनी बनाने के लिये लक्षणा वृत्ति का प्रयोग यत्र तत्र किया है । कवीन्द्र माथोर की "श्रंगार-रागीश" से लक्षणा शक्ति के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

1:- प्रवत्स्यत्पतिका नायिका का वर्णन है नायक परदेस जाने को उद्यत है नायिका की चेष्टायें लक्षणा के माध्यम से इस बात को संकेतित कर रही हैं कि प्रात: काल ही न हो जाए प्रियतम परदेस न जा सकें एतदर्थ वह अपने नेत्रों से अंजन निकाल-

---

1:- साहित्य दर्पण-विमला टीका- ध्दितीय परिच्छेद कारिका 5 -पृ०- 28

कर रात्रि की कालिमा का द्योतन कर रही है । सूर्य के समीप बन्दर का चित्र बना कर रात्रि समाप्त न होने का संकेत देकर कवि ने नायिका की चेष्टाओं के माध्यम से सुन्दर लाक्षणिक वृत्ति का परिचय दिया है -

छहरैं सुछवि मंजु बिहरे निकुंज कुंज,
भौंरन के पुंज कर कंज सौं निवारे है ।
नाथूराम चन्द्र मुखी प्रेम में मुखी है सुखी-
देख सूर्यमुखी लेख हृदय विचारे है ।
अंजन वियोग मन रंजन करन हेतु
खंजन से नयनन सौं अंजन निकारे है ।
लिखित विचित्र चित्र मित्र के बराबर में
बन्दर बनाय भौन अन्दर पधारे है[1]।

2:- स्वकीया नायिका का वर्णन लक्षणा वृत्ति के द्वारा कितना मनोहारी एवं आकर्षक है गौने के बाद जब अपने पति के पास नायिका आती है तो रसिकता के प्रतीक श्याम का नाम त्याग कर स्वपत्नी में अनुरक्त राम का नाम अपने हाथ में लिखवा लेती है । शब्दों की लाक्षणिकता एवं पति अनुरक्ता नायिका का स्वकीया होना प्रदर्शित करती है अपने कथ्य की पुष्टि हेतु कवि लक्षणा का सहारा लेता हुआ स्वकीया का वर्णन इस प्रकार करता है -

आई गुन गौने सुचि सौने से सलौने गात,
गन्ध सरसौने गन्ध बन्धु ललचायो है ।
उरज उठौने भये मदन खिलौने छौने,
लाल ललचौने देख देख सुख पायो है ।
नाथूराम बाल के रिसौने डरचौने नैन -
चैन सुचि सौन चैन सिन्धु उमगायो है ।
ललित ललाम छवि धाम कर कंज माहिं -
श्याम नाम त्याग राम नाम गुदवायो है[2]

1:- श्रृंगार वागीश - माथौर

2:- श्रृंगार वागीश - माथौर

इसी प्रकार माहोर जी ने ब्रिटिश गुलामी में पड़े क्षत्रिय राजाओं के शौर्य को, तलवार का वर्णन स्वकीया नायिका के रूप में करते हुये, लक्षणा शक्ति का प्रयोग कर जाग्रत किया । तलवार के ही शब्दों में स्वकीया नायिका का स्वरूप देखिये स्वकीया की भाँति क्षत्रिय राजाओं की तलवार म्यान रूपी रनिवास में ही निवास करती हुयी शोभित हो रही है , इस उक्ति में क्षत्रिय राजाओं के प्रति कितना गहरा व्यंग्य है -

त्याग कर बैठी हर कण्ठ का विहार व्रत -
दूती धर्म कर्म के न जाती कभी पास हूँ ।
नाथूराम स्वप्न में न नाचती रणांगन में -
म्यान रनवास में ही करती निवास हूँ ।
जाके कभी सन्मुख न देखती दिखाती मुख ,
सुख रूप पाके बनी दिव्य गुण रास हूँ ।
पूर्व के समान उपहास के न योग्य अब ,
सभी वीर वरों की स्वकीया बनवास हूँ[1]।

उपर्युक्त स्थलों के वर्णन में हम देखते हैं कि लक्षणा के द्वारा कवि ने केवल सीधी सादी बात को चमत्कारिक तथा सरस रूप से सामने रखता है वरन उसमें अर्थ के साथ भाव सौन्दर्य का भी पर्याप्त समावेश कर देता है ।

3:- व्यंजना शक्ति :-

जब अभिधा शक्ति अर्थ बतलाने में असमर्थ हो जाती है तो लक्षणा के द्वारा अर्थ बतलाने की चेष्टा की जाती है किन्तु कुछ ऐसे भी अर्थ होते हैं जिनकी प्रतीति अभिधा या लक्षणा द्वारा नहीं होती इस स्थिति में तीसरी शक्ति की आवश्यकता होती है इसे व्यंजना शक्ति कहते हैं । जिस शब्द विशेष द्वारा इस अर्थ का बोध होता है वह व्यंजक शब्द और उस शब्द से उद्भुत अर्थ व्यंग्यार्थ कहलाता है । व्यंजना के अन्तर्गत किसी विशेष प्रसंग में वही शब्द एक दूसरा अर्थ ध्वनित करने लगता है -

---

1:- स्फुट छन्द - माहोर

जिसकी ओर प्रत्यक्ष रूप से निर्देश नहीं होता । माहौर जी ने नायिका भेद के वर्णन में व्यंजना शक्ति का सुन्दर वर्णन किया है । खण्डिता नायिका की प्रायः सभी उक्तियां व्यंजना के अन्तर्गत आती हैं । माहौर जी के काव्य में नायिका भेद के वर्णन में अनेक स्थानों पर व्यंजना शक्ति परिलक्षित होती है -

गंजत रहे हो मंजु मालती निकुंजन में ,
　　कंजन में पाली थी प्रनाली प्रीतिपन की ।
महक गलाबन की गहक विलोक चाह,
　　चटक उठे हे दशा त्याग तन तन की ।
नाथूराम जोड़ जोड़ के जुही सों नेह ,
　　तोरत जुही सों कहा ठानी है भ्रमन की ।
भ्रमित भये हो सत्य भ्रमर बताओ अब ,
　　मन की लगी है आस कौन से सुमन की[1]।

यहां खण्डिता नायिका का चित्रण जो भ्रमर के माध्यम से नायक की अनेक रमणियों के साथ विहार क्रिया को अभिव्यंजित करती है । इस स्थल पर कवि का व्यंजना कौशल दृष्टव्य है ।

इसी प्रकार अन्य स्थल पर खण्डिता नायिका की व्यंग्योक्ति कवि की व्यंजना शक्ति को द्योतित करती है -

कौन सी पुशाक पे पुये हो मुशन्ताक ताक,
　　करत हलाल दिल फिरत फिराये से ।
नाथूराम कौन की लकीर के फकीर हुये ,
　　मरसिया पढे हो लाल कलइसिया गिराये से ।
लुंज पुंज हो के रंज अलम उठाये आये,
　　हसन हुसेन काम कतल कराये से ।
खेल कर अखाड़े गाड़े लाये कर नैन लाल,
　　आये प्रातकाल लाल ताजिया सिराये से[2]।

1:- श्रृंगार - वागीश - माहौर

2:- श्रृंगार - वागीश - माहौर

नायिका द्वारा पति को प्रात: काल अन्य नारी संभोग जनित रति चिन्हों से युक्त देख कर कुपित दिखाया गया है , लेकिन व्यंजना के माध्यम से । मुस्लिम संस्कृति में ताजिये की प्रथा है रात्रिभर जागरण के बाद प्रात: काल ताजिये सिराये जाते हैं उस समय ताजिये निकालने वालों की जो दशा होती है वह मुंह धुंध होके रंज मनाना, नेत्र लाल होना आदि शब्दों से व्यंजित है । नायिका इन शब्दों की व्यंजना द्वारा नायक पर कुपित होती है, यहां व्यंजना शक्ति देखी जा सकती है ।

संक्षेप में माहौर जी ने अपनी रचनाओं के अन्तर्गत शब्द की तीनों शक्तियों का उपयोग सिद्ध हस्तता एवं मनोयोग के साथ किया है । माहौर जी के काव्य में अभिधाशक्ति का प्रयोग सर्वाधिक दृष्टिगत होता है । लक्षणा एवं व्यंजना के प्रयोग नायिका भेद प्रसंग में अधिकाधिक हुये हैं ।

3:- माहौर जी के काव्य में गुणों का स्वरूप :-

संस्कृत काव्य शास्त्र के अन्तर्गत रसवादी आचार्यों ने गुणों को शौर्य , उदारता आदि मनुष्य की आत्मा के धर्मों के समान ही काव्य की आत्मा रस के धर्म स्वीकार कर[1] उन्हें भाषा के प्रसाधक शब्दालंकारों से कहीं अधिक महत्व दे डाला है । भाषा की सबलता और भावों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से गुणों का अपना विशेष महत्व है । दण्डी के अनुसार गुण काव्य के शोभा विधायक धर्म हैं । वामन ने भी काव्य के शोभा विधायक धर्म को गुण कहा है - "काव्य शोभाया: कर्तारो धर्मा गुणा:"[2]। आचार्य मम्मट ने शौर्यादि के समान गुणों को रस का धर्म माना है । मम्मट प्रतिपादित तीन गुणों- माधुर्य, ओज और प्रसाद के स्वरूप निम्नवत हैं -

1:- माधुर्य गुण -

काव्य प्रकाशकार के अनुसार हृदय को द्रवित करने वाली आह्लाद दकता ही माधुर्य है[3]। संयोग शृंगार से करुण , करुण से विप्रलम्भ तथा विप्रलम्भ से शान्त-

---

1:- साहित्य दर्पण - विश्वनाथ - अष्टम परिच्छेद

2:- काव्यालंकार सूत्र वृत्ति - वामन

3:- काव्य प्रकाश - 8/68

में इसी गुण की अधिकाधिक अनुभूति मानी गयी है[1]। काव्य में माधुर्य के समावेश के लिये केवल भावों की मधुरता ही नहीं अपितु शब्दों की कोमलता की भी आवश्यकता होती है । इस गुण के लिये ट वर्ग वर्णों तथा समासों का अभाव र- कार ण-कार और अनुस्वार युक्त वर्णों का प्रयोग आवश्यक है[2]। माहोर जी रीति कालीन काव्य परम्परा से प्रभावित थे, अतएव संयोग एवं वियोग शृंगार की चर्चा के साथ वियोग जन्य करुणा की भावना उनके काव्य में व्यापक रूप से पायी जाती है इसलिये माहोर जी ने माधुर्य गुण का प्रयोग सर्वाधिक किया है उदाहरण के लिये होली के प्रसंग में किस प्रकार कवि ने कोमल वर्णों की योजना से भाव को मधुर बना दिया है -

आलिया चली है फाग खेलन उतालिया ,

गुआलिया गुलाल की सजायें दिव्य थालिया ।

उदित उजालिया दिखावें छवि जालिया,

सुगावें गान गालिया बजावे कर तालिया ।

भूषण सजालिया सु अंग रंग डालिया ,

सु, नाथूराम पालिया सनेह की प्रणालिया ।

लालिया बजावें मतवालिया विशाल बाल,

गबल गुलाल भरी झोवें मुख लालिया[3]।

इसमें अनुनासिक स्वरों की योजना कर माधुर्य गुण की अभिव्यक्ति की गयी है जो स्वाभाविक एवं सरल है । माहोर जी गणेश स्तुति में कोमलकान्त पदावली का प्रयोग करते हुये अनुस्वार युक्त वर्णों को भी स्थान देकर माधुर्य गुण की सुन्दर योजना की है -

करन सुधारे कंज चरण निहारे मंजु ,

रंज भंज भारे अघपुंज हारे के ।

निपति विदारे घन विघ्न विदारे तारे,

1:- षड्ऋतु दर्पण - माहोर - वासंती वर्णन

2:- स्फुट छन्द - माहोर

3:- साहित्य दर्पण- विश्वनाथ- अष्टम परिच्छेद ।

कुमति सुधारे सुमति सधारे है ।

"नाथूराम" प्यारे दृग तारे भव तारे भव,

विमल पसारे भव विभव पसारे है ।

चन्द्र नन्द वारे कोटि चन्द्र निन्द वारे चन्द्र,

भाल चन्द्र वारे सुत भाल चन्द्र वारे है[1]।

उपर्युक्त उदाहरणों में कर्ण कटु शब्दावली का अभाव होने के साथ साथ सानुस्वार तथा आनुनासिक वर्णों का आधिक्य है अतः इनमें माधुर्य गुण है ।

2:- ओज गुण :-

चित्त में उत्साह के भाव को उदित करना ओज गुण का मुख्य ध्येय होता है संयुक्ताक्षरों, द्वित्व वर्णों, टवर्गों से युक्त शब्दों की इसमें योजना रहती है । साहित्य दर्पणकार ने लम्बे लम्बे समासों की अनिवार्यता स्वीकार करते हुये इस की स्थिति वीर, वीभत्स एवं रौद्र रस में स्वीकार की है[2]। ओज गुण का प्रयोग माहोर जी ने अपनी रचनाओं में वीरता आदि के भाव प्रदर्शन हेतु यत्र तत्र किया है । "वीर बाला" में रानी लक्ष्मी बाई के शौर्य प्रदर्शन में ओज गुण देखा जा सकता है -

दीप मालिका सी दिव्य ज्योति जाल का सी भासी,

काल बालका सी कालिका सी उद्दण्डी थी ।

डाह साह आँधी की निवासी अमला सी पूज्य,

वीरता विकासी भासी कीर्ति कुल मण्डी थी ।

नाथूराम जग में दुर्लक्षित छटा सी छूट,

विद्युत छटा सी तेज वह्नि पे डंडी थी ।

उभित उमंगी देश द्रोहिन विहण्डी बल,

प्रबल प्रचण्डी भासु वे वे रण चण्डी थी[3]।

1:- स्फुट छन्द - माहोर

2:- साहित्य दर्पण - विश्वनाथ- अष्टम परिच्छेद

3:- वीर बाला - माहोर - छन्द सं० 3

वीरभावानुकूल शब्दों का चयन कर माहौर जी ने उर्पुक्त उद्धरण में ओज गुण की सुन्दर योजना की है ।

"राम लवकुश - संवाद" के अन्तर्गत लवकुश द्वारा वीरता के भाव प्रदर्शन में ट-कार ध्वनियों के अधिकाधिक प्रयोग , एवं कठोर शब्दावली माधुर्य गुण के सर्वथा अनुकूल है -

रुण्ड बिनु मुण्ड तन मल मल खण्ड कर,
लेकर अखण्ड दण्ड जब दौर जाऊं मैं ।
धरनि गिराऊं भट कटक नसाऊं घट ,
चटक चलाऊं चपट दिखाऊं मैं ।
सकल नसाऊं दल देख रण मण्डल में ,
नाथूराम बाल खेल खेलन दिखाऊं मैं ।
तपसी कहाऊं सत्य वचन सुनाऊं आज ,
लपसी कराय सोम घाट घाट जाऊं मैं[1]।

यहां "लपसी" के साथ "घाट घाट" शब्दों की योजना प्रसंगानुकूल एवं स्वाभाविकता लिये हुये ओज गुण के लिये सर्वथा उपयुक्त सिद्ध हुयी है । यहां सभी ट-कार वर्ण सार्थक , स्वाभाविक एवं प्रसंगानुकूल हैं । कहीं कहीं शृंगार वर्णन के सन्दर्भ में भी ट-कार शब्दों का प्रयोग कर ओज गुण का प्रयोग किया गया है । ऐसे स्थलों पर कवि का ध्यान मूल रस पर न रह कर व्यंजित या अभिव्यक्त क्रिया की तीव्रता तथा तीक्ष्णता पर अधिक रहा है यथा -

गुरुजन चाल चाल करके चलावे चाल ,
सासों पे सुचाल चाल चाल नहि चालोगी ।
युगल चवाइन के डर न डरोगी नक,
अब लोकनिडर ह्वै क कै भुज डालोगी ।
नाथूराम नेही नटवर सों लिपट अंग,
निपट कपट तज प्रेम प्रन पालोगी ।

1:- रामलीला के लिये प्रणीत छन्द - माहौर :अप्रकाशित :

घट घट छायो घनघट आ उठायो घट ,

घट में समायो अब घूँघट न घालौंगी[1]।

3:- प्रसाद गुण ;-

जिस गुण के कारण रचना का अर्थ तुरन्त समझ में आ जाय , उसका पूरा प्रभाव चित्त पर पड़ जाये उसे "प्रसाद" कहते हैं । यदि कवि अपनी रचना में ऐसे शब्दों का प्रयोग करे जिनका अर्थ सुनने के साथ ही समझ में आये तो उसे प्रसाद गुण से पूर्ण कहा जाता है[2]। ओज एवं माधुर्य गुणों के रसोंका क्षेत्र सीमित है[3]परन्तु प्रसाद गुण का प्रयोग रस विशेष की सीमा में आबद्ध नहीं रहता वरन उसकी स्थिति लगभग सभी रसों में होती है । इसका मूल कारण यह है कि ओज और माधुर्य का भाषा के बाहरी रूप :शब्दों : से ही सम्बन्ध रहता है जब कि प्रसाद का अर्थ से अधिक सम्बन्ध होता है[4]। प्रसाद गुण की प्रतीति भी सरल एवं सुबोध शब्द योजना के आधार पर होती है । मधुर भावों की कविता में माधुर्य गुण के साथ प्रसाद गुण का भी समावेश अनिवार्यतः ही होता है । माहौर जी ने अपनी रचनाओं में वीर-रस के उन प्रसंगों को छोड़कर जहाँ उन्होंने रीतिपरम्परा से प्रभावित होकर भाषा सम्बन्धी चमत्कार मूलक पाण्डित्य प्रदर्शन किया है अन्य स्थलों पर माधुर्य भावों की अभिव्यक्ति लिये पर्याप्त मात्रा में प्रसाद गुण का प्रयोग किया है । प्रसाद गुण युक्त माहौर जी की कुछ रचनाये दृष्टव्य हैं -

1:- गाना सत्य शान्ति का है तरल तराना सदा,

भारत की वीरता का दृश्य दिखाना है ।

आना ध्येय पट का उठाना है सदा के लिये ,

दासता पिशाचिनी को दफन कराना है ।

शिवा छत्रसाल महाराणा का निभाना ध्येय ,

1:- श्रृंगार-वागीश - माहौर

2:- काव्य प्रदीप- पं० रामबहोरी शुक्ल - पृ०- 100

3:- निराला का काव्य - डा० सन्तोष गोयल- पृ०- 297

4:- कवि पद्माकर और उनका युग- डा०ब्रजनारायण सिंह- पृ०- 429

मरमिट जाना परतन्त्र न कहाना है ।

फूले हुये फूलों को चढ़ाना बलि वेदी पर,

घर घर लाना राम राज्य का जमाना है[1]।

2:- जिसके उर से उत्पन्न हुआ ,

उसका ही सदा गुण गाना मुझे ।

जिसका सुखद पय पान किया ,

उसका बदला है चुकाना मुझे ।

अरे माली न तोड़ना भूल कभी ,

कुछ जीवन का फल पाना मुझे ।

जननी सुखद पद पंकजों में ,

हंसते हंसते चढ़ जाना मुझे[2]।

3:- कठिन कराल कोटि काटन कलेस-जाल,

तरुण सुतेज तिम मिहिर समान है ।

पतित पुनीत पग-पाद प्रिय भारत पाल,

भेटन कुअंक-भाल भक्ति समान है ।

भावुक सुकवि जग-जीवन का जीवन है,

जीवन पियूष-सम रस अभिराम है ।

बरहु प्रणाम नाम नामन में दिव्य नाम,

नामन में नाम नाम नाम राम-नाम है[3]।

4:- जाना है जिन हरि-भजन तिन जाना जग जोय ।

जाना होगा एक दिन फेर न आना होय ।।

लाना है हिय में प्रेम प्रभु से रिझाना प्रभु,

प्रभु से लगाना ध्यान,ध्यान में समाना है ।

1:- राष्ट्रीय लहर - माधोर - :अप्रकाशित :

2:- बीज की कहानी - माधोर - :अप्रकाशित :

3:- शान्ति सागर - माधोर - पृ०- 5

गाना है जो "नाथूराम" राम से मिलाना मन,
मन को भुलाना श्याम रंग में रंगाना है ।
गाना है अनन्त गुण पाना है अनन्त पद,
अन्त कर जाना फेर आना है न जाना है[1]।

उपर्युक्त उद्धरण में प्रसंग वैविध्य है परन्तु इनमें प्रयुक्त पदावली सद्यः अर्थ बोध कराने में सक्षम, प्रसाद गुण युक्त है ।

निष्कर्षतः माहौर जी ने अपनी रचनाओं के अन्तर्गत तीनों गुणों -माधुर्य, ओज और प्रसाद का समावेश पर्याप्त आग्रह के साथ किया है। इनमें माधुर्य सामान्यतः उन सभी बिम्बों की अभिव्यक्ति में आया है जो अत्यन्त कोमल और मधुर रहे हैं तथा ओज का सन्निवेश उन बिम्बों की अभिव्यक्ति में हुआ जो स्वभावतः चित विस्तारक है । प्रसाद गुण का प्रयोग साधारणतः सभी प्रकार के बिम्बों में हुआ है और यह परिमाण की दृष्टि से सर्वाधिक है । यह आधिक्य अपने आप में इतना रहा कि कहीं कहीं "माधुर्य" और "ओज" से सम्पन्न रचनाओं में भी यह व्याप्त दृष्टिगत होता है इसका मुख्य कारण यह है कि इनके सभी बिम्ब सामान्य रूप से इतने स्पष्ट एवं स्वच्छ रहे हैं कि तदनुकूल माधुर्य अथवा ओज की व्यंजक शब्दावली के प्रयोग के साथ "प्रसाद" का समावेश भी सहज रूप से हो गया है । माधुर्य अथवा ओज के साथ "प्रसाद" के समावेश को दोष नहीं मानना चाहिये क्यों कि यह माहौर जी की वह विशिष्टता है जिसके कारण उनकी रचनायें सहृदयों की कंठ हार बनी हुयी हैं ।

1:- शान्ति सागर - माहौर - पृ0- 35

4:- माहौर जी काव्य में दोष-विवेचन -

कोई काव्य सब प्रकार से दोष विवर्जित हो ऐसा असम्भव है आचार्य विश्वनाथ ने इसीलिये कहा है कि नितान्त दोष रहित काव्य संसार में मिलना ही कठिन है अत: उन्होंने साधारण दोषों के रहते हुये भी काव्य में काव्यत्व स्वीकार किया है[1]। जिस किसी वस्तु के द्वारा कविता के मुख्यार्थ के समझने में बाधा पहुँचती है अथवा सुन्दरता में कमी आती है उसे दोष कहते हैं । कुछ लोग गुणों के विरोध में आने वाले तत्वों को दोष मानते हैं[2]। रीति कवियों का ध्यान अधिकांशत: भाषा की अलंकृति और समृद्धि पर केन्द्रित था । व्याकरण सम्मत वाक्य रचना उनका मूल उद्देश्य कदापि नहीं था । ऐसी दशा में देव आदि कवियों तक की भाषामें व्याकरण के दोष आ गये है[3]। कवीन्द्र नाथूराम माहौर रीतिकालीन कवियों से प्रभावित थे अत: वे भी उक्त मान्यता तथा परम्परा के प्रवाह से अछूते न रह सके । व्याकरण सम्बन्धी प्रयोगों मेंअपरक्षित होने तथा छन्द और तुक का निर्वाह करने के कारणउनकी रचनाओं में कहीं कहीं लिंग,वचन, विभक्ति, क्रिया और वाक्य रचना सम्बन्धी दोष आ गये हैं । माहौर जी के काव्य का अनुशीलन करने पर निम्नलिखित काव्य दोष दृष्टिगत होते हैं -

1:- वचन और लिंग दोष :-

कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो एक से अधिक वस्तुओं का द्योतन करने के कारण , जब तक कि पृथकत्व के लिये उनमें से एक का विशेष रूप से प्रयोग न किया जाय, साधारणत: सदैव ही बहु वचन में प्रयुक्त होत हैं - केश, दन्त, नख, कुच, नितम्ब, हाथ, पैर आदि ऐसे ही शब्द हैं[4]। माहौर जी ने अपनी रचनाओं में कहीं कहीं इस नियम का उल्लंघन कर दिया है यथा -

---

1:- साहित्य दर्पण - विश्वनाथ

2:- गुणविपर्ययात्मानो दोष:- काव्यालंकार सु॰ :वामन :

3:- महाकवि स्वाधीन का व्यक्तित्व तथा कृतित्व- डा० पमोरी - पृ०- 313

4:- देव और उन की कविता - डा० नगेन्द्र - पृ०- 220

1:- परम सुदेस केस ताके ।

:शृंगार वागीश :

2:- नाथूराम छूट परी कुच पे त्रिवेनीरूप ।

:शृंगार वागीश :

3:- दृग अश्रु की माल जपी निसि बासर ।

:अनुमाल :

4:- पद अरविन्द निन्दे, कदलि मिकन्दे जंघ,

\+ + + +

श्री फल उरोज राज, बिम्बाफल ओष्ठ युग्म -

दन्त दुर्युति पंक्ति कुन्द कलिका निनिन्द है ।

खंजन मृगान मीन मन मद गंज नैन -

केस वर वेणी तथ मकुच फणिन्द है ।

:शृंगार-वागीश :

उपर्युक्त उदाहरणों में माथोर जी ने केस, कुच, अश्रु, पद , दन्त, नैन आदि के एकवचनान्त प्रयोग किये हैं । इसी प्रकार लिंग सम्बन्धी दोष माथोर जी के कृतित्व में देखे जा सकते हैं -

1:- नाथूराम दास की कुलाई प्रबन्द हैं ।

:स्फुट :

2:- नाथूराम चन्द मुखी प्रेम में पुखी है तभी -

देख सूर्यमुखी देख हृदय बिचारे है ।

\+ + + +

लिखित लिखित्र चित्र मित्र के बराबर में ,

कन्दर समाय मौन अन्दर पधारे हैं ।

:शृंगार -वागीश :

3:- दादुर रटान लागी, लगन सुहाई है ।

:शृंगार -वागीश :

2:- विभक्ति दोष :-

सामान्यत: काव्य भाषा में विभक्तियों के प्रयोग की सुनिश्चितता नहीं होती । छन्द की लय के साथ विभिक्तियों के प्रयोग में नियम शैथिल्य का आ जाना स्वाभाविक ही है रीति कालीन कवियों की भांति बौहरे जी के काव्य में भी विभक्तिगत दोष आ गये हैं । कर्ता "ने" एवं कर्म "को" का प्रयोग प्राय: कवीन्द्र ने नहीं किया है पाठक को अपनी ओर से बाका आक्षेप करना पड़ता है । अन्य विभक्तियों का भी त्याग स्थान स्थान पर बाहौर जी ने किया है -

1:- प्रेमी चातकान स्वाति सुखद अपार है ।

:स्फुट :

2:- श्रुति रोम रहें घनश्याम रवं,

मन में घनश्याम निवास करें ।

:सुर-सुधा-निधि :

:- धन्यवाद सब कोटि विधि, दे प्रभु को सानन्द ।

रामदास सुत जन्म को उत्सव रच्यो अमन्द ।

:सुर-सुधा-निधि :

नाथूराम वीर रस मूर्ति दर भानी दिव्य,

दैत्य दल घानी बाधि बारनी भवानी है ।

:वीर-बाला :

उपर्युक्त उदाहरण में रेखांकित शब्दों के साथ क्रमश: "के लिये" "में" ने, की और "ने" आदि कारक चिन्ह आना चाहिये थे परन्तु ऐसा नहीं हुआ है अत: विभक्ति दोष आ गया है ।

3:- क्रिया क्रम का दोष :-

काव्य भाषा में समास गुण के आग्रह के कारण कारक चिन्हों की भांति क्रियाओं की भी प्रयोग छोड़ी किफायत से किया जाता है[1]। माहौर जी द्वारा निम्न उद्धरण में सहायक क्रिया "है" सर्वत्र लोपन कर दी गयी है -

1:- करन सुधारे कंज चरण निहारे मंजु,
  रंज भंज भारे कलपुंज पुंज हारे के ।
विपति विदारे छन विघन विदारे सो,
  कुमति सुधारे वर सुमति सुधारे के ।
नाथूराम प्यारे दृग तारे भव तारे भगु-
  विभव पसारे भव विभव पसारे के ।
चन्द्र नन्द वारे कोटि चन्द्र निन्द वारे चन्द्र ,
  भाल चन्द्र वारे सुत भाल चन्द वार है[2]।

2:- सास ससरात धसरात कसरात वात,
  वातमेंबनाथ वात सो तुम सदा करो[3]।

4:- श्रुति कटुत्व दोष :-

जो शब्द कठोर शब्दों से बने होने के कारण सुनने में अच्छे नहीं लगते , खटकते हैं उन्हे श्रुतिकटु कहते हैं । इनके प्रयोग से रचना में श्रुति कटुत्व दोष आ जाता है[4]। माहौर जी के काव्य में कुछ स्थान पर श्रुति कटुत्व दोष देखने को मिलता है -

1:- अटक पड़ो है चित चटक पड़ो है अब,
  अटक रहो है मन मोर मुकुट वारे में[5]।

1:- देव और उनकी कविता - डा० नगेन्द्र - पृ०- 223

2:- श्री गणेश स्तुति - माहौर

3:- शृंगार - वागीश - माहौर

4:- काव्य प्रदीप - रामबहोरी शुक्ल - पृ०- 369

5:- उद्धव गोपी संवाद - माहौर

2:- तारे है प्रत्यक्ष जन रक्षक अपक्ष पक्ष ,

सुयश समस्त लक्ष वेद विस्तारे है[1]।

3:- रुण्ड बिनु मुण्ड तन सत सत खण्ड करें ,

लेकर अखण्ड दण्ड जब दौर जाड में ।

धरनि गिराड भट कटक नसाड घट ,

घटक घलाड चोट झपट बिघाड में ।

\+ + + +

लपसी बनाय तोय घाट घाट जाड में[2]।

उपर्युक्त उद्धहरणों में श्रुति कटु शब्दों के प्रयोग होने से श्रुति कटुत्व दोष है ।

5:- अधिक पदत्व दोष :-

जहाँ वाक्य में कुछ ऐसे शब्द आ जाय जिनकी आवश्यकता न हो और जिनको निकाल देने से उसका अर्थ न बिगड़ता हो बल्कि अधिक अच्छा हो जाता हो वहाँ "अधिक पदत्व दोष " होता है[3]।

1:- छत्रपति छत्राधीश छत्री छत्रसाल वीर ,

छत्री धर्म पालो छाव कीन पै न घालो है[4]।

2:- सीता रामचन्द्र चन्द्र जू के पद पंकज को,

लुब्ध हो मलिन्द मकरन्दकन्द चाख है[5]।

3:- प्रभहि भुलानो बिसरानो ना बखानो नाम[6]।

1:- स्फुट - माधौर - छन्द

2:- रामलीला के लिये प्रणीत लवकुश -राम संवाद - माधौर

3:- काव्य प्रदीप - रामबहोरी शुक्ल - पृ०- 375

4:- छत्रसाल प्रशंसा - माधौर

5:- शान्ति सागर - माधौर

6:- शान्ति सागर - माधौर

उपर्युक्त पंक्तियों में रेखांकित शब्दों में अधिकपदत्व दोष [illegible] है ।

6:- ग्राम्यत्व दोष :-

जब ऐसे शब्दों का साहित्यिक भाषा में प्रयोग किया जाता है जो गंवारू बोल चाल में प्रयुक्त होते हैं या प्रान्तीय होते हैं तब ग्राम्यत्व दोष होता है[1]।

1:- परे रहो ओट न नहीं तो कुच करोर की,
लेखो जो करोट तो खरोट परि जायेगी ।

:श्रृंगार-वागीश :

2:- त्याग श्याम नाम राम नाम गुदवायो है ।

:श्रृंगार-वागीश :

3:- फंसि के जगवासना में जो कहू,
हंसी होयगी लोग लुगायन में ।

:शान्ति सागर :

रेखांकित शब्दों में ग्राम्यत्व दोष दृष्टव्य है ।

7:- अश्लीलत्व दोष ;-

व्रीड़ा, जुगुप्सा तथा अमंगल व्यंजक शब्दों के प्रयोग में अश्लीलत्व दोष होता है । माहौर जी की रचनाओं में ये दोष कम ही आया है -

1:- विधि की बनावट बिगारने लगे हैं बाय,
लौंडे रंडियों के पूरे कान काटने लगे ।

: स्फुट :

2:- नंगा कहे नंगन को नंगापन दूर होत ।

:शान्ति सागर :

1:- काव्य प्रदीप - रामबहोरी शुक्ल - पृ0- 37।

रेखांकित शब्दों में अश्लीलत्व दोष है ।

8:- छन्दोभंग दोष :-

छन्द विशेष की मात्राओं या उसके वर्णों की संख्या ठीक होने पर भी जब उसकी गति ठीक न हो अथवा किसी शब्द के बीच में ही यति पड़े तो छन्द ठीक नहीं रहता ऐसे समय छन्दोभंग दोष होता है । इसी को यतिभंग दोष भी कहते हैं -

1:- कहत विचार वार वार ही पुकार मन-

मथ को पुकार बन सबको पुकार है ।

:शान्ति सागर :

2:- नाथूराम पंचवान पूजे औ पुजावे नील-

कंठ को उड़ावे शुभ सगुन जनावे है ।

9:- अक्रमत्व दोष :-

जहाँ वाक्य में कोई शब्द अथवा कुछ शब्द अपने उपयुक्त स्थल पर उपयुक्त न हों, अर्थात जिस क्रम से उन्हें रखना चाहिये उस क्रम से न रखा गया हो वहाँ अक्रमत्व दोष होता है -

1:- वेंकट के था व्यापक उर में ।

2:- शबरी के था हृदय स्थल में ।

:शान्ति सागर :

5:- छन्द योजना :-

कविता एवं छन्द का सम्बन्ध प्राचीन काल से बड़ा ही घनिष्ट रहा है । स्वर लय युक्त भावानुकूल छन्दों से भाषा में गति आ जाती है तथा पाठक का आकर्षण बढ़ जाता है, लय ही प्रत्येक छन्द का प्राण है । कविता स्वर एवं लय प्रधान होती है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक छन्द आ जाता है[1]। छन्द कवि के अन्तर्मन की सह-

---

1:- आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना-डा०पुत्तूलाल शुक्ल- पृ०- 10

अभिव्यक्ति है जिस पर नियम का ढक्कन डाल दिया गया है[1]। हिन्दी साहित्य के आदि काल से ही छन्द आवश्यक समझा जाता रहा है । दोहा, चौपाई, छप्पय, पद,, कवित्त, सवैया आदि में उस समय कविता होती रही । छन्द केवल उत्तेजना भावोद्दीपन एवं प्रभविष्णुता में ही सहायक नहीं अपितु वह स्वयं व्यापार निश्चित करता है । कविता में छन्दों की आवश्यकता को स्वीकार करते हुये सुमित्रानन्दन पंत ने लिखा --"कविता तथा छन्दों के बीच घनिष्ट सम्बन्ध है । कविता हमारे प्राणों का संगीत है एवं छन्द हृत्कम्पन । कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होता है[2]।

छन्द का नियमन यद्यपि अनुभूति द्वारा ही होता है तथापि इसका प्रयोग विषय और तदनुरूप व्यापार के समान प्रायः नवीन अथवा मौलिक न होकर परम्परानुक्त ही हुआ करता है । इसके मूल में कवि के परम्परा - प्रयोग जन्य संस्कार ही क्रियमाण रहते हैं । माहौर जी के काव्य में छन्द विधान रीति परम्परा द्वारा गृहीत है । यद्यपि रीति कवियों ने प्रायः सभी प्रकार के छन्दों का प्रयोग अपने साहित्य में किया तथापि कुछ विशिष्ट छन्दों का प्रयोग उनके साहित्य में अधिकांश रूप में किया गया इन छन्दों में अत्यन्त प्रसिद्ध ये तीन - कवित्त , सवैया और दोहा ही हैं जिनको प्रायः सभी कवियों ने सभी प्रकार के विषयों से सम्बन्ध रचनाओं में प्रयुक्त किया । इसके अतिरिक्त छप्पय, चौपाई , सोरठा और हरिगीतिका ये चार छन्द और हैं जिनमें भी इन कवियों की विभिन्न शैलियों की पर्याप्त रचनायें उपलब्ध होती हैं ।

माहौर जी के काव्य में रीति कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रायः सभी छन्दों का प्रयोग किया गया है -

1:- कवित्त या मनहरण :-

यह वर्णिक छन्द की परम्परा का प्रमुख छन्द है । कवित्त मुक्तक और -

---

1:- जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त - श्री लक्ष्मी नारायण सुधांशु - पृ0- 130

2:- पल्लव की भूमिका - सुमित्रा नन्दन पंत - पृ0- 21

दण्डक है । इसमें गुणों अथवा मात्राओं के नियम लागू नहीं होते । इस छन्द की रचना के विषय में छन्द शास्त्र कोई भी व्यापक और निश्चित नियम नहीं देता, हाँ इतना अवश्य कहता है कि यह वर्णिक वृत्त है इसमें 8,8,8 और 7 के क्रम से 16 और 15 पर यति देते हुये 31 वर्ण रखे जाते हैं और इनकी गति पर विशेष ध्यान दिया जाता है इस छन्द की रचना भिन्न भिन्न कवियों ने भिन्न भिन्न रूपों में की है[1]। माहौर जी ने अपनी अनेक रचनाओं में कवित्त या मनहरण का प्रयोग किया है कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

1:- झाँसी दुर्ग द्वार माहि दुर्गे उग्र रूप तुही,
द्रोही दल दाहनी भई थी देश दाहिनी ।
रण अवगाहनी तू छलन रचायनी तू,
साहनीसखी थी संग सुभट सराहनी ।
"नाथूराम" विश्व माहि छाहनी सुयश छत्र,
छत्रपति छेद छेद प्रण निबाहिनी ।
वीर में प्रशंसनीय वंश वाहनी सी भव्य,
सिंह वाहिनी सी विजय दे दे काज वाहिनी[2]।

कवि ने यहाँ प्रत्येक चरण में 8,8,8 और 7 पर यति के नियम का पालन किया है ।

उदाहरण --2

कुन्दन कलित कोटि काम-कमनीय कान्ति-
कान्ति कलान्तिकारी हैं कलाधर करोर के ।
कलि के कलुष-कोष शोषन-कदन कुल-
कल्पद्रुम, कामधेनु-कीरति-निचोर के ।।
"नाथूराम" कोमल कृपाल करुनीक सदा-
कवि-उपमान कल कीरति- निचोर के ।

1:- उद्घाटक प्राक्कथन -डा० रमाशंकर शुक्ल रसाल- पृ०- 65-66

2:- वीर बाला - माहौर - छन्द संख्या ।

करन निकन्द स्वच्छ आनन्द के कन्द बन्दौं -

युगल पदार विन्द युगल किशोर के ।।

:शान्ति सागर :

कवीन्द्र अपनी रचनाओं में अधिकांश कवित्त घनाक्षरी या मनहरण का ही प्रयोग किया है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कवित्त की शृंगार और वीर रस के भाव प्रकाशन की क्षमता की ओर इंगित करते हुये लिखा है--"कवित्त तो शृंगार और वीर दोनों रसों के लिये समान रूप से उपयुक्त माना गया था । वास्तव में पढ़ने के ढंग में थोड़ा विभेद कर देने से उसमें दोनों के अनुकूल नाद सौन्दर्य पाया जाता है[1]। माधोर जी के विषय मुख्य रूप से वीर और शृंगार के ही रहे हैं अतएव कवित्त का प्रयोग स्वाभाविक ही था । शृंगार रस का एक उदाहरण दृष्टव्य है जो कवित्त घनाक्षरी में है-

> कमल मलीन होत चन्द छवि छीन होत,
>
> हीन होत काम शोभा उपमा विशाल में ।
>
> नाथूराम भाल उर उदित उरोज मानो,
>
> प्रगटे सुपुण्डरीक सकनाथ ताल में ।
>
> ओठ अरुनाई अरुनाइ सकुचाई देख ,
>
> देखी हम लाल में न मानिक प्रवाल में ।
>
> हाल में निहोरे मतवारे अतिप्यारे नैन ,
>
> दीखे युग मीन डारे रेशम के जाल में[2]।

उपर्युक्त सभी उदाहरणों में 31 वर्ण हैं जिसमें 16 और 15 वर्णों पर यति है । अन्तिम वर्ण गुरु है । प्रत्येक चरण में यति 8,8,8 और 7 पर होने से लय अधिक सुन्दर बन पड़ी है ।

2:- रूप घनाक्षरी -

इसके प्रत्येक चरण में 32 अक्षर होते हैं । सामान्य रूप से 16, 16 अक्षरों-

---

1:- हिन्दी साहित्य का इतिहास- रामचन्द्र शुक्ल - पृ0- 208

2:- शृंगार - वाटिका - माधोर

के वाद यति और में गुरु लघु अति है -

> कलिमल विपुल विकार को निकार जात,
>
> कोह -मार- को अपार मद मान मारजात ।
>
> दम्भ-द्रोह-दरद दरिद्रता विदार जात,
>
> छल-छिद्र-क्षुद्रता-उदार के पछार जात ।
>
> हार बन शौर्य-स्वर्ग को विहार जात,
>
> शिव-पसारजात भव-सिन्धु-पारजात ।
>
> दिव्य भक्ति मुक्ति बलिहार जात बार बार,
>
> एक बार सीता राम नाम जो उचार जात[1]।।

3:- सवैया:-

रीति काल के सर्व विषय व्याप्त छन्दों में कवित्त के वाद दूसरा महत्व पूर्ण छन्द सवैया है । यद्यपि वर्णिक और मात्रिक दोनों ही प्रकार का होता है तथापि सवैया संज्ञा हिन्दी में साधारणत: विशेष प्रकार के वर्णिक छन्दों के लिये ही रूढ़ है । सवैया 22 से लेकर 26 वर्णों तक का समवर्णिक छन्द है इसकी विशेषता सामान्यत: यह होती है कि इसमें एक गण की ही आवृत्ति होती है । देव ने इस के 12 भेदों की कल्पना की है[2]। भानु जी ने इसके 10 ही भेद माने हैं[3]। अन्य आचार्यों ने सवैयों की संख्या 48 तक मानी है । माहोर जी ने अपनी रचनाओं में निम्नलिखित सवैयों का प्रयोग किया है -

1:- मत्तगयन्द :-

यह 23 वर्णों वाला छन्दहै । इसमें सात भगण और दो गुरु का नियम होता है । इसे "मालती" और इन्दव भी कहते हैं । माहोर जी के काव्य में मत्तगयन्द के निम्न उदाहरण प्रस्तुत हैं-

---

1:- शान्ति सरवर - माहोर - पृ०- 7- छन्द सं04

2:- देव और उनकी कविता - डा० नगेन्द्र - पृ०- 239

3:- छन्द प्रभाकर - जगन्नाथ प्रसाद भानु - पृ०- 200

1:- गर्भ में दु:ख सहे जितना,

सुधि भूल गयो सब ही उतना की ।।

प्रेम छना के छक्यो जब ते,

तब ते तु फस्यो छवि में गुदना की ।

जन्म गयो बरबाद सबै,

नहि याद करी कबहूं जिहना की ।।

चेतजा चेत से बीतन चैन की,

चांदनी रैन है चार दिना की[1]।

2:- राम पदाम्बुज के मधु हेतु,

बनायो सुतो मन को मधु माखी ।

राम सों प्रेम बतायबे कों,

नर केहरी को अवतार है साखी ।

राम की कीरति पेखन कों,

गुन गान करे रसना रस चाखी ।

राम की मूरति आंखिनी में,

प्रहलाद ने आसन सों सिख ~~कीन्ही~~ राखी[2]।

उपर्युक्त उदाहरणों में मन्तगयन्द सवैया के लक्षण सात भगण और दो गुरु अर्थात 23 वर्णों का पूर्ण निर्वाह किया गया है ।

2:- <u>दुर्मिल</u> -

यह 24 अक्षरों वाला सवैया है । 12 अक्षरों के बाद यति का नियम है । आठ सगण तथा अन्त में दो लघु एक गुरु होता है-

बनमाली के दिव्य सनेह भरी, बनमालिका मैनन वारी सजीं ।

उनके प्रति भेंट के हेतु किधौं, मणियान सों वर्ण की थाली सजी ।।

1:- शान्तिसागर - पृ0- 41 छन्द सं0 8- माहौर

2:- अनुमाल - माहौर - पृ0- 11

कवि माहुर जाहिर देखन मे, अतिपावन प्रीति की क्यारी लखी ।

मृदु मीरा किधौ मधु मंजु मनोज,पुही के प्रसून की डारी लखी[1]।

3:- सुन्दरी -

इस सवैया में आठ सगण और एक गुरु अर्थात 25 वर्ण होते हैं देव कवि ने सवैया के 12 भेदों में "कमला" सवैया भी एक भेद बतलाया है जिसके लक्षण :आठ-सगण और एक गुरु : सुन्दरी के ही समान हैं । माहौर जी द्वारा प्रयुक्त सुन्दरी का उदाहरण --

जग के सुख मंगल मोद सबै -

प्रभु के पद पंकज ऊपर वारे ।

फहरात अम्बर पीत छटा -

छवि छावत ध्यान में आन पधारे ।।

हिय आये भये छन स्याम कहं,

कढ़ जाय न यत्न सबै चित धारे ।

पलकें अति दिव्य कपाट दिये,

दृग दीने लगा अंसुवान के तारे[2]।

4:- दोहा -

कवित्त और सवैया के बाद महत्व पूर्ण छन्द दोहा आता है । दोहा अर्द्धसम मात्रिक छन्द है । इसके विषम मैं चरणों में 13,13 और सम चरणों में 11, 11 मात्रायें तथा सम चरणों की तुक में क्रमशः गुरु ,लघु अनिवार्यतः होते हैं या केवल लघु रखना चाहिये । माहौर जी ने अपनी रचनाओं में यथा स्थान दोहों को प्रयोग भी किया है -

1:- निसि दिन रसना सों रटै, सीतापति को नाम ।

1:- अनमोल - माहौर - पृ0- 41

2:- अनुमोल - माहौर - पृ0- 44

मुदित सकल करतल रहे, मुदित पलोटे पाय[1]।।

2:- पलक पानि कुस कनिका जल असुवा निजनैन ।
पिय वियोग सब सुजन को करत संकलप मैन[2]।

3:- सुर भये तत सुर-सम, मन अभीष्ट वर पाय ।
भोजन किये अघाय तब, आनन्द हिय न समाय[3]।।

4:- था अतीत की बात में, ऐसा ओज अमन्द ।
सुनते ही उस दीन के, हृदय हुआ आनन्द[4]।।

5:- सोरठा -

सोरठा के विषम :पहले-तीसरे : चरणों में ।। और सम :दूसरे-चौथे : चरणों में 13 मात्रायें होती हैं तथा विषम चरणों की तुक मिलती है[5]। प्रत्येक दल में दोहे की ही भांति 24 मात्रायें होती हैं -

दीन आपना कोष, छल से भरना चाहता ।
बनता है निर्दोष, न्यायाधीश समक्ष में[6]।।

6:- चौपाई -

चौपाई के एक चरण में 16 मात्रायें होती हैं । अन्त में दो लघु एक गुरु या तीन लघु की भी अर्द्धाली होती है । जिस चौपाई में दो गुरु वर्णों से अन्त होता है वह अच्छी एवं कर्ण प्रिय होती है माहौर जी ने "बालाजी स्तोत्र" में चौपाई का सुन्दर प्रयोग किया है -

---

1:- शान्ति सागर - माहौर - पृ0- 39

2:- श्रंगार-वागीश - माहौर -अप्रकाशित

3:- सुर-सुधा निधि - माहौर - पृ0- 89

4:- दीन का दावा - माहौर - दूसरा भाग - पृ0- 8

5;- छन्द प्रभाकर - जगन्नाथ प्रसाद भानु - पृ0- 70

6:- दीन का दावा - माहौर - चतुर्थ भाग - पृ0- 9

जय ब्रह्मण्य देव सुख सागर । गुनागार त्रैलोक उजागर ।।

जय ब्रह्मण्य देव श्री दाता । दीनन के तुम सदा दयाता[1] ।।

7:- हरिगीतिका -

हरिगीतिका सममात्रिक छन्द है । इसके प्रत्येक चरण में 16 और 12 मात्राओं पर विश्राम क्रम से 28 मात्रायें होती हैं तथा अन्त में लघु-गुरु का होना भी अनिवार्य है । माहौर जी ने हरिगीतिका को प्रयोग अधिक नहीं किया - हरिगीतिका का एक उदाहरण -

केवारि ज्ञान-जहाजप्रिय, पतवार जनि धारहिं कियो ।
अज्ञान को तम-समन करि, जीवन प्रकाशित कर दियो ।
हे मात गुरु चिन्तामनी, तव पद्म पाद प्रनाम है ।
वह पंथ दिखरायो जहां, आराम को आराम है[2]।

8:- रोला -

रोला के प्रत्येक चरण में 11 और 13 के विराम से 24 मात्रायें होती हैं । कुछ लोग इसके अन्त में दो गुरु वर्णों का होना आवश्यक मानते हैं -

जयति कुण्डलित शुण्ड गण्ड मण्डल छवि छाजे ।
जय अखण्ड रवि, चन्द्र मण्डलाकार विराजे ।।
जय त्रिशूल-निर्मूल पाणि-पाशांकुश-साजे ।
विघ्न-हंत छविवंत दंत विद्युत-द्युति-लाजे ।।
चन्द्र भाल पै भालचन्द्र के सुमन सुहाये ।
मोद-प्रदायक मधुर मंजु मोदक मन भाये ।।
विश्व वंद्य अघ-वृन्द ज्वन्द छल छंद-निवारन ।
विस्तारन बानी-विलास भव-विभव-विदारन[3]।।

1:- श्री बाल जी स्तोत्र - माहौर - पृ0- 2

2:- सूर सुधा निधि - माहौर - पृ0- 37

3:- सूर सुधा निधि - माहौर - मंगला चरण

9:- कुंडलिया -

कुंडलिया में कुल छः पद होते हैं । इनमें दो चरण दोहे के दो "दल" होते हैं और शेष चार रोला के चारों चरण । इस प्रकार प्रत्येक चरण में 24 मात्रायें होने से कुल 144 मात्रायें होती हैं[1] । इसमें पहले चरण का पहला शब्द या आरम्भ के कुछ शब्द और अन्तिम चरण का अन्तिम शब्द एक ही होता है । साथ ही दोहे का चौथा चरण रोला का पहला चरणार्द्ध हुआ करता है । माहौर जी का सम्पूर्ण "व्यंग विनोद" कुण्डलिया छन्द में लिखा गया है उदाहरण के लिये एक छन्द देखा जा सकता है -

ऊंट बिलिया ले गई, कह दें जो श्रीमान ।
कुंछ बराबर जानि य, हां हां कहो कप्तान ।।
हाँ हाँ कहो कप्तान, कभी ना ना नहि बोलो ।
यदि ना ना जो कही, जेल को फाटक खोलो ।
सत्य कथन का समय, रह्यो नहिं अब है भैया ।
कहो यही तुम सदा, ले गई ऊंट बिलिया[2] ।।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि रीति कालीन कवियों की भांति माहौर जी ने अपने विभिन्न विषयों - सम्बन्धी काव्य की रचना मुख्य रूप से कवित्त , सवैया और दोहा इन तीन छन्दों में ही की है । कवित्त में घनाक्षरी और सवैया में मत्त-गयन्द इनके प्रिय छन्दरहे हैं । इन छन्दों के बाद सोरठा, हरिगीतिका, चौपाई भी माहौर जी ने ग्रहण किये लेकिन अधिक मात्रा में इनका प्रयोग नहीं किया ।

1:- काव्य -प्रदीप - राम बहोरी शुक्ल - पृ0- 333

2:- व्यंग - विनोद - माहौर - पृ0- 21

माहौर जी की अलंकार - योजना :-

काव्य के कलापक्ष के अन्तर्गत अलंकार और चमत्कारिता की प्रवृत्ति का समावेश है । अलंकारों से काव्य की शोभा बढ़ती है । इसके शब्दों तथा अर्थों में भी का समावेश होता है । उक्तियों में विचित्रता आती है मनोवृत्तियाँ उत्तेजित होती हैं और भाव प्रभविष्णु रूप धारण करते हैं[1]। आचार्य दण्डी ने कहा है - "काव्य शोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते" अर्थात काव्य की शोभा करने वाले धर्म ही अलंकार हैं[2]। काव्य में अलंकारों का महत्व तो है किन्तु उनका स्थान क्या होना चाहिये ! यह बड़ा ही विवादग्रस्त विषय रहा है । आज के युग में अलंकारों को सर्व प्रथम स्थान तो नहीं दिया जाता , पर नितान्त उपेक्षा भी साहित्यकार नहीं कर सके हैं । वे उन्हें भावों के उत्कर्ष हेतु और सौन्दर्य बोध में सहायक के रूप में ही ग्रहण करते हैं किन्तु साधन पर ही दृष्टि केन्द्रित कर उसे साध्य रूप में देखने वाले भामह, उद्भट आदि आचार्यों ने अलंकार को भी काव्य में सब प्रमुख स्थान दिया[3]। इस प्रकार अलंकारों को दृष्टि में रखते हुये आचार्यों के दो मत स्पष्टतया दिखायी देते हैं प्रथम मत अलंकारवादी आचार्यों का तथा दूसरा मत है रस वादी आचार्यों का । इन तीनों मतों में रसवादी आचार्यों का मत अधिक उपयुक्त एवं ग्राह्य है । कोरा चमत्कार और अलंकरण जिसमें भाव और रस नहीं है , काव्यानन्द प्रदान नहीं कर सकता । डा० नगेन्द्र कहते हैं -"वही चमत्कारपूर्ण उक्ति काव्य हो सकती है जिसका चमत्कार भाव की रमणीयता, कोमलता, सूक्ष्मता अथवा तीव्रता के आश्रित हो[4]। आचार्य मुंशी राम शर्मा भी अलंकारों को भावोत्कर्ष का साधन मानते हुये कहते हैं -" हमारी सम्मति में अलंकारों का प्रयोग किसी भाव, गुण , विचार या क्रिया को उत्कर्ष देने के लिये ही होना चाहिये । काव्य

1:- सूरदास का काव्य वैभव-आचार्य मुंशीराम शर्मा -पृ०- 38

2:- भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा:सम्पादक डा०नगेन्द्र :-काव्यादर्श- 2/1

3:- सूर और उनका साहित्य- डा० हरवंश लालशर्मा - पृ०- 296

4:- रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता :पूर्वार्द्ध :डा०नगेन्द्र-पृ-89

सौन्दर्य वर्द्धन ही अलंकारों का अभिप्रेत होना चाहिये[1]। वास्तव में यदि कविता भाव पूर्ण है और उसमें स्वाभाविक सौन्दर्य है, तो प्रभावोत्पादकता के लिये उसे अलंकारों का मुखापेक्षी नहीं बनना पड़ता। ऐसी कविता के लिये सीधी सादी उक्ति भी अलंकार बन जाती है[2]। सारांश यह है कि अलंकार काव्य में शब्दार्थ की रमणीयता तथा चमत्कारिता के साधन मात्र हैं। वे काव्य के सौन्दर्य की अभिवृद्धि के कारण होने के साथ भावों के स्पष्ट प्रकाशन में सहायता करते हैं। अतएव अलंकार को काव्य का सर्वस्व न मानकर उसके शब्द या अर्थ का अस्थिर धर्म ही मानना चाहिये जो उनमें चमत्कार और अर्थ सौन्दर्य को प्रस्फुरित करता है[3]।

रीति युग की सबसे बड़ी विशेषता यह दिखाई देती है कि इस युग के सभी कवियों में चमत्कार प्रदान एवं वाणी का कौशल दिखाने की प्रवृत्ति सर्वाधिक रही है। इसके लिये प्रायः सभी कवियों ने अलंकारों का सहारा लिया इस सम्बन्ध में डा० श्याम सुन्दर दास ने लिखा है -" हिन्दी की आचार्य परम्परा जब से रीति की ओर झुकी तब से कविता बहुत कुछ रीति सापेक्ष हो गयी और उसको ~~समझाने~~ समझने वाले भी रीति - ग्रन्थों में विशेषज्ञ होने लगे, कविता की उत्तमता की कसौटी बदल गई। जिसमें अलंकारों का समावेश न हो वह कविता ही न रही[4]।

कवीन्द्र नाथूराम शंकर आधुनिक काल के ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवियों में अग्रगण्य हैं। शंकर जी का काव्य सृजन द्विवेदी युग में प्रारम्भ हुआ। द्विवेदी युग के ब्रजभाषा के कवियों की रचनाओं पर रीतिकालीन प्रभाव था। शंकर जी भी रीति कालीन कला से अप्रभावित नहीं रह सके। अलंकारों के प्रयोग तथा काव्य शिल्प के क्षेत्र में शंकर जी ने रीति काल का पूरा अनुगमन किया था। पुरानी परिपाटी का अलंकार वादी कवि होते हुये भी कोई वास्तविक कवि समय और देश की दशा के प्रति असंवेदन शील रह ही नहीं सकता[5]। शंकर जी भी कोरे अल-

---

सूरदास का काव्य वैभव - मुंशी राम शर्मा - पृ०- 38

2:- सूर और उनका साहित्य- डा० हरवंश लाल शर्मा - पृ०- 296

3:- चिन्तामणि :भाग-1 : - रामचन्द्र शुक्ल - पृ०- 247

4:- हिन्दी साहित्य - डा० श्याम सुन्दर दास - पृ०- 248

5:- शंकर अभि ग्रन्थ - डा० भगवान दास शंकर - पृ०- 31

वादी नहीं थे वे एक भावुक भक्त और और एक सच्चे देश भक्त भी थे । अपने हृदय गत भावनाओं की अभिव्यक्ति अलंकृत शैली में करना ही कवि का वैशिष्ट्य है । माहौर जी का अलंकार विधान प्राचीन परिपाटी पर नियोजित होकर भी उनकी अद्भुत सूझ - बूझ एवं उर्वर कल्पना के कारण अधिक सशक्त एवं सुस्पष्ट है । कवि ने अपने विचारों एवं भावों की स्पष्टता के लिये ही विविध प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है । अलंकार विधान जहाँ एक ओर भाव वैविध्य के प्रस्तुती करण में सक्षम वहीं दूसरी ओर वर्ण्य विषय को पाठकों के लिये अधिकाधिक सुबोध एवं इन्द्रियग्राह्य बनाने में भी सफल सिद्ध हुआ है । माहौर जी के प्राय: सभी अलंकार भाव प्रेषणीयता में अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक सफल सिद्ध हुये हैं । कवि द्वारा प्रयुक्त उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक आदि अलंकार प्राय: कवि के हृदयस्थ भावों को पाठकों के लिये सरल एवं सुग्राह्य बनाने में समर्थ हैं । माहौर जी ने अधिकतर उन अलंकारों का प्रयोग किया है जो अपने सादृश्य , साधर्म्य, विरोध, लोक व्यवहार आदि के द्वारा वस्तु, रस और भाव की प्रतीति के सर्वथा सहायक सिद्ध हुये हैं इन अलंकारों में सर्वोत्तम स्थान उपमा अलंकार का है जो सादृश्य तथा साधर्म्यमूलक होने के कारण ऐसे ऐसे सुन्दर उपमानों की योजना करता है जिससे वस्तुगत अस्पष्टता दूर हो जाती है । उत्प्रेक्षा भी एक ऐसा सादृश्य मूलक अलंकार है जो अध्यवसाय मूलक होने के कारण प्रस्तुत पदार्थ की अप्रस्तुत पदार्थ के रूप में सम्भावना करके बड़ी बड़ी अद्भुत योजना किया करता है क्योंकि माहौर ने इस उत्प्रेक्षा अलंकार का सर्वाधिक प्रयोग किया है । आधुनिक ब्रजभाषा के कवियों ने नायिका के अंगों का वर्णन अलंकारिक रीति परिपाटी में किया । माहौर जी ने "वीर वधू" में नायिका के विभिन्न अंगों के सौन्दर्य एवं कान्ति के वर्णन में उक्त रीति परिपाटी का अनुगमन किया उत्प्रेक्षाओं का सुन्दर प्रयोग किया है । उरोज वर्णन देखिये जिसमें उत्प्रेक्षा का सुन्दर समायोजन कर रीति कालीन कला का प्रदर्शन कवि ने किया -

सनमुख उरज स्यामताई को, नील कमल लखि लाजे ।
मूल पानि के पानि माहिं जनु चक्र चारु छवि छाजे ।
:वीर-वधू :

उत्प्रेक्षा और प्रतीक का सुन्दर समन्वय कर माहौर जी ने अपनी रीतिकालीन -

कलात्मक प्रवृत्ति का परिचय दिया है । इसी प्रकार नेत्र में झलकते हुये आँसुओं आदि के रूपक "सीप एवं खंजन" आदि कवि प्रौढोक्ति सिद्ध उपमानों के माध्यम से व्यंजना माहौर जी की रीतिकालीन प्रवृत्ति का ही परिचायक है -

पिय के शुभ दर्शन पावत ही,
उमहे विरहातप ताप निकंजन ।
लहरें बिहरें कनीन तरें,
पलके हैं सम्हारती प्रेम के पुंजन ।
अति मोद हिये विलसे,
मद नैनन में अंसुआ मन रंजन ।
सरसावत सुन्दर शोभा मनो,
युत सीप के गोद खिलावत खंजन[1] ।

माहौर जी अलंकार योजना की यह विशिष्टता है कि कहीं कहीं कवि ने एक ही छन्द में अनेक अलंकारों की सृष्टि करते हुये जो चमत्कार कौशल दिखाया वह रीतिकालीन कवियों से कहीं अधिक श्रेष्ठ है । निम्न लिखित छन्द में अनुप्रास, रूपक, व्यतिरेक, उत्प्रेक्षा और उल्लेख आदि सभी अलंकार एक साथ देखे जा सकते हैं -

उसन दुसासन को द्रुपद सुता के केस,
काल तैंकराल व्याल छौना कर बीर भे ।
भीषम द्रोण, कर्ण, शल्य जे द्रुढ़ से महारथी,
बैरिन विनास कारी आनु विधनीर भ ।
दुष्ट दुर्योधन से योधन-निधन काज,
दृग-लाज व्यान के निवासी समसीर भे ।
चमकीले चीर के जु एक एक धागे मनो,
कुरुकुल चीखे को गाण्डिव के तीर भे[2] ।

1:- अनुनाल - माहौर - पृ0--22- सीप के आँसू

2:- द्रौपदी-दुकूल पचीसी - माहौर- पृ0- 7- छन्द सं0 ।

माहौर जी ने अपनी रचनाओं में निम्नलिखित अलंकारों का प्रयोग विशेष रूप से किया है -

अ:- शब्दालंकार -

शब्दालंकारों में कुछ विशेष शब्दों के कारण काव्य में सुन्दरता आती है । शब्दालंकारों में कुछ वर्णगत, कुछ शब्दगत तथा कुछ वाक्यगत होते हैं । प्रमुख रूप से उल्लेखनीय शब्दालंकार छः प्रकार के हैं - अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति, श्लेष, पुनरुक्ति, वीप्सा ।

1:- अनुप्रास -

जब वाक्य के शब्दों में एक या कई व्यंजन एक से अधिक बार एक ही क्रम से आवे तब अनुप्रास होता है । अनुप्रास के प्रयोग में माहौर जी बड़े सिद्ध हस्त है । कोई भी कवित्त ऐसा नहीं जिसमें अनुप्रास की छटा न हो । कहीं कहीं तो पूरे पद में अनुप्रास योजना दृष्टिगत होती है माहौर जी के काव्य में अनुप्रास के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

1:-छेकानुप्रास -

जात बरसाने जिन जाउ बरसाने आज ,

गह बरसाने उर साने उतपात है ।

रंग सरसाने दरसाने बरसाने रंग ,

रंग अंग भाने अति बकत कुबात है ।

नाथूराम हाल जिय जाने का बखाने लौर,

मैन मंत्र ठाने नेम अधिकात है ।

डारि के गुलाल नन्दलाल ने करी है लाल,

हेरो जित लाल तित लाल ही दिखात है[1]।

1:- ऋतुस्तु दर्पण - माहौर

2:- बरछी सी तिरछी चितोन अंगरेजन के,

नेजन की नोक सी करेजन में कसकी ।

भून अंक वंक हेर चमक बन्देलन की,

ठसक मरेठन की पैठन की खसकी ।

नाथूराम हास्य चन्द्र हास को प्रताप पेख,

धीरज धरा में धरा धीशन की धसकी ।

वाघ साब जंग में अभंग शत्रु भंग वारी,

अँग अँग धारी थी रसान वीर रस की[1] ।।

कृत्यानुप्रास -

3:- गहब गुराई गुल गालन गुलाई गाढ़,

अंगन लुनाई ओज तन तरुनाइ की[2]।

4:- केवरो कनेर कुन्द केतकी कमल केर,

कलित कदम्ब के न आवत नगीचे हैं ।

चन्द्रमुखी चम्पा गुल चाँदनी चमेली चारु,

चारों ओर सूजमुखी देख दृग मींचे हैं ।

मोतिया हजार के मालती के हार,

नाथूराम केसर के रंगन उलीचे हैं ।

गेन्दा, गुलदावरी हरवार के अनार नार,

काहे री गुलाब को गुलाब जल सींचे है[3]।

उपर्युक्त अनुप्रास अलंकार के प्रयोग में वर्ण मैत्री द्रष्टव्य है । कुछ पद माहौर जी ऐसे हैं जिनमें पूरे पद में अनुप्रास की सुन्दर एवं सरस छटा देखी जा सकती है -

वारिज वारन-बदन विघ्न वन वृन्द विदारन ।

1:- वीर-बाला - माहौर - छन्द संख्या - 12

2:- शृंगार-वागीश - माहौर

3:- शृंगार-वागीश - माहौर

विस्तारन वाणी विलास विधु विश्व विदारन ।।
विद्या विशद विशुद्ध विमल बहु बुद्धि प्रदायक ।
वदत वेद बुध विबुध विविध विध विपति विधायक ।।
भव वारिधि-बोहित पद वनज, बन्दहु विश्व विधान के ।
वर वरधा-वाहन-लाड़िले वर दे नित कल्यान के[1] ।।

यहाँ पर माहोर जी ने "व" अक्षर द्वारा वृत्यानुप्रास की जो योजना की है वह श्लाघनीय है । ऐसे स्थलों पर माहोर जी रीतिकालीन कवियों से भी आगे निकल जाते हैं ।

2:- यमक -

जहाँ एक ही रूप वाले दो या अधिक पद या शब्द दो या अधिक बार प्रयुक्त होते हैं वहाँ यमक अलंकार होता है माहोर जी ने यमक का प्रयोग अधिक किया है:--

1:- "पानी" शब्द की आवृत्ति से यमक की सुन्दरता निम्न छन्द में दृष्टव्य है --

क्रूर कुरुनन्दन द्रुपद-नन्दिनी का चीर,
खेंच्यो निज वीरता को नाश कियो पानी है ।
माहुर सुकवि वीर पारथ के आनन पै,
करुण आन बान पै मढ़ाय दियो पानी है ।
कृष्ण की पुकार में ही पानीदार बानी सुन,
पानी राखिबे के हेतु भयो हियो पानी है ।
पानीदार अम्बर बढ़ाय श्याम सुन्दर ने,
पानीदार द्रोपदी को राख लियो पानी है[2] ।

2:- भानुजा नहाय वृषभानुजा पधारी गेह ,

1:- द्रोपदी दुकूल पचीसी - माहोर - मंगलाचरण

2:- द्रोपदी दुकूल पचीसी - माहोर - पृ०- 15

देह दुतिवारी दुति विद्युत लजोई है[1]।

3:- चिन्तामनि की खोज में, चिन्तामनि तिहि काल ।

स्याग दियो चिन्ता जनित, सुख प्रद सदन विशाल[2]।

4:- करनी बिन नर-देह के, कर नीके हैं नाहिं ।

करनी कर कर लीजिये, कर नीके जग माहिं[3]।

3:- श्लेष -

जहाँ एक शब्द के दो या अधिक अर्थ हों वहाँ श्लेष अलंकार होता है -

अ:- मोर बनी घनश्याम को है, जग के मग सों मन मोर के मीरा ।

+ + + + + +

सांवरे को सरमोर कियो, रंग सांवरे प्रेम को छोरे के मीरा ।।

चोर लयो चित चोर हू को, जब नैनन नीर निचोर के मीरा[4]।

यहाँ श्लेष के साथ यमक भी देखा जा सकता है ।

ब:- नैनन में घनश्याम बसे,

यदि होते न तो बरसात न होती[5]।।

स:- मीरा हित किया था, माहुर सुधा स्वरूप ।

"माहुर" को करते सुधा पाते सुयश अनूप ।

4:- पुनरुक्ति :-

सुभ सनकादि शेष सारदा गणेश जाको,

गावत गुणानुवाद सर्वदा हरी हरी ।

1:- श्रृंगार-वाटिका - माहौर

2:- सूर सुधा निधि - माहौर - पृ०- 90

3:- सूर सुधा निधि - माहौर - पृ०- 35

4:- अश्रुमाल - माहौर

5:- अश्रुमाल - माहौर

माहुर सुकवि निज जीवन सफल करो ,

नव छवि हेरि पेरि हिय में धरो धरो

\+ + +

वारो वन फूले आज पालना परो परो[1]।

अर्थालंकार -

जिन अलंकारों से अर्थ में चमत्कृति उत्पन्न होती है वे अर्थालंकार कहलाते हैं। इस वर्ग के अलंकारों को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है -

1:- साम्य मूलक या सादृश्य मूलक

2:- वैषम्य मूलक

3:- श्रृंखला मूलक

4:- न्याय मूलक

साम्य मूलक के अभेद प्रधान और भेद प्रधान दो भेद हैं अभेद प्रधान के अन्तर्गत रूपक, उल्लेख, सन्देह, भ्रान्तिमान, अपन्हुति आदि अलंकार आते हैं और भेद प्रधान साम्य मूलक में प्रतीप, दृष्टान्त, निदर्शना, दीपक, विनोक्ति, सहोक्ति और व्यतिरेक आदि आते हैं। उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा और स्मरण अलंकार भेदा भेद प्रधान साम्य मूलक अलंकार के अन्तर्गत रखे गये हैं। उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति प्रतीप-प्रधान सादृश्य मूलक अर्थालंकारों की श्रेणी में आते हैं। कुछ साम्य मूलक अलंकारों में समता के भाव के साथ कुछ बातों की ध्वनि साम्य के द्वारा होती है ऐसे अलंकार गम्य-प्रधान साम्य मूलक की कोटि में आते हैं इनके अन्तर्गत अप्रस्तुत प्रशंसा, व्याजस्तुति, आक्षेप, पर्यायोक्ति आदि आते हैं।

वैषम्यमूलक अलंकारों में दो वस्तुओं का कार्य और कारण में विच्छेद होने से आपस में विरोध प्रकट होता है। विरोधाभास, विभावना, असंगति, सम, विषम, विशेषोक्ति , अन्योन्य आदि इसके अन्तर्गत आने वाले अलंकार हैं।

श्रृंखला मूलक अलंकारों में दो या इससे अधिक पदार्थों का क्रम से वर्णन -

---

1:- शान्ति सागर - माहोर - पृ0- 22

होता है - कारणमाला, एकावली, मालादीपक इसके अन्तर्गत है ।

न्यायमूलक अलंकारो में तर्क या लोक प्रमाण से युक्त वाक्य के द्वारा रोचकता उत्पन्न की जाती है । काव्यलिंग, तद्गुण, अतद्गुण, मीलित, उन्मीलित, यथासंख्य, परिसंख्या, ललित आदि अलंकार इसके अन्तर्गत रखे गये हैं ।

माहोर जी की रचनाओं में उपर्युक्त श्रेणियों के निम्नलिखित अलंकारों के प्रयोग अधिकांश मिलते हैं -

उपमा-

1:- पूर्णोपमा-

तीक्षन त्रितापन तपाती थी त्रिविध पोन-
जोन छर जाती थी जराती सम होली के[1]। ।

यहां "पोन" उपमेय "होली "उपमान" "सम" वाचक शब्द तथा "जराती" वाचक धर्म होने के कारण पूर्णोपमा है ।

2:- लुप्तोपमा -

घनश्याम से राम कों हेरत हो,
घनश्याम के नैन बने[2]।

यहां वाचक धर्म लुप्तोपमा है ।

3:- मालोपमा -

जब उपमा में एक उपमेय अनेक उपमान हों तब मालोपमा होती है -

मकरन्द समान अमन्द सदा,
अरविन्दन सो दृग में विरम ।
कवि में वहु ओर महीतल में ,

1:- श्रृंगार - वागीश - माहोर

2:- अनुमाल - माहोर

पल में कल लावत वे कल में ।

सुखदा कवि माथुर जीवन की ,

यश जोति जगावत हैं जग में ।

नित राम में रम्य रमे अंसुवा,

अंसुवान के मन्दिर राम रमे[1] ।।

यहा एक उपमेय अश्रु के अनेक उपमान होने से मालोपमा है ।

उत्प्रेक्षा -

1:- कारे लटकारे अति प्यारे,

बार सुकवि वारे हैं ।

चंद कलंक निकार तार कर ,

जनु नभ पै डारे हैं[2]।

2:- अश्रु के बुन्द गिरे बिखरे ,

बिखरी जनु फूल की पाखुरी सोभित[3]।

3:- "नाथूराम आय घनश्याम लिपटाय अंग,

सुकर उमंग में उरोजन पै आने हैं ।

मानो री मनोज भय चकित ह्वै चन्द्र चूड़,

ओस भरे सुमन सरोज में छिपाने हैं[4] ।।

माहोर जी की उत्प्रेक्षाओं में नवीन कल्पना का समावेश है ।

रूपक -

1:- तिलमंगल चिन्तामनी, दोउ भये विरक्त ।

तिनके मन-मधुकर सरस, व्रजपति-पद अनुरक्त[5]।

1:- अश्रुमाल - माहोर - पृ० 4

2:- वीर वधू - माहोर - पृ०- 9

3:- अश्रुमाल - माहोर - पृ०- 9

4:- षड्ऋतु दर्पण - माहोर -

5:- सूर सुधानिधि - माहोर - पृ०- 39

2:- दाख, कन्द, मिसरी, सुधा, मोदक, मधु मकरन्द ।
बन सबसे प्रभु को भला, प्रेम-मिठास पसन्द ।।

: शान्ति सागर :

विरोधाभास -

1:- कहँ कहाँ तक प्रेम की कीरति विमल बखान ।
माहुर को अमृत करत प्रेम मिठास महान[1] ।।

2:- मीरा के हित किया था, माहुर सुधा स्वरूप ।
माहुर को करते सुधा, पाते सुयश अनूप[2] ।।

विभावना -

1:- बिन घन घोर घन घटा घिर आई आज ,
बिना दामिनी के द्युति दामिनी सुहाई है ।
बिन कल केकी के कल रव सुनाय देत ,
बिनु जुगनून की जमात दरसाय है ।
चन्द्र के धनुष बिनु उदित धनुष भयो,
बिनु हरियाली हरियाली चहुँ छाई है ।
नाथूराम शाल को कहो री मति धीर वीर,
बिनु वर्षा के ऋतु वर्षा की आई है[3]।

निदर्शना -

दीन बना है आज यह, प्रिये तुम्हारे हेत ।
तेल काढ़ने के लिये, पेर रहा है रेत[4]।

1:- शान्ति सागर - माहौर - पृ०- 18

2:- दीन का दावा - माहौर - प्रथम भाग - पृ०- 15

3:- श्रृंगार - वाग्मीशक माहौर

4:- दीन का दावा - माहौर - द्वितीय भाग - पृ०- 4

उपर्युक्त दोनो वाक्यों में अर्थ की भिन्नता होते हुये भी इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित किया गया है कि दोनों में पार्थक्य नहीं प्रतीत होता है । दोनों में समानता जान पड़ने लगती है । अत: निदर्शना है ।

अर्थान्तरन्यास - सामान्य का विशेष से समर्थन -

प्रेम के करे को सुख काहू को न होत देखो,
प्रेम प्रान हानि करे देत न अराम कों ।
दीप सों पतंग प्रेम कर निज जारो अंग ,
मग दीन प्रेमी व्दार देखे जम धाम को ।
जीवन गमावे भृंग कुंज को सुप्रेमी बन,
तैसो तुम्हें प्रेम गोपी हेगो घनश्याम को ।
"माहुर" सुकवि लगे सब कों सलोनो सोनो,
कान नाक छोले ऐसा सोनों कौन काम को[1]।

यहां "सामान्य" बात का समर्थन विशेष से किया गया है । अत: अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

अप्रस्तुत प्रशंसा -

अप्रस्तुत का ऐसे ढंग से वर्णन किया जाय कि उससे प्रस्तुत का ज्ञान हो, वहां अप्रस्तुत प्रशंसा होती है ।

गुंजत रहे हो मंजु मालती निकुंजन में ,
कबन म पालो थी प्रनाली प्रीतिपन की ।
महक गुलाबन की गहक विलोक चारू,
चटक हो ऐ दसा त्याग तन तन की ।
"नाथूराम" जोड़ जोड़ जोर के जुही सों नेह,
तोरत जुही सों कहा ठानी है भ्रमन की ।
श्रमित भये हो सत्य भ्रमर बताओ अब ,

1:- उध्दव गोपी संवाद - माहोर

मन की लगी है आस कौन से सुमन की[1]।

यहाँ पर सदृश या सारूप्य निबन्धना है इसे अन्योक्ति भी कहा जाता है ।

व्याज स्तुति -

राणा और शिवाजी छत्रधारी छत्रसाल ने भी ,
रण में नचाकर बनादी नत्य कारिणी ।
"नाथूराम" नीति कृष्ण की सिखलादी शुद्ध ,
की थी युद्ध मध्य हर कष्ट की निवारिणी ।
सैन्य मुगलों की मिलवादी मृत्यु नायिका से ,
बतलादी दिव्य दूती धर्म धुरि धारिणी ।
वीर वंशजों ने वह मेट बदनामी अब ,
रखी है बनाकर स्वकीया मुख सारिणी[2]।

"कृपाण" के मुख से रियासती राजाओं की "स्तुति" की गयी है किन्तु स्तुति में निन्दा की ध्वनि है अतः "व्याजस्तुति" है ।

उल्लेख -

अश्रुओं का विभिन्न रूपों में वर्णन उल्लेख अलंकार में निम्न छन्द में देखा जा सकता है -

पाप पहार प्रहारन कों ,
धर वज्र भलो बन जायेंगे आँसू ।
ताप त्रिताप के नाशिबे कों,
सरदेन्दु कला सरसायेंगे आँसू ।
क्लेस के व्यूह विभेदन कों ,
रघुवीर के तीर सहायेंगे आँसू ।

1:- श्रृंगार - वागीश - माहोर

2:- स्फुट छन्द - माहोर

दूर करैं जग की करुणा ,

कस्णानिधि कौं प्रगटायेगें आंसू[1]।

सन्देह -

1:- कै करुना के कलेवर के, हिय पीड़ित के उदगार हैं आंसू ।
कै पराधीनता दीनता के, दरवार के ये प्रतिहार हैं आंसू ।
कै दुख दारुन क्लेस के लेख प्रकासन कौं अखवार हैं आंसू ।
कै कहिवे करतार सौं हाल, अपार वेतार के तार हैं आंसू[2]।।

2:- कैधौं भानुजा की धार गंग सौं मिलन आय ,
छाई गंग बर पै अपार छवि जोह है ।
कैधौं काम धाम सौं शशांक सुचि सोभा धाम,
सुधा घट ऊपर तमाल बेलि आई है ।
नाथूराम कैधौं वर बाल की विशाल लट,
कुच पर लटकी है सुषमा समाई है ।
कैधौं कल धौत के उतंग अंग अंग पर,
केलि कर पन्नगी पसार पूंछ सोई है[3]।।

मानवीकरण -

1:- रैन दिना मृग आसन पै,
निज आसन आय जमावत आंसू ।
प्रेम के तागन में गुहि कैं ,
मृदु मंजुल माल बनावत आंसू ।
जाप जपैं पलकैं गहि माल ,
विशाल प्रभाव दिखावत आंसू ।

1:- अनुमाल - माहौर - पृ०- 47

2:- अनुमाल - माहौर - पृ०- 46

3:- श्रृंगार - वागीश - माहौर

मोहन मोहन के मन कों -

मनो मोहन मन्त्र जगावत आंसू[1]।

2:- आक्रमन हेर सीतराज के प्रवीर पत्र,

मोरवान त्याग यत्र तत्र वागने लगे ।

दखल जमायो ऋतुराज ने सदल आन ,

सीत के अदल हो विकल भागने लगे ।

"नाथूराम" फूल फूल पाने लगे मोद मूल,

सुतरु प्रजा जन के भाग जागने लगे ।

कटक गुलाबन के चटक सुनाय मानों ,

विजयी बसन्त को सलामी दागने लगे[2]।

अपह्नुति -

करत ठगोरी फिर देखो यह छोरी छोरी ,

पावस न होय गोरी जादूगर छोरी है[3]।

विनोक्ति -

माली-बिना जिमि पुष्प वाटिका,

चन्द्र-बिना जिमि यामिनी सूनी ।

वारि बिना सरिता हन-माल ज्यों,

वारिद के बिन दामिनी सूनी ।

कण्ठ सुरम्य-बिना जिमि रागिनी ,

काम कला-बिन कामिनी सूनी ।

भाव बिना हरि भक्ति है ज्यों ,

1:- अनुमाल - माहोर - पृ0- 44

2:- षड्ऋतु - दर्पण - माहोर - वसन्त वर्णन

3:- षड्ऋतु दर्पण - माहोर - पावस वर्णन

मन भावन के किभामिनी सुनी[1]।

परिकरांकुर -

हेर हर शोक हर भांति से हरोगे हरि ।

हरी कीर्तिलता हर लोक लहरायेगी[2]।

"हरि" साभिप्राय विशेष्य के रूप में प्रयुक्त होने से परिकरांकुर अलंकार है ।

लोकोक्ति -

माहुर सुकवि कभी साच में न देखी आंच,

दीन दीनता में ठीक ठीक ठहराया है[3]।

मुद्रा :-

कर दरस-परस-मज्जन हो जाय पुनीता ।

अतलस सुभेठ पापन के भरे सलीता ।।

गुलबदन पाय प्यारे ना बांधो गोता ।

दुपटाह त्याग भज मन रघुनन्दन सीता ।।

मलमल शरीर निरमल मन करल पासा ।

अबकानी माग माया से मिट है त्रासा ।

सारी बुद्धि जारी जह मद का वासा ।

बेना जु यह हरि भज तज कदेल दरासा ।।

नन्नू नवीन मखमल सम बदन प्रकाशा ।

सब जामदा बस चोल मजुल मित्र सुपासा ।।

1:- सूर सुधानिधि - माहोर - पृ0- 16

2:- दीन का दावा - माहोर - प्रथम भाग - पृ0- 25

3:- दीन का दावा - द्वितीय भाग - माहोर - पृ0- 9

आसा मरीना अब लौं लख जगत तमासा ।
चेना जु चहे हरि भज तज खेत दुरासा[1]।

यहाँ श्लिष्ट शब्दों में कपड़ों के नाम परिगणन से मुद्रा अलंकार ध्वनित है ।

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि माधोर जी का अलंकार विधान अत्यन्त सुष्ठु एवं स्वाभाविक है । उसमें भाव सौन्दर्य के उद्घाटन की अद्भुत क्षमता है । कवि ने अलंकार उसके उक्ति चातुर्य के द्योतक हैं अलंकार विधान द्वारा कवि ने बड़ी सजीव एवं मार्मिक उद्भावनायें की हैं । कवि ने जितने भी प्राचीन एवं नवीन अलंकारों का प्रयोग किया वे सब कवि की भावाभिव्यक्ति में सर्वाधिक सहायक सिद्ध हुये हैं ।

---------------- 0 ----------------

1:- स्फुट - माधोर

सप्तम अध्याय

बुन्देलखण्ड जनपद के प्रमुख आधुनिक कवियों में कवीन्द्र नाथूराम-माहौर का स्थान :-

वीर प्रसविनी बुन्देलखण्ड की भूमि को पौराणिक काल से लेकर अब तक अनेक रस सिद्ध कवियों ने अपनी काव्य कला से गौरवान्वित किया है । बुन्देलखण्ड की कीर्ति के मूल में यहाँ के इतिहास प्रसिद्ध वीर महाराज इन्द्रजीत सिंह , आल्हा-ऊदल, वीर सिंह, हरदौल, विक्रमजीत सिंह एवं वीर छत्रसाल आदि के साथ अनेक सुप्रसिद्ध कवि वेदव्यास, तुलसी दास, केशव से लेकर राष्ट्र कवि स्व० मैथिली -शरण गुप्त, मुंशी अजमेरी एवं डा० वृन्दावन लाल वर्मा आदि कवि एवं लेखक भी रहे हैं । इसी कवि परम्परा में स्व० कवीन्द्र नाथूराम माहौर , स्व० घासीराम व्यास, स्व० पं० घनश्यामदास पाण्डेय, स्व० श्री नरोत्तम पाण्डेय, स्व० श्री गंगाधर व्यास, स्व० हृदयेश जी, स्व० मदनेश जी, स्व० श्री ब्रजेश जी प्रभृति कवियों ने जन्म लेकर अपने काव्य साहित्य से माँ सरस्वती के भण्डार को भर बुन्देल-खण्ड के जन-मन में नव जागरण का शंख निनादित कर, राष्ट्रीय चेतना और साहि-त्यिक अभिरूचि जाग्रत करने का अद्वितीय प्रयास किया ।

हिन्दी काव्य गगन में देदीप्यमान अगणित नक्षत्रों के बीच किसी कवि विशेष का स्थान निर्धारण करना, विभाजन रेखा खींचनाड्डुष्कर कार्य है क्यों कि अपने अपने क्षेत्र में सभी कवि श्रेष्ठ सर्वोपरि हैं । फिर भी हम बुन्देलखण्ड के प्रमुख कवियों से माहौर जी की तुलना, उनकी काव्य कला, वर्ण्य विषय एवं प्रकृति के आधार पर करते हुये, उनका स्थान निर्धारण करने का प्रयास करेंगे । कवीन्द्र माहौर की काव्य साधना का प्रारम्भ द्विवेदी युग में हुआ परन्तु कला के क्षेत्र में वे रीति -काल से प्रभावित थे । वे जन्मना आधुनिक होते हुये भी प्राचीन परिपाटी के पोषक थे । रीतिकालीन श्रृंगारिक भावनाओं से आपूरित कवि का हृदय समय और परिस्थितियों से अछूता न रह सका और घोर श्रृंगारिकता में आप्लावित कवि मानस राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख हुआ । माहौर जी युग सापेक्ष कवि थे , युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही उनके साहित्य का मूल्यांकन करते हुये ,

अन्य कवियों में उनका स्थान निर्धारण करना समीचीन प्रतीत होता है ।

अ:- राष्ट्रीय कवि स्व0 मैथिली शरण गुप्त एवं कवीन्द्र नाथूराम माहौर -

स्व0 मैथिली शरण गुप्त एवं स्व0 माहौर जी दोनों ही बुन्देलखण्ड जनपद के आधुनिक प्रतिनिधि कवि थे । दोनों ही कवियों ने अपना काव्य सृजन यद्यपि द्विवेदी युग में प्रारम्भ किया तथापि दोनों की काव्य कला में महान अन्तर था । भारतेन्दु युग में ब्रज भाषा तथा खड़ी बोली का जो विवाद प्रारम्भ हुआ था , उसका विकास द्विवेदी युग में हुआ , फलस्वरूप खड़ी बोली कविता का उत्थान पूरे जोर शोर से प्रारम्भ हो गया[1]। साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली की उपादेयता का श्रेय युग प्रवर्तक स्वनामधन्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को है , जिन्होंने गद्य एवं पद्य दोनों की भाषा को एक रूप कर दिया । आचार्य द्विवेदी खड़ी बोली के समर्थ समर्थक थे । पुरानी परिपाटी की श्रृंगारिक कविता का बहिष्कार किया जाने लगा था । चूंकि ब्रज भाषा में श्रृंगार का आधिक्य है इसलिये द्विवेदी युगीन राष्ट्रीय भावना के विकास के साथ साथ श्रृंगार की उपेक्षा का भाव और उसके साथ साथ ब्रज भाषा और उसकी श्रृंगारी कविता के प्रति विरोध का भाव भी विकसित हुआ । इसका तात्पर्य यह नहीं कि प्राचीन परिपाटी की श्रृंगारिक कविता का अन्त हो चुका था वह भी अपने स्वरूप को बनाए हुये अपने मार्ग पर आरूढ़ थी । वास्तव में द्विवेदी युग में रीतिकालीन परिपाटी तथा नयी धारा दोनों का समान प्रचलन था । दोनों ही विचार धाराओं के पोषक कवि इस युग में थे । श्री मैथिली शरण गुप्त पूर्ण रूपेण नई विचार धारा के अनुयायी थे , तो कवीन्द्र माहौर पुराने खेमे के कवि थे, माहौर जी ने तो दोनों परिपाटियों का समन्वय करते हुये दोनों का ही अनुगमन किया । माहौर जी के कारण काव्य में जहाँ एक ओर रीति कालीन श्रृंगार प्रियता और कलात्मकता के दर्शन होते हैं तो वहीं दूसरी ओर द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीय भावना चरम सीमा पर आपके काव्य में अभिव्यक्त हुयी है ।

श्री मैथिली शरण गुप्त को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का -

1:- रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता - डा0 रमेश शर्मा

सान्निध्य प्राप्त हुआ था जिसके परिणाम स्वरूप द्विवेदी जी के ही आग्रह पर गुप्त जी खड़ी बोली में कवितायें लिखने लगे । द्विवेदी जी को गुप्त जी ने अपना काव्य गुरु मान लिया । इस युग में खड़ी बोली की कविता का वास्तविक प्रारम्भ गुप्त की कविता से ही मानना चाहिये । श्री मैथिली शरण गुप्त ने गद्य की संस्कृत पदावली को क्रिया रूप के साथ सरस बना कर स्थान दिया अत: गुप्त जी खड़ी बोली के प्रथम विशुद्ध कवि माने गये[1]। गुप्त जी के पैतृक संस्कार एवं आचार्य द्विवेदी जी के संसर्ग ने उनकी कला को प्रौढ़ता एवं परिपक्वता के शिखर तक पहुँचा दिया । उनके पिता स्वयं अच्छे कवि थे एवं उनके घर पर प्राय: संगीत, साहित्य और भक्ति की त्रिवेणी बहती रहती थी जिसमें बड़े-बड़े विद्वान, कवि एवं कलाकार भाग लेते रहते थे । इन सबके परिणाम स्वरूप कविता के प्रति गुप्त की अभि रुचि बाल्यावस्था में ही जागृत हो गयी ।

आधुनिक युग की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक आदि सभी परिस्थितियों ने गुप्त जी के काव्य को प्रेरणा और गति प्रदान की । इन विभिन्न संघर्ष मय परिस्थितियों से ही गुप्त जी को उत्तरोत्तर काव्य का प्रोत्साहन मिला । आज अपने इस संघर्ष युग का स्वरूप जितनी विविधता , जितनी स्पष्टता एवं जितनी महत्ता के साथ गुप्त जी के काव्य में अंकित है उतना अन्यत्र नहीं दिखायी देता । इसीलिये जनता के प्रतिनिधि राष्ट्रीय कवि कहलाये ।

कवीन्द्र माहौर के पिता श्री रामलाल माहौर दूध दही के व्यवसायी थे अत: पैतृक संस्कार साहित्यिक न होने के कारण, यथेष्ट साहित्यिक वातावरण प्राप्त न होने से माहौर जी साहित्य जगत में गुप्त जी के समान ख्याति न प्राप्त कर सके । माहौर जी के काव्य गुरु श्री मदमोहन द्विवेदी "मदनेश" पिंगल शास्त्र के पण्डित एवं नायिका भेद के आचार्य , प्राचीन रीतिकालीन परिपाटी के अनुयायी थे अत: माहौर जी इस रीति परम्परा से अछूते न रह सके, परिणाम स्वरूप उनका साहित्य रीति परम्परा से पूर्ण रूपेण अनुप्राणित रहा । उन्होंने प्रारम्भ में घोर शृंगारिक एवं नायिका भेद सम्बन्धी छन्द रीतिकालीन -

---

1:- आधुनिक हिन्दी काव्य- डा० रामकुमार वर्मा - पृ०- 5

परिपाटी के आधार पर, रत्नाकर की आलंकारिक शैली में लिखे । पैतृक धार्मिक संस्कारों के कारण माहौर जी के काव्य में भक्ति भावना का समावेश होना नैसर्गिक था । समय ने करवट ली, देश में स्वातन्त्र्य आन्दोलन प्रारम्भ हुआ कवियों की वाणी देश के नवयुवकों में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने लगी, ऐसे आक्रान्त समय में कवि कैसे शृंगार की कवितायें लिख सकता था फलस्वरूप माहौर जी के साहित्य में राष्ट्रीय विचारों का प्रस्फुटन हुआ जिसकी परिणति वीर बाला, दीन के आंसू और गोरी बीबी जैसी राष्ट्रीय कृतियों में हुयी ।

प्रत्येक महाकवि की कृति अपने युग की संचित सम्पत्ति का अक्षय भण्डार होती है क्योंकि उसमें तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक , धार्मिक , सांस्कृतिक ऐतिहासिक एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों की झलक पूर्णतया विद्यमान रहती है और इसी कारण उसमें युग की विशिष्ट मान्यताओं, धारणाओं, विचार पद्धतियों, मनोवृत्तियों आदि का वर्णन रहता है[1]।

गुप्त जी एवं माहौर जी दोनों ही युग का प्रतिनिधित्व कर रहे थे दोनों के साहित्य में तत्कालीन सामाजिक , राजनीतिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियों का आकलन हुआ है । यदि तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखा जाय तो दोनों ही कवियों के साहित्य में समाज की विभिन्न वृत्तियां प्रतिबिम्बित हैं, अधिक या कम का प्रश्न ही नहीं उठता । कवि युग सापेक्ष होता है, युगानुकूल ही साहित्य सृजन कर समाज को नयी दृष्टि और दिशा प्रदान करता है । अपने अपने क्षेत्र में गुप्त जी और माहौर जी दोनों ही अप्रतिम कवि हैं । यदि प्राचीन रीतिकालीन परिप्रेक्ष्य में माहौर जी की कृतियों का आकलन करें तो हम देखते हैं कि इस क्षेत्र में वे गुप्त से बहुत आगे हैं । नारी-सौन्दर्य, शृंगार-भावना एवं नायिका भेद का जो सांगोपांग वर्णन आलंकारिक शैली में माहौर जी ने किया वह अद्वितीय एवं श्लाघनीय है, यहां तक कि कहीं कहीं तो माहौर जी की कविता रीतिकालीन कवियों की टक्कर लेती हुयी उससे भी आगे निकल गयी है । यद्यपि गुप्त जी ने भी नारी सौन्दर्य के सुन्दर चित्र खींचे हैं परन्तु उनमें वह सरसता एवं माधुर्य नहीं जो माहौर जी के काव्य में है फिर भी कहीं कहीं उनमें -

---

1:- साकेत में काव्य,संस्कृति और दर्शन-डा० द्वारका प्रसाद सक्सेना- पृ०-180

चित्रों पर बिहारी आदि रीतिकालीन कवियों का प्रभाव सा दिखलायी देता है-

> पाकर विशाल कच-भार एड़ियाँ धसती,
>
> तब नख ज्योति मिस मृदुल अंगुलियाँ हसती ।
>
> पर पग उठने पर भार उन्ही पर पड़ता,
>
> तब अरुण एड़ियों से सुहास्य सा झड़ता ।

माहौर जी का नारी सौन्दर्य रीतिकालीन परम्परा से पूर्णतया प्रभावित है । ब्रज भाषा की मधुरिमा ने और अधिक सरस बना दिया है देखिये वीर वधू का "चरन" का वर्णन -

> पगनि लालिमा सुषमा सों,
>
> छवि कोष करे रीते हैं ।
>
> अंगुलाई, मृदुलाई मनों ,
>
> दल कमलनि के जीते हैं ।

हम देखते है कि माहौर जी द्वारा वर्णित सौन्दर्य गुप्त जी की अपेक्षा अधिक सरस, हृदयहारी एवं चित्ताकर्षक है । माहौर जी रीतिकालीन परिपाटी को अक्षुण्ण बनाये हुये काव्य धारा प्रवाहित कर रहे थे अत: अलंकार, छन्द एवं रस की दृष्टि से उनका काव्य अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है । श्रृंगारिक कविता लिखने के लिये जिन छन्दो की आवश्यकता होती है माहौर जी ने वे सब प्रयुक्त किये । कवित्त, घनाक्षरी, सवैया, सोरठा, दोहा आदि प्राचीन छन्दो में काव्य सृजन कर माहौर जी ने कविता के सौन्दय को द्विगणित किया । नवीन खड़ी बोली के कवियों में जहाँ नये छन्दों का प्रयोग हुआ है है वहाँ यह सौन्दय नहीं आ पाया है । माहौर जी कवि होने के साथ कवि निर्माता भी थे उनके पास अनेक शिष्य कविता सीखने आते थे । "माहौर कवि मण्डल" नाम से एक संस्था की संस्थापना कर आपने सैकड़ों नव युवको को काव्य सर्जन हेतु प्रोत्साहित किया । साहित्य के क्षेत्र में माहौर जी का ये सर्वाधिक योगदान था ।

द्विवेदी युग में राष्ट्रीय प्रेम, देश भक्ति, सांस्कृतिक जीवन की महत्ता नारी की गरिमा, आदि के मनोरम चित्र खींचे गये । राष्ट्रीय चेतना की भावना ही कवि को देश की परन्त्रावस्था में उसे गुरुतर कर्त्तव्य के प्रति जागरूक करती है-

और काव्य में जन जीवन के प्रतिनिधित्व को आवश्यक मानती है । जब देश में राष्ट्रीय विप्लव होते हैं तो उसके लिये उचित वातावरण साहित्यकार ही तैयार करते हैं । गुप्त जी और माहौर जी दोनों कवियों ने अपने काव्य द्वारा भारतीय युवकों में आत्म सम्मान, आत्म विश्वास, देश प्रेम आदि का भाव जाग्रत कर स्वतंत्रता संग्राम के लिये प्रेरित किया । गुप्त जी ने सक्रिय राजनीति में भाग तो नहीं लिया परन्तु वे अप्रेल 1941 में भारत रक्षा विधान के अन्तर्गत राजबन्दी बनाये गये । इसके बाद वे साहित्य के माध्यम से राजनीति में भाग लेने लगे गुप्त जी के राष्ट्रीय विचार उनकी विभिन्न कृतियों - भारतके भारती, स्वदेश-संगीत, हिन्दू, जयभारत आदि में देखे जा सकते हैं । माहौर जी भी साहित्य के माध्यम से स्वातन्त्र्य संगाम हेतु नव युवकों का प्रोत्साहित करते रहे । चन्द्र शेखर आजाद, सरदार भगत सिंह आदि माहौर जी के यहाँ अपने अज्ञातवास में आया करते थे जिसके परिणाम स्वरूप कवि को राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति तीव्रतर होती गयी । गोरी बीबी, दीन के आंसू, वीर बाला, वीर वधू आदि आपकी रचनायें हैं । गुप्त जी की ही भांति माहौर जी के उपर भी गांधी वादी विचार धारा का प्रभाव पड़ा गांधी के सत्य, अहिंसा, खादी, ग्राम सुधार, सर्वोदय आदि सिद्धान्त दोनों को स्वीकार थे । अस्पृश्यता निवारण का सिद्धान्त गुप्त जी इस शब्दों में व्यक्त करते हैं -

"करो अछूतों का उद्धार, उन्हें सिखाओ शुद्धाचार"

:हिन्दू :

माहौर जी इसी भावना की अभिव्यक्ति शबरी के माध्यम से इस प्रकार करते हैं-

आस धरे हिय में सबरी,

बदरी फल तोरन में अनुरागी ।

\+ \+ \+ \+

प्रेम के अंसु को गंग बहाय,

अछूता अंग को धोवन लागी ।

: अभाग :

गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम में स्वदेशी प्रचार एवं विदेशी बहिष्कार का -

प्रमुख स्थान था । स्वदेशी प्रचार चरखा एवं खादी का ही प्रचार था । गुप्त जी गाँधी जी की खादी नीति को स्वीकार करते हुये कहते हैं -

तुम अकर्मण्य क्यों रहो शेष समय में ,

आओ हम कातें धुनें गान की लय में ।

:साकेत 227 :

माहौर जी भी खादी को अपनाने के लिये देश वासियों को प्रेरित करते हुये कहते हैं -

प्रेमी खादी के बन जाओ ।

परवादी धन की बच जैहे, दुख दरिद्रता पास न ऐहै ।

खादी राष्ट्र पिता को प्यारी है, स्वतन्त्रता की उजियारी ।

खादी को उत्पादन को पै, चरखा सदा चलाओ[1]।

मातृ भूमि के लिये त्याग और बलिदान की भावना भी दोनों कवियों में पायी जाती है -

मातृ भूमि की वेदी मान ,

करो धर्म संगत बलिदान[2]।

माहौर जी

अरे माली न तोड़ना भूल कभी,

कुछ जीवनका फल पाना मुझे ।

जननी वसुधा पद पंकजों में ,

हंसते हंसते चढ़ जाना मुझे[3]।

कृषकों की सुधार समस्या को भी गुप्त जी ने उठाया -

हम राज्य लिये मरते हैं ।

1:- फुट बुन्देली लोक गीत - माहौर

2:- हिन्दू - गुप्त जी - पृ० सं० 75

3:- बीज की कहानी - माहौर

सच्चा राज्य किन्तु हमारे कर्षक ही कहते हैं ।

:साकेत -307 :

माहोर जी ने भी किसानों के लिये कहा है -

दीन गरीब किसानन के हिय हरे भरे कर हरसारओ ।

राष्ट्र पिता के गुन गारओ[1]।

गुप्त जी और माहोर जी दोनों ही गांधी की सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह की नीति पर अखण्ड आस्था रखते हैं । गुप्त जी कहते हैं -

1:- सुनो तुम भी सुरगान चिर साक्षि सत्य से ही स्थिर है संसार,
सत्य ही सब धर्मों का सार राज्य ही नहीं प्राण परिवार[2]।

2:- अतुल अहिंसा के आधार, पाकर धन्य हुआ संसार[3]।

माहोर जी सत्य और अहिंसा पर आस्था रखते हुये कहते हैं -

"परम अहिंसा, सत्य सान्ति की, भारत के सिर बंधना रखो, ।

राष्ट्र पिता के गुन गारओ[4]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनीति के क्षेत्र में गुप्त जी और माहोर दोनों ही एक दूसरे के समकक्ष हैं । राष्ट्रीय चेतना के स्वर दोनों ही कवियों के साहित्य में मुखरित हुये हैं । दोनों गांधी वादी हैं । माहोर जी ने झांसी की रानी का स्तवगान करते हुये वीरबाला लिखी जो उनकी विशिष्ट कृति है । वीर बाला के माध्यम से नारियों के अन्दर शौर्य भावना जाग्रत कर उन्हें भी स्वतंत्रता संग्राम के लिये प्रेरित किया । वीर वधू लिख कर श्रृंगार में वीर रस का समावेश कर माहोर जी ने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया । प्राचीन और नवीन विचारों धाराओं का अद्भुत समन्वय वीर वधू में है । शिख नख वर्णन की रीति-

---

1:- राष्ट्रीय गीत - माहोर :स्फुट :

2:- भारत - भारती - गुप्त - पृ0- 33

3:- हिन्दू - गुप्त जी - 79

4:- स्फुट - राष्ट्रीय गीत- माहोर

परिपाटी का अनुगमन करता हुआ कवि उसमें वीरता का समावेश कर आधुनिक राष्ट्रीय भावनाओं का परिचय देता है जो कि कवि का वैशिष्ट्य है । कवि द्वारा विरचित दीन के आँसू एक सशक्त राष्ट्रीय कृति है जिसे तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया था । "दीन के आँसू" का एक उदाहरण प्रस्तुत है जो सिद्ध करता है कि माहौर जी की राष्ट्रीय चेतना गुप्त जी से किसी प्रकार कम नहीं -

दिन रात रुलाया है जितना, उतना ही रुलायेंगे दीन के आंसू ।
कलपाय रहा दिल आज जिसे कल ही कलपायेंगे दीन के आँसू ।
बहु बार सताइबे के बदले, सतबार सतायेंगे दीन के आंसू ।
कर जुल्म तू दीन बना ही चुका, तुझे दीन बनायेंगे दीन के आसू[1] ।।

देश की राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने में माहौर जी का वही योगदान रहा जो गुप्त जी का था । भावपक्ष वर्ण्य विषय की दृष्टि से दोनों ही कवि समकक्ष हैं परन्तु कलात्मकता में माहौर जी अपनी सानी नहीं रखते ।

ब:- स्व० घासीराम व्यास, विप्रवर स्व० घनश्याम दास पाण्डेय एवं माहौर जी-

बुन्देल खण्ड जनपद की कवि श्रृंखला में माहौर जी के समकालीन कवि द्वय स्व० घासीराम व्यास एवं स्व० घनश्याम दास पाण्डेय का कर्तृत्व भी अविस्मरणीय है । व्यास जी एवं पाण्डेय जी दोनों ही माहौर जी की भांति भावुक एवं रससिद्ध कवि थे । ये दोनों ही कवि माहौर जी की ही तरह बुन्देलखण्ड के काव्य क्षेत्र को यशस्वी करने वाले "हेम गिरि" या "रजताद्रि" नहीं मलय गिरि ही थे[2]।

स्व० घासीराम व्यास प्रकृतित: राष्ट्रीय कवि थे । सन 1921 में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ करने वाले राष्ट्र पिता महात्मा गांधी को जब अंग्रेज सरकार ने बन्दी कर कारावास दिया तो व्यास जी ने ऐसे समय में अपने भावों-

---

1:- दीन के आंसू - माहौर

2:- मा० अभि० ग्र० - डा० भगवान दास माहौर - पृ०-23

में तिरंगा झण्डा लेकर अहिंसात्मक आन्दोलन को गति प्रदान की । अन्य राष्ट्रीय स्वयं सेवकों के साथ व्यास जी को भी इस अहिंसात्मक संग्राम में जेल भेज दिया गया । राष्ट्र के लिये व्यास जी ने अनेक बार जेल यात्रा की । राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभाव स्वरूप व्यास जी की लेखिनी से राष्ट्रीय कवितायें निसृत हुयीं । व्यास जी के राष्ट्रीय साहित्य की राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जन साहित्य कह कर सराहना की थी[1]। राष्ट्रीय भावनायें माहौर जी एवं व्यास दोनों के हृदय में समान रूप से थी , परन्तु 20 वर्षों तक राजनीति में सक्रिय भाग लेकर, प्रत्येक संग्राम मे अग्रगण्य व्यास जी ने अपने जनपद के घर घर में बापू का सन्देश पहुंचाया और राष्ट्रीय क्षेत्र में माहौर जी से कुछ आगे निकल गये । शृंगारिक भावनाओं से भरा जब माहौर जी का मानस जब राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख हुआ, तो उनकी वाणी ने जो शंखनाद किया वह भी व्यास जी से कुछ कम नहीं है । अपने ऐतिहासिक वीर पुरुषों प्रताप, शिवाजी एवं छत्रसाल का स्मरण दिलाते हुये व्यास जी की वाणी से राष्ट्र के नव युवकों को प्रेरित करते हुये जो भाव व्यक्त हुये वे उनकी व्यापक राष्ट्रीय भावनाओं के परिचायक हैं -

> याद है प्रताप शिवा, छत्रसाल, वीर हो ,
>
> दौड़ता रगों में खून गीता ज्ञान ज्ञाता का ।
>
> सैनिक हो किसके । जो विश्व वंदनीय हुआ ,
>
> आगे वही जाता है, उपाना किसा दाता का ।
>
> डटे चलो मातृ भू की नमक अदायें हेतु ,
>
> भय क्या है काल का , त्रिकाल का, विधाता का ।
>
> गोलियां को खाना, शीश पै झुलाना,
>
> मर जाना, पर वीरो न लजाना दूध माता का ।

इसी सन्दर्भ में माहौर जी ने देश के नव युवकों को सम्बोधित करते हुये छत्रसाल और शिवा जी का स्मरण दिलाते हुये जो छन्द लिखे वे भी व्यास जी से कम सशक्त नहीं, बल्कि ये कहा जाय कि दोनों ही राष्ट्रीय कवियों की वाणी समान-

---

1:- उदय और विकास - रामस्वरूप श्यारम मिश्र - पृ0- 297

रूप से राष्ट्रीयता का शंखनाद करने में सक्षम कहीं है, अतिशयोक्ति न होगी ।
माहोर जी का ये छन्द व्यास जी के ही समान छत्रसाल , शिवाजी और प्रताप
की स्मृति दिलाता हुआ वीरोचित भाव जाग्रत करने की अद्भुत क्षमता रखता है-

बाजी जीत लेवेंगे, स्वराजी वे शिवाजी बन,
छत्रसाल होके शत्रुओं के उर सालेंगे ।
गुरु गोविन्द कृत ग्रहण करेंगे ज्ञान,
प्रबल प्रतापी हो प्रताप प्रण पालेंगे ।
नाथूराम बाई साब लक्ष्मी के लक्ष पर,
जन रण लक्ष लो लतक्ष लक्ष डालेंगे ।
गोरे हिन्द वालों को भुकाले हिन्द वाले,
सांचे हिन्द वाले हिन्द हृदय से निकालेंगे[1]।

स्वतंत्रता की प्रथम ज्योति प्रात: स्मरणीया महारानी लक्ष्मी बाई के बलिदान
दिवस पर माहोर जी की वाणी ने रानी का यशोगान करते हुये "वीरबाला"
के माध्यम से यहां की नारियों में शौर्य की भावना जाग्रत की, तदनुरूप ही व्यास
जी ने झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई की प्रशस्ति का गान करते हुये वीर ज्योति
के माध्यम से देश के क्रान्ति वीरों का ओज भरी वाणी में समर्थन किया -

केशा मत मान, केशा लेजा शीघ्र भेजा फाड़ ।
नेजा पर टांग दे, कलेजा देश द्रोही का ।

माहोर जी की भावनायें भी इसी प्रकार की हैं -

अंग अंगरेजन के नेजन तें डारे भेद,
भेजे काढ़ लीने थे, करेजन कटारी दे[2]।

निश्चय ही दोनों कवि सशक्त राष्ट्रीयता के पोषक थे । राष्ट्र पिता महात्मा
गांधी के आदर्शों के उपासक व्यास जी एवं माहोर जी दोनों ही थे । माहोर

1:- स्फुट - माहोरजी
2:- वीर बाला - माहोर - छन्द सं० 7

जी "मोहन" के रूप में गांधी जी की पूजा करते हुये कहते हैं -

नाथूराम उन बिन शस्त्र, कंस ध्वंस कियो ,

उन बिन शत्रु भाव मुसकायो है ।

नन्द नन्द मोहन ने, मोहन बनायो ब्रज,

कर्म चन्द मोहन, जगमोहन बनायो है ।

व्यास जी भी महात्मा गांधी में अलौकिक प्रेरक शक्ति के दर्शन करते हैं -

खेल जाते खेल जेल जाते, झेल जाते कष्ट,

ठेल जाते ठसक, दलेल को मिटाते हैं ।

लाठियों को खाते, गोलियों से घबराते नहीं,

व्यास पास फांसी के बलि बलि जाते हैं ।

मोहन, तरुण तेरे एक ही इशारे पर,

समुदित सुख सरवस्व को लुटाते हैं ।

बलिदान होने को स्वदेश बलि वेदी पर ,

वीरों के करोड़ों शीश आके झुक जाते हैं ।

माहौर जी अपना सर्वस्व त्याग कर मातृभूमि के चरणों में स्वयं को बलिदान करना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं -

मां तेरे चरणों में चिन्त है हंस हंस शीश चढ़ाना है ।

सुख सम्पत्ति सर्वस्व त्याग कर तुझे स्वतंत्र बनाना है ।

व्यास जी ने मातृ भूमि की पवित्र चरण धूल अपनी कब्र पर डालने की कामना करते हुये जो छन्द लिखा वह करुण भावों से पूर्ण है -

कौमी खिदमत में ही जिन्दगी निसार होवे,

भूले नहीं व्यास कभी एक पल को भी याद ।

\+ + + +

फांसी हो गले पे और जुबां पे यही आवाज,

इन्कलाब जिन्दाबाद इन्कलाब जिन्दाबाद ।

कब्र पर डाल दे जरा सी कोई लाके खाक,

माँ के कदमों की खाक मेरे मरने के बाद ।

बुन्देल खण्ड कीराष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने में माहौर जी एवं व्यास जी दोनों ही अग्रगण्य हैं इस क्षेत्र में दोनों ही का स्थान सर्वोपरि है दोनों ही स्वतंत्रता के समर्थक, राष्ट्रीय भावनाओं के उद्घोषक एवं वीर भाव के पोषक थे । माहौर जी की भाँति व्यास जी के कारण जहाँ बुन्देलखण्ड में राष्ट्रीय जागृति अक्षुण्ण रही, वहाँ उनके सतत प्रयत्नों से यहा की साहित्यिक चेतना भी चमकती रही । इस क्षेत्र में भी व्यास जी ने माहौर जी के ही समान अपने सम्पर्क में आये अनेक नव युवकों को काव्य प्रतिभा को विकसित कर उन्हें काव्य सृजन की प्रेरणा दी । माहौर जी की भाँति व्यास जी ने ब्रज भाषा में रीति परम्परा का पालन कर ते हुये काव्य सृजन किया । व्यास जी गुप्त जी से प्रभावित होने के कारण खड़ी बोली की ओर भी झुके । ब्रज भाषा में विरचित "श्याम सन्देश" माहौर जी के उद्धव गोपी संवाद की शैली में है जिसके माध्यम से व्यास जी ने गोपियों के प्रेम की जो अभिव्यक्ति की वह अत्यन्त मर्मस्पर्शी, भाव पूर्ण एवं सरस है । कृष्ण के प्रति गोपियों की अनन्यता को जो भाव माहौर जी ने दिखाया तदनुरूप ही व्यास जी की गोपियों की अनन्यता भी परिलक्षित होती है ऐसा लगता है माहौर जी से प्रभावित होकर व्यास जी ने "श्याम सन्देश" की रचना की , दोनों के भावों में कितना साम्य है देखिये -

माहौर जी -

> बनवासिनी कैसे बनेगी, कहौ सु निवासिनी या ब्रजधाम की हैं ।
> तुम ऊधो न हास की बातें करो, हम चातकी तो घनश्याम की हैं ।।
> तन काम की भस्म रमाये रहें, यहाँ रुक्म न योग के काम की हैं ।
> अखियाँ रचि कें अलवान की माल, जपैं घनश्याम के नाम की हैं ।

यही भाव व्यास जी की गोपियों के है । गोपियाँ श्याम सखा उद्धव से स्नेह-पूर्ण व्यंग वाणी में कहती हैं -

> हम योग कुयोग को जानें कहा, रसना रस रास रसालिनी हैं ।
> गुन हीन गंवारिनी है, पर प्रीति प्रतीति की पालिनी हैं ।

+ + + + +

भले भूखी रहें कि चुगें मुक्ता, हम मानस-राज मरालिनी हैं ।

\+ + + + +

तुम ज्यों भ्रमों न छले, चित चोरहु की चितचोरनी हैं ।

घनस्याम छटा अभिराम की त्यों, मदमाती सुमंजुल मोरनी हैं ।

श्रृंगार एवं नायिका भेद के छन्द भी व्यास जी ने लिखे लेकिन माहौर जी की अपेक्षा इस ओर व्यास जी की रुचि अधिक नहीं दिखायी देती । माहौर जी नायिका भेद के पण्डित थे, सम्भवतः व्यास जी ने उन्हीं से प्रेरणा कर नायिका भेद का वर्णन किया । श्रृंगार एवं नायिका भेद का वर्णन करते समय कहीं कहीं तो ऐसा लगता है कि व्यास जी ने कुछ शब्द ही माहौर जी से ज्यों के त्यों ग्रहण कर लिये हैं । कुछ उदाहरण देकर इस तथ्य को स्पष्ट किया जा सकता है ।

माहौर जी द्वारा चित्रित प्रवत्स्यत्पतिका नायिका देखिये -

जान चहेंगे परदेस पिय होत प्रात ही काल ।

रीतें घट लीन्हे फिरत गली गली वह बाल ।।

इसी भाव को व्यास जी ने ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है -

कारन कौन कहे नहीं, आज प्रात ही काल ।

रीते घट लीन्हे गली गली वह बाल ।।

इसी प्रकार व्यास जी का अज्ञात यौवना नायिका का चित्रण माहौर जी से कितना मिलता जुलता है -

माहौर जी -

अचरज बात बात बात में दिखान लगी,

और गति जागी पागी मति की घरी घरी ।

नाथूराम दिव्य पट अंचल सरक जात,

चंचलता नैन अधिकात है घरी घरी ।।

पीनता नितम्ब दरसात कटि क्षीणताई,

ढीली होत जात माई झाँझरी घरी घरी ।

मन की और कहो कौन कारन सों,

तंग होत जात अंग कंचुकी छरी छरी ।

व्यास जी –

नैनन निहार बार बार सर बैनन को,

उचित उचाह चाह चपल छरी छरी ।

\+ + + +

व्यास कहैं कौन से कहीं री दृग जी को यह,

सरके तभी ये कंचुकी हू छरी छरी।

लागत हरी हरी अरी सकोन करन तैं,

परत छुटीली बात छाँहरी छरी छरी ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि माहौर जी कला एवं भाव दोनों ही क्षेत्र में व्यास जी ने माहौर जी से कुछ न कुछ ग्रहण किया है विषय वैविध्य जितना माहौर जी के साहित्य में है, उतना व्यास जी की कृतियों में नहीं दिखलायी देता । श्रृंगार, भक्ति, नीति, हास्य, प्रकृति आदि सभी विषयों पर माहौर जी ने लेखिनी चलायी है, व्यास जी की लेखिनी अपेक्षाकृत सीमित रही है ।

व्यास जी के साथ ही स्व0 घनश्याम दास पाण्डेय भी माहौर जी के साथ काव्य साधना में रत रहे । पाण्डेय जी ने सेर, कवित्त और सवैया छन्दों में साहित्य सृजन अपनी कल्पना शक्ति द्वारा अनेक विषयों पर किया किन्तु उन का मुख्य विषय राष्ट्रीय चेतना और बुन्देलखण्ड ही रहा । 1931 से 1939 तक पाण्डेय जी की पार्टी और झाँसी की माहौर पार्टी में साहित्यिक संघर्ष चलता रहा । इस साहित्यिक संघर्ष में कभी कभी जय पराजय की भावना साहित्य पढ़ने वालों के हृदय में अवश्य उभर कर सम्मुख आ जाती है, किन्तु पाण्डेय जी और माहौर जी के हृदयों में परस्पर अत्यन्त सौहार्द की भावना व्याप्त रहती । राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण पाण्डेय जी की "हरदौलचरित्र" छत्रसाल बावनी, प्रमुख कृतियां हैं । रानी लक्ष्मी बाई का स्तवगान करते हुये माहौर जी की ही भांति पाण्डेय जी ने भी कई छन्द लिखे । रानी विषयक एक छन्द पाण्डेय जी का देखिये जो कि माहौर जी वीर बाला" के समान वीर भाव जाग्रत करने में समर्थ है –

देश की गुलामी और नमक हरामी बन,

दोनों कर लक्ष्मी देश लक्ष्मी सी छली गई ।

\+ + + +

कवि "घनश्याम" ताकते ही रहे वाले अरि,

ताकते ही रहे कहो कौन सी गलबि गई ।

बैरियों की भीर थी औ हाथ शमशीर थी,

यों चीरती फिरंगियों को तीर सी चली गई ।

बुन्देल खण्डों में फड़ों कवि दंगलों की जो कवि परम्परा रही है उनमें राष्ट्रीय कविताओं को विशेष महत्व मिला । ऐसे फड़ों या कवि गोष्ठियों में वीर रस की कविताओं में रानी लक्ष्मी बाई की कीर्ति का गान सदा ही होता रहा है मऊरानी पुर और झाँसी में ऐसे अनेक फड़ घासीराम व्यास, घनश्याम दास पाण्डेय और माहौर जी की कवि मण्डलियों के बीच होते थे । इन फड़ों में व्यंजना से संकेतों से एक दूसरे के प्रति आक्षेप भी होते थे परन्तु सौहार्द की भावना तीनों ही कवियों के हृदय में सदैव बनी रहती । माहौर जी के द्वारा -------- खण्ड खण्ड ह्वै गयो घमण्ड घनश्याम को" कहने पर पाण्डेय जी ---- मीरा माहुर अबे गई कह कर उत्तर देते लेकिन उभय पक्ष में कोई अनुचित अनभीष्ट कटुता नहीं आ पाती ।

माहौर जी की ही भाँति देश प्रेम की भावना पाण्डेय जी के अन्तस्तल कूट कूट भरी थी । बुन्देलखण्ड के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुये बुन्देलखण्ड के प्रति अपने प्रेम की जो अभिव्यक्ति कवि ने की वह बड़ी ही स्वाभाविक है -

प्रकृति नटी नटवर जहाँ करती अद्भुत खेल,

विश्व विभूति मंडित सदा, शोभित खण्ड बुन्देल ।

\+ + + +

भारत उर स्थली की हेम मंजु माल जड़ा,

दीप्तिमान मणि सा बुन्देलखण्ड देश है ।

पाण्डेय जी की लेखिनी श्रृंगार विषय पर माहौर जी की अपेक्षा सीमित रही है नायिका भेद विषय का तो पाण्डेय जी ने स्पर्श ही नहीं किया ।

निष्कर्ष रूप से हम देखते हैं कि वर्ण्य विषय एवं कला की दृष्टि से -

माहौर जी, व्यास जी एवं पाण्डेय जी दोनों से आगे थे । हाँ इतना अवश्य है कि राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का अधिक श्रेय व्यास जी को है । फड़ों को राष्ट्रीय रंग पर लाने का कार्य व्यास जी ने ही किया । लेकिन देश के नव - युवकों में शौर्य की भावना जागृत करने में माहौर जी का योगदान भी कम नहीं है । समग्र रूप से दोनों ही राष्ट्रीयता के सजग प्रहरी थे । पाण्डेय जी राष्ट्री-यता के क्षेत्र में कुछ पीछे अवश्य रहे लेकिन "हरदौल चरित्र" लिख कर पाण्डेय जी ने जो नवयुवकों वीर भावना का संचार किया वह भी कम श्लाघनीय नहीं है ।

स:- स्व0 मदनमोहन द्विवेदी "मदनेश" एवं माहौर जी -

स्व0 मदन मोहन द्विवेदी "मदनेश" माहौर जी के काव्य गुरु थे । माहौर जी के परिवार के कुल पुरोहित होने के नाते माहौर जी ने अपना प्रार-म्भिक काव्य शिक्षण मदनेश जी से ही प्राप्त किया था । गुरु से दीक्षा प्राप्त करने के उपरान्त माहौर जी ने एक "माहौर कवि मण्डली" की स्थापना की और स्वयं अनेक लोगों के काव्य गुरु बन कर काव्य का शिक्षण देने लगे । मण्डली के लोग माहौर जी से कवित्त सीखते थे और फड़ों, बैठकों, गम्मतों आदि में गाते सुनाते थे तथा स्वयं भी कवित्त आदि लिखकर माहौर जी से उसका संशोधन कराकर बै-ठकों आदि में सुनाते । माहौर मण्डल के प्रमुख सदस्य सर्व श्री बिहारी खत्री, राम-चरण हयारण, मेवकेन्द्र, स्व0 सुन्दर लाल द्विवेदी "मधुकर" आदि थे । मदनेश के पास इस प्रकार की कोई संस्था या मण्डली न थी जिसके वे काव्य गुरु रहे हों ।

बुन्देलखण्ड में कविता के फड़ों यानी दंगलों की परम्परा रही है । मदनेश जी ने अपने शिष्य माहौर जी को इन फड़ों के लिये तैयार कर स्वयं अपने आप से स्पर्द्धा करने को प्रेरित किया । गुरु शिष्य की इस काव्य स्पर्द्धा का विकास रामलीला के क्षेत्र में विशेष रूप से हुआ । एक रामलीला मण्डली के प्रमुख कवि थे नाथूराम माहौर तो दूसरी रामलीला समाज का प्रतिनिधित्व करते थे मदनेश जी । दोनों ही रामलीलाओं में अभिनय और नये नये गीतरे और कवितों आदि के पाठों के संयोजन करने में प्रतिस्पर्द्धा होती थी । इस प्रतिस्पर्द्धा में अपने बुद्धि चातुर्य से माहौर जी हमेशा अपने गुरु से आगे निकल जाते । अपने - शिष्य के काव्य कौशल से तुष्ट होकर गुरु मदनेश जी साधुवाद देते और शिष्य माहौर-

अपने गुरु के चरणों मे नत होकर विनम्रता का परिचय देता । मदनेश जी के राम-लीला के गीत तो लुप्त प्राय है परन्तु माहौर जी की रामलीला की निम्न पंक्ति-यां आज भी झांसी की जनता की कंठहार बनी हैं -

> सोहे सज्जन जन, मुनि मन के हरन,
>
> सखि अवध वतन, दसरथ के सुवन[1]।

बुन्देलखण्ड की राष्ट्रीय चेतना मे मदनेश जी का बड़ा योगदान रहा । झांसी के स्वातन्त्र्य संग्राम पर एक महाकाव्य "लक्ष्मी बाई रासो" की रचना आपने की परन्तु अंग्रेजी शासकों के भय से आपने उसे छिपाये रखा यह काव्य अब प्रकाश में आया है जिसका सम्पादन नाथूराम माहौर के भान्जे डा० भगवान दास माहौर ने किया । झांसी की जनता के शौर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है -

> बहु कुरिया कृपान ले धाय । सूरन के जिन मान घटाये ।
>
> गह कर बका कठेरे धाय । भुन्टा से जिन मूंड गिराये ।।
>
> बड़ी जाति गहि आयुध नाना । लरे सुभट सो करी बखाना ।।

इस महाकाव्य में जन भाषा बुन्देली का सुन्दर प्रयोग किया गया । माहौर जी के काव्य में भी यत्र तत्र बुन्देली के शब्दो का प्रयोग है । बुन्देलखण्ड के निवासी होने के कारण माहौर जी को बुन्देली एवं बुन्देलखण्ड दोनो से प्रेम था इसी लिये कुछ लोक गीतों में तो माहौर जी ने विशुद्ध बुन्देली शब्दों का प्रयोग खुल कर किया है । मदनेश जी ने स्फुट रुप में सभी प्रकार की रचनाओं का प्रणयन किया जो अभी तक अप्रकाशित है । नायिका भेद, ऋतु वर्णन, कहावतें, राष्ट्रीय , भक्ति आदि सभी विषय मदनेश जी के काव्य में मिल जाते हैं । माहौर जी का विषय वैविध्य गुरु मदनेश जी की अपेक्षा परिमाणात्मक अधिक है, सभी विषयों पर स्वतंत्र पुस्तके माहौर जी ने लिखी हैं जिनमे अधिकांशत: प्रकाशित हैं । वर्ण्य विषय के क्षेत्र में शिष्य गुरु का अग्रणी है । जहा तक कला का प्रश्न है मदनेश जी की काव्य कला में शेर, ख्याल, आल्हा, कवित्त, सवैये, दादरे, ठुमरिया, गजले, तोमर, त्रोटक, कुण्डलियाँ, अमृतध्वनि आदि नानाविध छन्दों एवं विभिन्न श्रेणियों के अलंकारों का समावेश है रस, पिंगल एवं अलंकार के आप प्रकाण्ड -

---

1:- रामलीला के लिये प्रणीत स्फुट छन्द - माहौर

पण्डित थे । कला के क्षेत्र में माहौर जी अपने गुरु के ऋणी हैं । नायिका भेद वर्णन मदनेश जी का स्वाभाविक एवं सरस बन पड़ा है, तदनुरूप ही माहौर जी का नायिका भेद वर्णन है । मदनेश जी की सद्य स्नाता नायिका देखिये -

> सलिल नहाय कढ़ी विमल मयंक मुखी,
>
> दोनों गोरि गातन निचोवे अंबु अगरे ।
>
> \+ + + +
>
> उधरो कँधेला ताय दातन दबाय रही,
>
> ग्रीवा तें उठाय के समेट रही अगरे ।
>
> नैन पायबे को फल होन दे जो पूरा मत,
>
> जूड़ा बांध प्यारी दे रहन आर अगरे ।।

माहौर जी की सद्य स्नाता नायिका का वर्णन इसी शैली में देखिये-

> भानुजा नहाय कृष्णानुजा पधारी गेह,
>
> देह दुतिवारी दुति विद्युत लजोवें है ।
>
> सारी जरतारी धारी अंग सुकुमारी भारी,
>
> केसन सम्भारी प्यारी खूब खुसबोइ है ।
>
> नाथूराम लोनी लोनी लांबी लटकारी लट,
>
> लटकी कुच पै सब उपमा संजोवें है ।
>
> मानो कलधौत के उतंग शृंग अंग पर,
>
> केलि कर पन्नगी पसार पूंछ सोवें है[1]।

मदनेश जी ने स्वातन्त्र्य संघर्ष में स्त्रियों को आगे बढ़कर देशहित कार्य करने के लिये आव्हान किया -

> माता सुता भगिनी हो सुजन सिखावन में,
>
> करके प्रयत्न अब पैसा सब जोड़ दो ।
>
> निजकर कात सूत पहरो बसन अंग,
>
> देश हित देख के विदेशी वस्तु छोड़ दो ।

1:- शृंगार - वागीश - माहौर

मदनेश अबला हो प्रबला अगाड़ी बढ़ो,
      कपटी फिरंगन को भंड सब फोड़ दो ।
चाहती स्वराज जो पै, कांग्रेस काज करो,
      येही है बलाय या को लाय सब तोड़ दो ।

इसी भाव के अनुपद ही माहौर जी ने "वीर वधू" और "वीरबाला" जैसी राष्ट्रीय रचनाओं के माध्यम से देश की नारियों को वीर वधू या वीर बाला बन देश के स्वातंत्र्य संग्राम में भाग लेने के लिये प्रेरित करते हुये कवि ने कामना की "आज वीर बाला वीर बाला बन जायेगी" । वीर वधू में तो श्रृंगार के माध्यम से वीरभावना का प्रदर्शन कर कवि ने अपनी विलक्षण काव्य शक्ति का परिचय दिया है । निःसन्देह "वीरवधू" और "वीर बाला" माहौर जी की राष्ट्रीय जागृति करने वाली अनुपमेय कृतियां हैं ।

मदनेश जी ने प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कुछ छन्द लिखे हैं लेकिन वे माहौर जी के "षड्ऋतु दर्पण" के समक्ष नगण्य से हैं । माहौर जी ने यद्यपि मदनेश जी से ही काव्य प्रेरणा की लेकिन वे प्रत्येक क्षेत्र में मदनेश जी को पीछे छोड़ आये । ऋतुराज वसन्त का वर्णन दोनों कवियों का देखने पर पता चलता है कि भावों की समानता लगभग दोनों कवियों में दिखायी देती है लेकिन माहौर जी ने मानिनी नायिका के रूप में वसन्त का जो चित्र खींचा वह अद्वितीय एवं मौलिक कल्पना है -

माहौर जी का वसन्त वर्णन :-

नीको भयो आगम बसंत पंचमी को जानि,
      मान छोड़ जी को कर प्रगट खुशाली कों ।

+ + + +

नाथूराम लीजै री सजाय नेह डाली शीघ्र,
      कीजै री अमन्द मुख चन्द की उजाली कों ।
त्यागिये न प्रेम की पुरातन प्रनाली अब ,
      आली चलि वांछिये वसन्त बनमाली कों ।

मदनेश कृत बसंत ऋतु का चित्रण -

दिव्य द्युति वाली मंजु मूरति रसीली लाल,
　　　　अधर अमोल मंद हंसन निराली है ।

+　　　+　　　+　　　+

कवि मदनेश ऋतु राज की सुभाली मति,
　　　　छवि की छटाली मनो मोहनी सी डाली है ।
प्यारे बनमाली की प्रभाली अशोक आली,
　　　　डाली धरे फिरत बसन्त बनो माली है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु शिष्य काव्य परम्परा में शिष्य गुरु से किसी प्रकार कम नहीं है । शिष्य को आगे बढ़ता देख गुरु को प्रसन्नता होती और उसकी काव्य क्षेत्र में विजय पर उसे साधुवाद देते हुये काव्य सृजन हेतु प्रोत्साहित करते ।

बुन्देलखण्ड जनपद के अन्य कवि और माहौर जी -

बुन्देलखण्ड जनपद में माहौर जी के समकालीन अनेक कवि हुये हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं से बुन्देलखण्ड को गौरवान्वित किया । सभी कवि माहौर जी से किसी न किसी रूप में प्रभावित रहे हैं ।

सर्व प्रथम हम माहौर जी की साहित्य साधना की तुलना मऊरानीपुर निवासी श्री नरोत्तम पाण्डेय की काव्य साधना से करेंगे । ये अपना उपनाम "मधु" लिखा करते थे । आपके पिता श्री घनश्याम दास पाण्डेयहिन्दी, उर्दू, संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे, काव्य ज्ञान श्री नरोत्तम जी को विरासत में अपने पिता जी से ही मिला । ओरछा नरेश ने नरोत्तम जी को "राजकवि" पद से सम्मानित किया । पाण्डेय जी का कृतित्व माहौर जी की तुलना में नगण्य सा है फिर भी जो कुछ काव्य सृजन आपने किया वह बुन्देलखण्ड की जनता के लिये अविस्मरणीय है । "राजकवि" होते हुये भी राष्ट्रीय कविता की ओर उन्मुख - होना पाण्डेय जी की निर्भीकता एवं शाश्वत देश प्रेम का परिचायक है । माहौर जी की भांति देश के किसानों की कुटिया की प्रशंसा करता हुआ कवि राजमहलों-

को हेय दृष्टि से देख, अपनी साम्यवादी विचार धारा का परिचय देता है -

पत्थर कठोरता का नींव में गलाया गया,

जिसमें चुनाई हुई ईंट अभिमान की ।

गारत गरीबों के लहू का लाल पानी मिला,

सुरम मिलाई गई आरतों के प्रान की ।

अबल अनाथों की कमाई का कंगूरा कढ़ा,

डाट लगी, डाट फटकार के विधान की ।

छुरियाँ छलों की, चला करती गलों पे जहाँ,

ऐसे महलों से भली कुटिया किसान की ।

मानवी करण अलंकार के माध्यम से राजमहलों की अपेक्षा किसान की कुटिया की श्रेष्ठता बतलाता हुआ कवि साम्यवादी विचार धारा का पोषक है । माहौर जीभी मजदूर और किसानों के हमदर्द थे मजदूरों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुये और उनकी दशा सुधारने की माँग करते माहौर यों कहते हैं -

"भूलो उनको कभी देना नहीं, मजदूर ही है सब देश का दीपक" ।

दोनों कवियों की राष्ट्रीय चेतना का अनुशीलन करने पर विदित होता है कि माहौर जी का राष्ट्रीय साहित्य पाण्डेय जी की अपेक्षा सबल था । "दीन के - आँसू" तो राष्ट्रीय भावनाओं से आपूरित होने के कारण अंग्रेजी सरकार व्दारा जब्त कर ली गयी थी । पाण्डेय जी की कविता में अलंकारों और कल्पना का मधुर मिश्रण तो है ही भाषा का संस्कृत प्रयोग एवं प्रवाह भी प्रशंसनीय है । पाण्डेय जी का ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली दोनों पर समान अधिकार था । आपके व्दारा विरचित पुस्तकों में "शशि शतक" और "मुरली माला" प्रमुख हैं ।

पाण्डेय जी के पश्चात माहौर के समकालीन आधुनिक कवियों की श्रृंखला में स्व० श्री ववनेश जी का नाम आता है । ववनेश जी रस सिद्ध कवि थे, इस कारण आपने सभी रसों में लिखा है । हास्य और व्यंग का जो कि विरले कवि ही सफलता के साथ लिख पाते हैं , ववनेश जी ने बड़ी ही कुशलता के साथ चित्रण किया है -

कवि रानी की सपत्नी - कविता पर व्यंग देखिये जो कि अपने में -

विलक्षणता लिये हुये हैं -

मेरे विधियान बदलायबो बनत नाहिं,
　　　　बाके हेतु भूषण विचित्र सोजि आने हैं ।
मेरे कन्हैं साग लाइवे को अनखाय उठें,
　　　　वाको भूरि व्यंजन सरस रस सानें हैं ।
कवि "सनेश" ग्रह काज में अयाने ऐसे,
　　　　बाकी उक्ति युक्ति में कहावत सयाने हैं ।
कौन सुख मोको हैं, कहाय कवियानी और,
　　　　पीव जब भात कविता ही पै भुलाने हैं ।

श्लेष के माध्यम से बड़ा ही सजीव व्यंग है । माहौर जी ने तो "व्यंग्य विनोद" लिखकर जनमानस की तीव्र कुण्ठा का हास्य - व्यंग के माध्यम से बड़ा ही प्रभावोत्पादक प्रदर्शन किया । आपने भ्रष्ट खद्दरधारियों के व्यवहार से क्षुब्ध होकर "कांग्रेस" को लक्ष्य कर बड़ा ही स्वाभाविक व्यंग किया है जो कि युग की अक्षय निधि है । यथा -

गंगा तेरे घाट के पण्डा रहे मुटाय,
मनमानी निज दक्षिणा मांगे मुख फैलाय ।।
　　　　　　　　:व्यंग-विनोद :

हास्य व्यंग लिखने में माहौर जी अद्वितीय एवं अग्रगण्य है । भारत की राष्ट्रीय चेतना मे माहौर जी के ही समान सनेश जी का भी योगदान कम नहीं है । 1920 में जब महात्मा गांधी राष्ट्र को स्वतंत्र कराने का शंखनाद कर रहे थे, सनेश जी अन्य राष्ट्रीय कवियों के साथ राजनीति के मंच पर अवतरित हुये । सनेश जी की राष्ट्रीय कविताओं से प्रभावित होकर राष्ट्रीय स्वयं सेवकों के हृदय राष्ट्रीय भाव से भर गये और वे देश को स्वतंत्र कराने के लिये कटिबद्ध हो गये । सनेश जी की एक राष्ट्रीय कविता दृष्टव्य है -

भारत करायो एक द्रोपदी के आंसो ने,
　　　　सीता के आंसों ने रावण को मारा है ।
बार बार "सनेश" रेणुका के आंसुओं ने,

धार धार अश्रुओं का वेग किया जाता है ।

कब तक रहोगी मात रुठी दीन भारत पे,

वेदी पे चढ़ा "विश्व मोहन" हमारा है ।

आइये स्वतन्त्रते ! पखारने को कंज पद,

तीस कोटि भारतों के आंसुओं की धारा है ।

माहौर जी के "अश्रुमाल" के अन्तर्गत द्रोपदी, सीता आदि के आंसू से लेकर "मातृभूमि" तक के आंसुओं का वर्णन आलंकारिक शैली में हुआ है वचनेश जी ने सबके आंसुओं का समन्वय एक ही छन्द में करते हुये तीस करोड़ जनता के अश्रु को मां स्वतन्त्रता के चरण कमल के प्रक्षालन हेतु उद्यत दिखाया है ।

माहौर जी ने "दीन दुखियों" के आंसू" के अन्तर्गत ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं -

"अंखियां हैं स्वतन्त्रते तेरे लिये, निज गोद के लाल लुटा रही ।।

"दीन के आंसू" तो माहौर जी की सशक्त राष्ट्रीय कृति है जिसके समकक्ष माहौर जी के समकालीन कोई भी कवि नहीं पहुंच सका है । माहौर जी की "अश्रुमाल" के अनुपद वचनेश जी ने भी आंसुओं पर कुछ छन्द लिखे हैं लेकिन वे "अश्रुमाल" के समान सरस, स्वाभाविक एवं भाव वैचित्र्य पूर्ण नहीं हैं । वचनेश जी के कुछ छन्द तो माहौर जी के अश्रुमाल के अनुरूप हैं, देखिये वचनेश जी के आंसू-

गोद में खिलाती, बहलाती पुतलियों से हैं,

सिखलाती कोओं का पकड़ मोल चलना ।

+ + + -+

पलक झुलाती बरौनियों के पलना ।

माहौर जी के "प्रेम के आंसू" से वचनेश जी के उपर्युक्त आंसुओं से कितना साम्य है-

उमड़ें अंसुवा लखि के पलकें,

गति लावती गोद खिलावती हैं ।

+ + +

जनु डोरिन झूलन में पुतरी,

अंखियान के लाल झुलावती हैं ।

हम देखते हैं भाव पक्ष एवं कलापक्ष का जो सुन्दर समन्वय माहौर जी के काव्य में है वह ववनेश जी के काव्य में नहीं । भाव की दृष्टि से तो वे माहौर जी के कुछ निकट हैं लेकिन कला के क्षेत्र में माहौर जी से बहुत पीछे हैं ।

रीतिकालीन परम्परा के अनुयायी आधुनिक कवियों में स्व० हीरालाल व्यास "हृदयेश" भी बुन्देल खण्ड जनपद के उन कवियों में से हैं जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता । महाराजा गंगाधर राव के राज कवि थे । 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में रानी लक्ष्मी बाई के लिये युद्ध करते हुये इस वीर कवि ने प्राणोत्सर्ग किया था । ये कलम और तलवार दोनों के धनी थे । हृदयेश जी ने रीति परिपाटी का पालन करते हुये "नायिका भेद" विषयक उत्कृष्ट ग्रन्थ "चित्त वश करन" लिखा । "नायिका भेद" इन्होने रीतिबद्ध परम्परा के अनुरूप लक्षण ग्रन्थ लिख कर किया जो कि अपने आप में विलक्षण ग्रन्थ है । इस क्षेत्र में हृदयेश जी माहौर जी से आगे हैं । माहौर जी ने नायिकाओं के विविध भेदों के मात्र उदाहरण दिये हैं, लक्षण नहीं बतलाये । हृदयेश जी का "चित्त वस करन" नायिकाओं के भेदोपभेदों दिग्दर्शन कराने वाला एक लक्षण ग्रन्थ है जिसमें कवि ने लक्षण देते हुये नायिकाओं के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं । कला के क्षेत्र में हृदयेश जी माहौर जी के समकक्ष हैं । भाषा, अलंकार, छन्द आदि की दृष्टि से भी "चित्तवस करन" अद्वितीय ग्रन्थ है । हृदयेश जी का प्रकृति चित्रण बड़ा ही सरस हृदयहारी एवं मनोरम है । वर्षा का वर्णन देखिये कितना स्वाभाविक है -

उमड़ घुमड़ झूम भूमि पर झूम झूम,
　　　　हरत नगारन धुकार दर दरसै ।
सैना चिन्त चंचला चमके चक चौंध कौंधे,
　　　　चौंक अली दम्पत पिया के तन परसैं ।
कोकलान कलित कदम्बन "हृदेश" कूक ,
　　　　गिरि गिरि सिखिर मयूर सुधा सरसै ।
महलन धार परैं जल भरसार धार,
　　　　जलधर धार वारि, बार बार बरसै ।

माहौर जी भी प्रकृति चित्रण के क्षेत्र में अद्वितीय हैं । प्रकृति के आलम्बन, उद्दीपन-

आदि सभी रूपों का वर्णन माहौर जी ने रीति परम्परानुसार ही किया है ।
माहौर जी का वर्षा वर्णन देखिये हृदयेश जी से कितना साम्य रखता है -

गगन गराज घन सघन समाज साज-
दादुर दराज सी अवाजन सुहाये हैं ।
बद्दलान बुन्दन झलान बरसान लागे-
कोक की कलान कोकिलान गान गाये हैं ।
नाथूराम ताही छन विहरे विपिन बाल,
मुक्तन के हार मंजु मोरन झुमाये हैं ।
धारन कियो है मौन कहो कौन कारन सों,
चातक के बैन सुन नैन भर आये हैं ।

दोनो ने ही वर्षा का उद्दीपन रूप में चित्रण किया है । अनुरणात्मक शब्दों की योजना, ध्वन्यात्मकता एवं अनुप्रास की छटा दोनों में ही सौन्दर्य द्विगुणित करने में सक्षम है । अलंकार विधान रीतियुग की प्रमुख विशेषता थी जिसकी माहौर जी एवं हृदयेश जी दोनों के काव्य में समान रूप से अभिव्यक्ति हुयी है । कवि द्वय अलंकार प्रयोग में पारंगत थे । अनुप्रास की छटा तो दोनों कवियों ने बड़ी ही खूबी के साथ प्रदर्शित की है -

हृदयेश जी द्वारा प्रयुक्त वृत्यानुप्रास-

सकल सराहे सुख्य सारंग सरद सार,
सुर से सरस सर सरसत साम के ।
जौन जान जान कों जरावत जुल्म जोर,
जुर सों जगत जाने जहर तमाम के ।
कहत हृदयेश बल व्याकुल विरह वर,
वेदन वदन बढ़ी वरजस काम के ।
तारापति तपत तवा सो तेज तोर कर,
तारा कन तरुन अगारा ज्वाल धाम के ।

माहौर जी इस क्षेत्र मे हृदयेश जी के समकक्ष हैं -

भव विभव भूषित भव्य भुव-

भारत विभति विभाषिनी ।

कल काव्य कल्पद्रुम लता,

कवि कलित कण्ठ विराजिनी ।।

रसराशि रसना की रसायन,

रमणि रम्य रसालिनी ।

कविता लता वर वाटिका की ,

मृदुल मंजुल मालिनी[1]।

भक्ति क्षेत्र में वृदयेश जी ने जगदम्बा, गणेश, राम कृष्ण आदि के नमस्कारात्मक छन्द लिखे हैं , लेकिन इस क्षेत्र में माहौर जी आगे हैं, पैतृक संस्कारों के कारण माहौर जी ने भक्ति भावना विरासत में पायी थी । स्वयं रामलीला में सस्वर काव्य पाठ करते तथा अभिनय भी करते थे , अत: परिस्थितियों ने उन्हें एक महान भक्त बना दिया था । माहौर जी ने गणेश, सरस्वती, राम, हनुमान, कृष्ण आदि सभी देवी देवताओं की वन्दना की है । वृदयेश को ऐसा वातावरण उपलब्ध न था । राजकवि होने के कारण राजप्रशस्ति में लीन रहने वाले, कवि का मानस नायिका भेद तक ही सीमित रह कर "विरह वारन" ही हिन्दी साहित्य को दे सका । माहौर जी के साहित्य में विषय वैविध्य होने के कारण हिन्दी साहित्य को अनेकानेक उपलब्धियाँ हुयी । माहौर जी की राष्ट्रीय भावना तो बुन्देलखण्ड के लिए अनुपमेय एवं सर्वदा स्मरणीय है ।

इसी सन्दर्भ में बुन्देलखण्ड के एक ओर वीर कवि श्री अम्बिकेश जी को भी विस्मृत नहीं कर सकते हैं । यद्यपि अम्बिकेश जी का साहित्य अत्यल्प है तथापि जो कुछ भी है वह बुन्देलखण्ड के गौरव में अभिवृद्धि करने में सक्षम है । अम्बिकेश जी वीरसिंह जु देव के दरबारी कवि थे । इनकी शैली में आदि एवं मध्यकाल दोनों का सम्मिश्रण पाया जाता है इन्होंने घनाक्षरी, पद्धरी, छप्पय, भुजंगी आदि छन्दों के साथ अनेक अलंकारों से अपनी भाषा में जो ओज की धारा प्रवाहित की वह स्तुत्य है । इन्हें 1965 में "बुन्देलखण्ड भूषण" की उपाधि से विभूषित किया -

---

1:- द्रौपदी दुकूल पचीसी - माहौर - पृ0- 6

गया । इनका साहित्य यद्यपि प्रकाशित नही है तथापि कवि गोष्ठियों के माध्यम से जन साधारण तक पहुंच गया है । अम्बिकेश जी ने माहौर जी से ही काव्य प्रेरणा ग्रहण की इसीलिये इनकी रचनाओं में माहौर जी से बहुत साम्य है । विषय वैविध्य भी माहौर जी से गृहीत भावों के अनुपद ही है । इन्होने ऋतु वर्णन नायिका भेद, भक्ति एवं राष्ट्रीय विषयों पर रचनाये की है

प्रात: स्मरणीया महारानी लक्ष्मी बाई के शौर्य का जो वर्णन अम्बिकेश जी ने किया, वह माहौर जी की ही शैली में है -

अम्बिकेश जी -

आयी जब युद्ध में विरुद्ध दल दलने को,

पूर्ण प्रण रोप कर कोप चण्डिका सी है ।

लाल लाल लोचन विशाल भाल कुन्तल से,

कालकर राजे मुख श्वास ज्वाल कासी है ।

कांपगये शत्रु बाई लाब को विलोक रुप ।

कण्ठ में दिखानी पड़ी मुंड मालिका सी है ।

द्विव की प्रभा सी तेग काढ़े चपलासी ,

रण बीच अम्बिका सी टूट पड़ी कालिका सी है ।

माहौर जी द्वारा विरचित लक्ष्मी बाई से सम्बन्धित छन्द "वीर-बाला" में संग्रहीत हैं । एक उदाहरण दृष्टव्य है -

दीप मालिका सी दिव्य ज्योति जाल कासी भासी,

काल बाल का सी कालिका सी बल चण्डी थी ।

बाईसाब झांसी की निवासी कमला सी पूज्य,

वीरता विलासी वासी कीर्ति कुल मण्डी थी ।

"नाथूराम" जंग में घुमडित घटा सी छूट,

विद्युत तेग वैरिन पै छण्डी थी ।

अमित उमण्डी देश द्रोहिन विहण्डी दल ,

प्रबल प्रचण्डी मातु है वे रण चण्डी थी[1]।

दोनों कवियों की शब्द योजना, शैली एवं भाव में अधिकाधिक साम्य है । वर्ण मैत्री इतनी सजीव है कि ऐसा प्रतीत होता है मानों तलवार की झनझनाहट कानों में गूंजने लगती है । अम्बिकेश जी की "वीर छत्रसाल दशक" माहोर जी की "छत्रसाल गुणावली" के अनुरूप रची गयी एक राष्ट्रीय रचना है । माहोर जी को अपनी जन्म भूमि बुन्देलखण्ड से अगाध प्रेम था । बुन्देलखण्ड के प्रति प्रेम और आत्म सम्मान की भावना का दिग्दर्शन निम्न छन्द में देख सकते हैं -

नौनों खण्ड बुन्देल हमारो, नोंड खण्ड को प्यारो ।

+ + + +

माहुर सुकवि जहां लों कहियत जो है जग उजियारो ।

सियाराम हू ने दुर्दिन में जब को लओ सहारो ।

बुन्देलखण्ड के प्रति प्रेम की भावना का प्रदर्शन अम्बिकेश जी इस प्रकार करते हैं -

प्रगटे प्रचण्ड बलवंड वीर,

कर में कृपान तन के शरीर ।

+ + +

है दश देश में उच्च नाम,

रण सबल सूर का धवल धाम ।

कहें अम्बिकेश महिमा अखण्ड,

वन्दों विचित्र बुन्देलखण्ड ।

खड़ी बोली में वह माधुर्य नहीं है जो माहोर जी की ब्रज मिश्रित बुन्देली में है । इस प्रकार हम देखते हैं कि माहोर जी की कला अम्बिकेश की अपेक्षा अधिक प्रौढ एवं निखरी हुयी है ।

काव्य के क्षेत्र में नारी प्रतिभाओं का आना अपने आप में सामाजिक जीवन के एक महान अभाव की पूर्ति होता है । हिन्दी के काव्य क्षेत्र में परम्परा से यशस्वी इस बुन्देलखण्ड की कवि परम्परा में एक नारी ~~कवियित्री~~ कवयित्री के रूप में स्व०

1:- वीरबाला - माहोर - पृ०- 3

श्रीमती राम कुमारी चौहान की प्रतिभा का उदय अपने आप में एक क्रान्तिकारी घटना है । उनकी काव्य प्रतिभा का उदय तब हुआ जब (देश) एक स्वतंत्रता संघर्ष में रत था और इस संघर्ष के लिये आवश्यक प्रोत्साहन एवं बल की महती आवश्यकता थी । इस महत् अनुष्ठान की पूर्ति स्व० रामकुमारी चौहान ने अपने ओजस्वी राष्ट्रीय काव्य सृजन द्वारा सफल रूप में की । इस कवयित्री ने द्विवेदी युग में काव्य रचनाओं का सृजन करते हुये छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद आदि युगों में आगे बढ़ते हुये हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया । स्व० चौहान ने 1945 में "अखिल भारतीय महिला हिन्दी साहित्य - सम्मेलन" की स्थापना की और नाथूराम माहौर, रामचरण ह्यारण मित्र आदि प्रतिष्ठ कवियों के अलावा नवीन अंकुरों तक के लिये वे सतत प्रेरणा दायिनी शक्ति के रूप में रहीं[1]। इनकी रचनायें माहौर जी से अधिक हैं । "निःश्वास" नामक कृति तो करुणा और वेदना से आप्लावित एक अनुपम कृति है, इसमें जो पीड़ा है वह महादेवी वर्मा से किसी प्रकार कम नहीं है ।

जहाँ तक माहौर जी से रामकुमारी चौहान की तुलना का प्रश्न है , राष्ट्रीयता के क्षेत्र में दोनों के साहित्य की तुलना की जा सकती है दोनों का ही आविर्भाव संक्रान्ति काल में हुआ था और राष्ट्रीय चेतना क स्वर दोनों के काव्य में सशक्त रूप में मुखरित हुये है । दोनों का राष्ट्रीय साहित्य हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है, जिसमें तत्कालीन राष्ट्रीय भावना प्रस्फुटित हुयी है । 1931 तक रामकुमारी चौहान ने ब्रज भाषा में रचनायें की लेकिन देशभक्ति की ओर उन्मुख होते ही ब्रज भाषा में खड़ी बोली का समावेश अधिकाधिक होता गया ।

रामकुमारी चौहान और कवीन्द्र माहौर दोनों के काव्य पर गांधी जी के सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन का प्रभाव था । तत्कालीन समाज में व्याप्त जातिभेद, अस्पृश्यता, परदा प्रथा , नारी जाग्रति के स्वर दोनों के काव्य में मिलते हैं ।

1:- मार्ग दर्शक- स्व० रामकुमारी चौहान स्मृति विशेषांक - पृ०- 50

अस्पृश्यता के सम्बन्ध में चौहान कहती हैं -

आपस की फूट है कि जाति भेद छूट कहें,
किधौं छुआछूत को अछूत भूत आज है ।

कवयित्री को विश्वास है कि -

तब शान्ति सुधारन धारन सों ,
दिन फेर अछूतन के फिरि हैं ।

माहोर जी भी छुआछूत को समाज के लिये एक अभिशाप मानते हैं वे तो स्वयं अछूतों के साथ बैठकर काव्य पर पाठ करते थे वे अछूतों केलिये अपना सब कुछ छोड़ने को तैयार थे इस समस्या का समाधान माहोर जी ने शबरी के व्दारा राम को बेर खिलाकर किया -

शबरी के था हृदयस्थल में,
प्रकटा था फिर बदरी फल में,
अति मिष्ट सुधा से श्रेष्ठ मान,
प्रभु ने खाये थे यश बखान ।
महिमा महान महिमा महान ।।

कवयित्री की राष्ट्रीय रचनाओं में "महारानी लक्ष्मी बाई" , "तारावती", "वीरांगना" आदि काव्य संग्रह वीर रस प्रधान काव्य ग्रन्थ हैं । रामकुमारी चौहान क राष्ट्र प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण उनकी इन पंक्तियों में दृष्टव्य है -

भारत जननी के चरणों,
पग जग के सुख सारे ।
लुट जाने दो हंसते हंसते ,
जीवन वैभव प्यारे ।

इसी राष्ट्रीय भाव का प्रस्फुटन माहोर जी ने इस प्रकार किया -

जिसके उर से उत्पन्न हुआ,
उसका ही सदा गुण गाना मुझे ।
जिसका सुखदा पय पान किया,
उसका बदला है चुकाना मुझे ।

जननी वसुधा पद पंकजों में,

हंसते हंसते चढ़ जाना मुझे[1]।

दोनों के ही जीवन का लक्ष्य है देश की बलिवेदी पर अपने जीवन को समर्पित कर देना । परमात्मा से भी चौहान अपनी मुक्ति की बात न कर देश की रक्षा की प्रार्थना करती हैं -

करुणा निधान कान विनती हमारी करो,

भारत के शीश प कृपा का कर दो ।

एकता विवेकता की तान कान कान फूंक,

सोई हुयी वीरता जगाय घर घर दो ।

\+ + + +

भाव भरो चित्त में, प्रभाव भरो बाहुओं में ,

हिय में स्वतंत्रता का भाव भर भर दो ।

माहोर जी भी ईश्वर से भारत की पराधीनता दूर करने की प्रार्थना करते हुये "दीन का दावा" में कहते हैं -

भारत में आना अब चाहिये अवश्य तुम्हें,

परम पुनीत वाक्य गीता के निभाना है ।

"नाथूराम" दीनों का अधीनों का चुकाना कर्ज,

दीनता सहित पराधीनता हटाना है ।

\+ + + +

सोये हुये आपको शताब्दियां व्यतीत हुई,

नाथ उठ जागो अब जागने का ये जमाना है[2]।

माहोर जी ने "वीर बाला" और "वीरवधू" लिखकर महिलाओं में शौर्य की भावना जाग्रत करते हुये उन्हें स्वातंत्र्य संघर्ष के लिये प्रोत्साहित किया, राम-कुमारी चौहान भी नारियों को "सबला" कहती हुयीं उनके अन्दर झांसी की -

---

1:- फूल की कामना - माहोर

2:- दीन का दावा - प्रथम भाग- माहोर - पृ०- 29

रानी की पुकार के बल का संचार करती हुयी कहती हैं -

काल से कराल बंक युद्ध में निशंक हम,

प्राण पर खेले रखे आन अटलाये हैं ।

दुष्टन विदार देंगी, वार देंगी प्रान येली,

शान बान राखिबे में पुण्य प्रकलाये हैं ।

मारेंगी न पीठ, प्रन तोरेंगी न नेकु हम,

युद्ध में कृपान को दिखावती कलायें हैं ।

बानी मरदानी रानी झाँसी की पुकार कहे,

अबला न जानों हमें हम सबलाये हैं ।

दोनों के काव्य में नारी जागृति के स्वर सबल रूप से प्रस्फुटित हुये हैं ।

कवयित्री देश की दीनता और कृषकों की दयनीय दशा से अत्यन्त दुखी है -

मजदूरों ने पिघल पिघल कर,

अपना हृदय गलर डाला ।

कृषकों ने निज रक्त पात से,

यहां बहाया है नाला ।

+ + +

हैं उनके हम ऋणी किन्तु वे,

ऋणी बने बेचारे हैं ।

मारे-मारे वे फिरते जो,

ग्राम्य देवता प्यारे हैं ।

माहोर जी भी "स्वराज्य" में किसानों की दयनीय दशा से क्षुब्ध होकर कहते हैं-

राजत भारत को वर छत्र, दरिद्रता को सरताज विराजत ।

+ + + + +

देखो "स्वराज्य" में राजा किसान के पेट में भूख की नौबत बाजत ।।

मजदूरों के संघर्ष में उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुये माहोर जी उनकी दशा-

को सुधारने की माँग करते हुये कहते हैं -

"तुमने इनको कभी देना नहीं मजदूर ही हैं सब देश के दीपक"

इस प्रकार राष्ट्रीय पक्ष माहौर जी एवं रामकुमारी चौहान दोनों में ही सशक्त है, दोनों समकक्ष है । कलापक्ष की दृष्टि से माहौर जी का काव्य चौहान के काव्य से उच्चतर भूमि पर प्रतिष्ठित है । रीति कालीन परम्परा से प्रभावित माहौर जी जहाँ शृंगार और नायिका भेद की बात करते हैं जहाँ रामकुमारी चौहान की काव्य साधना माहौर जी की समानता करने में अक्षम है ।

उपर्युक्त पर्यालोचन के पश्चात निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि बुन्देलखण्ड जनपद के कवियों में कवीन्द्र माहौर का स्थान अतुलनीय है । आपके संसर्ग में आकर बुन्देलखण्ड के काव्य क्षेत्र में अनेक जन काव्यानुरागी और प्रतिष्ठित कवि हो गये । काव्यार्जन तो उनका सराहनीय है ही उससे कहीं अधिक श्लाघनीय है उनका काव्यानुराग सर्जन । "माहौर कवि मण्डल" के सदस्यों पर माहौर जी की विशेष कृपा रही । मण्डल द्वारा प्रकाशित "काव्य वाटिका" के प्राक्कथन में माहौर जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुये कहा गया है -"झाँसी की जनता को यह भली प्रकार ज्ञात है कि माहौर जी चिरकाल से अपने साथियों तथा शिष्य वर्ग पर विशेष कृपा करते रहे हैं -------- झाँसी में कवियों को प्रोत्साहन देने में माहौर जी का अनुपम स्थान रहा है और यही कारण है कि मण्डल के सदस्यों ने आपके नाम से मण्डल की स्थापना की है और जब से इस मण्डल की स्थापना हुयी तभी से आप इसकी उन्नति के साधन में लगे हुये हैं और गत कुछ महीनों से जो आपने संलग्नता दिखाई है वह अतुलनीय, सराहनीय और आदरणीय है । माहौर जी के इस गुरुतर कार्य के लिये मण्डल सदैव आभारी रहेगा" इस कथन के कतिपय कवियों कीर्ति बुन्देलखण्ड में ही नहीं अपितु सुदूर देशों तक, समस्त हिन्दी क्षेत्र व्यापिनी हुयी । इस सम्बन्ध में ब्रज भाषा के सुप्रसिद्ध कवि श्री रामसेवक त्रिपाठी सेवकेन्द्र तथा रामचरण हयारण मित्र, जो सम्प्रति में लब्ध प्रतिष्ठित - कवि हैं, का नामोल्लेख किया जा सकता है, जिस पर झाँसी निवासियों को गर्व है इसका श्रेय कवीन्द्र माहौर को ही है , इस प्रकार व सच्चे अर्थो में कवीन्द्र थे ।।

माहौर जी ने अपने युग की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और -

साहित्यक मनोवृन्तियों को अपना कर बुन्देलखण्ड की राष्ट्रीय नवचेतना के उ - त्थान में निज रचनाओं द्वारा जो सहयोग प्रदान किया उससे उनका महत्व बुन्देलखण्ड जनपद के कवियों में द्विगुणित हो जाता है । शृंगार वर्णन और राष्ट्रीयता की दृष्टि से माधोर जी का अनुपम स्थान है । एक साथ शृंगार और वीर का समावेश कर "वीरवधू" की रचना माधोर जी की मौलिक प्रतिभा का परिचायक है माधोर जी के काव्य का उत्कर्ष न केवल विचार या भाव में है , न शब्दों में , 5 न लय में , न श्रुति माधुर्य में वरन इन सबके समन्वय में है । समस्या पूर्ति में माधोर जी सिद्धहस्त थे , झाँसी में समस्या पूर्ति की परम्परा माधोर जी की ही प्रेरणा से पल्लवित हुयी । माधोर जी के इस प्रयास ने झाँसी और आस - पास के क्षेत्र में अच्छे साहित्यिक क्षेत्र का निर्माण किया । निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि माधोर जी के प्रयासों से बुन्देलखण्ड जनपद में न केवल कवियों और लोक कवियों का निर्माण हुआ प्रत्युत एक ऐसे साहित्यिक वातावरण का सृजन भी हुआ , जिसमें यहां का जन साधारण भी काव्य और कवि प्रेमी बन गया । बुन्देलखण्ड जनपद के लिये कवीन्द्र माधोर की देन अमर और अमर है ।

---------------- o ----------------

बुन्देलखण्ड की राष्ट्रीय चेतना में माहौर जी का योगदान-

राष्ट्रीय चेतना का सम्बन्ध राष्ट्र से होता है और राष्ट्र उस जन समूह को कहते हैं जो किसी एक निश्चित भूखण्ड पर रहता है जिसकी एक राजनीतिक परम्परा होती है, जिसकी संस्कृति , धर्म, साहित्य, भाषा, कला आदि की भी एक ऐतिहासिक परम्परा होती है, जिसकी सामाजिक एवं शासकीय व्यवस्था भी एक परम्परागत विचार धारा पर संचालित होती है तथा जिसके सम्पूर्ण जन जीवन में एक भावात्मक एकता रहती है[1]। इस प्रकार राष्ट्र को सर्वोपरि मान कर जो कवि स्वदेश के प्रति अनुराग व्यक्त करता है देश भक्ति के गीत गाता है, अपने समाज को उन्नत बनाने का प्रयास करता है अपनी जननी जन्म भूमि को स्वर्ग से भी गौरवमयी मानकर उसके प्रति त्याग एवं बलिदान के भाव जाग्रत करता है , अपने नदी, वन, पर्वत, पशु पक्षी आदि के प्रति रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है, अपने राष्ट्र विरोधी पाशविक शक्तियों का दमन करने की प्रेरणा देता है , राष्ट्रीय कवि की संज्ञा का अधिकारी होता है[2]। राष्ट्रीय साहित्य का सृजन उस समय होता है, जब राजनीतिक परिस्थितियों वश स्वदेश - प्रेम की भावना प्रबल हो जाती है ।

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्य धारा का प्रारम्भ वीरगाथा काल से माना जाता है । हिन्दी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना के प्रारम्भिक स्वर वीरगाथा काल की कृतियों , पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो आदि में मुखरित हुये दिखाई देते हैं । इस समय चारण कवि "जिसका खाना उसका गाना" के रंग में रंगे थे इसी कारण इनकी भावना में संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता दिखलायी देती है इस कविता को राष्ट्रीय कविता का संकुचित काल कह सकते हैं । भक्ति काल में तुलसी दास ने रामायण में "निसिचर हीन करौं महि, भुज उठाय प्रन कीन्ह" में राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित किया । रीतिकाल में इस क्षेत्र में -

---

1:- राष्ट्र की उत्पत्ति और भारतीय राष्ट्रीयता-त्रिपथगा, जनवरी 1962 पृ0-25

2:- प्राचीन प्रतिनिधि कवि-डा0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना - पृ0- 388

कवि भूषण का स्वर सशक्त रहा ।

आधुनिक युग नव जागरण का अरुणोदय है । इस युग में हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सर्व प्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने राष्ट्रीय भावों से ओत प्रोत अपनी ओजमयी रचनायें प्रस्तुत की । वास्तव में भारतेन्दु युग राष्ट्रीय गतिशील धारा का युग है । हिन्दी में राष्ट्रीय कविताओं के जन्मदाता हरिश्चन्द्र हैं[1]। "द्विवेदी युग" हमारे देश के इतिहास में गहरी सामाजिक एवं राजनीतिक उथल पुथल का युग है[2]। इस युग के कवियों में राष्ट्रीय चेतना अत्यधिक सशक्त एवं उत्कट रूप में अभिव्यक्त हुये है । इसका प्रमुख कारण यह था कि भारतेन्दु युग में तो देश भक्ति के साथ साथ राजभक्ति भी मिली थी किन्तु अब देश भक्ति की ही प्रबलता थी । जिस राष्ट्रीय भावना का उत्थान "भारत दुर्दशा" से "जग जाय तेरी नोक से सोये हुये ह भाव जो" भारत भारती में हुआ उसका पोषण एक भारतीय आत्मा ,श्याम नारायण पाण्डेय, बालकृष्ण शर्मा नीवन, सुभद्राकुमारी चौहान आदि की रचनाओं में हुआ । इसी समय मैथिली शरण गुप्त ने अपने अनेक काव्यों में राष्ट्रीयता की भावना का सर्वाधिक प्रचार एवं प्रसार किया[3]।

हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियों के आधार पर भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग के बीच विभाजक रेखा खींचना कठिन है । एक ही राष्ट्रीय चेतना भारतेन्दु युग से लेकर द्विवेदी युग तक प्रवहमान रही । दोनों युगों को मिलाकर "एक राष्ट्रीय जागरण युग" नाम दिया जाय तो भारतेन्दु युग को उसका पूर्वार्द्ध ओर द्विवेदी युग को उसका उत्तरार्द्ध माना जायगा[4]। द्विवेदी युग का समारम्भ 1901 से "सरस्वती" पत्रिका के प्रकाशन के साथ होता है । कवीन्द्र माहौर का समय :सन 1885 से 1959 : उन्नीस वीं शताब्दी का अन्तिम चरण तथा बीसवीं शताब्दी का अर्द्धांश था । बुन्देलखण्ड की राष्ट्रीय चेतना माहौर जी का -

---

1:- आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास-डा० श्री कृष्ण लाल- पृ०- 82

2:- इतिहास विशेषांक- अक्तूबर 1952 सम्पादक शिवसिंह चौहान

3:- हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि-डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना- पृ०-102

4:- आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका- डा० शम्भुनाथ पाण्डेय- पृ०- 56

योगदान देखने के लिये सर्व प्रथम तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का अनुशीलन अपेक्षित है, क्यों कि देश व्यापी, राष्ट्रीय आन्दोलन से बुन्देलखण्ड जनपद अप्रभावित न रह सका था ।

सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के विफल होने के बाद से ही भारतमें क्रान्तिकारी दलों का संगठन प्रारम्भ हो गया था । 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना देश के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी । इस राष्ट्रीय कांग्रेस के तत्वावधान में भारत के गण्यमान नेता देश की समस्याओं पर विचार करने लगे थे । इस संस्था के नेतृत्व में राष्ट्रीय एकता की भावना बलवती हुयी । लार्ड कर्जन :1900 से 1905 : की अनुदार नीति भारत वासियों के प्रति अपमान जनक शब्द तथा बंगाल - विभाजन की शरारत भरी योजना ने युवकों के विश्वास को और दृढ़ किया । कांग्रेस के गरम और नरम दो दल बन गये थे । दोनों के साध्य एक होते हुये भी साधनों में महान अन्तर था । ब्रिटिश सरकार ने लोकमान्य तिलक के उग्र कार्यों से भयभीत होकर सन् 1908 में गिरफ्तार कर लिया , जिससे भारतीय जनता उत्तेजित हो उठी । 1914 से 1918 तक प्रथम महा युद्ध चला इसी बीच राजनीतिक मंच पर महात्मा गांधी अवतरित हुये जिन दिनों गांधी जी के नेतृत्व में देश साम्राज्यवाद से संघर्ष करने की तैयारी कर रहा था पंजाब म जलियां वाले बाग का हत्याकाण्ड घटित हुआ । इस अत्याचार ने 1857 के घावों को फिर से ताजा कर दिया । गांधी जी ने राष्ट्र की बागडोर सम्हाली और 5 नवम्बर 1921 को प्रथम अहिंसात्मक राष्ट्रीयसंघर्ष का श्री गणेश हुआ । सरकार से असहयोग, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, सविनय अवज्ञा, आन्दोलनवस संघर्ष के मुख्य कार्य क्रम थे । 9 अगस्त 1942 को "भारत छोड़ो" प्रस्ताव पारित किया गया । 1945 में युद्ध समाप्ति के उपरान्त 1946 में जवाहरलाल नेहरू की अन्तरिम सरकार बनी । जहाजी बेड़े के नव युवकों के विद्रोह , आजाद हिन्द फौज का मुकदमा, सुभाष चन्द्र बोस के व्यक्तित्व एवं राष्ट्र व्यापी आन्दोलन को देखते हुये ब्रिटिश सरकार अनुभव करने लगी कि भारतीयों को अब दिनोंतक गुलाम बना कर नहीं रखा जा सकता । लार्ड माउन्टबेटन ने भारतीय नेताओं के परामर्श से 15 अगस्त 1947 को भारत की स्वतंत्रता की घोषणा कर दी । 26 जनवरी 1950 को भारत गणतंत्रात्मक राज्य घोषित किया गया ।

कवीन्द्र नाथूराम माहोर ने 1906 में काव्य क्षेत्र में पदार्पण किया, उस समय भारतीयों के हृदय मे अंग्रेजों के प्रति विद्रोह एवं असन्तोष की भावना पनप रही थी । राष्ट्रीय क्रान्ति में देश के साहित्य कार का सर्वाधिक महत्व-पूर्ण योगदान होता है । इस समय साहित्य के क्षेत्र में राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार तेजी से हो रहा था मैथिली शरण गुप्त ने अपने काव्य द्वारा भारतीय युवकों में आत्म सम्मान, आत्म विश्वास, देश प्रेम आदि के भाव जाग्रत कर उन्हें देश के स्वाधीनता संग्राम के लिये प्रोत्साहन किया । देश और समय की पुकार ने रीति परम्परा के अनुयायी शृंगारी कवि माहोर जी को भी राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख किया । देश की राजनीतिक गतिविधियों का प्रभाव झाँसी पर अधिक व्यापक रूप में पड़ा था क्योंकि प्रसिद्ध क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद, सरदार भगत सिंह के साथ कवीन्द्र माहोर के भान्जे स्व0 भगवानदास माहोर झाँसी के प्रमुख कांग्रेसी कार्य कर्ताओं, श्री युत रघुनाथ विनायक धुलेकर, श्री सीता राम भागवत, श्री कालका प्रसाद अग्रवाल आदि से मिल कर झाँसी में ही क्रान्तिकारी योजनायें बनाया करते थे । चन्द्र शेखर आजाद का सम्बन्ध श्री आत्मा राम गोविन्द खेर से था और समय समय पर खेर साहब श्री गणेश शंकर विद्यार्थी की मार्फत क्रान्तिकारी दल की झाँसी शाखा का सम्पर्क प्रान्तीय शाखा से स्थापित कर देने का काम कर देते थे[1]। सदा शिवराव मलकापुर कर क्रान्तिकारी दल की झाँसी शाखा के नेता थे और इस कार्य में उनके सहायक थे श्री भगवान दास - माहोर ।

स्व0 डा0 भगवान दास माहोर अपने मामा कवीन्द्र नाथूराम माहोर के घर ही रहते थे , झाँसी की क्रान्तिकारी गतिविधियों का केन्द्र माहोर जी का ही निवास था अतः माहोर जी की काव्य साधना पर राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था । झाँसी में होने वाले क्रान्तिकारी आन्दोलन के परिणाम स्वरूप माहोर जी राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख हुये और अपने सशक्त राष्ट्रीय साहित्य से बुन्देलखण्ड की जनता के अन्दर अखण्ड राष्ट्रीय चेतना

1:- मा0अभि0ग्र0- क्रान्तिकारी झाँसी - पृ0- 13-लेखक श्री देवेन्द्र शिवानी

की जाग्रति उत्पन्न की । हिन्दी साहित्य ने भी अपने युग की राष्ट्रीय विचार धारा को विशुद्ध रूप में प्रतिबिम्बित किया । इस समय अतीत गौरव की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति में तीव्रता आई । भौगोलिक एकता एवं मातृ भूमि-स्तवन पर विशेष बल दिया गया । संक्षेप में वर्तमान युग में राष्ट्रीयता की निम्न प्रवृत्तियां परिलक्षित होती हैं - 1:- अतीत गौरव गान 2:- वर्तमान दुर्दशा - 3:- आर्थिक संकट 4:- राजनीतिक दासता 5:- देश भक्ति, 6:- सत्याग्रह - आन्दोलन- :असहयोग,सविनय अवज्ञा : की अभिव्यक्ति , 7:- बलिदान की भावना, 8:- स्वदेशी प्रयोग एवं विदेशी बहिष्कार, 9:- क्रान्तिकारी दल की राष्ट्रीयता का वर्णन ।

माहौर जी के काव्यमें राष्ट्रीय चेतना के उपर्युक्त सभी तत्व मिलते हैं । कवीन्द्र नाथूराम माहौर प्रारम्भ में श्रृंगार परक रीतिकालीन काव्य रचना करते थे , नायिका भेद के आचार्य थे , परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य वाद के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वतंत्रता के आन्दोलन के समय कवि की वाणी राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख हुयी । सन्. 1928 में माहौर जी के भान्जे स्व० डा० भगवान दास माहौर एवं प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री सदाशिवराव मलकापुर कर भुसावल बम काण्ड में गिरफ्तार किये गये उस समय माहौर जी की लेखिनी से सर्व प्रथम निम्न राष्ट्रीय छन्द कवित्त के रूप में नि:सृत हुआ -

> पवन से पतित सुखोयगें विदेशी वस्त्र,
>
> पल्लव नवीन के स्वदेशी फहरायेंगे ।
>
> शमन करेंगे शोत भीत पराधीनता की,
>
> वल्लरी स्वाधीनता की छटा छहरायेंगे ।
>
> नाथूराम विशद विशाल विश्व हिन्द माहिं,
>
> हिन्दी की ललित लतायें लहरायेंगे ।
>
> गायेंगे सुगीत ये स्वदेशी ऋतुराज हो के,
>
> विश्व में विजय की पताका फहरायेंगे ।

कितना सशक्त राष्ट्रीय स्वर है, स्वदेशी प्रयोग और विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार की अभिव्यंजना राष्ट्रीय भावनाओं की अभि वृद्धि में सहायक है । । 1930 में जलगांव की अदालत में जब माहौर जी के भान्जे भगवान दास माहौर ने गोली -

चलायी उससे नाथूराम माहौर को एक और क्रान्तिकारी साहित्य की नवीन दिशा प्राप्त हुयी । ज्यों ज्यों भारतीय स्वातन्त्र्य की भावना जन हृदय में बढ़ती गयी त्यों त्यों माहौर जी भी रीतिकालीन परम्परा की अनुपादेय कविता त्याग कर भारत की राष्ट्रीय भावाभिव्यक्ति में समर्थ एवं उपयोगी प्रेरणादायक स्फूर्ति प्रधान सशक्त राष्ट्रवादी काव्य धारा की ओर अग्रसर होते गये । 1931 का जनान्दोलन प्रारम्भ हुआ हजारों देश भक्तों को कारागार में डाल दिया गया माहौर जी ने राष्ट्रीय भावना को वाणी देने वाले "दीन के आंसू" के माध्यम से दीन हीन भारतीय जनता की असहाय दशा, अंग्रेजी सत्ता की शोषण मनोवृत्ति का परिचय दिया , परिणाम स्वरूप देश के नवयुवक हंसते हंसते देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में पेल गये । अंग्रेजी सरकार "दीन के आंसू" से आतंकित हो उठी और सरकार ने "दीन के आंसू" को जब्त कर लिया । बुन्देलखण्ड की जन जाग्रति एवं राष्ट्रीय चेतना में सहायक "दीन के आंसू" माहौर जी की अनुपमेय कृति है । "दीन के आंसू" का राष्ट्रीय भावना को बल देने वाला एक उदाहरण दृष्टव्य है -

दिन रात रुलावत है जितना,
उतना ही रुलायेंगे दीन के आंसू ।
कलपाय रहा दिल आज जिता,
कल ही कलपायेंगे दीन के आंसू ।
इक बार सताइबे के बदले ,
सतबार सतायेंगे दीन के आंसू ।
कर जुल्म तू दीन बना ही चुका -
तुझे दीन बनायेंगे दीन के आंसू[1]।

माहौर जी ने देश प्रेम और स्वातंत्र्य युद्ध के लिये नव युवकों को प्रोत्साहित करने के लिये अन्योक्तियों एवं समासोक्तियों का सहारा लिया और "गोरी बीबी" आदि प्रभाव पूर्ण रचनायें प्रस्तुत की । गोरी :अंग्रेज : सरकार के विरुद्ध माहौर-जी ने "गोरीबीबी" के माध्यम से जो अभिव्यंजना की है वह राष्ट्रीय चेतना को-

---

1:- दीन के आंसू - माहौर - छन्द सं. -1

बल देने वाली है -

ब्याहि के आई रही जब तू,

तब देखने में थी स्वभाव की भोरी ।

प्रीतम को वश में कर के,

करवे लगी हाय महा बरजोरी ।।

चोरी करी है स्वतंत्रता की ,

अब ओरी प्रतीत गई उठ तोरी ।

ज्यादा कुचाल चली जो कहू,

तो निकार के मायके भेज हैं गोरी[1]।

अंग्रेजों को देश से निकालने की बात माहौर जी ने अन्योक्ति का सहारा लेते हुये कितने प्रभावोत्पादक ढंग से कही है ।

"वीर वधू" और "वीर बाला" के माध्यम से बुन्देलखण्ड की ही नहीं अपितु सम्पूर्ण देश की नारियों में शौर्य की भावना जाग्रत कर माहौर जी ने स्वाधीनता संग्राम के लिये प्रोत्साहित किया । वीर वधू में आपकी लेखिनी ने भारतीय नारी के आदर्श एवं ओजस्वी स्वरूप को प्रस्तुत किया । श्रंगार में वीर रस का समावेश "वीर वधू" का वैशिष्ट्य है । यह काव्य प्रात: स्मरणीया महारानी लक्ष्मी बाई को लक्ष्य कर लिखा गया राष्ट्रीय विचारधारा को प्रोत्साहित करने में सक्षम है । ऐसे ही महारानी लक्ष्मी बाई का स्तवगान करते हुये कवि ने राष्ट्रीय भावनाओं से भ री हुयी "वीर बाला" की रचना करते हुये कामना की ----- "बाई वीरबाला वीर बाला बन जायेगी" । महारानी लक्ष्मी बाई के बलिदान दिवस पर माहौर जी की लेखिनी से रानी का यशोगान करते हुये "वीरबाला" के ये छन्द निसृत हुये -

कुल कमला सी कल कलित कला सी मंजु,

कंज कलिका सी कोमलांगी कमनीय थी ।

पाणि में कृपाण तान आन के रण स्थल में ,

1:- गोरी बीबी - माहौर - पृ0- ।

दल में प्रबल खल दल दमनीय थी ।

नाथूराम विदित विदेशी देश द्रोहियों की,

धवल सबल शत्रु सेन शमनीय थी ।

वीर रमणीय में लखाई बाई लाय तुही,

झाँसी दुर्ग द्वार माँहि रण रमनीय थी[1]।

अँग्रेजों से रानी के युद्ध का कितना सजीव चित्र निम्न छन्द में खींचा है -

भालन से कठिन कराल करवालन तें,

काटे थे कपाल काल सम किलकारी दे ।

रोष रण प्रबल प्रकोप रण ओप-ओप,

तोप-तोप तोपन की चोट चटकारी दे ।

नाथूराम" बाढ साढ वीरता प्रचारी जबै,

मारी वे सुमार मार देश की गुहारी दे ।

अंग अंग्रेजन के भेजन ले डारे भेद ,

भेजे काढ़ लीने थे करेजन कटारी दे[2]।

माहौर जी के काव्य में बलिदान और विद्रोह की जो गंगा यमुना बही वह गांधी और तिलक के सम्मिलित प्रभाव की परिणति है । सन 1926 में जब गांधी जी झाँसी पधारे तो माहौर जी ने उस समय महात्मा गाँधी की प्रशस्ति में जो छन्द पढ़ा, वह राष्ट्र के लिये कवि की अमूल्य एवं अविस्मरणीय धरोहर है । गांधी की पूजा माहौर जी ने मोहन :कृष्ण : के रूप में की है -

काली नाग नाथो उन, नाथे इन गोरे नाग,

नाग विष नाथन को गरल गिरायो है ।

माखन चुरायो उन खायो औ खवायो,

इन नमक चुराय के लुटायो है बनायो है ।

1:- वीर बाला - माहौर - छन्द सं. 2

2:- वीर बाला - माहौर - छन्द सं. 7

नन्द नन्द मोहन ने मोहन बनायो ब्रज,

कर्मचन्द मोहन जगमोहन बनायो है ।

सन 1931 में अमर शहीद भगत सिंह और चन्द्र शेखर आजाद आदि सशक्त क्रान्ति-कारी वीरों का स्तवगान भी कवि ने मुक्त कण्ठ से किया । भगतसिंह को फांसी लगने पर कवि की वाणी उस वीर का वर्णन इस प्रकार करती है -

भारत के भाग में था दाग परतन्त्रता का,

फांसी चढ़ वीर खून अपने से धो गया ।

आन, बान, वाला मतवाला था स्वतंत्रता का,

रत्न गर्भा का था अमूल्य रत्न खो गया ।

"नाथूराम" बो गया अखण्ड स्वाभिमान बीज,

मातृभूमि गोद में सदा के लिये सो गया ।

बच्चा सिंहनी का सच्चा देश भक्त भगत सिंह,

क्रान्ति का दिवाकर सा हाय अस्त हो गया ।

ऐसे क्रान्तिवीरों के स्तवगान करते हुये बुन्देलखण्ड के नवयुवकों में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करता हुआ कवि स्वातंत्र्यान्दोलन की गति को तीव्रतर करता है । बुन्देल-खण्ड की देशी रियासतों में ब्रिटिश गुलामी में पड़े क्षत्रिय राजाओं के दर्प को जाग्रत करने के लिये माहौर जी ने "कृपाण" और "दुनाली" के ऊपर राष्ट्रीय छन्द लिखे जिनमें इन राजाओं के प्रति व्यंग्य स्पष्ट है । ऐसी व्यंग रचनाओं ने बुन्देलखण्ड की राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में बड़ा योगदान दिया । एक उदाहरण दृष्टव्य है -

जानी थी शिवाजी छत्रसाल कर तानी जब,

कीनी मनमानी धूरधानी मुगलान की ।

जानी थी प्रताप करी हानी वैरियों की खूब,

ठीक ठान ठानी थी स्वतन्त्रता महान की ।

\+ + + + +

जाने कहा निगुरे निगोड़े रजपूत कोरे,

कायर कपूत कूर करनी कृपान की ।

उपर्युक्त कवित्त में शिवाजी, छत्रसाल और राणा प्रताप आदि वीर पुरुषोंकी महिमा का बखान करते हुये कवि ने अक्षुण्ण राष्ट्रीय चेतना का प्रसार किया ।

माधौर जी ने गांधी जी के असहयोग आन्दोलन की अभिव्यक्ति अपने साहित्य में कर राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया । "अश्रुमाल" में माधौर जी ने "दीन दुखियों के आंसू" को तिरंगा झण्डे के रूप में देखते हुये असहयोग आन्दोलन की अभिव्यक्ति की है । यथा -

त्रय रंग को संग निशान लिये, कुल की कुलकान लुटा रही है ।

+ + + + +

अंखियां हैं स्वतन्त्रते तेरे लिये, निज गोद के लाल लुटा रही है[1]।

आगे के छन्द में कवि कहता है -

"सुख सम्पति मंगल मोद सबै, असयोग को योग लगे करने[2]। "

तिरंगा ध्वज हमारी राष्ट्रीय स्वतंत्रता का अग्रदूत रहा है । माधौर जी ने "अभिलाषा" ख्याल में मातृभूमि पर सर्वस्व त्यागने की कामना करते हुये तिरंगा झण्डा फहराने की अभिलाषा की है -

मां! तेरे चरणों में चित्त दे हंस हंस शीश चढ़ाना है ।
सुख सम्पति सर्वस्व त्याग कर तुझे स्वतंत्र बनाना है ।
त्रिगुण त्रिगंगा सदृश तिरंगा सर्वत्र फहराना है ।
लाल जवाहर जवहरात से भरना देश खजाना है ।
उषा सुन्दरी स्वतंत्रता से स्वर्णाकाश बनाना है ।
मुरझाये प्यारे सुमनों के मुख स्व सुखद खिलाना है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि माधौर जी के काव्य में उस समय की देश अवस्था, ब्रिटिश अत्याचार, उस समय की क्रान्ति एवं विद्रोह की भावनायें पुष्पित हुयी हैं । गोरों को अपने हिन्द देश से निकालने के लिये कवि की वाणी कटिबद्ध है । अपने वीर पुरुष छत्रसाल, शिवाजी, प्रताप ,लक्ष्मी बाई आदि के प्रताप

1:- अश्रुमाल - माधौर - दीन दुखियों के आंसू - पृ0- 48

2:- अश्रुमाल - माधौर - दीन दुखियों के आंसू - पृ0- 48

का स्मरण करता हुआ, नव युवकों को अंग्रेजों को देश से निकालने के लिये प्रोत्साहन देता हुआ कवि कह उठता है -

बाजी जीत लेवेंगे स्वराजी ये शिवाजी बन,
छत्रसाल, होके शत्रुओं के उर सालेंगे ।
गुरु गोविन्द कृत ग्रहण करेंगे आन,
प्रबल प्रतापी हो प्रताप प्रण पालेंगे ।
नाथूराम बाई साब लक्ष्मी की लक्ष-पर,
बन रण दक्ष जो तत्क्ष लक्ष डालेंगे ।
गोरे हिन्द वालों को, सुकाले हिन्द वाले अब,
सांचे हिन्द वाले हिन्द हद्द से निकालेंगे ।

1935 में कांग्रेस की रजत जयन्ती के अवसर पर दिल्ली में एक राष्ट्रीय कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें माहौर जी की राष्ट्रीय रचनाओं को विशेष सम्मान प्राप्त हुआ जिसके फल स्वरूप दिल्ली में राष्ट्रीय कविताओं का श्री गणेश हुआ । इस प्रकार माहौर जी की राष्ट्रीय भावना से राष्ट्र को जो बल मिला उससे स्वतंत्र भारत माहौर जी का सर्वदा ऋणी रहेगा ।

---------------- o ----------------

परिशिष्ट - 2

सहायक ग्रन्थ सूची

संस्कृत -

1:- कर्पूर मंजरी - राजशेखर

2:- काव्य प्रकाश - मम्मट

3:- काव्यालंकार सूत्र वृत्ति - वामन

4:- नारद भक्ति सूत्र

5:- रस गंगाधर - पंडित जगन्नाथ

6:- रस तरंगिणी - भानु दत्त

7:- वाल्मीकि रामायण - वाल्मीकि

8:- विष्णु पुराण - :प्रथम अंश :

9:- शाण्डिल्य भक्ति सूत्र - गीता प्रेस गोरखपुर

10:- श्री मद्भागवत - सं. 2009

हिन्दी -

1:- अपभ्रंश साहित्य - हरिवंश कोछड़ :प्रथम :

2:- आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग - डा० उदयभानु

3:- आधुनिक हिन्दी काव्य - डा० राम कुमार वर्मा

4:- आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना - डा० पुत्तू लाल शुक्ल

5:- आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका - शम्भूनाथ पाण्डेय

6:- आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

7:- आधुनिक हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि - डा० भोलानाथ

8:- आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास - डा० श्री कृष्ण लाल

9:- आधुनिक काव्य धारा का स्रोत - डा० केसरी नारायण शुक्ल

10:- उदय और विकास - श्री रामचरण ह्यारण मित्र

11:- उद्धव शतक - रत्नाकर

12:- कला, कल्पना और साहित्य - डा० सत्येन्द्र

13:- कवि पद्माकर और उनका युग - डा० व्रज नारायण सिंह

14:- कविता में प्रकृति चित्रण - रामेश्वर लाल

15:- कवित्रयी - डा० गिरीश चन्द्र तिवारी

16:- काव्य कल्प द्रुम - प्रथम भाग - सेठ कन्हैलाल पोद्दार

17:- काव्य दर्पण - पं० राम दहन मिश्र

18:- काव्य प्रदीप - राम बहोरी शुक्ल

19:- काव्य शास्त्र - भागीरथ मिश्र

20:- काव्य वाटिका - प्रथम पुष्प - :माहोर मण्डल द्वारा प्रकाशित :

21:- कांग्रेस का इतिहास - पट्टाभिसीतारमैया

22:--केशव ग्रन्थावली- तृतीय भाग

23:- केशव और उनका साहित्य - डा० विजय पाल सिंह

24:- खड़ी बोली आन्दोलन - अयोध्या प्रसाद खत्री

25:- चिन्तामणि :प्रथम भाग : - रामचन्द्र शुक्ल

26:- छन्द प्रभाकर - जगन्नाथ प्रसाद भानु

27:- जाति भास्कर - ज्वाला प्रसाद मिश्र

28:- जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त - लक्ष्मीनारायण सुधांशु

29:- तार सप्तक - भाग - 1

30:- झाँसी - दर्शन - मोती लाल त्रिपाठी

31:- तुलसी साहित्य की भूमिका - डा० राम रतन भटनागर

32:- देव और उनकी कविता - डा० नगेन्द्र

33:- नव रस - बाबू गुलाब राय :द्वितीय संस्करण :

34:- निराला का काव्य - डा० सन्तोष गोयल

35:- पल्लव - सुमित्रा नन्दन पंत

36:- पं रामनरेश त्रिपाठी का काव्य - कृष्ण दत्त पालीवाल

37:- पृथ्वीराज - डा० भगवान दास

38:- प्रताप नारायण मिश्र-जीवन और साहित्य - डा० सुरेश चन्द्र शुक्ल

39:- प्रिय प्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन - डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना

40:- प्राचीन प्रतिनिधि कवि - डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना

41:- प्रसाद की कवितायें - सुधाकर पाण्डेय

42:- प्रसाद का काव्य - डा० प्रेमशंकर

43:- प्रेमघन सर्वस्व - हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

44:- ब्रज वर्तिका - श्री सेवकेन्द्र त्रिपाठी

45:- ब्रज भाषा का साहित्य और नायिका भेद - प्रभुदयाल मीतल

46:- बृहत साहित्यिक निबन्ध -डा० रामसागर त्रिपाठी एवं शान्ति स्वरूप गुप्त

47:- ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास - डा० बी०डी० महाजन

48:- बुन्देलखण्ड वागीश - रामपाल सिंह चन्देल

49:- बुन्देल वैभव - गौरीशंकर द्विवेदी

50:- बुन्देली का फाग साहित्य - श्याम सुन्दर बादल

51:- बिहारी सतसई - बिहारी

52:- बिहारी सतसई - आलोचना - डा० देवेन्द्र शर्मा

53:- वीर रस का शास्त्रीय विवेचन - श्री कोकृष्ण

54:- भारत भारती - मैथिली शरण गुप्त

55:- भारत का संवैधानिक इतिहास - डा० वी०डी० महाजन

56:- भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास - गुरुमुख निहाल सिंह

57:- भारतेन्दु ग्रन्थावली - दूसरा भाग

58:- भारत गीत - श्रीधर पाठक

59:- भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा - सम्पादक डा० नगेन्द्र

60:- भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति - डा० सुषमा नारायण

61:- भारतीय साधना और सूर साहित्य - डा० मुंशी राम शर्मा

62:- भाषा - विज्ञान - डा० भोलानाथ तिवारी

63:- भूषण - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

64:- मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य - शिव सहाय पाठक

65:- महाकवि ग्वाल का व्यक्तित्व तथा कृतित्व -डा० भगवान सहाय पचौरी

66:- माताभूमि - वासुदेव शरण अग्रवाल

67:- मिश्र बन्धु विनोद - मिश्र बन्धु :सं० 1980 :

68:- मेरी कहानी - पं. जवाहर लाल नेहरू

69:- माहोर महत्व प्रकाश - रत्नाश्रम फाइन आर्ट प्रिंटिंग वर्क्स आगरा से प्रकाशित

70:- माहोर, माथुर, वैश्य जाति एवं उसके संगठनों पर अनुसंधान - लेखक - रामेश्वर दयाल गुप्त -प्रकाशक- यतीन्द्र कुमार गुप्त और प्रकाशक - अलीगढ़ : पेटा :

71:- युग कवि प्रसाद - डा० गणेश दत्त गौड़

72:- रत्नाकर की साहित्य साधना - डा० दानबहादुर पाठक

73:- रत्नाकर और उनका काव्य - उषा जायसवाल

74:- रत्नाकर, उनकी प्रतिभा और कला - डा० विश्वम्भर नाथ भट्ट

75:- रंग में भंग - मैथिली शरण गुप्त

76:- रस रत्नाकर - हरि शंकर शर्मा

77:- रस सिद्धान्त, स्वरूप विश्लेषण - डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित

78:- राम चरित मानस - गोस्वामी तुलसी दास

79:- रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता - डा० रमेश कुमार शर्मा

80:- रीति कालीन कवियों की भूमिकाऔर देव और उनकी कविता - डा० नगेन्द्र

81:- रीतिकालीन कवियों का काव्यशिल्प - डा० महेन्द्र

82:- रीति कालीन कवियों की प्रेम व्यंजना - डा० बच्चन सिंह

83:- रीति काव्य नवनीत - सम्पादक - डा० भागीरथ मिश्र

84:- लक्ष्मी बाई रासो - मदनेश - सम्पादक - डा० भगवानदास माहोर

85:- वाङ्मय विमर्श - विश्वनाथ प्रसाद

86:- विनय पत्रिका - गोस्वामी तुलसीदास

87:- विश्व इतिहास की झलक - दूसरा खण्ड - पं.जवाहर लाल नेहरू

88:- शब्द रसायन - देव

89:- शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त - प्रथम भाग - गोविन्द त्रिगुणायत

90:- संस्कृत साहित्य का इतिहास - सेठ कन्हैयालाल पोद्दार

91:- साहित्य दर्पण - विश्वनाथ

92:- साकेत - मैथिली शरण गुप्त

93:- साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन - डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना

94:- साहित्यिक निबन्ध - राजनाथ शर्मा

95 :- साहित्य की समस्या - शिवदान सिंह चौहान

96 :- साहित्यिक निबन्ध - हृदय नारायण सिंह

97:- सिद्धान्त और अध्ययन - बाबू गुलाब राय

98 :- सूरदास - ब्रजेश्वर वर्मा

99 :- सूरदास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

100:- सूरसागर - सूरदास

101:- सूर और उनका साहित्य - डा० हरवंश लाल शर्मा

102:- सूर का काव्य वैभव - डा० मुंशीराम शर्मा

103:- हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण - डा० किरण कुमारी गुप्ता

104:- हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ - डा० जगदीश नारायण त्रिपाठी

105:- हिन्दी काव्य धारा में प्रेम प्रवाह - पं. परशुराम चतुर्वेदी

106:- हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग - डा० नामवर सिंह

107:- हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल

108:- हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास - बाबू गुलाब राय

109:- हिन्दी साहित्य का आदि काल - पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी

110:- हिन्दी साहित्य - चतुर्थ संस्करण - श्याम सुन्दर दास

111:- हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास - पं. राम बहोरी शुक्ल

112:- हिन्दी साहित्य, युग और प्रवृत्तियाँ - डा० शिवकुमार शर्मा

~~113:- हिन्दी साहित्य का युग और उनकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ - डा० शिवकुमार शर्मा~~

113:- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप और विकास - डा० शम्भूनाथ सिंह

114: हिन्दी वीर काव्य - डा० टीकमसिंह तोमर

पत्र - पत्रिकायें एवं अभिनन्दन ग्रन्थ

1:- क्रान्तप - डा० भगवानदास माहौर अभिनन्दन ग्रन्थ - सम्पादक - डा० विश्वम्भर आरोही । मुद्रक-आराधना प्रिंटिंग प्रेस, लश्कर

2:- दैनिक जागरण झाँसी 19 अक्तूबर 1959, 21 अप्रैल 1960, जागरण प्रेस सिविल लाइन्स झाँसी से प्रकाशित

3:- दैनिक मध्यदेश झाँसी - गणतंत्र विशेषांक 26 जनवरी 1972

4:- मार्ग दर्शक - रामकुमारी चौहान स्मृति विशेषांक- नवम्बर 1987 178, गुसाईं पुरा से प्रकाशित

5:- मुंशी दामोदर दास खत्री स्मृति ग्रन्थ - प्रकाशक श्री मती सन्तोष खत्रा मुद्रक- स्वाधीन प्रेस जवाहर चौक झाँसी

6:- स्मारिका - 1 मार्च 1974 स्वागत समिति उ० प्र० हिन्दी साहित्य - सम्मेलन 18वाँ झाँसी अधिवेशन द्वारा प्रकाशित

7:- समालोचक - नवम्बर 1958 आगरा

8:- साप्ताहिक भारती - झाँसी दर्शन विशेषांक 1968 45 लक्ष्मणगंज झाँसी से प्रकाशित

9:- राम राज्य :कानपुर : - 1अक्तूबर 1956

10:- राष्ट्र भाषा सन्देश - 15 नवम्बर 1980

11:- चेतना - वाणी - बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय शोध प्रकाशन त्रैमासिकी अगस्त 1978 अंक प्रथम, वर्ष प्रथम

12:- वृन्दावन दास अभिनन्दन ग्रन्थ - डा० आनन्द [illegible]

13:- माहौर अभिनन्दन ग्रन्थ - प्रकाशक श्री सदाशिवेश मिश्र, मुद्रक रामसेवक शकुन स्वाधीन प्रेस झाँसी । विजयादशमी रविवार 11-10-59

14:- मार्ग दर्शक - रामकुमारी चौहान विशेषांक

15:- विपथगा - 1982

16:- हिन्दी नवनीत - 8 - 12 - 27

17:- हिमालय - अंक तीन अप्रैल 1946 - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

18:- इतिहास विशेषांक - सम्पादक डा० शिवदान सिंह चौहान

19:- कल्याण - भक्ति अंक - वर्ष 32

अंग्रेजी

------ -

1:- इण्डियाज कल्चर थ्रू दी एजेस - एस0 एल0 विद्यार्थी

2:- ए हिस्ट्री आफ माडर्न इण्डिया - डा0 ईश्वरी प्रसाद

3:- डिस्कवरी आफ इण्डिया - जवाहर लाल नेहरू

4:- झांसी गजेटियर - 1965

5:- जॉफ्टर - हेनरी बर्गसन

6:- यंग इण्डिया - महात्मा गांधी - 11-8-27 एवं 19-11-31

7:- स्पीचेस एण्ड राइटिंग्स आफ महात्मा गांधी